ब्रज भूमि मोहिनी

-भक्ति विजय एम. ए.

ब्रज भूमि मोहिनी

ब्रज बीथिन्ह जब सांवरो
चलै सुचाल मतंग ।
छिन-छिन में छवि की झरी
होत चलत इक संग ॥

भक्तिविजय एम. ए.

सावधान

अत्यन्त खेद की बात है-अनेक बार तथाकथित साहित्यकार, यह कह कर तो इस शब्द की गरिमा को अपमानित ही करना होगा । ऐसे महानुभावों को 'साहित्य के चोर' की संज्ञा से विभूषित करना ही उचित होगा । इस पुस्तक के अनेक परिच्छेदों, पंक्तियों को चुरा हू बहू अपने नाम से प्रकाशित करा एक महानुभाव ने गौरव प्राप्त किया है - कितना हास्यास्पद है - क्या कहा जाए । भगवान् ही सद्‌बुद्धि दें ।

प्रकाशक:
परम पूजनीया सुश्री सुशीला शर्मा एम. ए.
ब्रजनिधि प्रकाशन,
वृन्दावन, युपी, भारत

चतुर्थ संस्करण
भक्तिमती ऊषा बहन जी की इकीसवीं पुण्य तिथि पर
फाल्गुन कृष्णा द्वितीया २०६९
१००० प्रतियाँ

लेखक तथा संपादक
भक्तिविजय एम. ए.

न्यौछावर : भा. रू. २५०/-

पुस्तक प्राप्ति स्थल
१. सुश्री निर्मला शर्मा
ब्रज निधि प्रकाशन
चार सम्प्रदाय आश्रम के पीछे, गौरानगर कोलोनी
दूरभाष : ९१-९८९७५१३०६२
वृन्दावन, उत्तर प्रदेश

२. छैल बिहारी खंडेलवाल, खंडेलवाल एण्ड सन्स
अठखम्भा, वृन्दावन
दूरभाष : ०५६२-२४४३१०१

३. जयप्रकाश अग्रवाल, काठमाण्डू, नेपाल
इ-मेल : jpnpag@yahoo.com
दूरभाष : ०९७७-९८५१०६८८४७
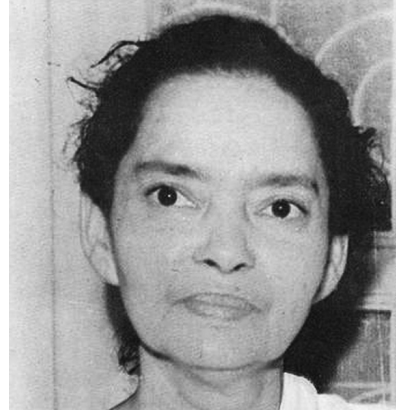
समर्पण

जिनकी अहैतुकी कृपा ने, अपने निजजनों का कृपा भाजन बनाया तथा जिन्होंने श्रीधाम में स्थायी वास दे परम अनुग्रह किया, उन्हीं रस-स्वरूप युगलाराध्य को सादर सप्रेम-

तथा

जिन महामना ने मेरे तन-मन रोम-रोम का पोषण कर श्रीधाम की श्री से सम्पन्न होने को रस-भूमि को सौंप दिया ।

रसाम्बुधि में सतत अवगाहनरता उन्हीं श्रद्धास्पदा पूजनीया भक्तिमती ऊषा बहनजी को ।

कृपाकांक्षी
भक्तिविजय एम. ए.

अनुक्रमणिका

श्री हरिः

प्रकाशकीय

अत्यंत हर्ष का विषय है कि ब्रजभूमि मोहिनी पुस्तक का हिन्दी भाषा में चौथा संस्करण छपने जा रहा है, इससे पहिले अंग्रेजी भाषा में तीसरे संस्करण के आधार पर यह पुस्तक छप चुकी है-इस तरह तो इसे पाँचवा संस्करण भी कह सकते हैं पर भाषा की दृष्टि से चौथा संस्करण कहना ही युक्तियुक्त रहेगा। इस बार, प्रथम संस्करण की ही प्रतिकृति जैसी है यह।

विजय बाबा का सुन्दर-मधुर-मनमोहक प्रयास एवं परिश्रम सराहनीय है-ब्रजभूमि-ब्रजराज युगल की लीला स्थलियों की महिमा के ग्राहक रसिक जनों के लिए अमूल्य निधि है, इसमें सभी सम्प्रदायों का सहयोग है-कहीं भी मत-मतान्तरों का विरोध नहीं-वाद विवाद-तर्क-कनेर बुद्धि के विषय से अछूता है। तीसरे संस्करण में पुस्तक का कलेवर कुछ भारी भावना के भार से बोझिल सा प्रतीत हुआ-इसलिए ही इस बार प्रथम संस्करण को ही आधार बनाया है, फिर भी तीसरे संस्करण में जोड़ी गई कुछ सामग्री का समावेश भी किया गया है।

ब्रजनिधि प्रकाशन से सर्वप्रथम प्रसूत ग्रन्थ बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुआ है - रस में ब्रजधाम का परिचय-ब्रजविहारी युगल तथा उनकी लीलाओं -लीला स्थलियों का सुन्दर वर्णन अनेकानेक ग्रन्थों -सिद्ध सन्त महात्माओं-सिद्ध स्थलियों के दर्शनो के आधार पर अत्यंत उपयोगी बना है।

इस पुस्तक को प्रकाशित करने का श्रेय-अंग्रेजी भाषा में ब्रजभूमि मोहिनी-पुस्तक के अनुवादक मान्यवर जयप्रकाश अग्रवाल को है। उनकी लगन और उनके अथक परिश्रम की कहाँ तक प्रशंसा करें-उनके सराहनीय कार्य की सदा सदा आभारी हूँ।

सुशीला

श्रीहरिः

परम पूजनीया भक्तिमती श्रीऊषा बहिनजी

इन नित्य लीलाविहारी का विहार शाश्वत है, सनातन है, अनादि-अनन्त है। यह ब्रजभूमि इनके लीला विहार की नित्य सरस स्थली है। नित्यविहारी युगल इस रसमयी भूमि पर प्रकट होकर अपने प्रियजनों को आनन्दोल्लास प्रदान करने के हेतु विविध लीलाएँ किया करते हैं। इनके परस रस से सरसाई यह ब्रज अवनि मोहिनी है, यहाँ के वन-उपवन, कुञ्ज-निकुंजें, श्रीयमुना, श्रीगिरिराज सभी मोहक हैं। यहाँ की सभी स्थलियों के अङ्क में लीला माधुरी विलस रही है। अनेकानेक लीलाओं की गाथा कहती यहाँ की यह पावन स्थलियाँ रसिक हृदयों को इसी लीला रस के आस्वादन की त्वरा लगाया करती हैं। आज भी विहार-प्रिय युगल यहाँ भाँति-भाँति की लीलाएँ करते हैं। आज भी कुञ्ज-निकुञ्जों में, यमुना-तट, पनघट- पर...वन वीथियों में निरन्तर लीला-विलास चल रहा है। आज भी उनकी पग-पैंजनियों की झङ्कार से यह सुभग स्थली निनादित है..उनकी मधुर मुरली की मधुर स्वर लहरी आज भी उसी प्रकार गूँज रही है। हमारे ही नेत्र धूमिल हैं, कान विश्व कोलाहल से पूरित हैं..इसी से इस सबकी प्रतीति होने नहीं पाती। अनेकानेक भावुक-जनों ने यहीं लीला-दर्शन, आस्वादन किया है, कर रहे हैं।

इस ग्रन्थ में आपको मोहिनी ब्रज-भूमि की मोहकता मिलेगी, लीला विहार की, केलि-कौतुकों की सुखद-सरस झाँकियाँ मिलेंगी। रसिक हृदयों को और-और रसमयता से भरने में....उस लीला रस-पान की ललक लगाने में...उस केलि-रस में निमज्जित हो जाने की और-और लालसा जगाने में यह ग्रन्थ परम सहायक होगा-ऐसा मेरा विचार है।

आशा है यह ग्रन्थ साम्प्रदायिक सङ्कीर्णताओं से मुक्त और सभी को समान भाव से आह्लाद प्रदान करने वाला सिद्ध होगा।

नन्दिनी ऊषा

५८८, बाँकेबिहारी कालौनी
श्रीधाम वृन्दावन
अक्षय तृतीया २०४३

परम पूजनीय श्रीश्रीबालकृष्णदास जी महाराज

क्या प्रकृति, क्या अन्तरिक्ष, सर्वत्र अपार आनन्द मंगल महोत्सव का महोत्साह जहाँ व्यापक है, वही रस रंग की, अत्युमंग की, महाभाव की, महारस की, अवर्णनीय व्रज-वन की भूमि है।

श्रीराधा एवं अनुगत अनन्त किशोरी वृन्दों के अनन्त चरणकमलों से चारु चिन्हित रसमय सम्पूर्ण वन्य प्रदेश ही, नव-नव लीलाओं का दर्शन है, पूर्णानुगत पात्रों की माधुर्य दशा को हृद्-प्रदेश से जागृत कराता है।

हृद्-प्रदेश, ब्रज प्रदेश, दो नहीं, एक ही हैं-यही अगणित महानुभावों की अनुभूत अमोघ महावाणी है। उनकी वाणी लीला ही है, अन्तरंगतम रहस्यमयी।

अहैतुकी कृपा से, प्रेरणा से अनुप्राणित होकर ही नित्यलीला-स्थलियों में, तन्मयता में विमुग्धतया विचरने का सौभाग्य प्राप्त होता है। स्थूल असीम भाव से भिन्नता की खिन्नता से अतीत होकर, असीम माधुर्य भाव से आविष्ट होकर, सर्वान्तरतम मधुर लीलाओं में आनन्द निमग्न होकर ही वन्य-रम्य स्थलियों में भ्रमण करना चाहिए। लीलाओं की प्रधानता से, श्रीजी की कृपा से लिखित श्रीविजय कौशलजी की 'ब्रज भूमि मोहिनी' ने मेरे हृदय को अत्यन्त आह्लादित किया है।

मैं यही विश्वास करता हूँ कि सभी रसिक पाठकगण भी हृदय से रसास्वादन करेंगे।

वेणु विनोद कुञ्ज
अक्षय तृतीया २०४२

श्रद्धेय श्रीराधा बाबा **गोरखपुर**

"कल्याण सम्पादक श्री पोद्दार जी महाराज के साथ ब्रज भूमि के अनेक स्थल-श्री नंदगाँव, प्रेम सरोवर, बरसाना, गोवर्द्धन आदि के दर्शन करने का सौभाग्य मिला तथा ब्रज की लीलाओं का, स्थलियों का, महत्ता का निरूपण करने वाले अनेक ग्रन्थों को देखने सुनने का अवसर मिला है, किन्तु ब्रज भूमि मोहिनी अपने ढंग की अनूठी पुस्तक है...... । महाभावमयी श्रीवृषभानु नन्दिनी एवं रसराज श्रीनन्दनन्दन ने ही कृपा करके मेरी वस्तु मेरे पास भेजी है ।

श्रद्धेय पंडित गयाप्रसादजी महाराज **वैशाख शुक्ला दशमी २०४२**

दानघाटी, गोवर्द्धन

'ब्रज भूमि मोहिनी' अपूर्व ग्रन्थ बन्यौ है । एक एक स्थली कौ सम्पूर्ण परिचय दियौ है । सभी सप्रमाण एवं सुन्दर हैं । सुनकै अति आनन्द मिल्यौ ।

शुभाशीर्वाद तथा शुभ कामनाओं सहित,

श्रद्धेय श्रीआनन्द दास बाबा जी महाराज **सीता नवमी २०४२**

दुसायत, वृन्दावन

ब्रज भूमि श्याम सुन्दर की नित्य निवास स्थली है, उन्हीं का निज धाम है । यह नित्य सिद्ध स्थली है तथा प्रिया-प्रियतम की अहैतुकी कृपा प्रदान करने में पूर्णतः सक्षम है । स्थलियों की लीला परक अनुभूति ही ब्रज भूमि की मोहकता है जो इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है ।

'ब्रज भूमि मोहिनी' को श्रवण कर मेरा मन, वाणी तथा सभी वृत्तियाँ तन्मयता को प्राप्त हो गईं, क्योंकि इस में भक्ति रस से सभी विषय आप्लावित हैं ।

श्रीवृन्दाबिहारिणे नमः

पूजनीय संत श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी जी महाराज

श्रीविजयजी ने जो "ब्रज भूमि मोहिनी" नाम की पुस्तक लिखी है ग्वाकूँ मैंने इत उत तें देख्यो। देख्यो का सूँघ्यो। जो लेखक होतयें ऽ वे पढ़त नाहें खाली सूँघिके तत्थु निकार लेत हैं। मोय जिइ पुस्तक बहुतई मलूक लगी। वैसे मैंने ब्रज के ऊपर कैऊ पुस्तक देखीयें। परन्तु विजयजी ने जितनी विस्तार तें जि लिखी है ग्वैसी स्यात ई काऊ ने लिखी हो। जामें ब्रज के सबई प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्थाननि के सम्बन्ध में शास्त्रीय विवेचन करयो ए। जो वाद-विवाद के विषय हैं गुनतें जे तटस्थ रहे हैं। ब्रज के स्थाननि की ब्रज के रसिकनि की ब्रज के संत महात्मानि की बातें चाहें संक्षेप में ही हों सुन्दर ढँगतें लिखी हैं। ऐसी सुन्दर पुस्तक लिखने पै मैं लेखक कूँ "साधुवाद देंतूँ।"

ब्रजेन्द्रनन्दन के चरननि में जिही प्रारथना है कि विजयजी ऐसी और भी पुस्तक लिखते रहें।

सङ्कीर्तन भवन, बंशीवट, वृन्दावन **प्रभुदत्त ब्रह्मचारी**
अधिक श्रावण शुक्ला सप्तमी सं. २०४३ वि.

'ब्रज भूमि मोहिनी' में विश्वविमोहन भगवान् ब्रजेन्द्रनन्दन की नित्य लीला-भूमि ब्रज-वसुन्धरा का मोहक वर्णन पढ़कर किसका मन जाने-अनजाने (शरीर से नहीं तो मन से ही सही) ब्रज की मोहिनी वीथियों में विचरणशील न हो उठेगा। जिन्होंने ब्रज को देखा ही नहीं, वे यदि इसे पढ़कर ब्रज दर्शन के लिए लालायित हो तो आश्चर्य ही क्या है, जो लोग ब्रज भूमि के दर्शन-निवासादि का सुदुर्लभ सौभाग्य प्राप्त कर चुके हैं, वे भी एकबार पुनः सम्पूर्ण ब्रज यात्रा के लिये उत्कंठित हो उठेंगे, ऐसी मेरी धारणा है।

वर्षों पूर्व भगवान् विश्वनाथ की नित्य निवास-स्थली काशीपुरी के दर्शन, भ्रमण आदि का सुयोग प्राप्त हुआ था। वहीं एक खण्डहर जैसे मकान की दीवार पर लिखा देखा था–

प्रेम नगर ब्रज भूमि है, जहाँ न जावै कोय।
जावै तो जीवै नहीं, जियै तो बौरा होय॥

कदाचित् 'बावरा' होने या मरने की तैयारी अभी तक मैं कर नहीं पाया हूँ, इसलिए आपको भी उधर सोच-समझ कर कदम रखने की सलाह दूँगा।

अक्षय तृतीया २०४२, श्रीवृन्दावन धाम **बिहारीदास 'वृन्दावनी'**

दो शब्द

ब्रज भूमि का वर्णन बहुतों ने किया है, परन्तु (पूर्णरूप से) सम्पूर्ण, परिचय उनमें नहीं मिलता, इसलिए ग्रन्थकार ने, पुराण तथा महानुभावों द्वारा लिखित ग्रन्थों के तथा विश्वसनीय सन्तों की मुखश्रुत चर्चा के आधार पर, सभी के भावों को सुरक्षित रखते हुए, आलोचना रहित इस ग्रन्थ का लेखन, सम्पादन किया है ।

आज से साढ़े पाँच हजार वर्ष पूर्व द्वापरान्त में श्रीकृष्ण की लीला इस ब्रज मण्डल में प्रत्यक्ष रूप से अवतरित हुई थी । यह वही गिरिराज गोवर्धन पर्वत है, जिन्हें श्रीकृष्ण ने अपने किन्नी उंगली पर सात दिन तक सतत् धारण किया था, वही यमुनाजी हैं जो श्रीकृष्ण के अंग स्पर्श से नीलिमा लिए अनन्त लीलाओं को (जल विहार, जलकेलि) अपने में संजोकर प्रेमीजनों को प्रत्यक्ष दर्शन कराने में समर्थ हैं। यह वही ब्रज रज है, श्रीकृष्ण चरण स्पर्शित, जिसकी उद्धवजी ने रो-रोकर याचना की थी । उस समय व अब के समय में, इसमें इतना ही अन्तर है कि उस समय प्रकट लीला सभी को सहज ही देखने में आती थी, अब भी वह यहाँ निरन्तर हो रही है। इस बात का रहस्य आपको पुराणान्तर्गत, वज्रनाभ-शाण्डिल्य ऋषि के सम्वाद के पढ़ने से ज्ञात हो सकता है ।

काल के प्रभाव से लुप्त प्रायः इन स्थलियों को प्रेमावतारी श्रीचैतन्य महाप्रभु ने अपने अन्तरङ्ग भक्तों को ब्रज में भेजकर ब्रज की लुप्त स्थलियों को पुनः प्रकट कराया । श्रीमन्चैतन्य महाप्रभु स्वयं भी ब्रज-दर्शनार्थ आये व अत्यन्त रसमयी स्थली श्रीराधाकुण्ड को स्वयं प्रकट किया। लेखक ने जहाँ-तहाँ उन्हीं के शब्दों में उद्धरण दिये हैं । श्री वल्लभाचार्यजी ब्रज भूमि में आये व जहाँ-तहाँ भ्रमण कर ब्रज भूमि के महत्त्व को प्रकट किया व ब्रज चौरासी कोस की परिक्रमा की परिपाटी चलाई, जो आज भी चल रही है ।

लेखक का प्रयास आपको इस स्थली की रसमयता के नजदीक से नजदीक लाने का है, जिससे आप इस स्थली के पूर्ण महत्त्व से परिज्ञात हो, जीवन लाभ प्राप्त कर सकें । ब्रज-रस के साधकों के लिए यह एक अमूल्य निधि है । मेरे ख्याल में यह ग्रन्थ बहुत रोचक, हृदय स्पर्शी तथा पथ-प्रदर्शक सिद्ध हुआ है ।

इस अनुपम ग्रन्थ को आप चिन्तन मनन पूर्वक पढ़कर आत्मलाभ प्राप्त कर सकेंगे ।

श्रीवृन्दावन धाम **बाबा मनोहरदास**

अक्षय तृतीया २०४३

प्राक्कथन

प्रेरणा

श्रीधाम में स्थायी रूप से आ जाने पर ब्रज की स्थलियों में विचरण करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इसी बीच श्रीराधाकुण्ड रहने का सुयोग भी मिला। वहीं स्थलियों की जानकारी करने की जिज्ञासा हुई। बाबा श्रीमनोहरदासजी ने संकेत कर कुछ ग्रन्थों की जानकारी दी। वे ग्रन्थ श्रीराधा कुण्ड में सहज ही प्राप्त हो गये। मैंने ग्रन्थों से यथा सम्भव श्रीकृष्ण से सम्बन्धित लीला स्थलियों का ब्यौरा एकत्र करना प्रारम्भ कर दिया। स्थलियों में विचरण कर वास्तविक अनुभूति होनी चाहिए थी तथा उसी में डूबना अभीप्सित था, परन्तु यह तथाकथित संकलन प्रकाशित होने का सुयोग ढूँढ़ने लगा।

इस ग्रन्थ का प्रणयन वास्तव में सम्वत् २०३२ में ही हो चुका था। पागल बाबा के यहाँ जब नया प्रेस लगा तो इस ग्रन्थ के प्रकाशन की बात चली तथा सहज ही सब तय हो गया। मैंने हस्तलिखित कुछ सामग्री प्रकाशन के लिए दे दी। उस समय दिवंगत श्रीरवि पंडित वयोवृद्ध विद्वान तथा गौड़ीय ग्रन्थों के विज्ञ, बाबा के प्रकाशन विभाग की व्यवस्था में सहयोग देते थे। पुस्तक के प्रतिपाद्य विषय को देख, प्रकाशित करने की प्रबल इच्छा होने पर भी, किन्हीं कारणों वश, उन्होंने कुछ प्रसंगों को बाद करने की बात मुझसे कही। किसी भी प्रमाण के अभाव में मैं उन परिवर्तनों को स्वीकार नहीं सका जिसका मुझे खेद है, और इस ग्रन्थ का वह अंश लगभग एक माह बाद मेरे पास वापिस आ गया।

यह ग्रन्थ छप जाता, ऐसा आग्रह मेरे अभिभावकों का रहा। प्रयास भी किए गए, परन्तु अर्थ व्यय का प्रश्न मेरे सामने अत्यन्त जटिल था तथा बना रहा। सहज ही एक सुयोग बन गया।

प्रयत्न

यह ग्रन्थ मेरा नहीं हैं, आपका है अथवा उन सभी आदि आचार्यों, रसिकों, भक्त महानुभावों का है, जो इस ग्रन्थ के लिखने में मेरे लिए सहायक रहे हैं अथवा जिनके ग्रन्थ वाणी तथा अनुभव का उपयोग इस ग्रन्थ के प्रणयन में किया गया है। इसमें न तो मेरा कुछ प्रयत्न ही है और न योगदान ही। इस ग्रन्थ के प्रसंग-वर्णन में मैंने किसी भी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं बरती प्रत्युत, सभी आचार्यों तथा रसिकों ने भक्ति मार्ग के सिद्धान्तों को सुगम तथा सुबोध

बना, भक्ति पथ के साधकों के लिए सामग्री परोस, मार्ग प्रशस्त कर दिया है, उन्हीं विचार-धाराओं को, उसी में सन्निहित भावानुभावों को, कुछ-कुछ विस्तार भरकर लीलाओं का समावेश करने की बाल-चापल्यवत् चेष्टा मेरी अवश्य रही है।

मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाइ।
तेहि मग चलत सुभग मोहि भाई॥
अति अपार जे सरित वर जो नृप सेतु कराहिं।
चढ़े पिपीलिकऊ परम लघु बिनु श्रम पारहि जाहिं॥

जिस प्रकार महत्जनों द्वारा बने पुल से पिपिलिका पर्यन्त सभी सहज ही पार उतर जाते हैं, इसी प्रकार रसिकों की अनुभूतियों का माध्यम ले यह मेरा प्रयास है।

यदि इस ग्रन्थ में कुछ भी रुचिकर दीखता हो तो उसका श्रेय मेरी परम पूजनीय बहन तथा गुरु भक्तिमती ऊषा बहन जी जिन्होंने मुझे चलना सिखलाया, बोलना सिखलाया, अपने वात्सल्य एवं स्नेह से सिंचित किया तथा जिनके रसीले वातावरण में पल, श्रीवृन्दावन आने का सहज योग बन गया, पूर्ण रूप से उन्हीं को है और जो भी त्रुटि दिखाई देती हो उसे मेरी अज्ञानता जान, पाठक मुझे क्षमा करेंगे।

ग्रन्थ परिचय

भक्ति पथ में सभी आचार्यों ने एक मत हो नाम को नामी से अभिन्न माना है। नाम के साथ-साथ लीला के चिन्तन को प्रधानता दी है। जिस प्रकार नामी, नाम से अभिन्न है उसी प्रकार लीला के यह युगल रस विग्रह प्रिया-प्रियतम तथा उन्हीं की कायव्यूह स्वरूपा यह ब्रज बालाऐं, लीलाओं में समाविष्ट हैं, ओत-प्रोत हैं। लीलायें, लीलास्थलियों से जुड़ी हैं और यह लीला-स्थलियाँ प्रिया-प्रियतम का दर्शन कराने में अभूतपूर्व योग देती हैं। वास्तव में लीला-स्थलियों का महत्त्व प्राणप्रेष्ठ श्यामसुन्दर, उनकी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा तथा निज-स्वरूप भूता इन ब्रज बालाओं को लेकर ही है और इन लीला-स्थलियों में वह सभी कुछ समाविष्ट है जिसे हम देख सकते हैं, आस्वादन कर सकते हैं तथा जो ग्राह्य है, वाञ्छित है, तथा अभीप्सित है, वही सब इन लीला स्थलियों की अनुकम्पा से अत्यन्त सुगम हो सहज ही प्राप्त हो जाता है।

उन्हीं लीलाओं से संयुत स्थलियों का विवरण इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है।

प्रस्तुत ग्रन्थ, मुख्य रूप से दो भागों में विभक्त है। प्रथम भाग में ब्रज भूमि, ब्रज शब्द की व्युत्पत्ति, पौराणिक ब्रज, ब्रज की सीमा, परिक्रमा का

स्वरूप, लीला-स्थलियों का साधक के जीवन में योगदानादि का संक्षिप्त वर्णन है।

दूसरा भाग सात खण्डों में विभाजित है। सर्व प्रथम है 'मथुरा', जिसमें श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव तथा अन्य लीलाओं का वर्णन हुआ है। उस सबके बाद मथुरा के आस-पास की लीला स्थलियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया गया है।

दूसरे खण्ड में श्रीकृष्ण का 'गोकुल' (महावन) पधारने का वर्णन है। श्रीनन्दरायजी के यहाँ वसुदेव नन्दन श्रीकृष्ण अपने ही दूसरे वपु नन्द नन्दन में लय हो ब्रज लीलाओं का आस्वादन करने लगते हैं, इन्हीं से सम्बद्ध श्रीकृष्ण चरित्र का इसमें वर्णन किया गया है। मुख्य रूप से यह स्थली पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की सेव्य तीर्थ-स्थली है।

तीसरे खण्ड में श्री गिरिराज का प्राकट्य, भूलोक में अवतरण, ब्रज में आगमन, श्रीराधाकुण्ड तथा श्रीकृष्ण कुण्ड का प्राकट्य, श्रीचैतन्य महाप्रभुजी द्वारा प्रकाश तथा श्रीरघुनाथदास गोस्वामी द्वारा जीर्णोद्धार तथा श्री गिरिराजजी के अन्य तीर्थों का सविस्तार तथा सप्रमाण वर्णन किया गया है। आस-पास की अन्य स्थलियों का यथा-स्थान वर्णन हुआ है।

चतुर्थ खण्ड 'कामवन' है। श्रीकृष्ण प्राप्ति हेतु गोपिकाओं की कामनाओं की पूर्ति कराने वाली स्थली ही कामवन नाम से विख्यात है, श्रीकृष्ण के जहाँ सभी काम बनते है, वह कामबन कहा गया है।

पञ्चम खण्ड 'श्रीवृषभानपुर' है। ब्रह्माजी का प्रिया-प्रियतम की लीला माधुरी आस्वादन हेतु ब्रज में ब्रह्मगिरि रूप में विराजमान होना, बाल स्वरूपिणी श्रीराधा की बाल तथा किशोर लीलाओं का सरस वर्णन, तथा अन्य लीला स्थलियों का वर्णन सहित आस-पास अष्ट सखियों के ग्रामों का वर्णन, प्रेम सरोवर, संकेत आदि से सम्बन्धित लीलाओं का वर्णन किया गया है।

छठा खण्ड है अपना गाँव 'श्रीनन्दगाँव'। कंस के अत्याचारों से भीत हो, गोपों का वृन्दावन आगमन, उसके बाद भी मैया यशोदा को लाला की कुशलता की चिन्ता निरन्तर बनी रहना, वहाँ से किसी अन्य सुरक्षित स्थली (नन्दगाँव) चले चलने का विचार, श्रीकृष्ण की गोचारण लीला, समवयस्क सखाओं के साथ अन्य लीलाओं का तथा कभी-कभी सखाओं की प्रवंचना कर सखियों के मध्य श्यामसुन्दर का धूम मचा देना, अक्रूरजी तथा उद्धवजी का गोपिकाओं सहित वार्तालाप आदि का वर्णन है।

आस-पास गेंद खेलने की स्थली, यमुना तटवर्ती निकुञ्जों में गमन, कोकिला वन, चमेली वन आदि का वर्णन, भाण्डीर वन में श्रीराधाकृष्ण मिलन, ब्रह्माजी द्वारा विवाह आदि के प्रसंगों का सविस्तार विवरण दिया गया है।

इस ग्रन्थ का सातवां तथा अन्तिम खण्ड है 'श्रीवृन्दावन' धाम । प्रिया-प्रियतम की मधुर लीलाओं का स्थल श्रीवृन्दावन इस ग्रन्थ के प्राण हैं । कालिय मर्दन से प्रारम्भ कर चीर हरण, श्रृङ्गार वट, केशी मर्दन, धीर समीर घाट, वंशी वट पर रास लीला का वर्णन तो इस खण्ड में हुआ ही है, साथ-साथ अन्य रसिकों, स्वयं प्रकट ठाकुर स्वरूपों की लीलाओं का वर्णन भी इस खण्ड में किया गया है । सम्भवतः कुछ स्थलियाँ छूट भी गई होंगी, पुस्तक के कलेवर को साधन क्षमता की इयत्ता में सीमित रखने के कारण ही ऐसा हुआ है । पाठक गण इस सबके लिए क्षमा करेंगे ।

आभार प्रकाशन

इस ग्रन्थ के संकलन में अनेक ग्रन्थों की सहायता ली गई है । ग्रन्थों को जुटाना कितना कठिन होता है, जिन्हें इस प्रकार का सुअवसर प्राप्त हुआ होगा, वे पाठक अवश्य जान लेंगे, फिर भी श्रीहरिवल्लभजी शर्मा, जतीपुरा, श्रीहरि दास बाबाजी, श्रीराधाकुण्ड तथा श्री राकेश भाई, वृन्दावन ने यथा समय ग्रन्थ उपलब्ध करा मेरा कार्य हल्का किया है । मैं इनका अत्यन्त आभारी हूँ ।

अन्त में, मैं सभी आचार्यों, महानुभावों, रसिकों का हृदय से आभारी हूँ जिनके अमूल्य ग्रन्थों से, अनुभूतियों से, प्रेरणा ले तथा उनकी वाणी का आधार ले इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय लेखनी बद्ध हो सका है ।

मेरा दृष्टिकोण इस ग्रन्थ के प्रणयन में सभी सम्प्रदायों को समान आदर देते हुए, एक निष्पक्ष तथा प्रामाणिक स्थलियों का विवरण देने का रहा है । किसी भी सम्प्रदाय अथवा महानुभाव की गरिमा के सर्वथा अनुकूल ही वर्णन हो, ऐसा मेरा प्रयास रहा है, फिर भी यदि कहीं भूल से किसी की गरिमा के अनुकूल भाषा न बन पाई हो तो मुझे संकेत देकर, पाठकगण अनुग्रहीत करेंगे, इससे मुझे हर्ष होगा ।

विनय करूँ कर जोर, रसिक जनन के चरन में ।
'नारायण' चितडोर लगी रहे नित युगल पद ॥

भक्तिविजय

पुरोवाक्

स्नेहाच्च बहुमानाच्च स्मारये त्वां, न शिक्षये

कृष्णदत्त वाजपेयी
एफ.एन.आई.
१५, पद्‌माकर नगर
मकरोनिया, सागर (म.प्र.) ४७०००४

दिनांक ११-८-१९९१

ब्रजभूमि के गौरव पर आधुनिक युग में अनेक पुस्तकें लिखी गयी हैं। "ब्रज भूमि मोहिनी" ग्रन्थ के रचयिता श्री विजय कौशल, ब्रज भूमि के प्रति समर्पित व्यक्ति हैं। उन्होंने यहाँ के धार्मिक तथा रससिक्त वातावरण की सम्यक् अनुभूति प्राप्त की है। प्रस्तुत ग्रंथ में उन्होंने बड़े ही श्रम से ब्रज के विभिन्न स्थलों का प्रामाणिक विवरण उपस्थित किया है।

लेखक श्रीविजय कौशल साधुवाद के पात्र हैं।

कृष्णदत्त वाजपेयी

ब्रज अथवा व्यापक अर्थ में माधुर्य रस से अनुस्यूत चौरासी कोस।

ब्रज स्वयंसिद्ध, प्रमाण की अपेक्षा से ऊपर एक सार्वभौम, सार्वकालिक समस्त भाव संवलित भूमि पर अवस्थित कर देने वाला आत्म दर्शन है- दूसरे शब्दों में ब्रज एक भावस्थिति है, एक आभ्यान्तरिक महायात्रा है जहाँ कोई पड़ाव नहीं।

प्रस्तुत ग्रन्थ से इन्हीं संदर्भों में ब्रज क्षेत्र की यात्रा का खण्डबद्ध विवाद और शास्त्रार्थ से परे एक वैयक्तिक प्रत्यक्ष और सहज सम्पर्कजन्य वर्णन किया गया है। ग्रन्थ की चर्चा पद्धति से स्वयं ही प्रमाणित हो जाता है-अति परिचित यह कथन-

ब्रज समुद्र मथुरा कमल, वृन्दावन मकरन्द।
ब्रज वनिता सब पुष्प हैं मधुकर गोकुलचन्द॥

बड़े हर्ष का विषय है कि लेखक समस्त पूर्वाग्रहों से मुक्त है। 'मैं कहता आँखिन देखी' पर उनकी अनन्य आस्था है, इसलिए वह स्थान-स्थान पर कई बार मन को छू जाता है। उन्होंने वर्षों से समस्त ब्रज की कई बार पदयात्रा की है और लम्बी-लम्बी अवधि तक कई स्थानों में निवास करके उसके मर्म

को पहचानने की अति सात्विक चेष्टा की है। ब्रज क्षेत्र के बहुत से अनजाने स्थान, कुण्ड, उद्यान या वन खण्ड एवं ग्रामों को उन्होंने बड़े सहज रूप में उल्लेखकर ग्रन्थ को संग्रहणीय बना दिया है। प्रत्येक स्थल का मूल नाम और वर्तमान तद्भव प्रचलित नाम, उसकी निरुक्ति, यह अत्यन्त स्तुत्य प्रयास ही कहा जायेगा जिसने बहुत बड़ी मात्रा में इसकी उपादेयता बढ़ा दी है। यह परिचय ग्रन्थ ही न रहकर कई दृष्टियों से संदर्भ ग्रन्थ भी हो गया है।

इस ग्रन्थ में लेखक का एकान्त परिश्रम तो है ही परन्तु उसके भावनात्मक हृदय की भी झाँकी जहाँ-जहाँ सुस्पष्ट देखने को मिल जाती है। अतएव उपासना दृष्टि से लेखन के विविध आयाम जिन विराट परिधियों को संस्पर्श करते हैं उसकी प्राञ्जलता पर 'वृन्दावनीय चिन्तन' की दृष्टि जानी चाहिये, यह समय की आवश्यकता है।

कृष्ण चैतन्य भट्ट

अध्यक्ष : हिन्दी विभाग, इंस्टीट्यूट आफ आरियण्टल फिलासफी, वृन्दावन
स्नान यात्रा ज्येष्ठ शुक्ला १५, २०४२ मि.

पूजनीय बाबा भक्ति विजय

'ब्रज भूमि मोहिनी' तथा 'ब्रज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती ऊषा बहन जी' के नाम से संत ऊषा बहन जी के जीवन चरित के प्रणेता पूजनीय बाबा भक्ति विजय का जन्म १९ दिसम्बर १९३८ को हुआ था।

परम पूजनीया ऊषा बहन जी के निर्देशनानुसार बाबा ने अधिकांश लीला स्थलियों पर रहकर तथा वहाँ रहने वाले सन्त, महात्माओं से सम्पर्क कर ब्रज भूमि मोहिनी के लिये सामग्री जुटाई। नन्द गाँव सदा ही उनका अपना गाँव रहा। नन्द गाँव के भोले निवासियों के साथ उनका विशेष स्नेह रहा। बहन जी के आदेश पर प्रथम पुस्तक के रूप में ब्रज भूमि मोहिनी का प्रणयन कर बाबा ने अपनी गुरु, माता एवं इष्ट ऊषा बहन जी और उनके ठाकुर जी को समर्पित कर दी। पूजनीया बहन जी के गोलोक गमन के बाद उन्होंने ब्रज निधि प्रकाशन के अन्तर्गत कई पुस्तकों का प्रणयन और प्रकाशन किया।

२४ मई २००८ को आप नित्य लीला में प्रवेश कर गये।

चित्र सूची

श्रीकृष्ण जन्म स्थान, मथुरा पेज नं.: 24

विश्राम घाट, मथुरा पेज नं.: 27

ब्रह्माण्ड घाट, गोकुल महावन पेज नं.: 65

संकर्षन कुण्ड, गोकुल-महावन पेज नं.: 81

चौरासी खम्भ, गोकुल-महावन पेज नं.: 55
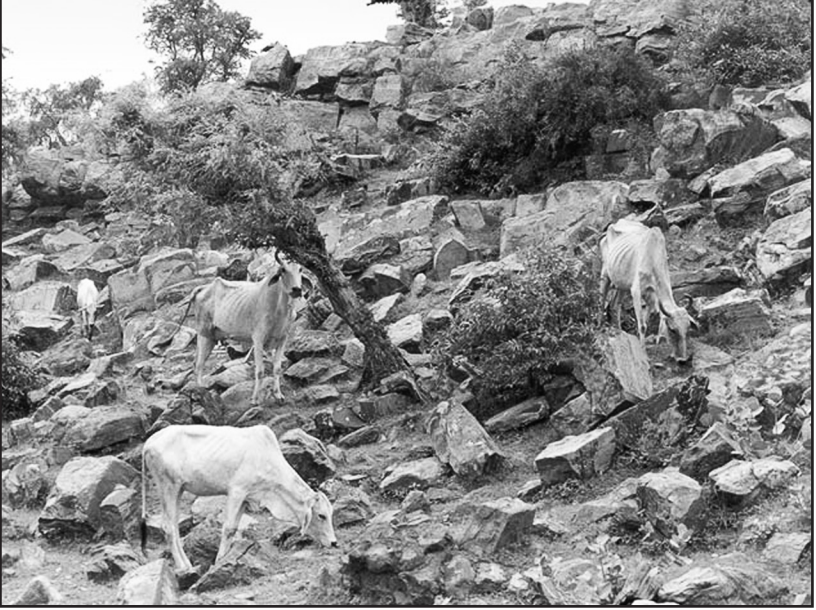
गोवर्द्धनगिरि, श्रीगिरिराज पेज नं.: 94

गोवर्द्धनगिरि, श्रीगिरिराज पेज नं.: 94

राधा कुण्ड, श्रीगिरिराज पेज नं.: 100

श्याम कुण्ड, श्रीगिरिराज पेज नं.: 100

कुसुम सरोवर, श्रीगिरिराज पेज नं.: 114

मानसी गंगा, श्रीगिरिराज पेज नं.: 119

श्रीकृष्ण चरणचिन्ह, कामवन पेज नं.: 176

व्योमासुर गुफा, कामवन पेज नं.: 179

नारद कुण्ड, कामवन पेज नं.: 174

विमल कुण्ड, कामवन पेज नं.: 171

श्री जी मन्दिर, श्रीवृषभानुपुर पेज नं.: 191
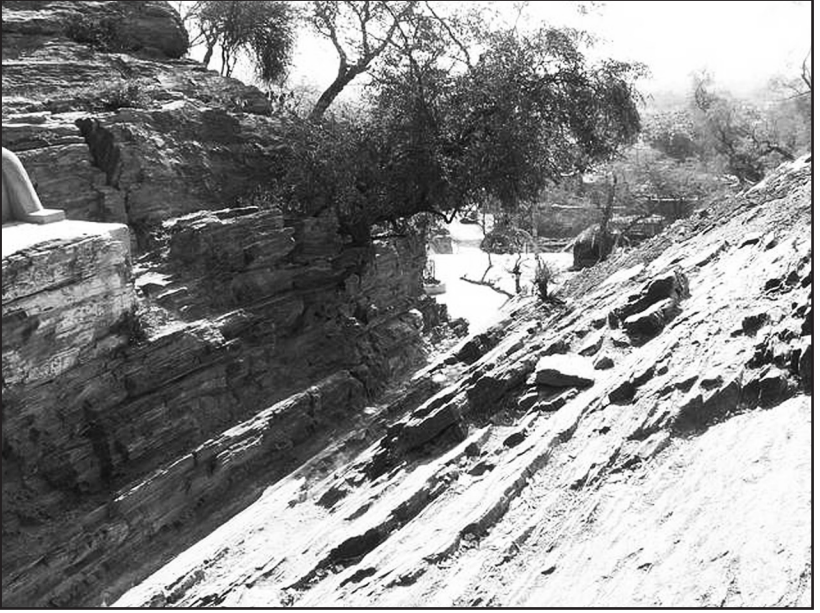
सांकरी खोर, श्रीवृषभानुपुर पेज नं.: 197

नन्दराय जी मन्दिर, श्रीनन्दगाँव पेज नं.: 231
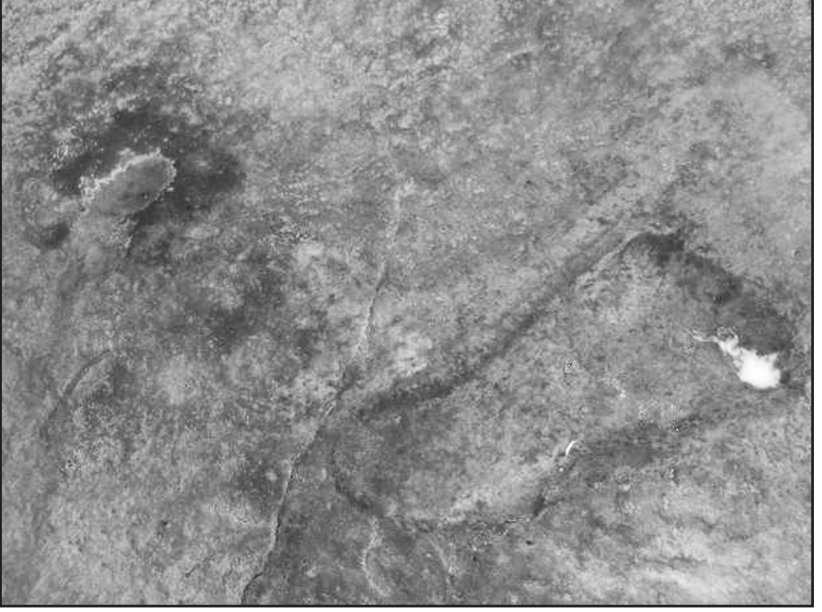
चरण पहाड़ी, श्रीनन्दगाँव पेज नं.: 272

ललिता कुण्ड, श्रीनन्दगाँव पेज नं.: 238

टेर कदम्ब, श्रीनन्दगाँव पेज नं.: 237

चीर कदम्ब, श्रीवृन्दावन पेज नं.: 346

श्री बाँके बिहारी, श्रीवृन्दावन पेज नं.: 332

निधि वन, श्रीवृन्दावन, पेज नं.: 352

इमली तला, श्रीवृन्दावन पेज नं.: 341

केशी घाट, श्रीवृन्दावन पेज नं.: 371

ब्रज वर्णन

पुण्या वत ब्रजभुवो यदयं नृलिङ्ग-
गूढः पुराणपुरुषो वनचित्रमाल्यः ।
गाः पालयन् सहबलः क्वणश्च वेणुं
विक्रीडयाञ्चति गिरित्ररमार्चिताऽघ्रिः ॥[1]

(श्रीमद्भागवत, 10/44/13)

"संकेतों तथा सन्देशों की स्थली का नाम ही ब्रज है।"

मुरली ध्वनि के माध्यम से प्रियतम का रसीला संकेत ही ब्रज लीला का प्रारम्भ है । उस सन्देश को सुनती हैं ये ब्रजांगनायें ही । भिन्न-भिन्न संकेतों से उस सन्देश का स्वागत-सत्कार करती हैं, उन सन्देश प्रवाही की अभ्यर्चना कर सुख के अथाह सिन्धु में खो जाती हैं, मग्न हो जाती हैं । यह सन्देश, बंक विलोकन के पैने शरों के मिस प्रवहमान होते हैं, कभी घुँघराली कचलटों की बलखाती भ्रमरावली के मिस प्रवाहित होते हैं, कभी चारु मुख चन्द्र की स्निग्ध सुशीतल रश्मियों से प्रभावित होते हैं - यही नहीं, मुस्कान की अनगिन मधु रश्मियों से प्रवाहित हो इन ब्रजांगनाओं में प्राणों का संचार करते हैं - और फिर यह सन्देश और संकेत परस्पर मैत्री जोड़, ब्रजभूमि की सरसता में ओत-प्रोत हो जाते हैं, मग्न हो जाते हैं, मत्त हो जाते हैं - और इन्हीं रस कणों को संचित कर यह ब्रजभूमि धन्य हो जाती है, कृत-कृत्य हो जाती है ।

एक बार किन्हीं रसिक सन्त ने कहा था -

"न तो ब्रज जैसा धाम ही कहीं है और न इस धाम की सी धूम ही अन्यत्र सुलभ । इस धाम की धूम धाम में विश्व कोलाहल सुनाई नहीं पड़ता । श्रवणों में रव भरा रहता है पर वह विषय-रव नहीं है, वह है प्रकृति के खुले प्रांगण में पक्षियों का कलरव । कल, कल, निनादित कालिन्दी का मधुर मृदुल रव, घाटों पर, पनघट पर हँसती खिलखिलाती ब्रज किशोरियों के मुखर नूपुरों का सरसीला रव । प्रिय चर्चा में सिक्त उनके हास परिहास का मदिर रव, ग्वाल गोष्ठी की

---

1. सखी ! सच पूछो तो, ब्रज भूमि ही परम पवित्र और धन्य है, क्योंकि यहाँ ये पुरुषोत्तम मनुष्य के वेश में छिपकर रहते हैं । स्वयं भगवान शंकर और लक्ष्मी जी, जिनके चरणों की पूजा करती हैं, वे ही प्रभु यहाँ रंग बिरंगे वन्य पुष्पों की माला धारण किये बलराम जी के साथ वंशी बजाते, गउऐं चराते भाँति-भाँति के खेलों में मग्न, आनन्द से विचरण करते हैं ।

चपल क्रीड़ाओं में थिरकता बालोचित केलि रव । सखाओं में घिरे ब्रजराज कुंवर की मादक खिल-खिलाहट का सरस रव । यमुना कूल वर्ती कदम्ब कानन के किसी तरु तले खड़े ब्रजराज किशोर की मधुरासव सिञ्चित मुरलिका का मनहर रव । उस मधुर मुखर निनाद से खिंच भागकर आती हुई विवश परवश गोप किशोरियों के कङ्कण, किङ्किणियों एवं चरण मञ्जीरों का कलित रव, और यह सब रव जिसकी रसीली भूमिका है, वह रस विलास..... जनित मदाम्बुधि में उछलती रस बीचियों का मन्द मधुर रव........ "

यही नहीं "ब्रज की सुभग रमणीय निकुञ्जों का परम सौभाग्य, अनिर्वचनीय है । प्रत्येक रज कण किसी नव लीला का परिचायक है । यहाँ के वृक्ष वल्लरियाँ, आज भी उसी मस्ती में भरे झूम रहे हैं । लीला विहार यहाँ नित्य एवं शाश्वत है । आज भी, उसी प्रकार अबाध गति से लीला विहार, हास-विलास, रस-रास ब्रज बीथियों, निकुञ्ज-उपवनों में थिरक रहा है । उसे समेटने सहेजने के लिए तत्परता का अभाव है । रसिक जन आज भी उन लीलाओं का आस्वादन कर रहे हैं ।"

भक्तिमती ऊषा बहन जी के जीवन में ब्रज विभव के रस बावरे प्रिया-प्रियतम की इच्छा से एक ऐसे दिव्य तथा अलौकिक घटनाक्रम का सूत्रपात हुआ था जो ब्रज श्री की सम्पन्नता में विलक्षणता को लेकर प्रकट हुआ । श्यामा श्याम ने अपने ही निज परिकर की एक सखी को बहन जी की सन्निधि में वर्तमान में हो रही चिन्मय लीलाओं को समय-समय पर सुलभ कराने/दर्शाने का हेतु लेकर भेजा । उन्हीं दिव्य लीलाओं की दिव्य अभिव्यक्ति के कुछ सरस चित्र मैं पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत कर एक ऐसे वातावरण से परिचित कराना चाहता हूँ जो आज के युग में असम्भव ही कहे जा सकते हैं ।

एक

"सखि ! तू तो कहती थी कल के रस विभव को समेटे बौराये हिंडोले, आज भी हमारी प्रतीक्षा में रत हैं, लता-विटप हमारे आगमन की बाट जोह रहे हैं । घन-दामिनी हमारा पथ निहार रहे हैं पर वे सुजान शिरोमणि तो अभी तक भी आए नहीं । देख घन गरज रहे हैं, दामिनी लरज रही है, केकी समूह नृत्य निरत हैं, वृक्ष और वल्लरियाँ आनन्दोन्माद में भर झूम रहे हैं । .....प्रिय प्रतीक्षातुरा किशोरी राधिका ने पास खड़ी ललिता के स्कन्ध पर कर कमल धर कहा ।"

दूसरा

"वर्षा में नहाये वृक्षों ने झूम-झूम कर लतिकाओं को झकझोर दिया । उन झूम झकोरों से दोलित वृक्ष वल्लरियों की मस्ती भरी इठलान ने ब्रज

किशोरिकाओं के अन्तर में मधुर मदिर आलोड़न भर दी। प्रकृति की इस सज्जा में प्रियतम से मिलन की प्रबल प्रेरणा पा वे चंचल हो उठीं। प्रियतम के अन्तर की हलचल, उनके अंग प्रत्यंग में चपलता बन उन्हें रह-रहकर उकसा रही थी और प्रियाजी के हृदय की मधुरिम खलबली उनके अंग-सुअंग को पुनः पुनः किसी सबल सिहरन से भर रोमांचित कर रही थी। प्रसून भवन के गवाक्ष से झाँक उन्होंने भोर के श्यामल उजाले को देखा, फिर परस्पर दृष्टि विनिमय कर ....।"

एक अन्य

"विचित्र चित्रांकन किया आज रसिक शेखर ने। रस मज्जिता किशोरी के स्निग्ध भाल पर, मृदुल कपोलों पर..., कोहिनी से ऊपर गोल गोल सुडौल भुजाओं पर ...। निशि विलास के रस-रंग भरे प्रणयांक उस पुष्प पल्लव रचना में छिप गए। ...प्रियाजी न जाने किस भावमयता में डूबीं, किन मदिर-मधुर भावनाओं में भरी, किन चपल अटखेलियों से सकुचायी सी कमल-दल नयन मूंदे एक विशाल विटप का सहारा लिये, चरण पर चरण धरे निश्चेष्ट-सी बैठी थीं...और ...।"

एक अन्य

"वातायन से शीतल समीर का एक झोंका फिर भीतर आया। उसने उष्णता लाभ हेतु युगल-रस बावरों को और और......सुअंग-सम्मिलन की उस रंगीली रेला-पेली में...खोए-खोये-से वे.....मदमत्त युगल....। मदाब्धि की गहराई में उतर और-और धँसते वे युगल रस रंगी......एक दूसरे को क्या पता कैसे-कैसे उबार रहे थे, संभार रहे थे। उस समय की मत्तता का वह विलास ओह !"

हाँ तो प्रिया प्रियतम की लीलाओं से सम्पन्न है यह ब्रज भुवि।

'ब्रज' शब्द का अर्थ व्यापकत्व से है-

गुणातीतं परं ब्रह्म व्यापकं ब्रज उच्यते ।
सदानन्दं परं ज्योति मुक्तानां पदव्ययम् ॥

(स्क० पु०)

सत्व, रज, तम, इन तीनों गुणों से अतीत जो परब्रह्म है, वही व्यापक है। उसे ही 'ब्रज' कहते हैं। यह सच्चिदानन्द स्वरूप, परम ज्योतिर्मय और अविनाशी है तथा जीवन्मुक्त पुरुष ही इसमें निवास करते हैं।

परम ब्रह्म स्वरूप ब्रज धाम, श्रीकृष्ण की नित्य निवास-स्थली है। वे आत्माराम तथा आप्त काम हैं, वे सच्चिदानन्दमय हैं तथा भक्तों के लिए यहाँ सहज ही सुलभ हो जाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति हैं श्रीराधा। रमण करने की इच्छा से ही श्रीकृष्ण ने अपने वाम पार्श्व से इन्हें प्रकट किया है। इन अखण्ड लावण्य माधुर्य तथा प्रेम की साक्षात मूर्ति श्रीराधा के साथ रमण करने के कारण ही श्यामसुन्दर आत्माराम कहलाते हैं। काम शब्द अभिलाषा को ध्वनित करता है। श्रीकृष्ण के वाँछित पदार्थ हैं, गौएं, ग्वाल बाल, गोपिकाएँ तथा उनके साथ लीला विहार। वे सबके सब, ब्रज में नित्य तथा सदैव प्राप्त हैं, इसीसे नन्द नन्दन श्रीकृष्ण आप्तकाम कहलाते हैं।

भगवान की लीला में स्थूल प्रकृति का प्रवेश नहीं है। श्रीकृष्ण की लीला दिव्य है तथा वे स्वयं ही अपने जनों पर कृपा कर, उसका आस्वादन कराते हैं। यह लीला 'नित्य' तथा 'प्रकट' नाम से दो भेदों में अलग-अलग दर्शायी गई है। नित्य लीला उन्हीं के निज परिकर से सम्बन्धित होने के कारण भगवान के तथा रसिक जनों के लिए ही सुलभ तथा आस्वादनीय है और जो लीला सभी जीवों के सामने होती है वह 'प्रकट' लीला है। 'प्रकट' लीला तथा 'नित्य लीला' के परिकर एक ही होने के कारण नित्य तथा प्रकट लीला अलग-अलग भासने पर भी स्वरूपतः तथा सिद्धान्ततः छाया प्रति छाया सी एक ही हैं।

मथुरा के आस-पास की स्थली को ब्रज की संज्ञा दी गई है। वहीं भगवान की नित्य लीला, सदैव गतिमान रहती है। प्रेमिल तथा रसिक हृदय उसका आस्वादन करते हैं, कर रहे हैं। अट्ठाईसवें द्वापर के अन्त में जब भगवान की नित्य तथा रहस्य लीला के अधिकारी यहाँ एकत्रित होते हैं, उस समय भगवान अपने अन्तरंग प्रेमियों सहित ब्रज में अवतार लेकर अपने निज तथा अन्तरंग जनों को मधुर लीलाओं का आस्वादन करा, रस प्रदान करते हैं। भगवान अपने अखण्ड आनन्दमय स्वरूप में विराजमान रहते हुए भी, अपनी ऐश्वर्य सत्ता से ही सृजन तथा संहार सहज कर सकते हैं, परन्तु उनके अवतार लेने का मुख्य हेतु अपने जनों को मधुर रस में सराबोर करना रहता है।

भगवान की तीन शक्तियाँ मानी गई हैं। आह्लादिनी, संधिनी तथा संवित्। वृन्दावन तथा ब्रज उनकी संधिनी शक्ति का विलास है।

'वृन्दावन', ब्रज की मुख्य स्थली है। कहीं कहीं ब्रज को वृन्दावन भी कहा गया है। यहाँ यमुना का सुरम्य तट, गोवर्द्धन की रमणीय तलहटी तथा चौरासी कोस भूमि आज भी भौतिक चक्षुओं के लिए गोचर है।

वेदों में भी ब्रज शब्द का प्रयोग हुआ है।

'व्रजन्ति गावो यस्मिन्नति व्रजः' अर्थात् जिस स्थान पर गाय चलती हैं अथवा चरती हैं उसे ब्रज कहते हैं।

हरिवंश पुराण में ब्रज शब्द का प्रयोग मथुरा के आस पास की स्थली के

लिए हुआ है। वह स्थली आज 'गोकुल' नाम से विख्यात है।

श्रीमद्भागवत में 'गोकुल', 'ब्रज', 'गोष्ठ' तथा 'नन्दग्राम' का प्रयोग लगभग एक ही स्थली, जहाँ गउऐं रहती है तथा श्रीनन्दरायजी की जो निवास स्थली है, के लिए किया गया है।

गर्ग संहिता में भगवान श्रीकृष्ण ने अपने अवतार की बात जब श्री राधा से कही तो 'जहाँ श्रीयमुना नहीं है, श्रीगिरिराज तथा श्रीवृन्दावन नहीं है वहाँ मेरे मन को सुख नहीं होगा', श्रीराधा के कहने पर, भगवान ने

वेद नाग क्रोश भूमि स्वधाम्नः श्रीहरिः स्वयम्।
गोवर्द्धनं च यमुनां, प्रेषयामास भू परि ॥

(गर्ग सं० 2/3/24)

'ब्रज' के लिए पुराणों में भी 'मथुरा मण्डल' अथवा 'ब्रज मण्डल' का ही अधिक प्रयोग हुआ है।

अष्टछाप काव्य में ब्रज शब्द 'गोचारण' 'गोपालन' तथा गो, ग्वालों के विहार स्थल के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अष्टछाप में श्रीअक्रूरजी तथा उद्धवजी को मथुरा का होने के कारण 'मधुवनियाँ' (मधुवन का निवासी) मान ब्रज भाव को मथुरा से अलग ही रखा है।

'ब्रज' का आधुनिक स्वरूप पन्द्रहवीं शताब्दि में ही सुनिश्चित हो सका तथा अद्यावधि चौरासी कोस भूमि जो मथुरा नगर के चारों ओर है तथा श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बन्धित है वही ब्रज नाम से कही जाती चली आ रही है।

श्रीश्रीभट्टजी महाराज ने ब्रज भूमि को मोहिनी कह अपनी भावना व्यक्त की है-

ब्रज भूमि मोहिनी मैं जानी।
मोहिनी कुञ्ज, मोहन श्रीवृन्दावन मोहन जमना पानी॥
मोहिनी नारि सकल गोकुल की बोलति मोहनि बानी।
'श्री भट्ट' के प्रभु मोहन नागर मोहिनी राधा रानी ॥

श्रीहरिव्यास देवाचार्य जी महाराज ने-

"यही है, यही है, भूलि भरमो न कोउ,
भूलि भरमे ते भव भटकि मरिहौ ॥

(सि० सु०)

तथा

'श्रीहरिप्रिया प्रकट पुहुमी पर कहत होत होत मति पंग'

(उ० सु०)

कहकर वृन्दावन तथा ब्रज के महत्त्व को स्वीकार किया है।

इधर वल्लभ सम्प्रदाय में श्रीविट्ठलेश प्रभु ने ब्रजभूमि की वन्दना करते हुए कहा-

'मंगलं मंगलं ब्रज भुवि मंगलं'

और यह ब्रजभूमि कैसी हैं- जहाँ श्रीनन्दरायजी तथा मैया यशोदा के सुख का वर्द्धन कर रहे हैं नन्दनन्दन, ब्रज सुन्दरियों के साथ प्रेम की पराकाष्ठा का दर्शन हो रहा है, रास रस प्रवहमान है, यह ब्रजभूमि, मंगलमय है, प्रणम्य है।

ब्रज भूमि की सरसता से अनुप्राणित श्रीवृन्दावन रस निमग्ना भक्तिमती ऊषा बहनजी के नेत्रों के सम्मुख नील-पीत मधुरिमा कालिन्दी तट पर रसोन्माद में भरी प्रकट हो गई और.......

सुरभित शीतल श्यामला कालिन्दी के कूल ।
श्रीवन कुञ्ज-निकुञ्ज मँह विहँसि रहे दो फूल ॥
विचरहिं कुञ्ज-निकुञ्ज में किये नवल श्रृंगार ।
सखिजन मण्डित युगलवर, करहिं वसन्त विहार ॥
कबहुँ करहिं परिहास कछु, कबहुँ करहिं कल गान ।
कबहुँ पुष्प बरसावहीं, प्रणय विदग्ध सुजान ॥

आज भी ब्रजभूमि की इन कुञ्ज-निकुञ्जों में विचरणशील, विहार रत प्रिया-प्रियतम निज जनों की भावनाओं को सरसा रहे हैं।

श्रीरूप गोस्वामी पाद ने लघुभागवतामृत में श्रीकृष्ण के चार धामों का वर्णन किया है। वहाँ 'गोकुल' तथा 'श्रीवृन्दावन' ब्रज के ही नामान्तर दर्शाये हैं। श्रीश्रीजीवगोस्वामीपाद ने 'श्रीवृन्दावन', 'गोकुल' तथा 'ब्रज' को एक ही धाम का पर्यायवाची कहा है।

श्रीश्रीचैतन्य चरितामृत में कह रहे हैं-

सर्वोपरि श्रीगोकुल, ब्रज लोक धाम ।
श्रीगोलोक, श्वेत-द्वीप, वृन्दावन नाम ॥

अतः 'गोकुल', 'ब्रज', 'गोलोक' तथा 'वृन्दावन' को पर्यायवाची माना है।

श्रीकृष्ण की वृन्दावन तथा उसके आस-पास की स्थलियों से सम्बन्धित लीला क्षेत्र (मथुरा के अतिरिक्त) को 'ब्रज' नाम से सभी महानुभावों ने स्वीकार किया है ।

ब्रज की सीमा तथा भौगोलिक स्वरूप

इत बरहद इत सोनहद, उत सूरसेन को गांव।
ब्रज चौरासी कोस है, मथुरा मण्डल मांह ॥

उक्त दोहे से स्पष्ट है कि ब्रज की सीमा का स्वरूप एक ओर 'बर' स्थान दूसरी ओर सोनहद, तथा तीसरी ओर, शूरसेन का गांव बटेश्वर माना गया है। इसी दोहे का विवरण श्रीग्राऊस महोदय ने अपनी पुस्तक 'मथुरा मैमोअर' में दिया है। इससे स्पष्ट है कि अलीगढ़ जिले का 'वर' स्थान, गुड़गांव जिले का (सौंद) सोनहद तथा शूरसेन का ग्राम बाह तहसील का बटेश्वर नामक गांव है। इन्हीं स्थलियों के मध्य की स्थली को ब्रज कहा गया है।

ब्रह्माण्ड पुराण के श्लोकों के आधार पर पूर्व में हास्यवन, दक्षिण में जन्हुवन तथा पश्चिम में पर्वतवन तथा उत्तर भाग में सूर्यपतनवन माना गया है।[1]

अतः पूर्व में आगरे जिले का हसनगढ़ हास्यवन के नाम से, पश्चिम में राजस्थान का कामवन के पास का पहाड़ी ग्राम, पर्वतवन के नाम से तथा दक्षिण में धौलपुर तहसील का जाजऊ ग्राम जन्हुवन नाम से विख्यात है। उत्तर भाग में अलीगढ़ जिले का जेवर ग्राम के निकट सूर्यपतनवन की स्थिति मानी गई है।

अनेक विद्वानों ने ब्रज मण्डल को 'प्रकार' की भाँति गोले के समान दिखला कर ही अपने मत को स्पष्ट किया है, परन्तु 'ब्रज मण्डल' शब्द के. आधार पर गोलाकार माना जाना तो स्वाभाविक ही है, साथ साथ इस गोलाई का स्वरूप 'प्रकार' की भाँति गोल होना कुछ स्वाभाविक सा नहीं लगता।

पुष्टिमार्ग के प्रसिद्ध कवि तथा भक्त प्रवर सूरदासजी ने सूर सारावलि नामक ग्रन्थ में ब्रज की सीमा का विस्तार चौरासी कोस मान निम्न पद कहा है-

---

1. चतुर्दिक्षु प्रमाणेन पूर्वादिक्रमतोगणत् ।
   पूर्वभागे स्थितं कोणं वनं हास्यभिधानकं ॥
   भागे च दक्षिणे कोणं शुभं जन्हुवनं स्थितं ।
   भागे च पश्चिमे कोणे पर्वताख्यवनं स्थितं ॥
   भागे हचुत्तरकोणस्यं सूर्य पतन संज्ञकं ।
   इत्येता ब्रज मर्यादा चतुष्कोणाभिधायिनी ॥

यहि विधि क्रीड़त गोकुल में हरि निज वृन्दावन धाम।
मधुवन और कुमुद वन सुन्दर बहुला वन अभिराम॥
नन्दगाँव, संकेत, खिदिरवन, और कामवन धाम।
लोहवन, मांट, बेलवन, सुन्दर भद्रवृहद्वन गाम॥
चौरासी ब्रज कोस निरन्तर खेलत हैं बल मोहन।
सामवेद, ऋग्वेद, यजुर में कहेउ चरित ब्रज मोहन॥

गर्ग संहिता में गोकुल से वृन्दावन प्रस्थान करते समय श्रीनन्दरायजी के प्रश्न के उत्तर में सन्नन्दजी ने कहा-

प्रागुदीच्यां बहिर्षदो दक्षिणस्यां यदोः पुरात्।
पश्चिमायां शोणितपुरान्माथुरं मण्डलं विदुः॥
(ग० सं० खं० 2)

वर्हिषद् (बरहद) से पूर्वोतर, यदुपुर (शूरसेन के गांव बटेश्वर) से दक्षिण और शोणितपुर (सोनहद) से पश्चिम में चौरासी कोस भूमि को विद्वज्जनों ने ' माथुर मण्डल' और 'ब्रज' कहा है।

अतः सभी ने ब्रज की सीमा वर, बटेश्वर तथा सोनहद (सौंद) के भीतर की स्थली स्वीकार की है।

ब्रज की परिक्रमा

ब्रज की यात्रा का क्रम हमारे धर्म ग्रन्थों में बहुत पहले से ही चला आ रहा है । अक्रूरजी तथा उद्धवजी ब्रज में पधारे । श्रीबलरामजी महाराज का ब्रज आगमन तथा विहार भी प्रसिद्ध है । परन्तु लीला स्थलियों के प्राकट्य हेतु श्रीशाण्डिल्य महर्षि के सहयोग से वज्रनाभजी का ब्रज भ्रमण महत्त्वपूर्ण है ।

पन्द्रहवीं शताब्दी में ब्रज परिक्रमा का स्वरूप निश्चित सा हुआ दीखता है । उन्हीं दिनों श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज, श्रीमाधवेन्द्रपुरी जी महाराज तथा श्रीचतुरा नागाजी द्वारा ब्रज भ्रमण के प्रसंग मिलते हैं । इनके साथ साथ ही लोकनाथ गोस्वामी, भूगर्भ गोस्वामी तथा श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी, श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी महाराज, स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज, तथा श्रीहित हरिवंशजी महाराज द्वारा ब्रज की स्थलियों में भ्रमण तथा स्थलियों का उद्धार इतिहास में मणि तथा सूत्र की भाँति जुड़ा है ।

ब्रज में परिक्रमा के मुख्य रूप से दो क्रम प्रचलित है । पुष्टिमार्गीय वैष्णवों की यात्रा का क्रम प्रधानतः मथुरा, विश्राम घाट से प्रारम्भ होता है तथा अन्य वैष्णव सम्प्रदाय वृन्दावन से ही यात्रा का प्रारम्भ करते हैं । आगे के यात्रा क्रम तथा विश्राम स्थल लगभग समान ही है ।

प्रथम विश्राम

मथुरा से चलकर प्रथम विश्राम 'मधुवन' (एक दिन) रहता है । वहाँ के आस पास की स्थलियों से होकर (तालवन, कुमुदवन) यात्रा 'शान्तनु कुण्ड' स्थली पर दूसरा विश्राम करती है । यहाँ की स्थलियों के दर्शन कर (२ दिन बाद) परिक्रमा का तीसरा विश्राम होता है (इनका प्रसंग वर्णन मथुरा खण्ड में देखें) 'बहुलावन' । यहाँ लगभग दो दिन ठहर कर स्थलियों का दर्शन करती हुई यात्रा 'श्रीराधाकुण्ड' अथवा 'कुसुम सरोवर' पर चौथे विश्राम हेतु एक दिन के लिए ठहरती है । यहाँ की स्थलियों का दर्शन कर पांचवां विश्राम होता है गोवर्द्धन अथवा चन्द्र सरोवर । यहाँ विश्राम दो दिन का रहता है । यात्रा का छठा विश्राम होता है जतीपुरा यहाँ पुष्टि मार्गीय वैष्णवों की यात्रा अधिक (प्रसंग वर्णन श्रीगिरिराज खण्ड में देखें) समय ठहरती है । यात्रा का सातवां विश्राम होता है 'डीग' यहाँ यात्रा का निवास लगभग २ दिन का रहता है ।

'घाटा' ब्रज यात्रा का आठवां विश्राम स्थल है। यहाँ से नवें विश्राम स्थल हेतु यात्रा 'कामवन' लगभग तीन दिन ठहर कर सभी स्थलियों (प्रसंग वर्णन कामवन खण्ड में देखें) में विचरण करती है। 'बरसाना' यात्रा का दसवां विश्राम स्थल है। यहाँ से 'संकेत' यात्रा (प्रसंग वर्णन वृषभानुपुर खण्ड में देखें) का ग्यार हवां तथा 'श्रीनन्दगाँव' यात्रा का बारहवां विश्राम होता है। नन्दगाँव में लगभग तीन दिन विश्राम रहता है और ब्रज यात्रा का तेरहवां विश्राम स्थल है 'बड़ी बठै न'। 'कोटवन' यात्रा का चौदहवां विश्राम है तथा पन्द्रहवां विश्राम स्थल 'कोसी' होता है। 'पैगाम' यात्रा का सोलहवां विश्राम तथा शेरगढ़ सत्रहवां विश्राम स्थल रहता है। चीरघाट यात्रा का अठारहवां विश्राम स्थल है तथा 'बच्छवन' यात्रा का उन्नीसवां विश्राम स्थल है। (प्रसंग वर्णन श्रीनन्दगांव में देखें)

ब्रज यात्रा का बीसवां विश्राम स्थल है 'वृन्दावन'। यहाँ लगभग तीन दिन यात्रा ठहरती है। (प्रसंग वर्णन श्रीवृन्दावन खण्ड में देखें) यहाँ से 'लो हवन' यात्रा का इक्कीसवां विश्राम स्थल है तथा 'बलदेव' यात्रा का बाईसवां विश्राम स्थल रहता है।

गोकुल यात्रा का तेईसवां विश्राम (प्रसंग वर्णन महावन-गोकुलखण्ड में दे खें) स्थल रहता है। गोकुल की तथा आस-पास की स्थलियों का दर्शन कर मथुरा विश्राम घाट पर आकर यमुना पूजनोपरान्त यात्रा का पूर्ण विश्राम हो जाता है।

इसके अतिरिक्त सुविधानुसार कभी-कभी परिक्रमा-क्रम में परिवर्तन भी किये जाते हैं।

लीला स्थलियाँ, ब्रज की प्रकृति तथा ब्रज भूमि का योगदान

ब्रज प्रेमियों ने, भावुक भक्तों ने तथा रसिक महानुभावों ने, 'ब्रज' को शास्त्र वेत्ताओं तथा वैयाकरणों की परिभाषाओं के अतिरिक्त भी कुछ देखा है-और उसी अनुसार अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया है।

'ब्रज' यही, यही भौम वृन्दावन अथवा ब्रज जो गोलोक धाम की छाया-प्रतिछाया-सा सभी के भौतिक चक्षुओं के लिए सुलभ हो रहा है, केवल नेत्र भेद से ही, स्थूल दीख रहा है। दिव्य चक्षुओं के लिए स्थूलता के कोई बन्धन नहीं। वहाँ प्रिया-प्रियतम का लीला विहार सर्वदा गतिमान है और इस चौरासी कोस भूमि में उसी नित्यविहार का आस्वादन प्रतिक्षण हो रहा है।

श्रीपाद जीव गोस्वामी के शब्दों में ब्रज को गोलोक से भी श्रेष्ठ कहा गया है-क्योंकि भौम वृन्दावन अथवा 'ब्रज', यहाँ वास करने वालों को गोलोक धाम का दर्शन/प्राप्ति कराने वाला है, अतः श्रेष्ठ कहा है।

ब्रज की प्रकृति जड़ नहीं चेतन है। श्रीकृण की लीला, ब्रज में सदा सर्वदा गतिमान रहती है। भक्त हृदय आज भी इसका आस्वादन कर रहे हैं। लीला स्थलियों का सेवन, लीलाओं के चिन्तन को लेकर ही अभीप्सित है और यह चिन्तन कब उन लीलामय, श्रीकृष्ण तथा उनकी अभिन्न प्राणा सखियों के प्रत्यक्ष दर्शन करा उस लीला का आस्वादन करा दे, यह कौन कह सकता है?

ब्रज की प्रकृति, यहाँ की वृक्षावली, यहाँ की सुरमणीय निकुञ्जें, पनघट, यमुना तट, सभी श्रीकृष्ण की सुरस लीलाओं से जुड़ी हैं, यह स्थलियाँ कृपावश आस्वादन कराने को आज भी तत्पर हैं-उसके लिए उत्कट चाह, एवं सतत माँग आवश्यक है।

ब्रज भूमि दिव्य है, चिन्मय है। यहाँ की प्रकृति केवल प्रकृति मात्र नहीं है। लीला परिकर ही है जो श्यामसुन्दर की इच्छानुसार वपु धारण कर श्यामसुन्दर की केलि में सहायिका तो बनती ही है, लीला का उपकरण बन लहलहाती है। लीला परिकर, यह ब्रज की प्रकृति अपने आश्रितों को श्रीकृष्ण दर्शन कराने वाली है। अनेक महानुभावों की सुरस अनुभूतियाँ, इन सरस निकुञ्जों से, यहाँ की वृक्ष वल्लरियों से, यमुना तट, पनघट तथा ब्रज की अनेक स्थलियों से जुड़ी है। श्रीजगन्नाथ प्रसाद भक्तमालीजी महाराज, प्रायः कहा करते थे,

श्री कृष्ण की लीला का दर्शन कराने के लिए वृक्ष तथा वल्लरियाँ सक्षम हैं तथा पूर्ण कृपा प्राप्त कराने वाली हैं। (मानव देह में) कहीं किसी के आश्रय में, किसी स्थिति में किञ्चित् विपरीत सम्भावना हो सकती है, परन्तु ब्रज की इन सिद्धदेहा श्रीकृष्ण लीला परिकर, प्रकृति का आश्रय ग्रहण कर, सच्चे मन से प्रार्थना करने पर यह वृक्ष लताएँ श्री कृष्ण दर्शन कराने वाली हैं। श्री गिरिराज तलहटी में 'जान' और 'अजान' वृक्ष इसका प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। आज भी अनेक ऐसे उदाहरण देखे जा सकते हैं, प्रमाण स्वरूप अनुभव प्राप्त अनेक महात्मा आज भी सदेह विराजमान हो हमारा पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। किसी विशेष स्थली पर जाकर हमारा मन जब किसी सुरसता में डूब, तन्मय सा हो जाता है, यदि यह अनुभव हमारा भी है, तो अन्य किसी प्रमाण की खोज में हम क्यों हैं ?

यहाँ की स्थली अपने कंटीले पथ को बुहार प्रिया प्रियतम के विहार हेतु पथ साफ सुथरा कर लीलोपयोगी बना देती है। ब्रज भूमि, तृण तथा कङ्करों, पत्थरों को अपने में तिरोहित कर विहार के योग्य स्थली बना अपने को कृतकृत्य समझती है।

श्रीगिरिराज की तलहटी, अनेक सन्तों महानुभावों की अनुभूतियों को साकार कर रही है। दानघाटी में विराजमान उच्चकोटि के महात्मा श्रद्धेय पं.गयाप्रसाद जी से जब पूछा- "महाराज, अनुभवी जनों का मत है कि श्रीगिरिराज की शरण में आने पर वे अपनी अहैतुकी कृपा की अनुभूति अवश्य करवाते हैं - आप यहाँ बहुत समय से विराजते हैं। आपने तो यहाँ अनुभव किया होगा।" उन्होंने जैसा कहा, उसे ज्यों का त्यों लिखने की चेष्टा करूँगा। उनके छोटे-छोटे, गम्भीर शब्द थे, "रसिकन ने साँची कही है। मेरौ कहा है, मैं तो पेट भरबे की ताँई पर्‍यो हूँ", आप अनुमान लगा लेंगे कि इस दैन्योक्ति से क्या स्पष्ट हो रहा है।

श्रीप्रियाशरणजी महाराज ब्रज तथा ब्रज की स्थलियों के प्रति गूढ़ निष्ठावान रहे। वे प्रायः कहा करते थे, "भैया। श्यामसुन्दर का नाम, तुम ले सकोगे। तुम्हारी सामर्थ्य ही क्या है। उनकी प्राप्ति के लिए प्रयत्न करना तुम्हारे बस का नहीं, अतः तुम जैसे तैसे धाम की इन लीला स्थलियों की शरण में पड़े रहो वह स्वयं प्रिया-प्रियतम की प्रीति प्रदान करा देंगी।" नन्दगाँव में एक महात्मा श्रीमदनमोहनदास बाबाजी महाराज की ब्रज की इन लीला स्थलियों, यहाँ की रज, वृक्षावली तथा धाम के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा थी वे कहते, "भैया। यदि स्थली, तुम्हारे लिए प्रकट नहीं हुई और चिन्मय दर्शन नहीं कराया तो फिर बात ही क्या बनी" उनकी धारणा थी कि यह स्थलियाँ साधक को आश्रय प्रदान कर प्रिया-प्रियतम की प्रीति प्राप्त करवाने वाली हैं।

श्रीराधा माधव संस्थान, गोरखपुर की ओर से 'संकेत' ग्राम में एक वृक्ष की सुरक्षा हेतु परकोटा आदि बाँध व्यवस्था की गई थी। पीपल का वह वृक्ष अभी तीन वर्ष पहले भी सभी के लिए दृष्टिगोचर था। गतवर्ष वह वृक्ष सूखने पर काट लिया गया। वह वृक्ष अनेक महात्माओं की लीलानुभूतियों से सम्बन्धित है। आज से लगभग पन्द्रह बीस वर्ष पहले इमलीतला के सामने की ओर खेतों में तीन वृक्षों की विचित्र घटना जिन्होंने देखी है, वे महानुभाव आज भी श्रीवृन्दावन में विराजमान हैं। उस वृक्ष की एक डाल काटने पर रुधिर की बूँदें टपकती हुई अनेक महानुभावों ने देखी हैं। दाऊजी की बगीची में नीम का वह वृक्ष जो रामदास बाबाजी के संकीर्तन के समय अपनी प्रफुल्लता का परिचय देता रहा अनेक भावुक भक्तों को आज भी अपनी उत्तुङ्गता की पताका फहरा, आकर्षित कर रहा है।

प्रकृति और लीला भिन्न नहीं है। प्रकृति, लीला उपकरण संयोजन में विविध रूपों में प्रिया-प्रियतम की केलि में सहायिका तो है ही, लीला परिकर होने के कारण यह सजीव है तथा लीलोपयोगी वपु धारण कर युगल की रसमयी केलि में शोभायमान हुई, लीला उपकरण बनी, सौभाग्यशालिनी है।

नन्द भवन की ओर जाती रसमयी भीर की उमङ्ग तरङ्गों में समाई प्रिय मिलन व्यग्रता, प्रियतम की रूप-माधुरी, भोर में अलसायी शोभा श्री को आवृत किये सुचिक्कन कच लटों से सुशोभित माधुरी छवि को निहार रसीले संकेतवश, किसी लीला की भूमिका बनाती ब्रजबाला के लीला संयोजन की स्मृति, किसे न विवश परवश कर देगी।

गौ-चारण वीथिका से जाते गउओं के पीछे ही-ओ, ही-ओ करते, कभी बङ्क विलोकन से, कभी मधुर हास-झङ्कार से, कभी अपने पट को सम्हालने के मिस किसी को रसामन्त्रण देते और कभी अपने सखाओं से परिहास वचन कह अपनी प्रियाओं को वन, कुञ्ज-निकुञ्जों का अता-पता देते श्यामसुन्दर की रस माधुरी किसे न मत्त कर देगी। हे सखे ! आज हम लोग नन्दग्राम की 'बहक वन' के पास की सुरस निकुञ्ज में नहीं जावेंगें क्योंकि वहाँ का जल शीतल तो है परन्तु गउओं के पान करने का जल वहाँ से कुछ दूरी पर है, ऐसा कह सखियों को विभिन्न लीला स्थलियों का अता-पता देते नन्दनन्दन किसे न प्रकट होकर आनन्दित कर देंगे।

वन वीथियों में होकर दधि दूध बेचने को जाती सखियों की भीर को देख दूर से वंशी वादन कर, चटपटी लगा रसीले आमन्त्रण दे विभिन्न कुञ्जों में रस विहार की भूमिका बना श्यामसुन्दर, किसे न अपने रसीले पाश की त्वरा लगा देंगे।

पनघट पर, घट भरने के मिस, नेह घट भरे यह ब्रज बालाएँ केवल जल भरने ही नहीं जातीं। "पनघट जान दै री, पनघट जात हैं।" अतः हे सखि !

मुझे पनघट पर जाने दे, अन्यथा मेरा प्रियतम से मिलने का पन घट जावेगा। इस पन की सुरक्षा हेतु घट लिए-ब्रज बालाओं की रस मसी भीर पनघट पर जाती है-और इस रसीली स्थली पर जा, प्रियतम की किसी रसीली चितवन से यह ब्रज बालाएँ, जब जल भरने के मिस गागर लटकाती हैं और उधर बज उठती है रसीली बाँसुरी, तो यह बालाएँ घट भरकर ले आती हैं अथवा घट रीते लौटा लाती हैं, भला किसे सुधि रहती है। हे सखि ! यह सब उस पनघट का ही तो प्रकाश है।

कभी दूध-दही बेचती बालाओं को "गोविन्द लेहु लेहु कोऊ गोविन्द" की चटपटी लगा देते हैं।

यमुना तटवर्ती निकुञ्जों में कलिन्द नन्दिनी की एकान्तिक वीथियों में, रसीली छेड़-छाड़ से, रार-तकरार से, ऐंठ-उमेंठ से, मधुर चितवन से, मधुर बतरान से, जल केलि का रसास्वादन कर, कौन न, रसमग्न हो जावेगी।

गोचारण के मिस आई सखाओं की भीर, उधर से छोटी-छोटी, पग-डण्डियों से उतरकर आती इन ब्रज बालाओं को, इधर उधर से प्रकट हो मार्ग रोक गो-रस के मिस किसी रस विशेष की माँग करते यह प्रणयी रिझवार, कभी दान-मान की रसीली योजनाओं में मग्न हो जाते हैं-यह सब हे श्रीगिरिराज ! तुम्हारे अनुग्रह से ही तो सम्भव हो रहा है।

श्रीराधा तथा श्याम-कुण्ड पर मध्यान्होपरान्त ललिता-नन्ददा-निकुञ्ज में से हो, मदन-सुखदा-निकुञ्ज में विराजे प्रियतम श्यामसुन्दर, श्री विशाखा जी को रस में सराबोर करते सभी को आनन्द प्रदान कर रहे हैं।

गिरिराज की यह एकान्तिक गुफाएँ रस विहार की लीला में परिणत हुई शयन केलि की सरस झाँकी से सिक्त रहती हैं और आभीर कुमारियों की यह रसमयी चहल-पहल दान की अनेक सरस लीलाओं में मौन, मूक हो जाती हैं।

गह्वर वन, की रसमयी 'साँकरी खोर' की साँकरी वीथिका मान की वर्जना-तर्जना से वर्द्धित दान केलि में परिणत हुई, विलास गढ़ी में दिव्य रस विलास में जब परिणत हो जाती है तो यह लीला स्थलियाँ उन रसकणों की उच्छलन को अपने में भर लेती हैं।

यह लीला स्थलियों का ही तो सुरस अनुग्रह है, जो प्रिया-प्रियतम की एकान्तिक सरस लीलाओं से सिक्त-सिञ्जित हुई, उसी वातावरण को अपने आँचल में सम्हाल आज, हम सभी के लिए वितरण कर उन लीलाओं को प्रत्यक्ष कर रही हैं, उन्हीं लीलाओं का आस्वादन कराने को व्यग्र हो रही हैं।

ब्रज भूमि मोहिनी

मथुरा

(श्री कृष्ण जन्म सौभगमद-गर्वित स्थली)

प्रथम खण्ड

देवक्या पालितो गर्भे लालितोऽङ्क यशोदया ।
यशोदयायुतो बालो गोपालो रमतां हृदि ॥

आस-पास की अन्य स्थलियाँ

1. अम्बिकावन
2. कुमुदवन
3. गणेशरा (गन्धेश्वर तीर्थ)
4. तालवन (तारसी ग्राम)
5. दतिया
6. मधुवन (माहोली ग्राम)
7. माधुरी कुण्ड
8. बहुलावन (वाटी ग्राम)
9. सतोहा (शान्तनु कुण्ड)

"भूगोल चक्रे सप्तपुर्यो भवन्ति तासां मध्ये साक्षात्
ब्रह्म गोपालपुरीरीति चक्रेण रक्षिता हि वै मथुरेति" ॥

(श्रीगोपाल तापनी)

सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म-स्थान 'मथुरा' अप्राकृत तथा मायातीत है। भूमण्डल में अयोध्या, मथुरा, माया, काञ्ची, काशी, अवन्ति तथा द्वारावती ये सप्तपुरियाँ हैं। मथुरापुरी सच्चिदानन्दमयी है। चक्र द्वारा रक्षित होने के कारण प्रलयादि विकारों का प्रभाव इस पर नहीं होता। कैसे हो ! जहाँ साक्षात् श्रीकृष्ण का प्राकट्य हुआ है, वहाँ किसी भी प्रकार के अशुभ की आशंका ही कैसी ! यह वैकुण्ठ से भी अधिक प्रशंसनीय है।

यह नगरी अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक युग में भी इसकी स्थिति के प्रमाण उपलब्ध हैं। त्रेतायुग में शत्रुघ्नजी द्वारा मधु राजा के पुत्र लवणासुर के वध का वृत्तान्त सर्वविदित है। द्वापर में श्रीकृष्ण की जन्मस्थली होने के कारण मथुरा की महिमा और अधिक हो गई है। श्रीकृष्णद्वैपायन व्यासजी का मथुरा (व्रज) से सम्बन्ध प्रकट ही है। वाराह पुराण के अनुसार मथुरा में 'सोम' तथा 'वैकुण्ठ' तीर्थों के मध्य श्रीकृष्ण गङ्गा तीर्थ जो अब भी विद्यमान है, को व्यासजी की तपस्थली होने का गौरव प्राप्त है।

आज भी जल के अनेक स्रोत वर्षा के दिनों में अथवा बाढ़ के समय जगह-जगह श्रीयमुना की ओर प्रवाहित अथवा विलय होते दीखते हैं। पूर्व में जिन दिनों जल का प्रवाह अधिक रहता था, कदाचित् यह सरस्वती तीर्थ, कृष्ण-गंगा तथा धारापतन आदि तीर्थों में जल-प्रवाह स्थायी रूप में विद्यमान था। अद्यावधि इनकी महत्ता सर्वत्र विख्यात है।

अनेक उतार चढ़ाव आते रहे, मथुरा नगरी के प्राचीन स्थल ध्वंस प्रायः भी हो गये, परन्तु श्रीयमुना के तट पर सुरमणीय विशाल मथुरा नगरी की स्थिति उसी प्रकार से बनी रही।

यहाँ के विशाल भवन, गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ, मणिमण्डित यमुना तट, सुरमणीय राजमार्ग, धनियों के महल, रमणीय उद्यान, प्रजा वर्ग के सभा भवन और साधारण लोगों के निवास गृह नगर की शोभा बढ़ा रहे हैं।

आज भी श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं से सम्बन्धित, अनेक रसिकों की अनुभूतियों से संश्लिष्ट, अनेक ठाकुर स्वरूपों के दिव्य चमत्कारों से ओत-प्रोत तथा आचार्यों, भक्तों के जीवन की मधुर स्मृतियों को अपने गर्भ में संजोए मथुरा नगरी वैष्णव मात्र को अपनी ओर आकर्षित कर रही है।

यह वही नगरी है जहाँ अखिल ब्रह्माण्डनायक श्रीकृष्ण कारागार में अपनी अद्भुत रूप-छटा दिखलाकर इस धरा-धाम को सुशोभित करने के लिए प्रकट हुए। यहाँ की वीथियों में, उद्यानों में, विशाल बाजारों में श्रीकृष्ण तथा बलराम विचरण करते रहे हैं। उनकी रूप मधुरिमा से पूर्णतः अवगत मथुरा की स्त्रियाँ बड़ी आतुरी से उनकी छवि माधुरी का पान करती रही हैं।

श्रीकृष्ण मथुरा में पधार रहे हैं यह जानकर चकित विस्मित-सी ये पुरस्त्रियाँ एक उन्माद में भरी बावरी-सी अटपटा श्रृंगार किये अपने घर के कृत्यों को ज्यौं का त्यौं छोड़ अपनी-अपनी अटारियों पर आ विराजीं। श्रीलक्ष्मीजी को आनन्दित करने वाले इन श्यामसुन्दर की श्यामल सुषमा को निहार चंचल चितवन तथा मुस्कान मधुरिमा का पान कर, यह मथुरावासिनी युवतियाँ अपनी प्रणय-पगी भावनाओं के वशीभूत हुईं, नेत्रों द्वारा भगवान् को अपने हृदय में ले जाकर उनके आनन्दमय स्वरूप का आलिंगन कर अपनी युग-युगों की पिपासा का शमन करती रही हैं।

यही नहीं, यहाँ की प्रत्येक स्थली श्रीकृष्ण चरणाङ्कों से चिन्हित है। उनकी विविध क्रीड़ाओं से स्पृष्ट है, उनकी विविध लीलाओं से ओत-प्रोत है।

श्रीकृष्ण की अलौकिक तथा दिव्य लीलाओं से संश्लिष्ट यह मथुरा नगरी केवल भौतिक चक्षुगोचर मथुरा ही नहीं हैं, प्रत्युत श्रीकृष्ण की दिव्य तथा चिन्मयी लीलाओं से इसका नित्य तथा शाश्वत सम्बन्ध है। यहाँ की स्थलियाँ दिव्य हैं, यहाँ की श्रीयमुना जी दिव्य हैं, उनके घाट चिन्मय हैं, उनके रजकण दिव्य हैं, यहाँ के विशाल भवन दिव्य तथा चिन्मय हैं, जहाँ श्रीकृष्ण अवतरित हुए हैं। यहाँ के बाजार, यहाँ के उद्यान, यहाँ के लोग दिव्य हैं, श्रीकृष्ण के निज जन हैं, लीला पार्षद हैं, अतः मथुरा का दिव्य वातावरण दिव्य चक्षुओं के लिए ही गोचर है।

अनेक लीला स्थलियाँ जो मूल रूप में श्रीकृष्ण की किसी न किसी लीला से संयुत हैं, आज भी सर्वसाधारण के लिए दर्शनीय हैं। श्रीकृष्ण जन्म-स्थली का निर्माण सर्वप्रथम श्रीकृष्ण भगवान् के प्रपौत्र श्रीबज्रनाभजी ने करवाया था। सर्वप्रथम मथुरा पर महमूद गजनवी ने आक्रमण किया तथा अनेक स्थलियों को ध्वंस प्रायः कर दिया। भगवान वासुदेव के मन्दिर की भव्यता का वर्णन करते हुए मीर मुन्शी अली-उत्वी एक जगह पर लिखते हैं कि इस विशाल मन्दिर के विषय में न तो लेखनी और न चित्र के द्वारा ही वर्णन किया जा सकता है। सुलतान महमूद ने इसी मन्दिर की विशालता के विषय में लिखा है कि इस भव्य इमारत को कोई अब बनाना चाहे तो कम से कम दस करोड़ दिनार (मुद्रा) और २०० वर्ष का समय लगेगा।

धीरे-धीरे शान्ति स्थापित हुई, इस मन्दिर का निर्माण सं. १२०७ में कन्नौज के राजा विजयचन्द्र ने पुनः करवाया। इस देवालय को भी सिकन्दर लोदी ने पुनः सं. १५७३ में नष्ट कर दिया। मन्दिर का निर्माण पुनः किया गया, इस की मनोरमता और चित्रकला का फ्रांसीसी यात्री तथा इटली के यात्रियों ने सन् १६६९ ई. में वर्णन किया है। औरंगजेब ने इस मन्दिर को भी १६६९ ई. में नष्ट करके मस्जिद का निर्माण करवाया। १८१५ ई. में समूचे कटरा केशव देव को बनारस के राजा पटनीमल ने मन्दिर निर्माण करवाने की इच्छा से खरीद लिया। लगभग जीर्ण-शीर्ण यह स्थली कुछ वर्ष पहले कल्याण के सम्पादक परम पूजनीय श्रीहनुमानप्रसाद पोद्दारजी की प्रेरणा से भारत के अनेक भावुक भक्तों की आर्थिक सहायता से भव्य रूप लेकर विशाल मन्दिर के रूप में भक्तों के आराध्य श्रीकृष्ण की जन्मस्थली के नाम से गर्वित हो रही है।

कंस किला भग्नावशेष रूप में आज भी अपनी प्राचीनता का उद्घोष कर रहा है।

अहो मथुरा नगरी का तो कहना ही क्या है ? यह तो ब्रज की केन्द्र स्थली है, श्रीकृष्ण की जन्म-स्थली है, अतः वन्दनीय है।

स्वरूप

इदं पद्मं महाभागे सर्वेषां मुक्तिदायकम् ।
कर्णिकायां स्थितो देवः केशवः क्लेषनाशनः ॥

(आ० वा०)

मथुरा के स्वरूप के विषय में पुराणों में इसे पद्माकर कहा है। श्रीकेशवदेवजी पद्माकर इस पुरी के मध्य कर्णिका में विराजते हैं। पश्चिम पत्र में श्री हरदेव जी, (श्री गिरिराज जी में) विराजमान हैं, उत्तर की ओर श्रीगोविन्द देवजी (वृन्दावनमें) विराजमान हैं जिनके दर्शन करके मानव प्रलय पर्यन्त संसार पर गमनागमन के चक्र से छूट जाता है। पूर्व दिशा की ओर वाले पत्र पर विश्रान्ति नाम के भगवत् स्वरूप विराजमान हैं तथा दक्षिण की ओर वाले पत्र पर सर्व सिद्धि प्रदान करने वाले वराह देव विराजमान है।

माहात्म्य

विश्व मण्डल में भारतवर्ष श्रेष्ठ है, उसमें भी ब्रज का महत्त्व अद्वितीय है।

त्रिंशद् वर्ष सहस्राणि त्रिंशद् वर्ष शतानि च ।
यत्फलं भारते वर्षे तत्फलं मथुरा-स्मरन् ॥

(स्क० पु०)

जो फल भारत में अनेकानेक वर्ष निवास करने से प्राप्त होता है, वह फल मथुरा नगरी के एक बार स्मरण मात्र से प्राप्त हो जाता है ।

यही नहीं मथुरा में जहाँ-तहाँ स्नान करने से जीव के समस्त पाप क्षय हो जाते हैं और पग-पग पर अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त होता है ।

भगवान् श्रीमुख से कह रहे हैं -

न विद्यते च पाताले नान्तरीक्षे न मानुषे।
समस्त मथुरायां हि प्रियं मम वसुन्धरे॥

(आ० वा० पु०)

हे वसुन्धरे ! मथुरा के समान मेरा प्रिय स्थान निश्चय ही पाताल लोक में, मनुष्य लोक में तथा अन्तरिक्ष में भी नहीं है ।

हरौ येषां स्थिरा भक्तिर्भूयसी येषु तत्कृपा ।
तेषामेवहि धन्यानां मथुरायां भवेद्रति ॥

(प० पु०)

मथुरापुरी के प्रति उन्हीं लोगों की रति होती है, जिनकी श्रीकृष्ण में अविचल भक्ति है एवं श्रीकृष्ण की प्रचुर कृपा के पात्र हैं ।

पुनः श्रीमुख से कह रहे हैं, "हे वसुन्धरे जब मैं शयन करता हूँ, उतने समय तक पृथ्वी के समस्त तीर्थ मथुरापुरी में ही निवास करते हैं ।

जपोपवासो निरतो मथुरायां षडानन ।
जन्मस्थानं समासाद्य सर्व पापैः प्रमुच्यते ॥

(स्क० पु०)

श्रीमथुरा धाम में जप उपवास करने वाले जन श्रीकृष्ण के जन्म-स्थान दर्शन का लाभ प्राप्त कर समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं ।

ब्राह्मण-घातक, मद्यपायी, गोघाती, ब्रह्मचर्यभ्रष्ट मथुरा की परिक्रमा करने मात्र से उक्त समस्त पापों से मुक्त हो जाते हैं ।

अन्य दूर देशों से आकर जो मनुष्य मथुरापुरी की परिक्रमा करते हैं उनके दर्शन मात्र से स्वर्गलोक आदि भी पाप से रहित हो जाते हैं ।

यही नहीं यदि कोई 'मैं मथुरा में वास करूँगा' यह संकल्प भी कर लेता है तो समस्त बन्धनों से मुक्त हो जाता है और यदि-

न दृष्ट्वो मथुरा येन दिदृक्ष्वा यस्य जायते ।
यत्र यत्र गतस्यास्य माथुरे जन्म जायते ॥

(प० पु०)

जिस किसी की मथुरा दर्शन करने की इच्छा हुई, परन्तु दर्शन करने से पहले उस की मृत्यु जहाँ कहीं भी हो जाती है, उसका जन्म निश्चय ही मथुरा में होता है । इसमें कोई शंका नहीं है । पुनः कहा-

मकारे च थु कारे च , र कारे चान्त संस्थिते ।
निष्पन्नो मथुरा शब्द ॐकारस्य ततः समः ॥
महारुद्रो मकारः स्यात् थुकारो विष्णु संज्ञकः ।
र कारोऽन्तस्थो ब्रह्मस्यात् त्रिशब्दं माथुरं भवेत् ॥
अतः श्रेष्ठतमं क्षेत्रं सत्यमेव भवत्युत ।
सत्रिदेव मयि मूर्तिर्मथुरा तिष्ठते सदा ॥

आदि 'मकार' मध्य में 'थू' कार अन्त में आकारन्त 'र' होने से मथुरा शब्द बना है। इसी से मथुरा ओंकार के समान है। 'म' कार श्रीमहारुद्र की संज्ञा है, 'थू' कार श्रीविष्णु रूप की और अन्तस्थित 'र' कार श्रीब्रह्मा की। इन्हीं रूपों से मथुरा शब्द का गठन हुआ है। इन्हीं कारणों से मथुरा श्रेष्ठ धाम है। वही मथुरा ब्रह्मादि त्रिदेवमय मूर्ति के स्वरूप में अवस्थित है।

अहो मधुपुरी धन्या वैकुण्ठाच्च गरीयसी ।
दिनमैकं निवासेन हरौ भक्ति प्रजायते ॥
त्रिरात्रमपि ये तत्र वसन्ति मनुजा मुने ।
हरिदृश्यति सुखं तेषां मुक्तानापि दुर्लभम् ॥

अहो ! नारायण धाम वैकुण्ठ से भी श्रेष्ठ मथुरा धाम धन्य है, जहाँ केवल एक दिन वास करने से श्रीहरि भक्ति प्राप्त हो जाती है। तीन रात्रि निवास करने वाले मुक्ति प्राप्ति के इच्छुक जीवों के लिये भी दुर्लभ प्रेम, श्रीहरि अवश्य ही प्रदान करते हैं।

तत्र मध्ये तु यत्स्थानमर्धचन्द्रं व्यवस्थितम् ।
तत्रैव वासिनो लोका मुक्ति यान्ति न संशयः ॥
अर्धचन्द्रे तु यः स्नानं कारितो नियताशनः ।
तेनैव चाक्षया लोकाः प्राप्ता एव न संशयः ॥
अर्धचन्द्रे मता देवि मम लोकं ब्रजन्ति ते,
अन्यत्र तु मृता देवि अर्धचन्द्रे कृत क्रियाः ।
तेऽपि मुक्ति गमिष्यन्ति दाहदिकर नैविसा ॥

(आ० वा०)

मथुरा के मध्य में अर्ध चन्द्राकार पुण्य स्थली का विशेष महत्त्व है। यहाँ निवास करने वाले जन मुक्ति लाभ करते हैं। यहाँ पर मृत्यु को प्राप्त होने वाला व्यक्ति श्रीकृष्ण के निज धाम गोलोक धाम को सहज ही प्राप्त कर लेता है। यहाँ तक कि जिस किसी व्यक्ति के क्रिया कर्म यहाँ किये गये हों, वह भी मुक्ति का अधिकारी हो जाता है।

मथुरावासिनां ये तु दोषं पश्यन्ति पामराः ।
ते स्वदोषं न पश्यन्ति जन्म मृत्यु सहस्रदम् ॥

(प० पु०)

मथुरावासी 'श्रीकृष्ण' के निजजन हैं । इनके दोष नहीं देखने चाहिए । जो व्यक्ति मथुरावासियों के प्रति दोष बुद्धि रखेगा वह अपने दोषों को देखकर 'सजग' होने के प्रति सदैव उदासीन रहेगा ।

मथुरा की महिमा अवर्णनीय है । भक्तप्रवर बिल्वमंगल जी महाराज ने मथुरा की इन्हीं वीथियों में मुस्कुराते मत्त गजेन्द्र की सी चाल से प्रेम विवश अपने प्राण सर्वस्व नन्दनन्दन तथा वृषभानु-नन्दिनी को विचरण करते देखा तथा गा उठे-

मौलिश्चन्द्रक भूषणे मरकत स्तम्भाभि रामं वपु-
र्वक्त्रं चित्र विमुग्ध हास मधुरे बाले विलोले दृशौ ।
वाचः शैशव शीतला मदगजश्लाघ्या विलासस्थिति-
र्मन्दमन्दमये क एष मथुरावीथीं मिथो गाहते ॥

(श्रीकृष्णकर्णामृत)

श्रीप्रिया-प्रियतम की विलासमयी स्थिति को, उनकी चंचल चितवन को निहार श्रीबिल्वमंगल जी महाराज विवश परवश से हो गये । प्रिया-प्रियतम की रसमयी चेष्टाओं का आस्वादन करते-करते वे तन्मय होते जा रहे हैं । मथुरा की वीथियों में प्रिया-प्रियतम को निहार सुखास्वादन कर रहे हैं ।

मयूरपिच्छधारी श्यामसुन्दर की मुस्कान-मधुरिमा ने जादू सा कर दिया । उस जादू से अभी वे सम्हले भी न थे कि चंचल चितवन सायकों ने हृदय को बिद्ध कर दिया, प्राणों में एक कसक सी उठने लगी- उस विलास स्थिति-का आस्वादन कर किसी रस दशा में मत्त हो वे बेसुध से हो गये । अस्फुट स्वर लहरी में उनके मुख से निःसृत हुआ, अहा ! यह लावण्य-माधुर्य के द्वय रस सिन्धु, मथुरा की वीथियों में विचरण करते अपनी रूप छटा का प्रसार कर रहे हैं ।

श्रीनिम्बार्क सम्प्रदाय के प्रचार तथा प्रसार का प्रधान केन्द्र पूर्व में मुख्यतः मथुरा ही रहा है । प्रारम्भ में अनेक आचार्य इसी नगरी को सुशोभित करते रहे हैं, अतः धर्म प्रचार के सर्वांगीण विकास हेतु सभी सम्प्रदायों ने मथुरा नगरी को गौरवान्वित किया है ।

श्री श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्य जी महाराज मथुरा में पधारे, त्रिलोकी से न्यारी ब्रज मण्डल भूमि को देखा जो वनों से, वृक्षों की पंक्तियों से, सरोवरों तथा नदियों से, बागों तथा बगीचों से मन और नेत्रों को सुख प्रदान कर रही थी ।

श्रीमदाचार्य जी ने केशव देव में पधार कर पूजा आदि करवाई, भूतेश्वर, मथुरा देवी तथा वराह भगवान के दर्शन कर कृतार्थ हो गये, वहीं श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण किया।

श्री श्रीचैतन्य महाप्रभु जी मथुरा आकर प्रेम विह्वल हो गये। आत्म-विभोर होकर नृत्य करने लगे। भक्ति-रत्नाकर ग्रन्थकार ने प्रभु की रसमयी स्थिति का सजीव चित्र उतारा है-

अहे श्रीनिवास ! कर केशव दर्शन।
एथा श्रीचैतन्य केला अद्भुत नर्तन॥
भासिल सकल लोक प्रेमेर वन्याय।
सबे कहे इहो एई श्रीकेशव राय॥
केशवेर माहात्म्य कहिते साध्य कार।
सप्तद्वीप प्रदक्षिणा प्रदक्षिणे जार॥
केशव कीर्तन सर्व पाप जाय क्षय।
कालविषे जे जे फल अन्त नाहि हय॥

हे श्रीनिवास ! श्रीकेशव भगवान के दर्शन कर श्रीचैतन्य महाप्रभु प्रेम में विह्वल होकर नृत्य करने लगे। श्रीकेशव भगवान का माहात्म्य कोई क्या कह सकता है, जिनकी एक प्रदक्षिणा कर लेने पर सातों द्वीपों की प्रदक्षिणा के समान फल प्राप्त होता है।

मथुरा की भूमि की दिव्यता तथा अलौकिकता आज भी अपना प्रभाव दिखला कर अनेक भावुक भक्तों के लिए प्रेरणा स्रोत बनी हुई है। लगभग साठ वर्ष पुरानी एक विचित्र घटना का इतिहास रायसाहब श्री मथुरादास जी द्वारा वर्णित हम ज्यौं का त्यौं नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

रायसाहब अंग्रेजी राज्य में एक बड़े अफसर थे। एक बार प्रथम श्रेणी में रेल से यात्रा कर रहे थे। सामने की सीट पर एक मुसलमान भाई बैठे थे। थोड़ी देर में जब गाड़ी चलने को हुई तो उन मुसलमान भाई ने अपनी जेब से एक चाँदी की डिबिया निकाली और एक चुटकी भर अपने मुख में डाली। राय साहब ने सोचा कोई कीमती तम्बाकू होगी। थोड़ी ही देर में उन्हें जिज्ञासा हुई और उन मुसलमान सज्जन से बोले, "भाई साहब ! आपने इस डिबिया में क्या रखा है ?" उन मुसलमान भाई ने कहा, "साहब ! यह एक बहुत ही अजीब बात है। इसमें मथुरा से ली यमुना तट की रज है।"

उन्होंने आगे कहा, "मैं हूँ तो मुसलमान। खुदा से थोड़ा लगाव अवश्य है। देहली में रहता हूँ। रात-बेरात अकेले घूमने का मुझे शौक है, एक रोज

घूमते घूमते, मैं श्मशान की तरफ चला गया। वहाँ कुछ दूर पर बैठे लोगों को रात के वक्त उस जगह पर इस तरह गाते, आनन्द मनाते देख मैं हैरान हो गया। इत्तफाक की बात है दूसरे दिन जब मैं फिर उधर ही गया तो वो रो रहे थे। मैंने हैरान होकर उनसे पूछा, भाई ! कल तुम लोग मौज में खुश थे और आज उदास क्यों हो ?" उन लोगों ने कहा, 'हम लोग भूत हैं।' "मैं डर गया, लेकिन हिम्मत बाँधे खड़ा रहा।" उन्होंने आगे कहा, 'कल एक आदमी मरकर हमारी मण्डली में शामिल होने वाला था लेकिन मथुरा में यमुना तट पर एक सांड ने सींग से उसे मार दिया। उस सांड के सींग पर मथुरा की रज लगी हुई थी। रज उस आदमी के पेट में चली गई तो उसका उद्धार हो गया। वह हमारी भूत मण्डली में शामिल नहीं हुआ। इसलिये हम लोग उदास हैं।' मुझे बड़ा कौतूहल हुआ और श्रद्धा भी। तभी से यह रज मैं अपने साथ रखता हूँ।" वे सज्जन बोले, उनके इस अनुभव ने मुझे अत्यन्त प्रभावित किया।

इस प्रकार की अनेक घटनाएँ समय-समय पर मथुरा में, ब्रज मण्डल में घटित होती हैं।

तीर्थ स्थलियाँ

श्रीकृष्ण के ब्रज में अवतरण के साथ-साथ उनके सभी परिकर ब्रज में प्रकट हुए। उन्हीं की स्मृतियों में अनेक स्थल तीर्थ रूप में पूजनीय हुए हैं। नीचे हम मथुरा के मुख्य तीर्थों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं-

श्रीकृष्ण-जन्म स्थान

वसुदेव सुतं देवं कंसचाणूरमर्दनं ।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम् ॥[1]

मञ्जीर नूपुर रणन्नव रत्न काञ्ची-
श्रीहार केसरि नख प्रति यन्त्र सङ्घम् ।
दृष्ट्यार्ति हारि मसि बिन्दु विराजमानं
वन्दे कलिन्द तनुजा तट बालकेलिम् ॥[2]

1. श्रीवसुदेवजी के पुत्र, माता देवकी को वात्सल्य द्वारा परमानन्द प्रदान करने वाले, कंस तथा चाणूर आदि का वध करने वाले समस्त देवताओं के आराध्य, सम्पूर्ण जगत के गुरु रूप श्रीकृष्ण की मैं वन्दना करता हूँ।
2. चरण नूपुर तथा करधनी के मधुर रुनझुन शब्द द्वारा, सिंह नख के ताबीज को धारण कर अमित शोभा माधुरी का प्रसार करते, किसी की दृष्टि न लग जाये इसलिये भाल पर काला बिन्दु शोभित है जिनके, ऐसे बाल कृष्ण जो कालिन्दी तट पर बाल सुलभ चेष्टाओं में मग्न हैं उनकी मैं वन्दना करता हूँ।

भगवान के अवतार का हेतु मुख्य रूप से क्या होता है यह कहना कठिन है। यह तो स्वयं भगवान ही जानते हैं, फिर भी इसका प्रधान हेतु है, उन्हीं के अपने घनीभूत परमानन्द रस रूप लीला विग्रह को प्रकट करना, दुष्टों का संहार तथा अपने जनों को सुख प्रदान करना। श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं कहते हैं-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दृष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥

साधु पुरुषों के परित्राण, दुष्टों के विनाश और धर्म-संस्थापन के लिए मैं युग-युग में प्रकट होता हूँ।

वैवस्वत मन्वन्तरीय अष्टविंश चतुर्युग के द्वापर के अन्त में भाद्र मास की कृष्णाष्टमी के दिन मथुरा को श्रीकृष्ण के प्राकट्य का महान सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

पृथ्वी पर अत्याचार बढ़ रहे थे। धर्म केवल ढोंग भर रह गया था। सभी देवतागण पीड़ित थे। पृथ्वी भी अपना धैर्य खो चुकी थी-अतः सभी मिलकर ब्रह्माजी की शरण में गये। क्षीर सागर के तट पर पहुँचकर भगवान की स्तुति करते-करते ब्रह्माजी समाधिस्थ हो गये। उन्होंने एक देव वाणी सुनी-जिसके आधार पर भगवान के अवतार का आश्वासन दे उन्होंने पृथ्वी, श्रीशंकर भगवान तथा अन्य प्रमुख देवताओं को आदेश दिया कि भगवान ब्रज में श्रीवसुदेवजी के घर स्वयं प्रकट होंगे। तुम लोग भी ब्रज में अवतार लो।

भगवान की तथा उनकी प्राणाराध्या श्रीराधा की सेवा के लिए अनेकानेक गोपाङ्गनाऐं भी ब्रज में अवतरित होंगी।

वसुदेव एवं देवकीजी को अपनी ही मृत्यु के भयवश राजा कंस ने कारागार में बन्द कर दिया था। वसुदेवजी की पहली छः सन्तानों का वध, कंस कर ही चुका था। सातवें गर्भ में भगवान के अंश ही प्रविष्ट हुए और आज वह प्रतीक्षित दिवस भी आ पहुँचा।

चारों ओर दिव्य प्रकाश फैल गया। देवकीजी के रूप-सौन्दर्य में निखार आ गया। भगवान स्वयं प्रकट होने वाले हैं, यह जानकर देवतादि मुनिगण सहित स्तुति करने लगे।

वह सुहावना समय आ पहुँचा। रोहिणी नक्षत्र था, ग्रह शान्त हो रहे थे। तारे जगमगा रहे थे। नदियों का जल निर्मल हो गया था। रात्रि में भी सरोवरों में कमल खिल गये। शीतल मन्द-सुगन्ध पवन बहने लगी। स्वर्ग में देवताओं की दुन्दुभियाँ बजने लगी। किन्नर तथा गन्धर्व मधुर स्वर में गाने लगे। देवता तथा ऋषिगण पुष्पों की वर्षा करने लगे।

उसी समय सभी के हृदय में विराजमान भगवान, देव रूपिणी देवकी के गर्भ से प्रकट हुए, जैसे पूर्व दिशा में अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित चन्द्रमा उदय हो गया हो ।

वसुदेवजी ने चतुर्भुज स्वरूप एक बालक को देखा । वक्षस्थल पर श्रीवत्स चिन्ह है । शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए हैं, गले में कौस्तुभ मणि की माला है । वर्षा-कालीन मेघ के समान श्यामल वर्ण है । यह जानकर कि स्वयं भगवान ही प्रकट हुए हैं, उन्हें परम हर्ष हुआ और उन्होंने अनेक संकल्प कर भगवान के श्रीचरणों में शीश झुकाया तथा स्तुति की । बाद में देवकीजी ने भी अद्भुत दर्शन करके स्तुति की ।

भगवान ने योगमाया के प्रभाव से शिशु रूप धारण कर लिया । भगवान की प्रेरणा से ही वसुदेव जी इस नवजात शिशु को लेकर श्री नन्दराय जी के यहाँ छोड़ आवें, क्योंकि कंस को यदि पता लग गया तो ठीक न होगा, ऐसा विचार कर चलने लगे, उसी समय श्रीयशोदाजी के गर्भ से योगमाया का जन्म हुआ । योगमाया ने द्वारपालों तथा पुरवासियों की चित्तवृत्ति का हरण कर लिया । समस्त श्रृंखला बन्धन स्वतः ही टूट गये तथा बन्दीगृह के द्वार खुल गये ।

वसुदेवजी भगवान बालकृष्ण को लेकर जैसे ही बन्दीगृह से निकले कि द्वार स्वतः ही बन्द हो गये ।

घनों ने नन्हीं-नन्हीं फुहारों से बालक-कृष्ण का अभिषेक किया । शेष भगवान अपने फणों से छत्र किये रहे ।

श्रीयमुना में अगाध जल था । प्रवाह तीव्र था, जल में भँवर पड़ रहे थे ।

अपने प्रियतम सर्वस्व श्यामसुन्दर के प्राकट्य से हर्षमग्ना श्रीकृष्ण प्रिया कालिन्दी ने तरंगो के मिस लहरान्वित हो श्रीकृष्ण चरण स्पर्श प्राप्त कर अपनी हृदय पिपासा को शान्त करना चाहा । अपनी तरंगों को और और गतिमान करने लगीं । अपने जनों के मन की जानने वाले सर्वव्यापी भगवान श्रीकृष्ण ने यह जानकर अपने चरणों के स्पर्श से श्रीयमुना महारानी को विशेष रस में सराबोर कर दिया और वे शान्त-तन्मय हो गईं तथा वसुदेवजी को गोकुल प्रवेश करने के लिये मार्ग दे दिया ।

वसुदेवजी नन्दरायजी के गोकुल में पहुँचे । सभी गोप ग्वाल निद्रारत थे । उन्होंने अपने पुत्र को यशोदाजी की शैय्या पर सुला दिया तथा नवजात कन्या को लेकर बन्दीगृह में लौट आये ।

बन्दीगृह में पहुँचकर वसुदेवजी ने कन्या को देवकीजी की शैय्या पर सुला दिया तथा पूर्ववत् अपने पैरों में बेड़ियाँ डाल लीं ।

भगवान का जन्मोत्सव श्री नन्दराय जी के यहाँ गोकुल में ही मनाया गया ।

बोलो ! आनन्दकन्द भगवान श्रीकृष्णचन्द्र की जय ।

आज भी मथुरा का वह कारागार श्रीकृष्ण जन्म-स्थान नाम से प्रसिद्ध है । पोतरा कुण्ड की उत्तर दिशा में है । स्थान नवीन बना दीखता है परन्तु वसुदेव तथा देवकीजी की मूर्त्ति बड़ी भव्य एवं प्राचीन हैं ।

श्रीकृष्ण जन्म-स्थली को हिन्दू धर्म विरोधी राजा औरंगजेब ने ध्वस्त कर मस्जिद का निर्माण करवा दिया था । आज भी इस मस्जिद को देखने से नीचे का भाग मन्दिर का तथा ऊपर के अर्ध भाग को मस्जिद का आकार देने का प्रयास किया गया स्पष्ट दीखता है । मथुरा के संग्रहालय में बहुत से ऐसे चिन्ह प्रमाण-स्वरूप उपलब्ध हैं जिससे स्थली के महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है ।

आज भी यह स्थली दिव्यता को सूक्ष्मता से लुटा रही है । ध्वंस प्रायः यह स्थली श्रीपोद्दार महाराज 'कल्याण' सम्पादक की प्रेरणा से बने विशाल मन्दिर के रूप में दर्शनीय है ।

श्रीकेशवदेवजी

प्रदक्षिणी कृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्धरा ।
प्रदक्षिणी कृता येन मथुरायान्तु केशवः ॥
इह जनौ कृतं पापमन्य जन्म कृतं च यत् ।
तत् सर्व नश्यति शीघ्रं केशवस्य च कीर्तने ॥

(आ० वा० पु०)

जिस व्यक्ति ने मथुरा में विराजमान श्रीकेशवदेवजी की प्रदक्षिणा की है, उसने सप्तद्वीप की ही प्रदक्षिणा की है । इस जन्म अथवा अन्य जन्मों में किये गये समस्त पाप केशवदेवजी का संकीर्तन करने से तुरन्त क्षय हो जाते हैं ।

इस मन्दिर की स्थापना श्रीवज्रनाभजी ने की थी । अनेक उतार-चढ़ावों में कई बार ध्वंस प्रायः यह मन्दिर आज कुछ अधिक पुराना नहीं है ।

ठाकुर स्वरूप इस समय जिला कानपुर की औरैया तहसील में रसधान ग्राम में विराजते हैं ।

श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुजी जब यहाँ पधारे तो दर्शन करके आत्म-विभोर हो गये ।

विश्राम घाट

ततो विश्रान्ति तीर्थाख्यं तीर्थमंहो विनाशनम् ।
संसारमरु संचार क्लेश विश्रान्तिदं नृणाम् ॥

(सौर पुराण)

यहाँ परलोक एवं मरुभूमि विचरण जनित क्लेशों को भी विश्राम देने वाला विश्राम तीर्थ नामक स्थल है। यहाँ स्नान करने वाले को वैकुण्ठ की प्राप्ति होती है।

आदि वाराह पुराण में सूर्योदय के समय विश्राम तीर्थ का विशेष महत्त्व बतलाया गया है-

सूर्योदय में विश्रान्त तीर्थ, मध्यान्ह के समय दीर्घ-विष्णु तथा अपरान्ह में केशवदवजी में विष्णु तेज विशेष रूप से रहता है। ऐसी अनुश्रुति है कि श्रीकृष्ण ने कंस वध के पश्चात् श्रीगिरिराजजी की छाया में बैठ यहाँ विश्राम किया था, तभी से यह स्थली विश्राम-स्थली अथवा विश्राम-घाट के नाम से विख्यात है।

विश्राम स्थल पहले से ही महत्त्वपूर्ण स्थान चला आया है । पन्द्रहवीं शताब्दी में सिकन्दर लोदी के अनेक फरमानों द्वारा हिन्दू जाति पर किये गये अन्यायों से यह स्थली भी अछूती न रह सकी। कोई भी हिन्दू दाह क्रिया करने के बाद शास्त्रीय नियमों का पालन नहीं कर सकता था। इस स्थली पर यवनों ने स्नान तर्पण आदि तक के लिये रोक लगा दी थी।

सिकन्दर लोदी के हिन्दू धर्म विरोधी विचारों से हिन्दू जाति त्रस्त थी ऐसे समय में निम्बार्क-सम्प्रदाय के आचार्य श्रीकेशव भट्ट काश्मीरी तथा श्रीवल्लभाचार्य जी महाराज ने अपने भक्ति तथा आत्मबल के प्रभाव से विश्राम-घाट पर दी जाने वाली बाधा को दूर करवाया।

श्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक

श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज जब यहाँ पधारे तो यह स्थली हिन्दुओं की श्मशान स्थली मात्र थी, सिकन्दर लोदी की ओर से आदेश थे कि हिन्दू इस स्थान पर स्नान आदि न करें तथा और कर्म भी न करावें जिससे हिन्दुओं के दाहक्रिया उपरान्त धार्मिक कृत्य पूरे न हो सकें।

इसके अतिरिक्त नाईयों को भी दाढ़ी आदि न बनाने के आदेश कर दिये थे। नाई प्रायः न मिलते थे, इसके पीछे उद्देश्य यही था कि हिन्दू मुसलमान से ही दीखें तथा मुसलमान कहलावें। महाप्रभुजी जिस समय यहाँ पधारे तो उन्होंने श्रीयमुना में स्नान किया और सिकन्दर लोदी के पास अपने दो सेवक भेजकर इस आदेश को रद्द करने को कहा, कहते हैं सिकन्दर लोदी महाप्रभुजी के अप्राकृत साहस से बहुत प्रभावित हुआ और उसने यह सब छूट दे दी। इससे महाप्रभु वल्लभाचार्यजी का यश चारों ओर फैल गया। यहीं आपने श्रीमद् भागवत सप्ताह पारायण कर इस स्थली के वातावरण को पुण्यमय बना दिया।

श्रीचैतन्य महाप्रभुजी जब ब्रज में पधारे तो विश्राम घाट पर विराजे थे।

गतश्रमदेव

सर्व तीर्थेषु यत्स्नानैः सर्व तीर्थेषु यत्फलम् ।
तत् फलं लभते देवि दृष्ट्वा देवं गतश्रमम् ॥

(आ० वा० पु०)

हे देवि ! सर्व तीर्थ स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है वह सम्पूर्ण फल विश्राम तीर्थ में गतश्रम देव के दर्शन करने मात्र से ही सुलभ हो जाता है ।

विश्राम घाट पर स्थित श्रीरामानुज-सम्प्रदाय का स्थान है ।

भूतेश्वर महादेव

मथुरायाञ्च देवत्वं क्षेत्रपालो भविष्यसि ।
त्वयि दृष्टे महादेव मम क्षेत्र फलं लभेत् ॥

(आ० वा०)

(श्रीकृष्ण ने कहा) देव ! आप मथुरा के क्षेत्रपाल होंगे । हे महादेव आपके दर्शन करके लोग मेरे धाम को प्राप्त करेंगे ।

इन्हीं के नाम से मथुरा नगरी भूतेश्वर क्षेत्र कहलाती है । महादेवजी के स्वरूप अत्यन्त प्राचीन हैं । ये पश्चिम दिशा के क्षेत्रपाल माने जाते हैं ।

श्रीकृष्ण दर्शनार्थ शंकर भगवान जिस समय ब्रज में पधारे तो चार स्थानों पर अलग-अलग वास किया । मथुरा में भूतेश्वर, वृन्दावन में गोपेश्वर, नन्दग्राम में नन्दीश्वर तथा गिरिराज में चक्रेश्वर ।

पोतरा कुण्ड

सुन्दर सीढ़ियों से सज्जित चौकोर विशाल तथा घने वृक्षों से आच्छादित यह स्थली भगवान श्रीकृष्ण की बाल लीला स्मृति को अपने गर्भ में संजोये आज भी उस दिव्यता का अता-पता बतला रही है, जन्म-स्थान के पास ही है ।

ऐसी मान्यता है कि श्रीकृष्ण-जन्म के पश्चात्, उनके वस्त्रों का प्रक्षालन इसी स्थली पर किया गया था ।

श्रीयमुनाजी

अनन्त गुण भूषिते शिवविरञ्चि देवस्तुते ।
घनाघननिभे सदा ध्रुवपराशरभीष्टदे ॥
विशुद्ध मथुरा तटे सकल गोप गोपी वृते ।
कृपा जलधि संश्रिते मम मनः सुखं भावये ॥

(श्रीयमुनाष्टक श्रीमद्वल्लभाचार्यजी)

अनन्त गुणों से सुशोभित, शिव, ब्रह्मादि-देवताओं द्वारा स्तवित, निरन्तर गम्भीर मेघ समूह के समान देदीप्यवती, ध्रुव तथा पराशर को मनवाञ्छित फल प्रदान करने वाली, अत्यन्त शुद्ध नगरी मथुरा जिसके तट पर बसी हुई है तथा सम्पूर्ण गोप-गोपीजनों से आवृत कृपासागर श्रीब्रज अधीश्वर के आश्रय में रहने वाली हे श्रीयमुने ! हमारे मन को सुख प्रदान करो।

श्रीयमुना, 'यम ना' यह उक्ति ब्रज में अत्यन्त प्रसिद्ध है, अपने जनों के समस्त अघों का क्षय कर उन्हें श्रीकृष्ण की प्रेमाभक्ति प्रदान करने वाली हैं श्रीयमुनाजी।

भौतिक चक्षुगोचर जल स्वरूपिणी श्रीयमुनाजी का वास्तविक रूप जहाँ एक ओर तरल होकर जल रूप में प्रवहमान है वहीं दूसरी ओर वे श्रीकृष्ण लीला परिकर तो हैं ही उनकी कालिन्दी सखी के रूप में भी नित्य विराजती हैं।

सभी सम्प्रदायों ने एक मत से श्रीयमुनाजी की अद्वितीयता स्वीकार की है, परन्तु पुष्टिमार्ग में ब्रह्म-सम्बन्ध कराने वाली, श्रीकृष्ण की कृपा की अनायास सुगमता से प्राप्ति कराने वाली श्रीयमुना जी को ही माना है।

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी ने यमुना षटपदी में एक स्थान पर 'धारित श्रीकृष्णयुत् भक्त हृदयाम्' श्रीकृष्ण से विभूषित, श्रीकृष्ण के अन्तरंग भक्तों को धारण करने वाली कहा है। श्रीकृष्ण के प्रेमी श्रीयमुना जी को अपने सिर पर धारण करते हैं। स्नान तथा आचमन कर श्रीकृष्ण प्राप्ति की याचना करते हैं।

श्रीकृष्ण-मय भक्तों के संसर्ग से ही श्रीयमुनाजी श्याम वर्णा हो गयी हैं।

श्रीयमुनाजी सभी के लिए सेवनीय है। प्रेमस्वरूपा गोपीजन इन्हीं की सेवा से श्रीकृष्ण की प्रिया हो गईं। अपनी कृपा से अपने आश्रित भक्तों के कठिन से कठिन मोह का भंजन कर श्रीकृष्ण भक्ति प्रदान करने वाली हैं, हमारे लिए प्रणम्य हैं।

जय यमुने जय भीति निवारिणी संकट नाशिनी पावयमाम्।

हे श्रीयमुने तुम्हारी जय हो, तुम भय तथा सम्पूर्ण संकटों का नाश करने वाली हो, मुझे भी स्वीकार करो।

यम द्वितीया माहात्म्य

एक समय श्रीयुधिष्ठिरजी ने द्वारिका में विराजमान श्रीकृष्ण से प्रश्न किया, "हे द्वारिकाधीश ! संसार का दुःख हरने वाले श्रीकृष्ण ! यम-द्वितीया शब्द का महत्त्व जानने की मेरी जिज्ञासा है। आप इस महत्त्व का प्रकाश मेरे लिए कर मुझे अनुग्रहीत कीजिये। हे विश्वात्मन् ! कृपा कर यमद्वितीया की व्युत्पत्ति तथा नियमादि का सविस्तार वर्णन कर सम्पूर्ण जगत के लिए इस पर्व की सर्व-सुलभता तथा उपयोगिता पर भी प्रकाश डालिये।"

श्रीकृष्ण बोले, "हे युधिष्ठिर ! श्रीयमुनाजी ने इस दिन अपने भाई यमराज को अपने घर बुलाकर भोजन करवाया था। भोजन से पूर्ण तृप्त होकर यमराज ने अपनी बहन द्वारा लोक हित के लिए माँगा वरदान देकर उसकी कामना पूर्ण की थी । तभी से यह दिवस यमद्वितीया अर्थात् भ्रातृ-द्वितीया के नाम से प्रसिद्ध हो गया ।"

यम द्वितीया के दिन श्रीयमुना स्नान का विशेष महत्त्व है । मथुरापुरी में विश्रान्त-तीर्थ पर बहन तथा भाई मिलकर यदि स्नान करें तो उन्हें यमराज का भय नहीं रहता । श्रीयमुनाजी के स्मरण का तो कहना ही क्या है, इनके तट पर शोभायमान मथुरा नगरी ही समस्त भव बन्धनों को क्षय करने वाली हैं ।

भ्रातृ-द्वितीया के दिन मथुरा में श्रीयमुनाजी में आज भी असंख्य भाई बहन इस-दिन स्नान कर लाभ प्राप्त करते हैं ।

अविमुक्त तीर्थ

अविमुक्ते नरःस्नातो मुक्ति प्राप्नोत्य संशयम् ॥
तत्राथ मुञ्चते प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥

(आ० वा०)

अविमुक्त तीर्थ में स्नान करने वाला व्यक्ति निस्सन्देह मुक्ति पद को प्राप्त करता है, तथा वहाँ देह बन्धन से मुक्त होने वाला मेरे ही धाम को गमन करता है ।

'ऐई अविमुक्ति तीर्थे स्नाने मुक्ति हय ।

(भ० र०)

गुह्य तीर्थ

अस्ति चान्यतरद् गुह्यं सर्व संसार मोक्षणम् ।
तस्मिन् स्नातो नरो देवि ! मम लोके महीयते ॥

हे देवि ! (वसुन्धरे) संसार के समस्त बन्धनों से मुक्ति प्रदान करने वाला एक गुह्य तीर्थ है । इसमें स्नान करने वाला व्यक्ति मेरे वैकुण्ठ धाम में पूजनीय होता है ।

सूर्य तीर्थ

ततः परं सूर्यं तीर्थं सर्व पाप प्रमोचनम् ।
वैरोचनेन बलिना सूर्य स्त्वाराधितोः पुरा ॥
आदित्येऽहनि संक्रांतौ ग्रहणे चन्द्र सूर्ययोः ।
तस्मिन् स्नातो नरो देवि राजसूय फलं लभेत् ॥

(आ० वा०)

(यहाँ) सर्व पापों को क्षय करने वाला सूर्य तीर्थ है, जहाँ विरोचन पुत्र बलि ने सूर्य देव की आराधना की थी। हे देवि ! रविवार को, संक्रान्ति के दिन तथा चन्द्र और सूर्य ग्रहण काल में यहाँ स्नान करने वाला (व्यक्ति) राजसूय यज्ञ के फल को प्राप्त करता है।

इसके पास ही 'बट स्वामी तीर्थ' हैं। पास ही 'प्रयाग तीर्थ' 'कनखल तीर्थ', 'तिन्दुक तीर्थ' हैं।

ध्रुव तीर्थ

यत्र ध्रुवेण सन्तप्तमिच्छया परमं तपः ।
तत्रैव स्नान मात्रेण ध्रुवलोके महीयते ॥
ध्रुवतीर्थे तु वसुधे यः श्राद्धं कुरुते नरः ।
पितृन् संतारयेत् सर्वान् पितृपक्षे विशेषतः ॥[1]

(आ० वा० पु०)

विमाता सुरुचि द्वारा भर्त्सना किये जाने पर माता सुनीती से प्रेरणा पाकर बालक ध्रुव मधुवन में आकर भगवद् प्राप्ति हेतु तपस्या करने लगे।

उनकी तितिक्षा तथा भगवन्नामानुराग से समस्त ब्रह्माण्ड हिल गये। श्वास अवरोध कर बालक ध्रुव के हृद्गत भावों से सम्पूर्ण देवताओं में भी हलचल मच गई। ध्रुवजी की ध्यान मग्नता देख भगवान् नारायण प्रकट हो गये, ध्रुवजी को भान भी न हुआ। नारायण भगवान् ने जब उनके हृदय से अपना स्वरूप तिरोहित किया तो ध्रुवजी चौंक उठे।

भोले ध्रुव प्रार्थना स्तुति भी न कर पाये। भगवान का शंख स्पर्श प्राप्त कर ध्रुवजी ने महात्माओं के दुर्लभ संग की याचना की, जिससे भगवान की लीलाओं का गुणगान, चिन्तन तथा मनन कर इस नश्वर संसार के विरक्त हो कर भगवान में अनुराग बढ़ता रहे।

सर्वज्ञ भगवान, ध्रुवजी के संकल्प से सर्वथा परिचित थे। उन्होंने आशीर्वाद देते हुए वरदान दिया तथा ध्रुव पद प्रदान कर दिया। ध्रुवजी घर लौट आये। इनके पिता उत्तानपाद पुत्र को घर आया देख प्रसन्नता में भर गये तथा ध्रुवजी को राज्य का भार सौंप दिया।

ध्रुवजी की भजन-स्थली 'ध्रुव टीला' नाम से विख्यात हो गयी। आज भी यहाँ का वातावरण विशेषता लिए है।

---

1. यहाँ ध्रुवजी ने एकान्त भाव से तपस्या की थी। इस तीर्थ में स्नान मात्र से व्यक्ति ध्रुवलोक में पूजनीय होता है। जो व्यक्ति ध्रुवतीर्थ में पितृपक्ष में श्राद्ध करते हैं, वे समस्त पितरों का उद्धार करने में समर्थ हो जाते हैं।

श्रीहरिव्यास देवजी, श्रीभट्टजी से दीक्षा ग्रहण कर यहीं निवास करने लगे थे । ये उच्च कोटि के भक्त थे तथा निम्बार्क सम्प्रदाय के विकास तथा प्रचार हेतु इनके विलक्षण योगदान की गाथा का उल्लेख श्रीनाभादास जी ने भक्तमाल में इस प्रकार किया हैं-

'हरिव्यास तेज हरि भजनबल, देवी को दीक्षा दई ।'

'श्रीनिम्बार्काचार्य जी', 'केशव भट्ट काश्मीरी' तथा 'श्रीभट्टजी' व 'श्रीव्यासजी' यहाँ निवास करते थे । पास ही श्रीनारद टीले पर श्रीनिम्बार्कचार्यजी को छोड़कर तीनों आचार्यो की समाधियाँ बनी हैं । यह निम्बार्क सम्प्रदाय का प्राचीन स्थान है ।

ध्रुव तीर्थ के दक्षिण में 'ऋषितीर्थ', 'ऋषितीर्थ' के दक्षिण में 'मोक्ष तीर्थ', 'कोटि तीर्थ' जहाँ पिण्डदान करने से निश्चित रूप से पितृ लोक की प्राप्ति होती है । आगे 'बोधि तीर्थ' 'असिकुण्ड' के उत्तर में 'नव तीर्थ' स्थित हैं ।

संयमन तीर्थ

ततः संयमनं नाम तीर्थ त्रैलोक्य विश्रुतम् ।
तत्र स्नातो नरो देवि मम लोकं हि गच्छति ॥

(आ० वा०)

उसके बाद त्रैलोक्य विख्यात संयमन तीर्थ है, जहाँ स्नान करने वाला, निश्चय ही मेरे धाम को गमन करता है ।

ऐसी जनश्रुति है कि श्रीकृष्ण ने कंस का वध कर श्रीयमुना में इसी स्थली पर स्नान किया था । अतः इस स्थली का महत्त्व अद्वितीय हो गया है ।

धारापतन तथा घण्टा भरणक तीर्थ

'धारापतन' तीर्थ में स्नान करने वाला स्वर्ग सुख को प्राप्त करता है तथा जिसकी इस स्थान पर मृत्यु हो जाती है, वह भगवान के धाम को प्राप्त करता है ।

'घण्टा भरणक' तीर्थ सर्व पापों को नाश करने वाला है । यहाँ स्नान करने वाला सूर्य लोक में पूजनीय होता है । पास ही 'नाग तीर्थ' है । उसके पास ही 'ब्रह्म तीर्थ' है ।

सोमतीर्थ (गौ घाट) वैकुण्ठ घाट कृष्णगंगा घाट

सोमवैकुण्ठयोर्मध्ये कृष्ण गंगेति कथ्यते ।
तथा तप्यत्तपो व्यासो मथुरायां स्थितोऽमलः ॥

(वा० पु०)

सोम तथा वैकुण्ठ तीर्थ के मध्य कृष्णगंगा नाम का तीर्थ विद्यमान है । मथुरा में यहीं महर्षि व्यासजी ने तप किया था, यह प्रसिद्ध है ।

'सोमतीर्थ' में स्नान करने से सर्वसुखों की प्राप्ति होती है । 'वैकुण्ठ तीर्थ' में स्नान करने वाला समस्त पातकों से मुक्त होकर विष्णुलोक को गमन करता है ।

'कृष्णगंगा' में स्नान करने से नैमिषारण्य, प्रयाग तथा पुष्करादि तीर्थों के स्नान फल से दस गुना अधिक फल प्राप्त होता है ।

चक्र तीर्थ

चक्र तीर्थन्तु विख्यातं माथुरे मम मण्डले ।
यस्तत्र कुरुते स्नानं त्रिरात्रौ पोषितो नरः ॥
स्नान मात्रेण मनुजो मुच्यते ब्रह्म हत्यया ।

मेरे मथुरा मण्डल में चक्र तीर्थ सुविख्यात है । जो व्यक्ति तीन रात्रि उपवास रखने के बाद यहाँ स्नान करता है वह इतने से ही ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो जाता है ।

पास ही 'सरस्वती पतन-तीर्थ' है जहाँ सरस्वती नदी श्रीयमुनाजी में मिलती हैं ।

दशाश्वमेध तीर्थ

दशाश्वमेधमृषिभिः पूजितं सर्वदा पुरा ।
तत्र ये स्नान्ति नियतास्तेषां स्वर्गो न दुर्लभः ॥

(आ० वा०)

पूर्वकाल में ऋषियों द्वारा पूजित यह दशाश्वमेध तीर्थ है जो व्यक्ति यहाँ निवास कर इसमें स्नान करता है उसके लिये स्वर्ग दुर्लभ नहीं है । अतः वह देवलोक को प्राप्त करता है ।

ऐसी जनश्रुति है कि नाग राजाओं ने यहाँ अनेक अश्वमेध यज्ञ किये हैं ।

गोकर्ण तीर्थ

ततो गोकर्णतीर्थाख्यं तीर्थ भुवनविश्रुतम् ।
विद्यते विश्वनाथस्य विष्णोरत्यन्तवल्लभम् ॥

(सौ० पु०)

इसके पश्चात् विष्णु भगवान का अत्यन्त प्रिय जगद् विख्यात विश्वनाथ भगवान का गोकर्ण नामक तीर्थ है ।

मथुरा की प्राचीन सीमा स्वरूप, धूरकोट के अन्तिम छोर पर यह महादेव स्वरूप उत्तरी सीमा के रक्षक क्षेत्रपाल माने जाते हैं।

पास ही 'विघ्नराज' तथा 'कोटि तीर्थ' हैं।

असिकुण्ड तीर्थ

एका वराहसंज्ञा च तया नारायणी परा ।
वामना च तृतीया वै चतुर्थी लांगली शुभा ॥
एताश्चतस्त्रो यः पश्येत् स्नात्वा कुण्डेऽसिसंज्ञके
चतुःसागरपर्यन्ता क्रान्ता तेन धरा ध्रुवम् ।
तीर्थानां माथुराणाञ्च सर्वेषां फलमश्नुते ॥

(वा० पु० मथुरा महात्म्य)

एक वाराह भगवान, दूसरे नारायण भगवान, तीसरे श्रीवामन भगवान तथा चौथे मंगलमय लांगली, इन चारों स्वरूपों के दर्शन कर जो व्यक्ति असिकुण्ड तीर्थ में स्नान करता है वह निश्चय ही चार समुद्र परिवेष्टित पृथ्वी की परिक्रमा करता है तथा समस्त तीर्थों के फल का लाभ प्राप्त करता है।

श्रीद्वारकाधीश जी

पुष्टि-सम्प्रदाय की सेवा पद्धति के अनुसार बड़े लाड़ से पोषित द्वारकाधीशजी महाराज असंख्य दर्शनार्थी तथा भक्तों के आकर्षण बने हुए हैं। दूर-दूर से यात्री मथुरा आते हैं तो यहाँ का सबसे बड़ा आकर्षण श्रीद्वारकानाथ जी ही हैं।

असिकुण्डा बाजार के बीच में बना यह मन्दिर 'सेठजी का मन्दिर' अथवा 'राजाधिराज' का मन्दिर नाम से विख्यात है।

ग्वालियर राज्य के खजांची श्रीगोकुलदास पारीख ने सं. १८७१ में इसका निर्माण अपने बड़े भाई की इच्छापूर्ति हेतु करवाकर वल्लभ कुलीय गोस्वामियों को भेंट कर दिया था।

श्रावण में यहाँ के झूले का उत्सव तथा यहाँ की भिन्न-भिन्न रंगों की घटाएँ विशेष रूप से दर्शनीय हैं।

कंस किला

श्रीयमुना तट पर भग्नप्रायः दुर्ग 'कंस किला' नामसे प्रसिद्ध है। यहाँ से प्राप्त मुर्त्तियों से ज्ञात होता है कि यहाँ कंस का निवास स्थान रहा होगा।

हाल में हुई खोज के आधार पर चौक में जामा मस्जिद के स्थान पर पहले कोई मन्दिर रहा है यह सिद्ध हुआ है।

श्रीअम्बरीष टीला

श्रीअम्बरीषजी की अनन्य भक्ति की स्मृति में यह अम्बरीष टीला आज भी भगवान के योगक्षेम वहन के प्रण की पुष्टि कर हम लोगों का पथ प्रदर्शित कर रहा है ।

श्रीगणेश घाट

चामुण्डा देवी से गोकर्ण महादेव आने के मार्ग में उत्तर की ओर दूर से ही दीख रहा ऊँचा स्थल गणेश-टीला नाम से विख्यात है । गणेशजी के अति सुन्दर स्वरूप विराजमान हैं ।

ऐसी मान्यता है कि यह विघ्नहर स्वरूप अत्यन्त प्राचीन है । शिवाजी महाराज के महामन्त्री श्रीबाजीराव पेशवा ने मुगलों से युद्ध करके मथुरा को जब स्वतन्त्र कराया तो इन सिद्ध गणेश स्वरूप का पूजन तथा अभिषेक किया था । उसी समय में सेवा का भार वर्तमान पुजारी पं. दीनानाथ तथा कालीचरणजी के पूर्वजों को सौंप दिया था । उसी पट्टे के आधार पर यह लोग अद्यावधि सेवा करते आ रहे हैं ।

इन्हीं श्रीसिद्ध गणेशजी के अनेक चमत्कार समय-समय पर घटित होते रहे हैं । उन्हीं में से एक प्रसंग हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

कहते हैं कि अमृतसर के एक वैद्य श्रीविनायक दत्त शर्मा को स्वप्न में इन्हीं गणेशजी ने आदेश देकर (सिंदुर का लेप बार-बार लगाने के कारण इनका कलेवर सिंदुर का ही हो गया था । भीतर गणेशजी के सुन्दर स्वरूप थे ।) अपना मुखौटा हटाने को कहा । श्रीवैद्यजी अपने स्वजनों से सलाह कर मथुरा आते हुए वृन्दावन चले आये । यहाँ इन्होंने कई गण्य-मान्य व्यक्तियों से राय ली तथा वृन्दावन के ही एक पण्डितजी के सहयोग से वर्तमान में गणेशजी के पुजारी पण्डित दीनानाथजी तथा कालीचरणजी को बुलवाकर सारी घटना कह सुनाई । पुजारियों ने इस बात से साफ इन्कार कर दिया और सिन्दुर का आवरण हटाने से किसी अप्रिय घटना की सम्भावना की बात कही । परस्पर की बात-चीत के बाद आवरण हटाने का प्रयास करने की बात तय हो गई तथा अनेक भावुक भक्त तथा पण्डितों को ले यह सब लोग मथुरा पहुँचे । मुखौटा हटाने की चेष्टा करने पर भी वह न हटा और सभी लोग स्तब्ध से खड़े रह गये । पण्डितजी से श्रीवैद्यजी ने पुनः अनुरोध किया । कहते हैं पण्डित दीनानाथजी पहले ही प्रयास कर चुके थे परन्तु इस बार गणेशजी का स्मरण कर जब उन्होंने मुखौटा उतारने की चेष्टा की तो वह मुखौटा सहज ही उनके हाथ में आ गया और उसके पीछे देदीप्यमान गणेश जी के सुन्दर स्वरूप सभी के सामने प्रकट हो गये जो आज भी सर्व साधारण के हित-चिन्तक बने मन्दिर में विराजमान हैं ।

सिन्दूर के उस आवरण को तोलने पर वह १५ किलो वजन का निकला।

इन गणेशजी का अभिषेक तथा षोडशोपचार सहित पूजन किया गया।

सन् १९८० की इस घटना को 'ईश्वर-प्राप्ति' पत्रिका में सविस्तार प्रकाशित किया गया है।

मल्हपुरा

'पोतरा कुण्ड' से 'केशवदेवजी' तक की बस्ती 'मल्हपुरा' नाम से विख्यात है। जनश्रुति है कि कंस के पहलवान यहाँ रहा करते थे।

दुर्वासा मुनि का आश्रम

यह प्राचीन स्थली विश्राम-घाट के सामने यमुना पार स्थित है।

श्रीदाऊजी मदनमोहनजी

'रामघाट' के निकट श्रीयमुना के तट पर वल्लभ-सम्प्रदाय के मंदिर हैं। यहाँ पुष्टिमार्गीय छठे घर की गद्दियाँ हैं।

रङ्गभूमि

श्रीकृष्ण-बलराम को रङ्गोत्सव दिखाने के लिये कंस ने इसका निर्माण करवाया था।

रङ्गशाला

ततः पौरान् पृच्छमानो धनुषः स्थानमच्युतः।
तस्मिन् प्रविष्टो ददृशे धनुरैन्द्रमिवाद्भुतम्॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/42/15)

भोजराज कंस का निमन्त्रण पा ब्रजवासियों सहित श्रीकृष्ण तथा बलराम मथुरा में प्रविष्ट हुए। एक विशेष कौतूहल लिये वे भिन्न-भिन्न बाजारों में विचरण करते रहे। पुरस्त्रियाँ उनकी मनहर छविमाधुरी का पान कर अकी-जकी सी रह जातीं। उन्हें नेत्रों से अपने हृदय में ले जाकर अपनी चिर पिपासा को शान्त करती हुई आनन्द-मग्न हो जातीं।

मार्ग में रजक का उद्धार कर तथा कुब्जा को कृतार्थ कर श्रीकृष्ण बलराम रंगशाला में प्रविष्ट हुए। वहाँ की शोभा निहार वे प्रसन्न हो गये।

इसके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण पुरवासियों से धनुष यज्ञ का स्थान पूछते

---

1. इसके पश्चात् भगवान श्रीकृष्ण पुरवासियों से धनुष यज्ञ का स्थान पूछते हुए रंगशाला में पहुँचे। वहाँ उन्होंने इन्द्रधनुष के समान एक अद्भुत धनुष देखा।

हुए रङ्गशाला में पहुँचे । वहाँ उन्होंने इन्द्रधनुष के समान एक अद्‌भुत धनुष देखा । श्रीकृष्ण के प्रति कंस की भावना अच्छी न थी । उसके निकट के अनेक सेवकों का वध श्रीकृष्ण पहले ही कर चुके थे । कंस ने कपट से ही रंगशाला का निर्माण करवाया था । चारों ओर सुन्दर सज्जा थी । पुष्पों से दीवारों को मण्डित कर दिया गया था, चारों ओर तोरण तथा बन्दनवार बाँध दिये थे, बड़े-बड़े वीरों के लिये तथा महत्‌पुरुषों के लिये बैठने के अलग-अलग स्थान बने थे । रंगशाला एक नटशाला-सी बनी, सभी का आकर्षण लिये श्रीकृष्ण तथा बलरामजी की उपस्थिति में शोभित हो रही थी ।

प्रवेश करते ही श्रीकृष्ण ने इन्द्र धनुष के समान देदीप्यमान धनुष को अपने बाँए हाथ से उठा, डोरी चढ़ा सबके देखते-देखते क्षण भर में ही तोड़ दिया । कंस की भेजी हुई सेना भी दोनों भाइयों के आगे टिक न सकी ।

इधर कंस की चिन्ता और बढ़ने लगी । उसे स्वप्न तथा जागृत अवस्था में भयवश श्रीकृष्ण का चिन्तन होने लगा ।

कुवलयापीड़ का वध कर श्रीकृष्ण ने उसके दोनों दाँत उखाड़ लिये । उसके उन दोनों दाँतों से उन्होंने अनेक दुष्टों का वध कर दिया तथा कुछ भयभीत होकर भाग खड़े हुए । चाणूर तथा मुष्टिक दोनों पहलवानों ने मल्ल-युद्ध के लिये आग्रह किया ।

नीतिविज्ञ श्रीकृष्ण ने मल्लयुद्ध के लिये अपनी तथा बलरामजी की कम आयु की बात कही, परन्तु चाणूर तथा मुष्टिक ने श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं का स्मरण करा उनकी वीरता का डंका पीटा और स्वयं मल्लयुद्ध के लिये तैयार हो गये । श्रीकृष्ण तो यह सब पहले से ही चाहते थे । चाणूर से श्रीकृष्ण भिड़ गये तथा मुष्टिक बलरामजी से लड़ने लगा ।

इस अधर्म पूर्ण युद्ध को देख वहाँ उपस्थितगण 'अन्याय' कहकर चिन्तित हो गये । वहाँ बैठी पुरस्त्रियाँ वहाँ से उठ चलने को उद्यत हो गईं, परस्पर चर्चा करने लगीं । "ओह ! सच पूछो तो ब्रजभूमि ही परम पवित्र तथा धन्य है क्योंकि वहाँ पुरुषोत्तम मनुष्य के वेष में छिपकर रहते हैं । स्वयं भगवान शंकर और लक्ष्मीजी जिनके चरणों की पूजा करती हैं, वे ही प्रभु वहाँ रंग-बिरंगे पुष्पों की माला धारण कर लेते हैं तथा बलरामजी के साथ बाँसुरी बजाते, गौएँ चराते और तरह-तरह के खेल खेलते हुए आनन्द से विचरते हैं ।" श्रीकृष्ण की इस रूप-मधुरिमा का आस्वादन केवल ब्रजवासीगण तथा गोपिकाओं के लिए ही सुलभ है । अभी वे पुरस्त्रियाँ ऐसी चर्चा कर रही थीं कि चाणूर तथा मुष्टिक दोनों का श्रीकृष्ण तथा बलरामजी ने क्रमशः उद्धार कर दिया । सभी के देखते-देखते कूट, शल तथा तोशल भी मारे गये ।

अपने सभी पहलवानों का वध होने पर कंस का क्रोध और भी बढ़ गया। उसने श्रीकृष्ण तथा बलरामजी व अन्य गोपों को पकड़ बन्दी बनाने के लिए अपने सेवकों को कहा। सभी के सामने बड़े वेग से उछलते-उछलते श्रीकृष्ण उसके मंच पर चढ़ गये। कंस ने श्रीकृष्ण को अपने सामने देख ढाल और तलवार से आक्रमण करना चाहा, परन्तु जैसे गरुड़ साँप को पकड़ ले, ठीक वैसे ही श्रीकृष्ण ने कंस को बलपूर्वक पकड़ लिया तथा उसका वध कर दिया।

कंस नित्य-निरन्तर ही घबराहट के कारण श्रीकृष्ण का चिन्तन करने लगा था। उसे हर समय हर स्थान पर श्रीकृष्ण ही दीखने लगे थे। अतः नित्य चिन्तन के फलस्वरूप उसे सारूप्य मुक्ति प्राप्त हुई जो बड़े-बड़े तपस्वियों योगियों के लिए भी दुर्लभ है। इसके साथ-साथ कङ्क तथा न्यग्रोध कंस के आठ भाइयों ने श्रीकृष्ण और बलरामजी से बदला लेने का प्रयास किया। दोनों भाइयों ने कंस के सभी भाइयों का सहज ही वध कर दिया।

रङ्गशाला एक महत्त्वपूर्ण प्रसङ्ग से जुड़ी है, यद्यपि मूल रूप में वह भवन इस समय ध्वंस प्रायः हो गया है, तथापि यह मुख्य इतिहास आज भी श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के शौर्य की पताका फहरा रहा है। आज भी रंगशाला नाम से विख्यात है।

श्रीरंगेश्वर महादेव

मथुरा के चार रक्षक क्षेत्रपालों में से आप दक्षिण क्षेत्र के रक्षक माने जाते हैं।

सप्त समुद्री कूप

प्राचीन काल में व्यापारी लोग विदेश से लौटकर, यहाँ महादान स्वरूप विदेशी संसर्ग दोष निवृत्ति हेतु स्वर्ण दान करते थे। यहाँ एक प्राचीन कुआँ है। नागों के शासन काल में सर्प देवता का पूजन भी यहीं होता था ऐसी जनश्रुति है। मथुरा नगर की नव विवाहिता स्त्रियाँ आज भी पूजन हेतु नाग पंचमी के दिन यहाँ पधारती हैं।

पद्माकार स्वरूपिणी मथुरा नगरी

आदि वाराह पुराण में मथुरा का स्वरूप पद्माकार बतलाया गया है। जिसकी कर्णिका में श्रीकेशवदेवजी, पश्चिम पत्र में गोवर्द्धन विराजित हरदेवजी उत्तर की ओर वाले पत्र में श्रीगोविन्ददेवजी तथा दक्षिण पत्र में श्रीवाराह देव विराजमान हैं।

वर्तमान परिक्रमा का स्वरूप एवं दर्शनीय स्थलियाँ

विश्राम-घाट, पिप्पलेश्वर-महादेव, बटुक-भैरव, वेणी-माधवजी, रामेश्वर जी, मदन-मोहनजी, तिन्दुक तीर्थ, सूर्यघाट, सूर्य तीर्थ, ध्रुव घाट, अटल-गोपाल ऋषि-तीर्थ, बलि-टीला, वामनदेवजी, कलियुगी टीला में हनुमानजी, रङ्ग-भूमि, रंगेश्वर-महादेव । उत्तर की ओर कंस-टीला, कंस का अखाड़ा, कंस-वध स्थल, उग्रसेन महाराज, शिवताल, कङ्काली देवी, उद्धवजी, गोपिका-स्थल, बलभद्र-कुण्ड, ब्रह्मदेवजी, श्रीनृसिंहदेवजी, बद्रीनाथजी, भूतेश्वर-महादेव, पाताल-देवी, पोतरा -कुण्ड, श्रीकेशवदेवजी, श्रीकृष्ण जन्म-भूमि, महाविद्या देवी, सरस्वती-कुण्ड, सरस्वतीदेवी, चामुण्डा देवी, रजक वध स्थान, गोकर्णजी, अम्बरीष टीला, चक्रतीर्थ, सोमतीर्थ, घण्टा भरण, धारापतन, वैकुण्ठघाट, वाराहक्षेत्र नागक्षेत्र, महावीरजी, गणेशजी, नृसिंह भगवान मणिकर्णिका तथा अविमुक्त तीर्थादि ।

मथुरा के पश्चिम में भूतेश्वर, पूर्व में पिप्पलेश्वर, दक्षिण में रंगेश्वर तथा उत्तर दिशा में गोकर्ण महादेवजी विद्यमान हैं । श्रीगिरिराज जी की ओर जाने में भूतेश्वर विराजमान हैं । वाम भाग में पाताल देवी विराजमान हैं । यहीं से दर्शन पूजनोपरान्त ब्रज की यात्रा प्रारम्भ होती है । पास ही कङ्काली देवी का स्थान है । जिस कन्या का वध करने की चेष्टा कंस ने की थी वह उसके हाथ से छूटकर आकाश में चली गई, वही कङ्काली देवी के नाम से विख्यात है ।

इससे आगे दक्षिण में इसी रास्ते पर बलभद्र-कुण्ड है । भूतेश्वर-महादेव के उत्तर में केशवदेवजी, जन्म-स्थान के दक्षिण में, पोतरा कुण्ड है । पास ही एक मन्दिर में देवकी तथा वसुदेवजी की मूर्त्तियाँ विराजमान हैं, इसे कारागृह कहते हैं । यहीं पुराना गङ्गामन्दिर है । आगे ज्ञानबाड़ी है । मथुरा के पश्चिम में महाविद्या देवी का मन्दिर है । यह टीले पर स्थित हैं । नीचे सुन्दर कुण्ड है वहाँ पशुपति-महादेव का मन्दिर है । उससे आगे सरस्वती नाला फिर सरस्वती कुण्ड है तथा सरस्वती मन्दिर है । मथुरा के दक्षिण में देहली मार्ग पर चामुण्डा देवी का स्थान है । मसानी से डीग दरवाजे के रास्ते में कुब्जा कूप है, गणेश टीले से चलकर यमुना के तट पर कोटितीर्थ है । यहाँ से सम्पूर्ण चौबीस तीर्थों में से उत्तर दिशा वाले बारह तीर्थों का प्रारम्भ होता है, गणेश टीला में गणेशजी के दर्शन हैं। गोकर्ण महादेवजी, उत्तर दिशा में श्रीयमुना तट पर विराजमान हैं। नीलकंठ महादेवजी की बगीची के सामने सरस्वती-सङ्गम है । पास ही दशाश्वमेध घाट है, श्रीवृन्दावन के बस-अड्डे के पास अम्बरीष टीला है । श्रीयमुना किनारे पर चक्रतीर्थ है । कृष्णगंगा में कालिंजर महादेवजी, गंगाजी और दाऊजी के दर्शन

हैं । गौघाट के पास घण्टाकर्ण तथा मुक्ति तीर्थ हैं । वसुदेव घाट के पास ही ब्रह्म घाट, वैकुण्ठ घाट तथा धारापतन है । असिकुण्ड भी पास ही है । माणिक चौक में वाराह भगवान का मन्दिर है । विश्रान्त घाट के पास ही मणिकर्णिका घाट है । यहीं श्रीवल्लभाचार्य जी की बैठक है । विश्राम घाट के दक्षिण में गतश्रमदेवजी का मन्दिर है । विश्राम घाट के आगे चर्चिका देवी का मन्दिर है, पिप्पलेश्वर महादेवजी विराजमान हैं । कनखल तथा तिन्दुक तीर्थ बंगाली घाट पर हैं । अवागढ़ वाले महाराज की धर्मशाला के पास सूर्य घाट है, आगे ध्रुव घाट है, ध्रुव टीला है वहाँ ध्रुवजी के दर्शन हैं । आगे सप्तऋषि का स्थान है । कंसवध स्थान, रंग-भूमि के पास है । पास ही सप्तसामुद्रिक कूप है । जंकशन वाली सड़क पर पुल के नीचे शिवताल है । वहाँ शिवजी के दर्शन हैं, यहीं से मधुवन का रास्ता है ।

नवीन स्थलियाँ

श्रीद्वारिकाधीशजी, श्रीगोविन्ददेवजी का मन्दिर, गोवर्द्धननाथजी, श्री बिहारी जी, मदनमोहन जी, श्री राधेश्याम जी, श्री मथुरानाथ जी, श्रीराधा कृष्णजी, श्रीदाऊजी, श्रीरामजी, स्वामी कीलजी की गुफा, तुलसी चौतरा, श्रीनाथजी की बैठक है ।

ऊपर मथुरा की मुख्य स्थलियों के विषय में संक्षेप में हम कह आये हैं । अब मथुरा से प्रसंग वश जुड़ी आस-पास की स्थलियों के विषय में वर्णन कर रहे हैं । आइये आस्वादन करें-

मधुवन (माहोली ग्राम)

रम्यं मधुवनं नाम विष्णुस्थानमनुत्तमम् ।
यद् दृष्ट्वा मनुजो देवि ! सर्वान् कामानवाप्नुयात् ॥
तत्र कुण्डं स्वच्छजलं नीलोत्पलविभूषितं ।
तत्र स्नानेन दानेन वाञ्छितं फलमाप्नुयात् ॥

(आ० वा० पु०)

हे देवि ! मधुवन नाम का भगवान् विष्णु का धाम बड़ा ही रमणीय तथा सर्वोत्कृष्ट है, जिसके दर्शन मात्र से मनुष्य सभी वाञ्छित फलों का उपभोग करता है । उसी स्थान पर स्वच्छ जल से प्रपूरित एक कुण्ड है, जहाँ स्नान करने तथा दानादि करने से मनुष्य सभी अभीप्सित फलों को प्राप्त कर लेता है ।

विष्णु भगवान् ने यहीं पर मधुकैटभ का वध किया था । बालक ध्रुव ने

यहाँ तितिक्षापूर्ण तपस्या की थी। शत्रुघ्नजी ने त्रेतायुग में मधुदैत्य के पुत्र लवण का वध किया था। सबसे प्रिय और भक्तों के हितकर श्रीकृष्ण की यह गोचारण भूमि है।

कन्हैया अपने प्रिय सखाओं सहित गोधन के पीछे-पीछे धौरी, धूमरी, भूहरि आदि नाम लेते, ही-ओ, ही-ओ की ध्वनि करते, स्कन्ध पर अपनी लकुटिया में छाक का छींका लटकाए सखाओं के स्कन्ध पर हाथ धरे, मत्त गजेन्द्र की सी चाल से आ रहे हैं। किसी से हँसी कर उसे छेड़ रहे हैं, किसी का कर झटक कर आगे बढ़ जाते हैं ओह-धन्य है यह ब्रज भूमि ! धन्य हैं, ग्वाल-बाल ! जो अपने प्यारे सखा कन्हैया के अद्भुत चरित्रों से आनन्दित तथा आह्लादित रहते हैं। गोचारण में जहाँ एक ओर सखाओं की मण्डली में रसीली धूम मच जाती है तो कभी अपने सखाओं की वर्जना कर उन्हें भुलावे में डाल यह चतुर शिरमौर अपनी इन प्राण प्रियाओं की प्रतीक्षातुरी को सत्कार-दुलार कर पुनः अपनी ग्वाल गोष्ठी में जा सम्मिलित होते हैं। यह सुख अवर्णनीय है।

श्रीश्रीमहाप्रभु वल्लभाचार्यजी भी यहाँ पधारे। कदम्बवृक्ष के नीचे उन्होंने सप्ताह पारायण किया। कहते हैं मधुबनिया ठाकुर स्वरूप इनकी कथा में नित्य पधारते।

तालवन (तारसी ग्राम)

अहो तालवनं पुण्यं यत्र तालैर्हतो सुरः।
हिताय यादवानाञ्च आत्मक्रीड़नकाय च ॥

(स्क० पु०)

अहो ! यही पुण्यमय तालवन है जहाँ यादवों के हितार्थ निज क्रीड़ा के हेतु (श्रीकृष्ण बलरामजी ने) धेनुकासुर का वध किया था।

मधुवन से दक्षिण-पश्चिम में लगभग ढाई मील की दूरी पर स्थित है। यहाँ दाऊजी के दर्शन हैं तथा बलभद्र कुण्ड हैं। सखाओं के ताल फल खाने के आग्रह को देखकर श्रीकृष्ण ने-

एवं सुहृद्वचः श्रुत्वा सुहृत्प्रियचिकीर्षया।
प्रहस्य जग्मतुर्गोपैर्वृतौ तालवनं प्रभू ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/15/27)

अपनी गाय चराते-चराते एक बार श्रीकृष्ण-बलराम तथा उनके प्रिय सखागण बहुत दूर निकल आये। उन्हें भूख भी लगी थी। ताल वृक्षों पर लगे

1. अपने सखा ग्वालबालों की यह बात सुन कर भगवान श्रीकृष्ण और बलराम दोनों हँसे और फिर उन्हें प्रसन्न करने के लिये उनके साथ तालवन के लिए चल दिए।

फलों की सुगन्ध कई बार उन्हें निमन्त्रण दे चुकी थी। असुर के भय से ताल फल का उपभोग-आस्वादन वे कर नहीं पाते थे। अपने सखा को कष्ट देना उन्हें रुचिकर नहीं था, पर आज सभी सखा भूख से कुछ व्याकुल हो गये। श्रीकृष्ण तथा बलरामजी की स्तुति कर कुछ सखाओं ने कह ही दिया-भैयाओ! तुम कितने वीर तथा पराक्रमी हो, इससे समस्त ब्रजवासी सर्वथा भिज्ञ हैं। तालवन में पके तालफलों की सुगन्ध हमें बहुत भाती है तथा तालफल खाने की इच्छा होती है, परन्तु धेनुकासुर का भय है। यह सुनकर अपने सखाओं के संकल्प की सिद्धि हेतु दोनों भैया सखाओं को लेकर तालवन में पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने तालवृक्षों को हिलाना आरम्भ किया। वृक्षों के हिलने की ध्वनि सुनकर धेनुकासुर इनकी ओर झपटा, परन्तु श्रीबलरामजी ने उसके पिछले दोनों पैर पकड़कर पटक दिया। कई ताल वृक्षों को गिराता हुआ वह दैत्य गिरकर मर गया। अन्य कई छोटे-छोटे असुरों का वध भी दोनों भाइयों ने कर दिया।

सखाओं के आनन्द का ठिकाना न रहा। उन्होंने तालफलों का उपभोग-आस्वादन कर क्षुधा से निवृत्ति पाई। वही स्थली 'तालवन' नाम से विख्यात है।

कुमुदवन

कुमुदवनमेतञ्च तृतीयवनमुत्तमम्।
यत्र गत्वा नरो देवि! मम लोके महीयते॥[1]

(आ० वा० पु०)

श्रीकृष्ण का विहार स्थल है। यहाँ असंख्यों कुमुदों से भरा कुमुद-कुण्ड है।

श्रीकृष्ण बड़े भैया बलरामजी तथा सम वयस्क बाल गोपाल सहित वत्स तथा गौ-चराने हेतु यहाँ पधारते हैं। भोजन साथ में होता ही है। घने तथा बड़े-बड़े वृक्षों की छाया में गोवत्स एक ओर विश्राम करते हैं-और यह ग्वाल मण्डली अपना-अपना भोजन निकाल आरोगने लगती है। सुबल तथा स्तोक कृष्ण के आग्रह करने पर श्याम सुन्दर ने सभी को दोना दे दधि वितरण करना प्रारम्भ कर दिया। सभी सखा एक दूसरे से पहले आरोगना चाहते हैं- लूट मच रही है अपने प्राण-प्रिय कन्हैया के हाथ से छीने ले रहे हैं- अत्यन्त मधुर रस छलक रहा है। परमानन्द दास जी ने देखी यह शोभा माधुरी उसी छवि का पान कर मत्त हो गए। स्वतः लेखनीबद्ध हो माधुरी में बौराए से गान करते अपने सौभाग्यमद पर गर्वित हो रहे हैं-

1. हे देवि! यही तृतीय उत्तम वन कुमुदवन है, जहाँ गमन करने मात्र से मनुष्य मेरे धाम में भी पूजनीय हो जाता है।

आज दधि मीठी मदन गोपाल ।
भावत मोहि तिहारौ झूठो चंचल नयन विसाल ॥
आन पात बनाये दौना दिये सबन को बाँट ।
जिन्ह नहीं पायौ सुनौ मेरे भैय्या मेरी हथेली चाट ॥
बहुत दिना हम बसे कुमुद वन कृष्ण तिहारे साथ ।
ऐसौ स्वाद हम कबहु ना चाख्यौ सुन गोकुल के नाथ ॥
खावत आप खवावत ग्वालन मानुष लीला रूप ।
परमान्द प्रभु हम सब जानत तुम त्रिभुवन के भूप ॥

परमानन्द दास जी अवश्य जान गए उस त्रिभुवन के भूप को । अता-पता पा गए, परन्तु यह ग्वाल मण्डली अपने सखा की झूठन चाटकर ही कृतकृत्य हो रही है ।

गोचारण के लिये श्रीकृष्ण अपने सखाओं सहित यहाँ जल-क्रीड़ा में मग्न हो जाते हैं । एक बार सखाओं को अपनी गौओं की स्मृति होने पर वे सब तो अपनी-अपनी गैया घेरने चले गये और यह परम रिझवार नन्दनन्दन अपनी वंशी ले, मधुरस्वर भर अलाप लेने लगे । उस मुरली ध्वनि से आकृष्ट हुईं यह ब्रजबालाएँ उसी मधुर स्वर का अनुसरण करती हुई वहीं आ पहुँची और फिर कुमुदकुण्ड मध्य प्रवहमान रसकेलि की बात कौन कहे ! उसी सरसता में डूब गईं ब्रज-किशोरियों की अनोखी भीर ।

उन्हीं सरस स्मृतियों की गाथा दोहराता यह स्थल 'कुमुदवन' नाम से विख्यात है ।

अम्बिकावन

एकदा देवयात्रायां गोपाला जातकौतुकाः ।
अनोभिरनडुद्युक्तैः प्रययुस्तेऽम्बिकावनम् ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/34/1)

एक बार श्रीनन्दरायजी अन्य सभी गोपों सहित अम्बिकावन में पधारे । वहाँ उन सबने सरस्वती नदी में स्नान कर शंकर भगवान का पूजन किया । अन्य तीर्थों की भाँति श्रीकृष्ण-सेवा हेतु पधारीं सरस्वतीजी भी ब्रज में विराजती हैं । श्रीनन्दरायजी तथा अन्य गोपों ने उपवास तो रखा ही था, अतः वे वहीं सरस्वती नदी के तट पर विश्राम करने लगे । उस वन में एक अजगर रहता था ।

1. एकबार श्रीनन्दरायजी तथा अन्य गोपों ने शिवरात्रि के अवसर पर बड़ी उत्सुकता, कौतूहल तथा आनन्द से भरकर बैलों से जुती हुई गाड़ियों पर सवार हो कर अम्बिकावन की यात्रा की ।

दैववश वह उधर ही आ निकला। उसने श्रीनन्दरायजी को पकड़ लिया; श्रीनन्दरायजी चिल्लाने लगे। अनेक गोपों द्वारा लकड़ियों से मारे जाने पर भी उस अजगर ने श्रीनन्दबाबा को न छोड़ा। श्रीकृष्ण ने थोड़ी देर में जाकर सबके देखते-देखते अपने श्रीचरण नख से उस अजगर का स्पर्श कर दिया। श्रीनन्दरायजी को छोड़ वह अजगर एक सुन्दर देदीप्यमान पुरुष के रूप में बदल गया। "उस सुदर्शन नाम के विद्याधर ने श्रीकृष्ण की स्तुति की तथा अङ्गिरा ऋषि के साथ के अन्य ऋषियों को देखकर, अपने सौन्दर्य से गर्वित हो उन महानुभावों की उपेक्षा करने पर अजगर योनि प्राप्त की थी, सारी कथा कह सुनाई।"

श्रीअम्बिका देवी तथा गोकर्ण महादेवजी यहाँ विराजमान हैं। मथुरा के पश्चिम में स्थित है।

दतिया

मथुरा से लगभग छः मील दूर है। पास ही 'आयोरे' तथा 'गोरवाई' स्थान हैं।

गणेशरा (गन्धेश्वर तीर्थ)

यह स्थान शान्तनु कुण्ड से लगभग एक मील दूरी पर स्थित है। किसी समय यहाँ पुष्पादि (सुगन्धित) अधिक मात्रा में होते थे। श्रीकृष्ण अपनी ग्वाल मण्डली सहित उनका उपभोग करते थे। अतः यह स्थली गन्धेश्वर तीर्थ के नाम से विख्यात हो गई। यहाँ गन्धर्व कुण्ड है।

पास ही पूतना का गाँव खेचरी है।

सतोहा (शान्तनु-कुण्ड)

देखई सतोआ ग्राम कुण्ड सुनिर्मल।
शान्तनु मुनीर एई तपस्यार-स्थल॥

(भक्ति रत्नाकर)

शान्तनु महाराज ने यहाँ पुत्र कामनावश सूर्य भगवान की आराधना की थी तथा अपने अभीष्ट की प्राप्ति की थी। तभी से यह स्थान शान्तनु कुण्ड नाम से विख्यात हो गया।

पुत्र कामना हेतु आज भी अनेक ब्रजवासी यहाँ भाद्र मास में पधारते हैं।

श्रीगिरधरजी तथा बलदेवजी के दर्शन हैं तथा गुसांई श्रीविट्ठलनाथ जी की बैठक है। पास ही गिरधरपुर ग्राम है।

बाटी ग्राम (बहुलावन)

पञ्चमं बहुलं नाम वनानां वनमुत्तमम् ।
तत्र गतो नरो देवि ! अग्निस्थानं स गच्छति ॥

(आ० वा० पु०)

बहुलावन नामक पाँचवाँ वन है, जहाँ स्नान करने वाला अग्निलोक को सहज ही प्राप्त कर लेता है ।

बहुला श्रीहरेः पत्नी तत्र तिष्ठति सर्वदा ।
तस्मिन् पद्मवने राजन् ! बहु पुण्यफलानि च ॥

(स्क० पु०)

श्रीहरि की बहुला नाम की पत्नी सर्वदा यहाँ विराजमान रहती हैं । बहुलावन में कुण्ड में स्थित पद्मवन में स्नान-पान करने वाले व्यक्ति को बहुत पुण्य प्राप्त होता है, क्योंकि भगवान विष्णु लक्ष्मीजी सहित यहाँ निवास करते हैं ।

यहाँ श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी महाराज की बैठक है ।

कहते है कि एकबार इसी स्थान पर बहुला नाम की एक गाय को सिंह ने घेर लिया । उसे वह मारना ही चाहता था कि गाय ने अपने बछड़े को दूध पिलाकर लौट आने का आश्वासन दिया । इस पर विश्वास कर सिंह शान्त खड़ा रहा । थोड़ी देर में गाय जब अपने बछड़े को दूध पिलाकर सचमुच लौट आई तो सिंह गाय के सत्यव्रत से बड़ा प्रभावित हुआ । उसने गाय को छोड़ दिया ।

यहाँ दो वृहद् जलाशय बलराम-कुण्ड तथा मान-सरोवर नाम से विख्यात हैं ।

बहुला-विहारीजी का प्राचीन मन्दिर है । बहुला गऊ तथा सिंह के दर्शन हैं । इसी से यह स्थल 'बहुलावन' नाम से विख्यात है ।

माधुरी कुण्ड

अड़ीग ग्राम से दो मील अग्निकोण में स्थित है, श्रीराधाजी की सखी माधुरी का स्थान है । श्रीकृष्ण की प्रिय लीला स्थली है । श्रीमाधुरीदास जी ने भी कुछ समय यहाँ निवास किया ।

ब्रज भूमि मोहिनी

महावन-गोकुल

(श्रीहरि जहँ शिशु लीला कीन्हीं)

द्वितीय खण्ड

दधि मथननिनादैस्त्यक्तनिद्रः प्रभाते ।
निभृतपदमगारं वल्लवीनां प्रविष्टः ॥
मुख कमलसमीरैराशु निर्वाप्यदीपान् ।
कवलितनवनीतः पातु गोपालबालः ॥

आस-पास की अन्य स्थलियाँ

1. आनन्दी-बन्दी
2. कर्णावल
3. देवनगर
4. रावल ग्राम
5. लोहवन
6. श्रीदाऊजी

ततो भाद्रपदे मासि दशम्यां शुक्ल पक्षे ।
गोकुले वन यात्रा च गोलोक समता फले ॥
वैकुण्ठं द्वितीयं रम्यं जन्मना विष्णुनिर्मितं ।
मथुरा नगरी रम्या केवलोत्पत्ति हेतवे ॥

(वा० पु० ब्रजभक्ति विलास)

भाद्रपद मास की शुक्ला दशमी को गोकुल में आकर वनयात्रा करने से गोलोक के समान फल का लाभ होता है । विष्णु भगवान ने श्रीकृष्ण रूप में अवतरित होकर इसे दूसरा वैकुण्ठ ही बना दिया है । मथुरा नगरी तो केवल जन्म के लिये ही मनोहरा है ।

'गोकुल' तथा 'महावन' पर्यायवाची हैं । वास्तव में पुराणों में 'वृहद्वन' का वर्णन आता है, उसे ही 'महावन' भी कहा गया है । 'गोकुल' शब्द का प्रयोग भी पुराणों तथा शास्त्रों में यत्र-तत्र हुआ है । परन्तु आज का गोकुल महावन के अन्तर्गत एक अलग बस्ती माना गया है, जहाँ श्री यमुना जी प्रवहमान हैं । 'पुष्टि सम्प्रदाय' के आचार्य महानुभावों तथा उनकी अनुभूतियों का प्रकट स्थल 'गोकुल' नाम से विख्यात हो गया है । मूलतः दोनों पास-पास हैं तथा एक ही हैं ।

'महावन' के सौभाग्य का वर्णन कैसे किया जा सकता है ?

जहाँ श्रीकृष्ण ने अवतार लेते ही इस नगरी को अपनी निवास स्थली बनाया । यहाँ की शोभा, एकान्तिक वन्यस्थली तथा पशुओं के लिए उपयोगी स्थल देखकर श्री नन्दराय जी ने अपनी निवास स्थली बनाया था । प्रकट होते ही स्थली का आकर्षण श्रीकृष्ण को 'महावन' (गोकुल) ले आया । यहाँ की स्थली वही श्रीकृष्ण की प्रकट लीला से सम्बन्धित स्थली है, यहाँ का वातावरण उन्हीं श्रीकृष्ण लीलाओं का दिग्दर्शन करा, रस में सराबोर कर रहा है ।

महर्षि वेदव्यासजी महाराज भी यहाँ की स्थलियों का प्रत्यक्ष लीलास्वादन करते हुए कहते हैं-

कालेन ब्रजताल्पेन गोकुले रामकेशवौ ।
जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिङ्गमाणौ विजहृतुः ॥

(श्रीमद्भागवत् 10/8/21)

कुछ ही दिनों में राम और श्याम घुटनों और हाथों के बल बकैया चल-चलकर गोकुल में खेलने लगे ।

श्रीकृष्ण घुटनों के बल चल रहे हैं । कभी तीव्र गति से चलने का प्रयास

करते हैं और कभी वहीं बैठ खड़े होने की चेष्टा करते हैं। दूर जाती 'बक पंक्ति' की ओर संकेत कर उसे पास बुलाना चाहते हैं। कभी मयूर के समीप जा उस पर कर धर उससे चिपटने की चेष्टा करते हैं। उनके संस्पर्श से धन्यातिधन्य मयूर उनके सान्निध्य में बे भान सा हो जाता है। कभी मैया से माखन-मिश्री के लिए आग्रह कर मचल जाते हैं और अपने हाथ से माखन खाने की चेष्टा में अपने मुख पर माखन लिपटा लेते हैं। ब्रजवासी गण देख-देखकर इस शोभा से पुलकित तथा रोमाञ्चित होते रहते हैं। दही तथा माखन से सने अपने लाला कन्हैया को उठा मैया यशोदा अपने हृदय से लगा लेती है। यही छवि देख भक्त प्रवर सूरदासजी ने गाया-

'घुटुरुन चलत रेणु तन मण्डित मुख दधि लेप किये।'

इतना ही नहीं, माखन अपने कर में ले सखाओं को खिला रहे हैं, कुछ भूमि पर यत्र-तत्र बिखरा पड़ा है।

कन्हैया अद्भुत श्रृंगार धारण किये हाथ में बेझर की रोटी पर माखन धरे कभी उसी में से एक कौर अपने मुखारविन्द से काट-खा लेते हैं- डगमग चाल से नन्द भवन के प्रांगण में विचर रहे हैं। उनकी सचकित दृष्टि में केवल बालपन ही नहीं प्रत्युत गाम्भीर्य की झलक स्पष्ट दीख रही है- वे किसी को खोज रहे हैं। पीरी कछौटी धारण किये कभी तीव्र और कभी मन्द गति से घूम रहे हैं। इधर कागभुशुण्डि जी त्रेता के रामलला के, जो द्वापर में नन्द के लाला बने धूलि धूसरित हुए अपनी पग पैंजनियों से प्रांगण को संगीतमय बनाते घूम रहे हैं, दर्शन कर आनन्द मग्न हो अटारी पर आकर बैठ गए। बाल लीला दर्शन कर मग्न हो रहे हैं। मन में भाव जगा राम-रूप में मुझे कृतकृत्य कर दिया था प्रभु ने परन्तु आज प्रवञ्चना सी क्यों कर रहे हैं। अपने भक्त के भाव को भांप गए लाला कन्हैया- संकेत कर कहा 'आ जाओ' हाथ से झपट कर ले जाओ। कागभुशुण्डि जी आए और हाथ से छीनकर ले गए उस उच्छिष्ट रोटी के टूक को। इधर रसखानजी की दृष्टि उठी और वे देखकर मग्न हो गए। आकुल-व्याकुल हो उठा हृदय। इस सौभाग्यमद से पुलक उठे-उसी छवि का अंकन करते उनकी वाणी निःसृत हुई-

धूरि भरे अति शोभित श्याम जु, तैसी बनी सिर सुन्दर चोटी।
खेलत खात फिरैं अँगना, पग पैंजनि बाजत पीरी कछोटी॥
या छवि को रसखानि विलोकत, वारत काम कला निधिकोटी।
काग कौ भाग कहा बरनौं, हरि हाथ सौं लै गयो माखन रोटी॥

लो! अब कन्हैया तनिक बड़े हो गये। दूर से चन्द्रमा को देख, बोले-"मैया

मुझे चन्दा ला दे।" मैया बहुत समझा कर जब हार गई तो बोलीं- "बेटा ! तुझे चन्दा-सी बहू ला दूंगी।" आप बोले- "मैया ! तु अभी चल, चन्दा सी बहू ला दे।"

"मैं तो अबहिं ब्याहन जैहौं।"

कन्हैया तनिक और बड़े हो गये। आस पड़ौस के घरों में उनका प्रवेश हो गया, आस-पड़ौस के घरों में दूध-दही की चोरी करने लगे, ग्वालिनी मैया के पास उलाहना ले चली आई, आप भागे आये, मैया से लिपट कर बोले- 'तू बता मैया ! "मैं बालक बहियन को छोटो छींको केहि विधि पायो। ग्वाल बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो।" एक तो चोरी और दूसरे 'सीना जोरी।' भोले कन्हैया की बातों में आ गई मैया और वह ग्वालिनी भी किसी दिव्य सुख में छकी सी लौट गई।

एक ग्वालिनी अभी उलाहना देकर लौटी ही थी कि दूसरी आ धमकी। लाला कन्हैया घबरा गए। पहली से तो जैसे तैसे पिण्ड छूट गया परन्तु अबकी बार पकड़ में आ गए तो मैया की डाँट पड़ेगी ही। ग्वालिनी बोली, "मैया वरजो अपने लाला को" लाला कन्हैया का शंकित हृदय और भीत सा हो गया। वे देवी देवताओं को मनाने लगे। मैया अनखा के बोली, "क्या है री गोपी ?" लाला प्रसन्न हो गए। अबके तो मैया भी लाला की तरफदारी करने लगी। मैया ही सोच विचार कर कुछ अटपटी सी बोली, "अरी सखियों ! जिनका जितना माखन लाला कन्हैया ने खायौ होय, तराजू ले आओ, और तौल-तौल के ले जाओ। मैं सबरौ माखन यहाँ आँगन में धर देती हूँ।" पास ही खड़े सूरदासजी ने यह छवि देखी तथा सुनी। उनका हृदय प्रेमातिरेक से छलक उठा।

गारी मत दीजौ, मो गरीबनी को जायौ है।
जाकौ जैतो जान लियौ, सौ तो मौते आन कहौ॥
मैंने काहु भांति यह नहिं तरसायौ है।
दधि की मथानी सब अंगना में लाय धरी॥
तौल तौल लीजो भटु जेतो जाकौ खायौ है।
सूर श्याम प्रभु प्यारे नैंनन सौं न होय न्यारे॥
कानूड़ा सो पुत्र मैंने भाग्यन सौं पायौ है॥

वाह रे ! गोकुल वासियों, तुम्हारे सौभागय से ईर्ष्या है, श्यामसुन्दर की बाल लीलाओं के सुख में नित्य मग्न हो, मस्त हो तुम।

इन सब बाल लीला स्मृतियों से धन्य है यह महावन ! कन्हैया मिट्टी खा रहे

हैं, मैया ने बरबस रोका। कन्हैया बोले- 'मैया ले देख मेरे मुख में मिट्टी है ही नहीं।' मैया ने देखा वह चकित-विस्मित रह गई। ओह ! समस्त ब्रह्माण्ड ही कन्हैया के मुख में दिखाई पड़े। वही स्थली 'ब्रह्माण्ड घाट' नाम से विख्यात हो गई।

सखाओं सहित 'बाल लीला' की स्मृतियाँ गोकुल से जुड़ी हैं, यहाँ की नीरव स्थलियाँ ओह ! इन सब की कौन कहे और क्या कहे, रसखान, ताज, अलीखान आदि मुसलमान भक्तों ने इसी स्थली पर अपनी जीवन-निधि को, आशा-अभिलाषा के साकार प्रेमरूप श्याम सुन्दर को विभिन्न लीलायें करते देखा है।

यही नहीं, श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी, श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु जी, श्रीश्रीविट्ठलनाथजी, श्रीसनातनजी तथा अनेकों आचार्यों, भक्तों की वन्दनीय यह स्थली आज भी सभी को आकर्षित कर रही है।

श्रीनागरीदास जी महाराज ने फाग में श्रीगोकुल की धूम का वर्णन करते हुए, बहुत ही सुन्दर कहा हैं-

लाय रहे इक घूँघट की दिस, लोभ की आँखिन नंद दुलारो।
जात छली मुख सों मुख छ्वाय, उड़ाय गुलाल कैं कैं अंधियारो॥
हारन सौं उरभाय दै हार री, होत है 'नागर' न्यारो अबारो।
औरहु गांव सखी बहुतैं, पर गोकुल गांव को पैंडो ही न्यारो॥

है न ! ब्रज की अलबेली धूम ! कन्हैया की रसमयी होरी। 'गोकुल गाँव का मार्ग ही न्यारा है।'

श्रीकृष्ण की यह लीला स्थलियाँ उनके प्रकट-काल की लीलाओं से सम्बद्ध हैं। उनके ग्वाल-बाल, सखा तथा यह ब्रजवासीगण उन्हीं के निजजन हैं, उन्हीं के परिकर हैं और यह ब्रज बालाएँ, उनकी अपनी अनन्या प्रियाएँ हैं जो हमें श्यामसुन्दर की सरस लीलाओं का आस्वादन कराने को तत्पर रहती हैं।

"भक्त रसखान" ने तो गोकुल के ग्वारिया सखाओं के साथ ही पुनः जन्म लेकर श्रीकृष्ण लीला का आस्वादन करने की मांग की है-

'मानुष हौं तो वही रसखान, बसौं नित गोकुल गांव के ग्वारन॥'

अपनी प्रथम यात्रा के समय जब श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ब्रज में पधारे तो श्रीयमुनाजी को देख अभी विचार कर ही रहे थे कि एक परम सुन्दरी, दिव्य तथा रूपवती स्त्री के दर्शन हुए और उसने इंगित कर कहा- "यही गोविन्द घाट है तथा गोकुल है, आप यहीं विराजें।" ये श्रीयमुना थीं।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी भी महावन में पधारकर 'श्रीकृष्ण जन्मोत्सव स्थान तथा श्रीमदनमोहन जी के दर्शन करके प्रेम में विह्वल होकर नृत्य करने

लगे। उनके नेत्रों से प्रेमाश्रु प्रवाहित होने लगे। 'भक्ति रत्नाकर' ग्रन्थकार के शब्दों में हम उस प्रसङ्ग को नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

अहे श्रीनिवास ! कृष्ण चैतन्य एथाय।
जन्मोत्सव स्थान देखि उल्लास हियाय॥
भावावेशे प्रभु नृत्य, गीते मग्न हैला।
कृपा करि सर्व चित्त आकर्षण कैला॥

महावन (गोकुल) आज भी अपने दिव्य वातावरण को लुटाने को तत्पर है। उसके लिए चाहिऐ दिव्य चक्षु। वे श्रीहरि ही कृपा वश प्राप्त करा दें तो वही सब इन चर्म चक्षुओं के गोचर हो जावे।

गुसाँई श्रीविट्ठलनाथजी महाराज ने श्रीगोकुल को सर्वस्व तथा सम्पूर्ण रूप से सेवनीय माना है। वे तो गोकुल में जीवन-सर्वस्व को समाविष्ट ही मानते हैं-

श्रीमद् गोकुल सर्वस्वं, श्रीमद् गोकुल मण्डनम्।
श्रीमद् गोकुल वक्तारं, श्रीमद् गोकुल जीवनम्॥ [1]

'गोकुल' अथवा 'महावन' के प्रति सभी आचार्यों, महानुभावों तथा सन्त-महात्माओं ने एक मत होकर श्रेष्ठता का भाव प्रदर्शित किया है। आइये यहाँ की मुख्य तीर्थ-स्थलियों में विचरण कर वहाँ के विशेष तथा दिव्य वातावरण का स्पर्श-आस्वादन करें।

स्थलियाँ

वृहद्वन की स्थलियों के सम्बन्ध में ब्रह्माण्ड पुराण में निम्न प्रकार के प्रकाश डाला गया है-

एकविंशति तीर्थानां युक्तं भूरिगुणान्वितम्।
यमलार्जुन पुण्यात्मानम्, नंदकूपं तथैव च॥
चिन्ताहरणं ब्रह्माण्ड कुण्डं सारस्वतं तथा।
सरस्वतीशिलातत्र, विष्णुकुण्डं समन्वितम्॥
कर्णकूपं, कृष्णकुण्डं गोपकूपं तथैव च।
रमणं रमणस्थानं नारदस्थानं एव च॥
पूतनापातनस्थानं तृणावर्ताख्यपातनम्।
नंदहर्म्यं नंदगेहं घाटं रमणसंज्ञकम्॥
मथुरानाथोद्भवं क्षेत्रं पुण्यं पापप्रणाशनम्।
जन्म-स्थानं तु शेषस्य जन्म योगमायया॥

(ब्रह्माण्ड पुराण)

1. गोकुल के सर्वस्व, उसका मण्डन करने वाले, उसका माहात्म्य वर्णन करने वाले तथा गोकुल के जीवन (श्री कृष्ण) को नमस्कार है।

श्रीरोहिणी मन्दिर तथा श्रीबलदेव जन्म-स्थान

अथ ब्रजे पंच दिनेषु भाद्रे स्वातौ च षष्ठ्यं च सिते बुधे च।
उच्चैर्ग्रहैः पंचभिरावृते च लग्नेतुलाख्ये दिनमध्यदेशे ॥
सुरेषु वर्षत्सु सुपुष्पवर्ष घनेषु मुंचत्सु च वारिविन्दून् ।
बभूव देवो वसुदेवपत्न्यां विभास यन्नंदगृहं स्वभासा ॥

(श्रीगर्ग संहिता 1/10/27-28)

इसके अनन्तर भाद्र मास के पाँच दिन बीत चुके शुक्ल पक्ष की छठ, बुधवार के दिन स्वाति नक्षत्र में पाँच उच्च ग्रहों का योग हुआ। तुला लग्न में मध्यान्ह समय में देवता पुष्पों की वर्षा करने लगे। मेघ जल की बूँदे बरसाने लगे, ऐसे समय में बलदेवजी ने वसुदेवजी की पत्नी रोहिणीजी के गर्भ से जन्म लिया तथा श्रीनन्दजी के घर को अपनी कान्ति से प्रकाशित करने लगे।

देवकीजी का रथ सम्हाले कंस जिस समय उन्हें छोड़ने जा रहा था, आकाशवाणी से अपने वध करने वाले का जन्म सम्भावित सुन उसने वसुदेवजी तथा देवकीजी को अपने कारागार में बन्द कर दिया था। एक-एक करके उसने देवकीजी की छः सन्तानों का वध कर दिया। सातवें गर्भ की प्रतीक्षाा में कंस की नींद उड़ गई। सातवें गर्भ में भगवान के अंश स्वरूप शेषजी पधारे।

भगवान ने योगमाया से कहा-

देवक्या जठरे गर्भ शेषाख्यं धाम मामकम्।
तत् संनिकृष्य रोहिण्या उदरे संनिवेशय ॥

(श्रीमद्भागवत् 10/2/8)

इस समय मेरा यह अंश जिसे शेष कहते हैं देवकी के उदर में स्थित है। उसे वहाँ से हटाकर श्रीरोहिणीजी के उदर में स्थापित कर दो।

ऐसा ही हुआ। श्रीरोहिणीजी के उदर से श्रीसंकर्षण भगवान प्रकट हुए। देवकीजी के उदर से कर्षित किये जाने के कारण उन्हें संकर्षण, लोक रंजन करने के कारण राम तथा बलवानों में श्रेष्ठ होने के कारण बलभद्र कहते हैं। संकर्षण भगवान के प्रकट होते ही देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की। सर्वत्र आनन्द की लहर दौड़ गई।

'संकर्षण भगवान' की यह प्राकट्य स्थली 'श्रीरोहिणी मन्दिर' के नाम से विख्यात हो गई।

श्रीनन्दरायजी का मन्दिर

नन्दधाम्ने नमस्तुभ्यं त्रैलोक्यपददायिने।
कृष्ण-वात्सल्य-पुत्राय परमोत्सवहेतवे ॥

(वा० पु०)

हे श्रीनन्दरायजी के धाम ! आपको नमस्कार है। आप त्रिलोकी के पद को भी अनायास ही देने वाले हैं। आप श्रीकृष्ण के वात्सल्य सुख और परम उत्सव के लिये ही प्रकट हुए हैं।

श्रीनन्दरायजी का भवन है। ८४ खम्भे अभी भी दर्शनीय हैं।

श्रीयशोदा-शयन-स्थल

यशोदा शयनायैव समस्त सुखदायिने।
पुत्रसौभाग्यलाभाय नमस्ते शुभदो भव॥

(मत्स्य पुराण)

हे समस्त सुखदाता यशोदा-शयनस्थल ! आप समस्त सुख प्रदान करने वाले हैं। पुत्र सौभाग्य लाभ हेतु प्रकट हैं अतः आपको नमस्कार है।

शत-शत गोपिकाओं सहित श्रीयशोदाजी इस स्थली पर शयन करती थीं।

कोले घाट

कोऽपि गृह्वातु सुतं मे वसुदेवोऽत्राह सरित्चलन्।
अनांसात निमग्नस्तेनासौ कोपिलाद्गोपः॥

(श्रीवल्लभदिग्विजय)

अर्धरात्रि के समय वसुदेवजी बालक कृष्ण को लेकर गोकुल जाने के लिये जल से प्रपूरित श्रीयमुनाजी में प्रविष्ट हुए। श्रीयमुनाजी श्रीकृष्णासक्तिनी हैं। भगवान श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श की लालसावश अपनी तरङ्ग रूपी बाहुओं द्वारा उछलने लगीं। श्रीवसुदेवजी जल के वेग को देख चिंतित हो गये। असहाय से हो पुकारने लगे 'कोई ले' 'कोई ले' मेरे लाला को 'कोई ले'। वसुदेवजी का श्रम देख श्रीकृष्ण ने अपना चरण तनिक नीचे सरका श्रीयमुनाजी को स्पर्श करा दिया। अपने प्रियतम श्यामसुन्दर के चरण स्पर्श से यमुनाजी प्रसन्न हो शान्त हो गईं। वसुदेवजी श्रीकृष्ण को लेकर गोकुल में प्रविष्ट हो गये।

वही स्थली अपनी लीला माधुरी की स्मृति को दोहराती आज भी 'कोले-घाट' अथवा 'कोले ग्राम' के नाम से प्रसिद्ध है।

श्रीकृष्ण जन्मोत्सव-स्थल

नन्दस्त्वात्मज उत्पन्ने जाताह्लादो महामनाः।
आहूय विप्रान् वेदज्ञान् स्नातः शुचिरलंकृतः॥ [1]

(श्रीमद्भागवत 10/5/1)

1. श्रीनन्दबाबा के सौभाग्य का ठिकाना न रहा। पुत्र का जन्म हुआ है यह जान वे अत्यन्त आनन्दित हुए, स्नानादि कृत्य कर उन्होंने ब्राह्मणों को बुलाकर अन्न दान, गोदान तथा स्वर्ण दान देकर सन्तुष्ट कर दिया।

श्रीनन्दरायजी के घर लाला का जन्म हुआ है, यह बात धीरे-धीरे समस्त गोकुल में फैल गई। गोपगण, उनकी स्त्रियाँ, बालकों के समूह आनंद में भर थिरकने लगे। गली व चौक सजाये गये, उनमें तोरण तथा बन्दनवार बाँध दिये गये। समस्त ब्राह्मण, सूत, मागध तथा अन्य विद्वत्समाज हर्ष में भरे श्रीनन्दबाबा के यहाँ चले आये।

बधाईयाँ तथा गीत गाये जाने लगे। चारों ओर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई।

ब्रज गोपिकाओं ने सुना यह मधुर संवाद। वे प्रसन्नता में भर गईं, सम्पूर्ण श्रृङ्गार धारण कर, भेंट की सामग्रियाँ सजाये श्रीनन्दबाबा के यहाँ बधाई तथा मङ्गल-गीत गाने के लिये चली आईं। ओह ! ब्रज में यह रगमगी भीर, मानो ! उत्साह प्रत्यक्ष रूप में गलियों तथा वीथियों में प्रवाहमान हो गया हो।

गोकुल में लाला का प्राकट्य हुआ। सभी में प्रसन्नता की लहर भर गई। रंग विरंगे वस्त्राभरण पहने गोपिकाओं की भीर उमड़ पड़ी। समस्त शुभ तथा मंगल ब्रज में आ, पुञ्जीभूत हो गये। गोपिकायें लाला के लिए शुभकामनायें तथा आशीर्वाद देने लगीं।

कन्हैया को अंक में ले आनन्द मग्न हो रही हैं। इधर ब्रज वनिताओं के मधुर बैन सुन-सुन कन्हैया बीच-बीच में किञ्चित् मुस्करा देते हैं। कभी दृष्टि उठाकर किसी की ओर निहार लेते हैं और कभी आंचर से अपना मुँह ढाँप सभी को आनन्द में बोर देते हैं। रस-समुद्र में लहरें उठ रही हैं। कन्हैया अपने छोटे-छोटे श्याम कर उठा कर बुला रहे हैं। वह देखो ! देखो तो ! आपकी गोद में आने को मचल रहे हैं। भक्तिमती ऊषा बहनजी की भाव लहरों में तैरते हम और आप भी चलें नन्द भवन प्रांगण में उसी रगमगी भीर मध्य-

उमगि चली ब्रजनारि नन्द घर।
रंग-बिरंगी पहर चूनरी मंगल द्रव्य लिए निज-निज कर॥
सब शुभ आनि जुरे या ब्रज में जब ते प्रगट भये ब्रजसुन्दर।
अति प्रमुदित सब देत बधाई गावत गीत रसाल मधुर स्वर॥
देत असीस अंक भरि भेंटत लेत बलैया फेरत आंचर।
चिरजीवो यशुदा को बारो ब्रज जन जीवन नंद कुंवर वर॥
सुनि सुनि मधुर बैन वनितन के मृदु मुस्कावत मोहन मनहर।
चितवन रिझवत हँसत हरत मन शोभा सींव रूप रस निर्झर॥

श्री परमानन्द दास जी ने यह जन्म महोत्सव लीला अपने दिव्य चक्षुओं से देखी और हर्षोल्लास में भर गा उठे-

प्रकट भये हरि श्रीगोकुल में ।
नाचत गोपी गोप परस्पर आनन्द प्रेम भरे है मन में ॥
गृह गृह ते गोपी सब निकरीं कंचन थार धरें हाथन में।
परमानन्द दास को ठाकुर प्रकटे नन्द यसोदा गृह में ॥

वही स्थली अपनी पुनीत गाथा हम से कहने को अकुला रही है तथा 'श्रीकृष्ण जन्मोत्सव-स्थल' नाम से विख्यात है ।

पूतना उद्धार स्थली

पूतना-लोक बालघ्नी - राक्षसी रुधिराशना ।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्वाऽऽप सद्गतिम् ॥ [1]

(श्रीमद्भागवत 10/6/35)

श्रीकृष्ण मंगलमय हैं । श्रीकृष्ण-प्राकट्य का मूल हेतु जहाँ एक ओर निजजनों को प्रेमास्वादन कराना रहा है, वहीं दूसरी ओर अपने जनों के हित के लिए ही उन्होंने अनेक राक्षसों का वध भी किया । श्रीकृष्ण का प्रत्येक विधान मंगलमय है । वास्तव में जिन राक्षसों का वध श्रीकृष्ण के हाथ से हुआ वे उनका संस्पर्श पाकर मुक्त हो गये । कहना होगा कि राक्षसों का वध वरदान रूप ही सिद्ध हुआ है ।

पूतना नाम की एक बड़ी क्रूर राक्षसी थी । वह नगरों, ग्रामों तथा अहीरों की बस्तियों में जाकर छोटे-छोटे बच्चों की, निर्दयता पूर्वक हत्या कर देती थी । इसी प्रकार एक बार वह गोकुल में आई । माया से उसने एक सुन्दर युवती का रूप धारण कर लिया । वह एक रूपवती स्त्री के अतिरिक्त और कुछ न लगती थी । श्रीयशोदाजी तथा रोहिणीजी के देखते-देखते उसने नन्द भवन में प्रवेश किया । श्रीकृष्ण को अपनी गोद में उठा वह वात्सल्य का सा अभिनय करने लगी । उसने अपने स्तनों पर कालकूट विष लगा रखा था । श्रीकृष्ण को मारने हेतु ही कंस ने उसे भेजा था ।

पूतना को देख श्रीकृष्ण समझ गये, वे अनजान से बने रहे । यह जानकर भी कि यह राक्षसी क्या हेतु लेकर आई है, श्रीकृष्ण ने दुग्ध (स्तन) पान करना शुरु कर दिया । दुग्ध पान करते-करते क्रोध से उसके प्राणों को भी खींचने लगे । उस असह्य कष्ट से वह चिल्लाने लगी । उसकी आँखें बाहर निकल आईं और 'सा मुञ्च मुञ्चालमिति प्रभाषिणी'- 'हे कृष्ण ! मुझे छोड़-छोड़'-कहती

1. पूतना एक राक्षसी थी । लोगों के बच्चों को मार डालना और उनका खून पी जाना यही उसका काम था । भगवान को भी उसने मार डालने की इच्छा से ही स्तन पिलाया था । फिर भी उसे वह परम गति मिली जो सत्पुरुषों को मिलती है ।

हुई बाहर आ अपना वास्तविक स्वरूप धारण कर गिर पड़ी। गिरते-गिरते भी उसने कई कोस स्थली के वृक्षों को गिरा दिया।

श्रीयशोदाजी तथा अन्य गोपिकाओं ने बालक श्रीकृष्ण को उसके वक्ष पर खेलते हुए देखा। मैया ने भागकर अपने लाला को गोद में उठा लिया। बार-बार प्यार से उसका मुख चूमने लगीं तथा उस पर दुलार उंड़ेलने लगीं। भाँति-भाँति से उपचार करती लाला कन्हैया की सुरक्षा की मङ्गल-कामना करने लगीं।

इधर जब मथुरा से नन्दरायजी लौटे तो इस घटना को देख वसुदेवजी की भविष्यवाणी की मन ही मन प्रशंसा करने लगे तथा राक्षसी के निर्दयता पूर्ण व्यवहार से सुरक्षित कन्हैया को देख अत्यन्त प्रसन्न हो गये।

ग्वाल बालकों ने उस विशालकाय पूतना की मृतक देह को काट-काट कर दूर ले जाकर जलाया। जब तक उसका शरीर जलता रहा उसमें से सभी को दिव्य सुगन्ध आती रही। भगवान श्रीकृष्ण का संस्पर्श पाते ही उसके समस्त पाप क्षय हो गये। वह दिव्य देह को प्राप्त हो गई।

वही स्थली आज भी पूतना-मोक्ष स्थली नाम से प्रसिद्ध है।

शकट भञ्जन स्थल

अधः शयानस्य शिशोरनोऽल्पक प्रवालमृद्वङ्घ्रिहतं व्यवर्तत।
विध्वस्तनानारसकुप्यभाजनं, व्यत्यस्तचक्राक्षविभिन्नकूबरम्॥ [1]

(श्रीमद्भागवत 10/7/7)

बालक श्रीकृष्ण कुछ बड़े हो गये। अब स्वयं करवट बदल लेते हैं। मैया को अपने हाथ उठा, पास आने का मूक आग्रह भी कर लेते हैं। उत्सव भूमि यह ब्रज, यहाँ के निवासी कन्हैया को लेकर उत्सव का कोई न कोई मिस ढूँढ़ ही लेते हैं। अब लाला कन्हैया ने करवट ली तो मैया ने अड़ौस-पड़ौस में संदेशा भेजा। गीत गाये जाने लगे। दान-पुण्यादि की सुमंगल वेला में सभी सूत-मागध जन नृत्य आदि की तैयारी कर चले आये। ब्राह्मणों ने स्वस्ति वाचन कर आशीर्वाद दिये तथा मंगल कामनाएँ कीं।

सभी गोपिकाएँ घर में एकत्रित हो गईं। उसी दिन जन्म नक्षत्र भी था। नन्दरानी ने अपने लाला का अभिषेक किया, ब्राह्मणों को दान दिया। बालक को स्नानादि कराया और यह देखकर कि लाला को नींद आ रही है, मैया ने कन्हैया को एक शकट के नीचे सुला दिया तथा स्वयं अभ्यागतों की सेवा में

---

1. बालक श्रीकृष्ण एक छकड़े के नीचे सोये हुए थे। उनके चरण अभी लाल कोंपलों के समान बड़े ही कोमल तथा नन्हें थे। परन्तु नन्हा सा चरण लगाते ही विशाल छकड़ा उलट गया। उस शकट के ऊपर रसों से भरी अनेक मटकियाँ तथा अन्य बर्तन रखे हुए थे। वे सबके सब फूट गये, छकड़े के पहिए तथा धुरे अलग-अलग हो गये तथा जुआ भी फट गया।

व्यस्त हो गई। थोड़ी देर में ही बालक श्रीकृष्ण उठ गये। दुग्धपान के लिए मचलने लगे, हाथ-पाँव हिलाने लगे, रोने लगे। मैया अपनी व्यस्तता में यह सब न जान पाईं। इधर जब कन्हैया को मैया ने शकट के नीचे शयन करा दिया, तभी एक असुर[1] इस छकड़े में आकर प्रवेश कर गया। वह कंस द्वारा भेजा हुआ था। कन्हैया इस बात को जान ही रहे थे।

बहुत देर तक भी जब मैया ने लाला की बात न सुनी तो उन्होंने अपना चरण जोर से उछाला, वह शकट में लगा। शकट टूट गया, उसके ऊपर रखी सारी सामग्री बिखर गई। रसों से भरी अनेक मटकियाँ फूट गईं। उसके पहिये अस्त-व्यस्त हो गये तथा जूआ भी फट गया।

उत्सव में आये सभी ब्रजवासी इस घटना को देख आश्चर्य-चकित हो गए। ब्राह्मणों ने कन्हैया के लिए अनेक मङ्गल कामनाऐं कीं, क्योंकि सदैव सत्य बोलने वाले ब्राह्मणों की वाणी मिथ्या नहीं होती, अतः कन्हैया की रक्षा हुई।

यह स्थली गोकुल में आज भी कन्हैया के पराक्रम की गाथा दोहरा रही है तथा 'शकट भञ्जन' स्थल नाम से विख्यात है।

तृणावर्त उद्धार

दैत्यो नाम्ना तृणावर्तः कंसभृत्यः प्रणोदितः।[2]
चक्रवातस्वरूपेण जहारासीनमर्भकम् ॥

(श्रीमद्भागवत 10/7/20)

एक दिन की बात है श्रीयशोदाजी अपने प्यारे लाल को गोद में ले दुग्धपान करा रही थीं। सहसा ही लाला का भार वहन करने में वे असमर्थ हो गईं तथा मैया ने लाला को भूमि पर बिठा दिया।

शकटासुर का वध हो ही चुका था। कंस ने अपने सेवक तृणावर्त को ब्रज में भेजा। बवंडर रूप में उसने ब्रज में प्रवेश किया। आँधी से उसने चारों ओर से ब्रज को ढक दिया। हाथ को हाथ न सूझता था। यशोदाजी ने अपने पुत्र श्रीकृष्ण को जहाँ बिठाया था वहाँ जाकर देखा तो श्रीकृष्ण वहाँ नहीं थे। उनके नीचे से जैसे धरती ही खिसक गई। वे घबरा गईं तथा कन्हैया की खोज

1. हिरण्याक्ष का पुत्र था उत्कच। एक बार उसने लोमश ऋषि के आश्रम के वृक्षों को कुचल डाला था। ऋषि ने क्रोध में भर शाप दे दिया, अरे दुष्ट ! तू देह रहित हो जा। उसी समय साँप के कैंचुल के समान उसका शरीर गिरने लगा। वह ऋषि के चरणों में गिर पड़ा तथा क्षमा याचना करने लगा। लोमश ऋषि ने प्रसन्न होकर कहा, "वैवस्वतमन्वन्तर में श्रीकृष्ण चरण स्पर्श से मुक्त हो जायेगा।" वही असुर छकड़े में आकर बैठ गया था तथा भगवान श्रीकृष्ण के चरण स्पर्श से मुक्त हो गया।

2. तृणावर्त नामक एक दैत्य था। वह कंस का निजी सेवक था। कंस की ही प्रेरणा से बवन्डर रूप में वह गोकुल में आया और बैठे हुए बालक श्रीकृष्ण को उड़ा कर आकाश में ले गया।

में अत्यन्त व्याकुल हो गईं। बवंडर के शान्त होने पर यशोदाजी के रोने की ध्वनि सुनकर और भी गोपिकाऐं वहाँ आ गईं। श्यामसुन्दर को वहाँ न देख वे भी व्याकुल हो गईं। उन्हें अत्यन्त कष्ट होने लगा।

इधर जब तृणावर्त भगवान को आकाश में उड़ा कर ले गया, भगवान ने अपना भार बढ़ाया तथा उसका कण्ठ कसकर पकड़ लिया। वह असुर निश्चेष्ट हो गया और ब्रज में धड़ाम से गिर पड़ा । उसके प्राण-पखेरु उड़ गये। सभी स्त्रियों ने वहाँ जाकर देखा तो बालक श्रीकृष्ण उसकी देह के ऊपर स्वाभाविक रूप में खेल रहे थे।

श्रीकृष्ण को सकुशल पाकर श्रीयशोदाजी, गोपिकाऐं तथा श्रीनन्दराय जी प्रसन्नता में भर गये और अपने सौभाग्य पर गर्वित हुए।

आज भी श्रीकृष्ण लीला से सम्बन्धित यह स्थली श्रीृकष्ण की बाल-लीलाओं की स्मृति करा रही है तथा 'तृणावर्त-उद्धार-स्थल' नाम से विख्यात है। *

गोशाला नामकरण-स्थल

एवं सम्प्रार्थितो विप्रः स्वचिकीर्षितमेव तत्।
चकार नामकरणं गूढ़ो रहसि बालयोः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/8/11)

श्रीगर्गाचार्यजी बड़े विद्वान् थे। श्रीनन्दरायजी के पुरोहित थे। एक दिन वे गोकुल में पधारे। श्रीनन्दरायजी ने आवभगत व सत्कार किया तथा उनसे दैन्यवश बोले, आचार्यपाद ! हमारे कल्याण के सिवाय आप लोगों के आगमन का हेतु और क्या हो सकता है ?

श्रीगर्गाचार्यजी भूत और भविष्यको जानने वाले हैं। श्रीनन्दरायजी ने सहज ही उनका आगमन देख प्रार्थना की कि आचार्य प्रभु ! आप मेरे दोनों बालकों का नामकरण संस्कार कर मुझे अनुग्रहीत करें।

श्रीगर्गाचार्यजी महाराज सर्वज्ञ थे। उन्होंने कहा, "नन्दरायजी ! मैं यह कार्य कराऊँ तो मेरा अहो भाग्य होगा, परन्तु मेरे लिये सब जानते ही हैं कि मैं यदुवंशियों का पुरोहित हूँ। योगमाया ने कंस को पहले ही शंकित कर दिया है। कदाचित् कंस को पता चल गया तो वह लाला को वसुदेवजी का पुत्र समझ लेगा, जो सर्वथा उचित न रहेगा।"

---

*नोटः पाण्डु देश में सहस्राक्ष नाम के राजा थे। एक बार वे नर्मदातट पर अपनी रानियों के साथ विहार कर रहे थे। उधर से दुर्वासा ऋषि आ निकले। उन्होंने अपने कर्तव्य कर्म का विस्मरण कर ऋषि को प्रणाम भी नहीं किया। ऋषि ने शाप दे दिया, "तू राक्षस हो जा।" जब वे ऋषि के चरणों में गिर कर गिड़गिड़ाए तो दुर्वासा ऋषि ने कहा, -भगवान श्रीकृष्ण के संस्पर्श से तुम मुक्त हो सकोगे। वही राजा, तृणावर्त के रूप में श्रीकृष्ण के द्वारा मुक्त हुए।

श्रीनन्दरायजी ने आग्रह पूर्वक कहा, "आप इस गौशाला में एकान्त में यह सब कृत्य करवा देवें। मैं इस बात की जानकारी किसी को न होने दूँगा।"

श्रीगर्गाचार्यजी महाराज तो पहले से 'नामकरण' करना चाहते ही थे। सम्पूर्ण तैयारी कर ली गई। कुछ स्वजन-सम्बन्धी भी एकत्रित हो गये। श्रीगर्गाचार्य जी बड़े लाला की ओर इंगित करते हुए बोले, "यह रोहिणीजी का पुत्र है। इसका नाम 'रोहिणेय' है। यह अपने सगे सम्बन्धियों मित्रों को अपने गुणों से आनन्दित करेगा, इसलिये लोग इसे 'राम' भी कहेंगे। परम बलशाली होने के कारण जगत में यह 'बल' भी कहलायेगा। लोगों में भेद-मिटाकर मैत्री करवायेगा अतः इसका नाम 'सङ्कर्षण' भी होगा।

यह छोटा दूसरा सांवला बालक प्रत्येक युग में अवतार लेता है। पिछले युग में क्रमशः श्वेत, रक्त तथा पीत, ये विभिन्न तीन रंग स्वीकार कर चुका है अब यह 'कृष्णवर्ण' हुआ है। अतः इसे लोग 'कृष्ण' नाम से जानेंगे। यह तुम्हारा पुत्र पहले वसुदेवजी के घर भी पैदा हुआ था, इस रहस्य को जानने वाले इसे 'वासुदेव' कहेंगे। तुम्हारे पुत्र के और भी बहुत से नाम तथा गुण हैं।

जो मनुष्य तुम्हारे इस सांवरे सलोने शिशु से प्रेम करते हैं वे बड़े ही भाग्यवान हैं। चाहे जिस दृष्टि से देखें कीर्ति तथा प्रभाव में, गुण तथा सम्पत्ति में तुम्हारा यह बालक साक्षात् भगवान नारायण ही के समान है।

यह ब्रजवासियों, गौओं तथा सभी को प्रिय होगा। इन सभी की रक्षा करेगा। ब्रज में सभी प्रकार के पाप-ताप शान्त हो जावेंगे।"

'य एतस्मिन् महाभागा प्रीतिं कुर्वन्ति मानवाः।'

नामकरण की यह खिरक अपने अपूर्व इतिहास को दोहराती आज भी वैष्णव मात्र के लिये वन्दनीय है, तथा 'नामकरण-स्थल' नाम से विख्यात है।

ऊखल-बन्धन-स्थल

न चान्तर्न बहिर्यस्य न पूर्वं नापि चापरम्।
पूर्वापरं बहिश्चान्तर्जगतो यो जगच्चयः॥
तं मत्वाऽऽत्मजमव्यक्तं मर्त्यलिंगमधोक्षजम्।
गोपिकोलूखले दाम्ना बबन्ध प्राकृतं यथा॥ [1]

(श्रीमद्भागवत 10/9/13-14)

1. जिसमें न बाहर है न भीतर, न आदि है न अन्त, जो जगत के पहले भी थे, बाद में भी रहेंगे; इस जगत के भीतर तो हैं ही, बाहरी रूपों में भी हैं; और तो क्या जगत के रूपों में भी वे स्वयं ही हैं; यही नहीं जो समस्त इन्द्रियों से परे और अनन्त हैं, उन्हीं भगवान को मनुष्य का सा रूप धारण करने के कारण पुत्र समझकर श्रीयशोदा रानी रस्सी से ऊखल में वैसे ही बाँध देती है जैसे साधारण बालक हो।

नन्दालय में कन्हैया प्रतिदिन बढ़ने लगे। रोज ही नये-नये उत्सव मनाये जाने लगे। अब कन्हैया कभी मैया को रिझाकर प्रसन्नता प्रदान करते हैं और कभी खिझाकर। कभी-कभी रीझ-खीझ मैया को चकित व विस्मित भी कर देती है। कन्हैया को मैया नित्य ही माखन देती हैं, कलेऊ कराती हैं। अब कन्हैया देहलीज से बाहर जाने लगे हैं। छोटे-छोटे बालकों के साथ कभी भागते हैं, कभी उनसे लिपट जाते हैं। अनोखी है प्यार की यह रीति।

एकबार श्रीयशोदाजी ने दासियों को अलग-अलग काम सौंप दिये और कन्हैया के लिये स्वयं माखन निकालने लगीं। श्रीकृष्ण को भूख लगी थी। खेलते-खेलते वह मैया के पास आ गये। मैया ने अपने लाला को अंक में ले चिपटा लिया। मुख चूमा, विविध प्रकार से लाड़ उँड़ेल, स्तनपान कराने लगीं।

दूसरी ओर दूध औट रहा था। सहसा मैया को स्मरण हो आया। वह रसोई की ओर भागीं। कन्हैया आज इस बात से रुष्ट हो गये। उनके लाल-लाल अधर फड़कने लगे। पास ही रखे एक शिला-खण्ड से दूध की मटकियाँ फोड़ कन्हैया वहाँ से भाग गये। अपने काम निपटा कर मैया जब वहाँ लौटी तो दही की मटकी के टुकड़े -टुकड़े देख स्तब्ध रह गई। वह कन्हैया को खोजने लगी।

कन्हैया स्वयं तो माखन खा ही रहे थे साथ-साथ बन्दरों को भी लुटा रहे थे। अतः मैया हाथ में छड़ी लिये कन्हैया के पीछे भागी। ज्यों-त्यों लाल को पकड़कर धमकाने लगीं। कन्हैया रोने लगे। अपने नन्हें-नन्हें हाथों से आँखें मलने लगे। उनके मुख पर अश्रुमिश्रित काजल की स्याही फैल गई। यशोदाजी ने देखा लाला बहुत डर गया है। उन्होंने छड़ी फेंक दी तथा कन्हैया को रस्सी से बाँधने का विचार करने लगीं।

जो जगत के नियन्ता हैं, घट-घट व्यापी हैं जगत के नित्य तथा नैमित्तिक कारण स्वयं ही हैं, उन्हीं श्रीकृष्ण को यशोदाजी केवल प्रेम-बन्धन में ही बाँध सकती हैं।

मैया रस्सी से बाँधने लगीं तो रस्सी दो अंगुल छोटी रह गई, उन्होंने और रस्सी लेकर उसमें जोड़ ली फिर भी रस्सी दो अंगुल छोटी ही रही। इस प्रकार अनेक रस्सियों को जोड़कर भी मैया श्रीकृष्ण को बाँध न सकीं, पसीने से लथपथ हो गईं। श्रीकृष्ण ने माता के श्रम को देखा और कृपा करके स्वयं ही बँध गये।

'दृष्ट्वा परिश्रमं कृष्ण कृपयाऽऽसीत् स्वबन्धने।'

श्रीकृष्ण परम स्वतन्त्र होने पर भी वात्सल्य-प्रेम से अभिभूत हुए मैया के बन्धन में बँध गये। यह गोपिकानन्दन भगवान श्रीकृष्ण भक्तों के लिये अत्यन्त सुलभ हैं। योगी-मुनियों तथा तपस्वियों के लिये वे अति कठिनाई से वश में आते हैं।

अतः ऊखल से बँधे भगवान श्रीकृष्ण की यह लीलास्थली आज भी भक्तों के लिये प्रत्यक्ष हुई 'ऊखल बन्धन-स्थल' नाम से विख्यात है।

यमलार्जुन का उद्धार

बालेन निष्कर्षयतान्वगुलूखलं तद्
दामोदरेण तरसोत्कलिताङ्घ्रिबन्धौ ।
निष्पेततुः परमविक्रमितातिवेप-
स्कन्धप्रवालविटपौ कृतचण्डशब्दौ ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/10/27)

श्रीकुबेरजी के दो पुत्र थे-नलकूबर तथा मणिग्रीव दोनों ही एक बार मन्दाकिनी तट पर कैलाश पर्वत के रमणीय-उपवन में वारुणी पान कर, कामान्धों की भाँति स्त्रियों सहित नग्न होकर विहार कर रहे थे । उधर से श्रीनारदजी सहसा आ निकले । शाप के भय से स्त्रियों ने तो वस्त्र धारण कर लिये परन्तु वारुणी पान से मत्त इन दोनों ने श्रीनारदजी की ओर देखा तक नहीं और कामान्ध वैसे ही बने रहे ।

विषय सेवन करने से इनकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है ऐसा जानकर श्रीनारदजी ने सोचा कि इन्हें ऐश्वर्य मद ने अन्धा बना रखा है और ये दोनों ही शारीरिक भोगों में मग्न हो रहे हैं । अतः इनके ऐश्वर्य मद को समाप्त करना चाहिये ।

ऐसा अशास्त्रीय व्यवहार देखकर श्रीनारदजी ने इन दोनों देवपुत्रों का हित करते हुए शाप दिया कि तुम इसी प्रकार जड़ योनि को प्राप्त हो जाओ । महत् जनों द्वारा दिया शाप भी वरदान रूप में सिद्ध होता है अतः उन पर अनुग्रह करते हुए यह भी कहा कि तुम्हें श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त होगा । वास्तव में यह वरदान ही था ।

यह दोनों यक्ष पुत्र अर्जुनवृक्ष योनि में यमलार्जुन नाम से प्रसिद्ध हुए ।

भगवान श्रीकृष्ण यह सब जानते ही थे । मैया के प्रेम से ऊखल में बँधे बालक श्रीकृष्ण ऊखल को घसीटते-घसीटते इन दो वृक्षों तक आ गये तथा इन दोनों वृक्षों के मध्य से निकलने लगे । ऊखल टेढ़ा होने के कारण इन दोनों वृक्षों के मध्य अटक गया । यह सब श्रीकृष्ण की लीला ही थी । जैसे ही भगवान श्रीकृष्ण ने तनिक जोर से झटका दिया, इन दोनों वृक्षों की जड़ें उखड़ गईं, डालियाँ तथा पत्ते कम्पित हो गये । उन दोनों वृक्षों में से दो देदीप्यमान पुरुष प्रकट हुए तथा श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे । वे दोनों पुरुष नलकूबर तथा मणिग्रीव थे ।

आज भी नन्दभवन के द्वार पर प्रतीक स्वरूप दो अर्जुन वृक्ष महावन में शोभायमान हैं ।

---

1. दामोदर भगवान श्रीकृष्ण की कमर में रस्सी कसी हुई थी । उन्होंने अपने पीछे लुढ़कते हुए ऊखल को ज्यों ही तनिक जोर से खींचा त्यों ही पेड़ की जड़ें उखड़ गईं । समस्त बल विक्रम के केन्द्र भगवान का तनिक सा जोर लगते ही पेड़ों के तने, शाखाएँ, छोटी छोटी डालियाँ और समस्त पत्ते काँप उठे और वे दोनों बड़ी जोर से पृथ्वी पर गिर पड़े ।

मल्लामल्ल तीर्थ

यत्रैव सखिभिः सार्द्धं रामकृष्णौ बलोद्धतौ ।
मल्लमल्लाख्य तीर्थाख्यं संजातं पृथ्वी तले ॥

(विष्णु यामल)

यहाँ सखाओं सहित श्रीकृष्ण तथा बलरामजी ने विविध प्रकार की मल्लक्रीड़ा की है अतः 'मल्लामल्ल-तीर्थ' नाम से यह स्थल विख्यात है।

देवताओं द्वारा स्थापित 'गोपेश्वर महादेव' महावन में विराजते हैं।

तप्तसामुद्रिक कूप

भ्रूण हत्यादि पापानां कृमिकीट विधायिनाम् ।
विनाशाय समाचक्रुस्तप्तसामुद्रकूपकम् ॥

(भविष्य पुराण)

भ्रूणहत्यादि तथा कृमीक्रीड़ा सम्बन्धी पापों के नाश के लिये यादवगण तथा देवगण कृत तप्त सामुद्रिक कूप प्रकट हुआ था जो शीत तथा वातादि शान्ति के लिये है। यहाँ सौ बार स्नान करने से मनुष्य अवश्य मुक्त हो जाता है।

यहाँ दान आदि का विशेष महत्त्व है।

यमलार्जुन कुण्ड

यमलार्जुन वृक्षों के उद्धार की स्मृति में निर्मित यह दोनों कुण्ड, श्रीकृष्ण की अपार अहैतुकी कृपा का जयघोष कर रहे हैं।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी महावन में

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी भी महावन में आकर श्रीकृष्णजन्मोत्सव स्थान तथा श्रीमदनमोहन जी के दर्शन करके प्रेम में विह्वल होकर नृत्य करने लगे। उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे।

अहे श्रीनिवास ! कृष्ण चैतन्य एथाय ।
जन्मोत्सव स्थान देखि उल्लास हियाय ॥
भावावेशे प्रभु नृत्य, गीते मग्न हैला ।
कृपा करि सर्व चित्त आकर्षण कैला ॥

(भक्ति रत्नाकर)

श्रीसनातनजी

सनातन मदनगोपाल दर्शने ।
महासुख पाईया रहे महावने ॥

(भ० र०)

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी के अनुगत श्रीसनातन गोस्वामीजी से सभी वैष्णव परिचित हैं । वे तितिक्षा की साक्षात् मूर्त्ति थे, श्रीराधा कृष्ण-कृपा का निरन्तर आस्वादन करते रहते थे ।

एक बार श्रीसनातनजी, श्रीयमुना पुलिन पर रमणीय बालू में खेलते हुए एक अद्‌भुत बालक को देखकर विस्मय-विमुग्ध हो गये । वे भी साथ-साथ खेलने लगे । सहज ही मन बार-बार उस बालक के प्रति आकर्षित हो रहा था । खेल समाप्त होने पर वे बालक के पीछे-पीछे गये । कहते हैं मन्दिर में पहुँचने पर वह बालक उन्हें दिखलाई नहीं पड़ा । श्रीसनातनजी प्रेम विह्वल हो गये ।

बालक वेश धारण कर श्रीमदनगोपालजी ही श्रीसनातनजी को दर्शन देने आये थे ।

ब्रह्माण्ड घाट

कस्मान्मृदमदान्तात्मन् भवान् भक्षितवान् रहः ।
वदन्ति तावका ह्येते कुमारास्तेऽग्रजोऽप्ययम् ॥ [1]

(श्रीमद्‌भागवत 10/8/34)

एक बार सभी ग्वाल बाल खेलने में व्यस्त थे । अनेकानेक गोपिकाओं की प्रीति रज्जु में बँधे बाल रूपधारी श्रीकृष्ण, प्रेम में मतवाले हो गये । 'तत्सुखे सुखित्वं' की मर्यादा में बँधे यह सर्वोत्कृष्ट प्रेमी-प्रियतम, ब्रज बालाओं के सर्वदा अधीन रहते हैं, आज उन्हीं ब्रज ललनाओं की चरण रज प्राप्त करने को व्याकुल हो रहे हैं तथा एकान्त में छिप-छिपकर उसका आस्वादन कर रहे हैं ।

श्रीकृष्ण ने मिट्टी खाई थी, परन्तु मैया के पूछने पर उन्होंने मना कर दिया । मैया ने कहा 'अच्छा ! मुँह खोल कर दिखला ।' कन्हैया ने मुँह खोल कर कहा "देख ले मैया !" मैया स्तब्ध रह गई । अनेकानेक ब्रह्माण्ड ही कन्हैया के मुख में उसे दिखलाई पड़े । समस्त चराचर कन्हैया के मुख में देख वह बड़ी शंका में पड़ गई । "समस्त ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण को अपना पुत्र समझ कर मैं डाँट रही हूँ" ऐसा विचार करने लगी ।

कन्हैया ने सोचा-मैया तो मेरे ऐश्वर्य के अधीन हो रही है । उन्होंने तुरन्त अपनी माया को तिरोहित कर लिया । मैया भौचक्की सी रह गई । शनैः-शनैः उसे वह सारा दृश्य विस्मृत हो गया, मैया ने लाला को गोद में उठा लिया । उसके वात्सल्य का स्रोत उमड़ पड़ा ।

1. 'क्यों रे नटखट तू बहुत ढीट हो गया है । तूने अकेले में छिप कर मिट्टी क्यों खाई ? देख तो तेरे दल के सखा क्या कह रहे हैं । तेरे बड़े भैया बलदाऊ भी तो उन्हीं की ओर से गवाही दे रहे हैं ।'

लाला कन्हैया के मुख में ब्रह्माण्ड दर्शन कर मैया चकित विस्मित रह गई। नन्द बाबा से बोली "महर ! मैंने आपके लाला के मुख में बड़े-बड़े पर्वत, नदी, पृथ्वी, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के दर्शन किए हैं।" बाबा सुनते गये, पूछने पर बोले, "जब अवस्था खिंचती है तो ऐसे ही भ्रम होते हैं।" मैया चुप हो गई। बाबा नित्य प्रति शालिग्रामजी का अभिषेक कराते। एक दिन जैसे ही अभिषेक कराय के ध्यान कर रहे, लाला ने उठा के मुख में धर लिये। जब आँख खोलीं, देखें तो शालिग्राम जी नहीं है। लाला से बाबा ने पूछी- लाला ने नांय कर दी। बोले "मुख खोल कर दिखला।" लाला के मुख में समस्त ब्रह्माण्ड देख बाबा आश्चर्य चकित रह गए। भागे गए, यशोदा से बोले, "महर, आज तो विचित्र दर्शन लाला के मुख में भए। समस्त नदी, पर्वत, सूर्य, चन्द्र इत्यादि के दर्शन करके मैं तो देखतो रह गयो।" मैया ने पूर्व में बाबा द्वारा कही पंक्ति उनके सामने दोहरा दी, बाबा मुस्करा दिये। ऐसे हमारे प्रभु ने अनेक बाल लीलाओं द्वारा मैया, बाबा तथा सभी ब्रजवासियों को आनन्द प्रदान किया।

मृत्तिका-भक्षण कर मैया को ब्रह्माण्ड दर्शन कराने के कारण यह स्थली 'ब्रह्माण्ड घाट' के नाम से आज भी श्रीकृष्ण की भगवत्ता की गाथा दोहरा रही है।

यह एक अत्यन्त रमणीय स्थली है, वर्षा ऋतु में तो यहाँ की शोभा अवर्णनीय होती है।

चिन्ताहरण घाट

चिन्ताहरणसमाख्याता घट्टं ततो गुरः ।
यत्र चिन्तां हरणं समभूद् ब्रजवासीनां स्नानात् ॥

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

यह ब्रजवासियों के स्नान का स्थल है, समस्त चिन्ताओं को हरण करने वाला है। यहाँ महादेवजी के दर्शन हैं।

गोकुल

गोकुल तथा महावन मूलरूप में एक ही स्थली है। श्रीनन्दरायजी की निवास-स्थली को ही गोकुल नाम की संज्ञा दी गई है। कहीं-कहीं श्रीनन्दग्राम को भी भागवतों ने गोकुल कहकर अपना अभिमत स्पष्ट किया है। वर्तमान गोकुल वृहद्वन के अन्तर्गत ही एक बस्ती है। श्री कृष्ण की अनेकानेक लीला-स्थलियों में गोकुल का स्थान अद्वितीय है। श्रीकृष्ण ने जन्म लेते ही स्वयं गोकुल ले चलने

के लिए वसुदेवजी को प्रेरित किया, यही पर्याप्त है इस स्थली के प्रति श्रीकृष्ण की प्रियता के प्रमाण स्वरूप । श्रीकृष्ण की अनेक लीलाएें (वृहद्वन) गोकुल से सम्बन्धित हैं ।

वर्तमान गोकुल के प्रकाश का मुख्य श्रेय श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी को ही है । श्रीयमुना तटवर्ती प्राकृतिक दृश्यों की अपूर्व शोभा, प्राचीन स्थलियों का वैशिष्ट्य तथा आचार्य, भक्तों की सरस अनुभूतियों से जुड़ी यह नगरी आज गोकुल नाम से प्रसिद्ध है ।

पुष्टिमार्गीय वैष्णवों के लिए यह स्थली विशेष महत्त्वपूर्ण है । श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज प्रथम बार जब ब्रज में पधारे तो वृहद्वन में ठहरे । अभी किसी लीलास्थली का अन्वेषण कर ही रहे थे कि श्रीयमुनाजी ने साक्षात् एक परम सुन्दरी युवती के रूप में दर्शन देकर कहा, "यह (वर्तमान) स्थली ठकुरानी घाट है ।" श्रीवल्लभाचार्य जी महाराज ने उसी स्थली का अनुभव कर विश्राम किया तथा श्रीमद्भागवत का पारायण किया ।

इसी स्थली पर श्रीकृष्ण ने आचार्य चरण को कलियुगी जीवों के उद्धार हेतु, भक्ति प्रचार तथा ब्रह्म-सम्बन्ध कराने का आदेश भी दिया । करुणावरुणालय श्रीकृष्ण ने यह भी आश्वासन दिया कि "आप जगत उद्धार हेतु जिस किसी जीव को मेरे सम्मुख करेंगे मैं उसे अङ्गीकार करूँगा ।"

सर्वप्रथम इसी स्थली पर, महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने 'श्रीदामोदर दास हरसानी' को दीक्षा दी ।

वर्तमान गोकुल को गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने बसाया । सं. १६२७ में आपने सम्राट अकबर से सुविधा प्राप्त कर पर्याप्त भूमि उपलब्ध करा ली थी । अगले ही वर्ष श्रीनवनीत प्रिया श्रीठाकुरजी का विशाल मन्दिर तथा अनेक बड़े-बड़े भवन बन गये । तभी श्रीविट्ठलनाथजी अपने अनेक सम्बन्धियों तथा सेवक व शिष्यों सहित यहाँ निवास करने लगे । यहाँ के मन्दिरों तथा पुष्टिमार्गीय हवेलियों की व्यवस्था श्रीचम्पाभाई तथा शंकरभाई कोठारी की देख-रेख में होती थी ।

पुष्टिमार्गीय मुख्य स्थान होने से श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज द्वारा सेवा प्रदत्त सातों निधि स्वरूप यहीं विराजते रहे; जो कालान्तर में अनेक कारणों से बाहर चले गये ।

आज भी श्रीगोकुलनाथजी का अपूर्व वैभव, वैष्णव, भक्तों की दर्शन लालसा, यहाँ के प्रशान्त यमुनाघाट, वन-बीहड़-स्थलियाँ मुखरित हो अपने वातावरण से आप्लावित कर रहे हैं ।

वास्तव में गोपों की बस्ती को ही "गोकुल" की संज्ञा दी गई है । श्रीकृष्ण

कालीन गोकुल कौन-सी जगह है, आज के बुद्धि जीवियों के लिये भले ही अस्पष्ट हो, परन्तु इतना अवश्य है कि श्रीकृष्ण कालीन 'गोकुल' यमुना-तटीय वृहद्वन के अन्तर्गत एक वन्य विभाग था । वर्तमान में महावन से गोकुल तक चारों ओर आस-पास की स्थली को आचार्यों, भक्तों तथा अनेक रसिकों ने अनुभव के आधार पर 'गोकुल' नाम से सम्बोधित किया है ।

'गोकुल' नाम से विख्यात स्थली मुख्यतः वल्लभ-सम्प्रदाय की पुण्यमय केन्द्र स्थली चली आ रही है। श्रीश्रीवल्लभाचार्यजी, गुसांई विट्ठलनाथजी पुष्टिमार्ग के प्रवर्त्तक माने जाते हैं ! वे उच्चकोटि के विद्वान तथा भक्त थे। वे यहाँ बीच-बीच में निवास कर इस स्थली को सुशोभित करते रहे हैं ।

श्रीश्रीवल्लभाचार्यजी

श्रीलक्ष्मणजी भट्ट तथा माता इलम्मागारु यात्रा करते-करते कुछ दिन काशी रहे । वहाँ से आगे दक्षिण की ओर प्रस्थान कर रहे थे । मार्ग में ही चम्पारण्य क्षेत्र में उनके पुत्ररत्न का जन्म एक शमी-वृक्ष के नीचे हुआ । बालक जन्म लेते ही निश्चेष्ट तथा संज्ञाहीन-सा था । माता ने मृत समझ, एक वस्त्र में लपेट उसी वृक्ष के नीचे छोड़ चौड़ानगर में जाकर रात्रि में विश्राम किया । प्रातःकाल जब यवनों के भय की आशङ्का निर्मल हो गई तो उन्होंने उसी छोंकर वृक्ष के नीचे बालक को जीवित पाया । 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' वही बालक- 'वल्लभभट्ट' बाद में 'शुद्धाद्वैत सिद्धान्त' के समर्थ प्रचारक तथा पुष्टिमार्ग के प्रवर्तक हुए ! नाम हुआ- श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्य जी महाराज ।

श्रीश्रीवल्लभाचार्य जी आगे चलकर 'विष्णुस्वामी सम्प्रदाय' के अन्तर्गत आचार्य पद पर आसीन हुए, धर्म प्रचार हेतु उन्होंने कई यात्राएँ कीं । अपनी झारखण्ड यात्रा के दौरान किसी अज्ञात प्रेरणा से वे ब्रज की ओर चले आये । लगभग सं. १५५० के, वे ब्रज में पहुँचे, यमुना तटवर्ती एकान्त स्थली पर अपना आसन लगा विचार करने लगे, कहते हैं एक परम सुन्दरी युवती ने आकर इनके मन के भावों को पहचान लिया तथा इंगित कर कहा- यही गोकुल है तथा प्राचीन गोविन्द घाट है । वह युवती श्रीयमुनाजी स्वयं थीं । श्रीयमुना तट पर ही श्रीवल्लभाचार्यजी को भगवान श्रीकृष्ण ने जीवों के उद्धार हेतु ब्रह्म सम्बन्ध कराने का भी आदेश दिया । श्रीमहाप्रभुजी ने सर्वप्रथम श्रीदामोदरदास हरसानी को मन्त्र दीक्षा देकर अनुग्रहीत किया । आपने कई बार बड़ी -बड़ी यात्राएँ कीं । शास्त्रार्थ कर अनेक विद्वानों को पराजित किया तथा वैष्णव धर्म का प्रचार किया ।

पुनः वे ब्रज में पधारे, गोकुल में भी रहे तथा 'गोविन्द घाट' पर ही आपने

पुष्टिमार्ग की स्थापना की। अनेक ब्रजवासियों ने आपके प्रति आभार प्रकट करते हुए दीक्षा ग्रहण की। श्रीगोवर्द्धन में 'श्रीनाथजी' का प्राकट्य, मन्दिर का निर्माण, उनकी सेवा का प्रकाश, आप ही की कृपा से सर्व साधारण के लिये सुलभ हो गया।

श्री बालकृष्णोपासना का प्रचार भी मुख्यतः श्री वल्लभाचार्य जी महाराज ने ही किया। यद्यपि उनकी उपासना का अपना भाव माधुर्य प्रधान होना चाहिए जैसा उनके ग्रन्थों से प्रकट होता है। आज भी सेवा, उपासना तथा सम्बन्ध और श्रीठाकुरजी के प्रति भाव शावल्य जो पुष्टिमार्गीय वैष्णवों में सहज दीखता है-श्रीठाकुरजी के प्रति वैसा लाड़ अन्यत्र बहुत ही कम दिखलाई पड़ता है।

आचार्यपाद ने अनेक जगह जाकर 'श्रीमद्भागवत पारायण' किये और लोगों में श्रीकृष्ण भक्ति का प्रचार किया।

श्रीगोसाईं विट्ठलनाथजी

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी महाराज 'वल्लभ सम्प्रदाय' के स्तम्भ माने जाते हैं। काशी के पास आपका जन्म हुआ था। बहुत छोटी आयु में ही आपने विद्याध्ययन कर पूर्ण योग्यता प्राप्त कर ली थी।

अपने बड़े भ्राता श्रीगोपीनाथजी के देहावसान के बाद आप ब्रज में चले आये। गोपीनाथजी के पुत्र पुरुषोत्तमजी को लेकर आचार्य पद के लिये घरेलू विवाद चल ही रहा था, योग्यता की दृष्टि से श्रीविट्ठलनाथजी सर्वथा अधिकारी थे परन्तु विवाद इतना बढ़ा कि श्रीकृष्ण दास अधिकारी के प्रभाव से श्रीविट्ठलनाथजी के लिये 'श्रीनाथजी' के दर्शन भी बन्द कर दिये गये। उस समय विट्ठलनाथजी (चन्द्र सरोवर) पारासौली ग्राम में रहे। इस छः माह की असहनीय अवधि में उन्होंने 'नव विज्ञप्तियाँ' लिखी हैं, मानो उनके हृदय की ज्वाला ही उनमें वर्णित है।

मथुरा के समीप 'गोकुल' स्थल श्रीवल्लभाचार्यजी के समय में ही 'पुष्टि सम्प्रदाय' का पुण्य-प्रद-स्थल हो गया था। गोकुल की नवीन बस्ती का निर्माण श्रीविट्ठलनाथजी महाराज ने ही कराया। प्रायः वे गोकुल में निवास किया करते 'श्रीनवनीत प्रियाजी' के मन्दिर का निर्माण यहाँ सर्व प्रथम हुआ।

कहते हैं कि श्रीविट्ठलनाथजी के ड्योढ़ीवान श्रीविष्णुदासजी परम विद्वान थे। गुसाँईजी से शास्त्रार्थ करने यदि कोई आता तो बाहर से ही उसे ये निरुत्तर कर लौटा दिया करते।

साम्प्रदायिक उत्तरदायित्व सम्हालते ही आपने श्रीनाथजी तथा अन्य ठाकुर स्वरूपों की सेवा का विस्तार किया और वर्तमान में श्रृङ्गार तथा भोगराग के सेवाक्रम आपने ही प्रारम्भ करवाये।

अष्टछाप का गठन भी आपने ही किया, श्रीछीत स्वामी यहीं गोकुल में ही आपसे दीक्षा ग्रहण करने आये थे।

अतः 'गोकुल' मुख्यतः वल्लभ सम्प्रदायी वैष्णवों के लिये आज भी उसी प्रकार सेवनीय बना है।

ठाकुर श्रीगोकुलनाथजी

यह गोकुल का प्रधान मन्दिर है। पहले इन ठाकुरजी की सेवा श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्य जी महाराज के ससुराल में होती रही। श्रीगुसाईं जी ने श्री गोकुलनाथ जी को इनकी सेवा सौंपी थी। श्रीठाकुर जी के साथ दो स्वामिनी विराजती हैं। एक ओर श्रीप्रियाजी तथा दूसरी ओर चन्द्रावलीजी के दर्शन हैं।

श्री आचार्य महाप्रभु जी तथा गुसाई श्रीविट्ठलनाथजी की चरण पादुका, माला, उपरना तथा हस्ताक्षर यहाँ विराजित हैं।

गोस्वामी हरिरायजी

निवेदनं तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।[1]

(श्रीवल्लभाचार्यजी)

आचार्य प्रभु ने सत्संग की विशेष महत्ता बतलाई है और उसकी प्राप्ति का उपाय है भगवदीयों का संग तथा उनकी वाणी का अनुसरण। श्रीहरिरायजी के जीवन में यह सब ओत-प्रोत था।

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के दूसरे पुत्र श्रीगोविन्दरायजी को आपके पिता होने का श्रेय प्राप्त है। आपका जन्म गोकुल में हुआ। ब्रह्म सम्बन्ध की दीक्षा आपने गोकुलनाथजी से ही प्राप्त की तथा उन्हीं की सन्निधि में शास्त्रों का अध्ययन तथा पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों का ज्ञान अर्जित किया। बहुत छोटी अवस्था में ही आपकी ख्याति चहुँ ओर फैल गई। अपने सम्प्रदाय में आप प्रभु चरण नाम से जाने जाते हैं।

अपना जीवन आपने मर्यादा के ढाँचे में पूर्ण रूप से ढाल रखा था। यहाँ तक कि जिन वैष्णवों ने मर्यादा में शैथिल्य को अपना लिया था, अपने अनुगत भक्तों को उनका संग निषेध करने की आज्ञा आप करते थे। गुरु के प्रति आपकी अनन्य निष्ठा थी। श्रीगोकुलनाथजी के प्रसाद पा लेने पर ही आप स्वयं प्रसादी ग्रहण करते।

श्री वल्लभाचार्य तथा गोस्वामी श्री विट्ठलनाथजी द्वारा सेवा प्रदत्त ठाकुर

---

1. जीव ने प्रभु के चरणों में जो आत्मनिवेदन किया है, वह तादृशी जनों के सत्संग का स्मरण करने से ही फलीभूत होता है।

यदि इनके भ्रमण काल में निवास करने के स्थान से दो मील की दूरी पर विराजमान होते तो उनके दर्शन किये बिना ये कुछ भी ग्रहण नहीं करते थे । श्री गोकुलनाथ जी के महाप्रयाण के बाद इन्हें बहुत कष्ट हुआ । उसी दशा में सर्वोत्तमजी का जप करने की आपको आज्ञा हुई । आप दृढ़ता से जप करने लगे । तीन दिन उपरान्त श्रीवल्लभाचार्यजी ने दर्शन दिये तथा निजानन्द का दान दिया ।

इन्होंने संस्कृत में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं । 'शिक्षा पत्र' जिनकी संख्या इकतालीस मात्र है, साधकों के जीवन की मार्मिक घटनाओं तथा कठिनाईयों का बड़े ही सुन्दर ढंग से निराकरण किया है जो समस्त वैष्णव मात्र के लिए आदर्श हैं ।

गोस्वामी गोकुलनाथ जी

आप श्रीगोसांईजी के चतुर्थ पुत्र के रूप में जन्म ले पुष्टि मार्गी वैष्णवों के लिए पथ प्रदर्शन करते रहे । आप प्रकाण्ड विद्वान, सम्प्रदाय के मर्मज्ञ, सहृदय तथा लोक प्रिय रहे । श्रीगोसांईजी के जीवन काल में ही आपकी मान्यता तथा ख्याति हो गई थी । गोस्वामी विट्ठलनाथजी के तिरोधान के अनन्तर आपकी मान्यता और भी बढ़ गई । सातों कुटुम्ब परिवार के लोग किसी भी घरेलू कार्य के लिए प्रथम आपही को अग्रणी मानते थे ।

श्रीगिरधरजी आयु के नाते बड़े होने पर भी गोकुलनाथजी की आज्ञा बिना कुछ नहीं करते थे । पुष्टि मार्ग में 'प्रभुचरण' रूप से आप विख्यात थे ।

आपके जीवन की 'माला प्रसंग' घटना बहुत ही विलक्षण तथा विख्यात है । मुगल सम्राट जहाँगीर के शासन काल में ब्रज में निवास करने वाले वैष्णवों को तिलक-कण्ठी धारण करने पर सरकारी निषेध आज्ञा लगा दी गई थी । सभी वैष्णव इस बात से बहुत ही दुःखी थे । परन्तु मुसलमान शासकों में धर्म विरोधी उन्माद व्याप्त था । राजकीय कर्मचारी कण्ठीमाला तोड़ देते थे, तिलक मिटा देते थे । सर्वत्र अन्याय व्याप्त था ।

राजकीय कर्मचारियों के व्यवहार से जनता दुःखी थी । कहते हैं जिस समय जहाँगीर काश्मीर में था आप पैदल यात्रा करते हुए वहाँ पहुँचे अैर वेदों तथा शास्त्रों से प्रमाण दे उसे धर्म का ज्ञान कराया । जहाँगीर इनकी विद्वत्ता और व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुआ । फलस्वरूप जहाँगीर ने काश्मीर से लौटने पर इस प्रतिबन्ध को हटा लिया । इस घटना का वर्णन श्रीगोपालदास कृत 'मालोद्धार' नामक ग्रन्थ में विस्तृत रूप से हुआ हैं ।

'श्रीगोकुलनाथ' मन्दिर के सेवायत आपही के वंशज अद्यावधि सेवारत हैं ।

श्री श्रीराजा ठाकुर

यहाँ के मुख्य स्वरूप श्रीनवनीतलाल जी हैं। गोकुल बस्ती पहले श्रीराजा ठाकुर की ही सम्पत्ति थी। यहाँ तक कि कर, लगान तथा पट्टे चुंगी आदि वसूली इन श्रीराजा ठाकुर की ही जागीर रूप में इन्हीं के लिए होती थी।

नगर पालिका आदि के बनने के बाद यह सब समाप्त कर दिया गया।

'श्रीगोपाललालजी', 'मोर वाला मन्दिर', 'कटरा वाला मन्दिर', 'दाऊजी का मन्दिर', 'ब्रजेश्वरजी का मन्दिर', 'गंगा बेटीजी का मन्दिर', 'श्रीमथुरेशजी', 'श्रीनत्थूजी का मन्दिर', 'श्रीपार्वती बहूजी', तथा 'भामिनी बहूजी का मन्दिर', 'श्रीवल्लभलालजी', 'कामवन वाला मन्दिर' आदि अनेक प्रसिद्ध स्थलियाँ दर्शनीय हैं।

श्रीठकुरानी घाट

गोकुल का यह मुख्य घाट है। श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज को श्रीयमुना महारानी ने दर्शन देकर यहाँ का दिव्य तथा चिन्मय दर्शन कराया था। महाप्रभुजी ने सर्व प्रथम ब्रह्म सम्बन्ध दीक्षा देकर इसी स्थली को धन्य किया। अतः वल्लभ सम्प्रदाय के वैष्णवों के लिए यह स्थली विशेष महत्त्वपूर्ण है।

आज भी यहाँ यमुनाजी के घाटों की शोभा बहुत ही मनोरम है।

गोविन्द घाट

धर्म प्रचार तथा प्रसार हेतु निकले श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी अपनी प्रथम यात्रा में जिस समय झारखण्ड में थे तो सहसा प्रभु कृपा का अनुभव कर ब्रज में चले आये। गोकुल में यमुना के सुरमणीय तट पर वहाँ के लोगों से जिज्ञासा करने लगे। अपने पूर्वजों से सुनी जाती स्थली की ओर संकेत कर वहाँ के बड़े-बूढ़ों ने कहा अमुक स्थान नन्दबाबा की खिरक के नाम से विख्यात है तथा जहाँ आप विराजे हैं, साथ ही दांई ओर की स्थली गोविन्द घाट के नाम से विख्यात है। आचार्य प्रभु वहीं विराजमान हो गये और शमी वृक्ष के नीचे श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण किया।

वहाँ प्रभु को विराजमान कर आप सेवा-प्रार्थना करने लगे। रात्रि प्रथम प्रहर बीतने पर भी प्रभु का प्राकट्य न होते देख वे क्लान्त और उदास हो गये। प्रभु से यह सब देखा न गया। मध्य रात्रि में भगवान प्रकट हो गये। पीताम्बर धारण किये हैं, कर्णों में जगमगाते कुण्डल धारण कर रखे हैं, हाथ में वंशी, उर वैजयन्ती माला, सघन घुंघराली केशावलि, मयूर पिच्छधारी श्यामलोज्ज्वल छवि का प्रसार करते हुए, प्रकट होकर भगवान ने अपने स्नेह सिञ्चित पीताम्बर छोर से महाप्रभुजी को नव जीवन ही प्रदान कर दिया। जगद्उद्धार हेतु ब्रह्म-सम्बन्ध प्रदान करने की आज्ञा करी और अन्तर्धान हो गये।

श्रीयमुना

हम पहले कह आये हैं कि गोकुल पुष्टीमार्गीय वैष्णवों के लिए पूजनीय एवं वन्दनीय स्थली चली आ रही है। श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी महाराज को सर्व प्रथम यमुनाजी ने ही प्रकट होकर स्थलियों की जानकारी दी।

वैसे तो सभी सम्प्रदायों में श्रीयमुनाजी को महत्त्व दिया गया है, परन्तु पुष्टि मार्ग में यमुनाजी एक साधारण प्रवहमान जल रूपिणी श्रीयमुना ही नहीं हैं। उनका वैशिष्ट्य श्रीकृष्ण दर्शन का सुयोग प्राप्त कराना है। आचार्य प्रभु ने श्रीयमुनाष्टक के प्रथम श्लोक में-

नमामि यमुनामहं सकल सिद्धि हेतुं मुदा।
मुरारि पदपङ्कजस्फुरदमद रेणूत्कटां॥
तटस्थ नवकानन प्रकट मोद पुष्पाम्बुना।
सुरासुर सुपूजित स्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम्॥ [1]

श्रीयमुना को 'सकल सिद्धि हेतु' कहा है ये सर्व प्रकार की कामनाओं को पूरा करने वाली हैं। वह कामनाएँ अथवा सिद्धियाँ भौतिक जगत की तुच्छ सिद्धियाँ न होकर श्रीकृष्ण प्राप्ति हेतु अभीप्सित सेवोपयोगी देह लीलावलोकन, रसानुभव/आस्वादन आदि द्वारा साधकों को पुष्टि प्रदान करती हैं। श्रीकृष्ण चरणाविन्दों से प्रवहमान रससुधा का पान करा आप्लावित कर देती हैं, तन्मयता को प्रदान करती हैं। तटीय कुञ्ज-निकुञ्जों में प्रिया श्रीराधा तथा उनकी कायव्यूह स्वरूपा इन गोपाङ्गनाओं के साथ प्रिया-प्रियतम श्यामसुन्दर की लीलाओं का दर्शन-आस्वादन तथा उनमें अभिनिवेष प्राप्त कराने वाली हैं।

श्रीयमुनाजी यहाँ सेव्य स्वरूपा हैं श्रीकृष्ण की पटरानी तथा पुष्टि शक्ति रूप में सर्व वन्दिता तथा पूजनीय हैं।

इन्हें 'कृष्ण तुर्य प्रिया' माना गया है। चौथी पटरानी के रूप में तो द्वारिका में विराजमान हैं ही, यहाँ ब्रज भाव में भी श्रीकृष्ण प्रेयसियों में श्रीयमुनाजी को चतुर्थ स्वामिनी के रूप में स्वीकार किया है, क्योंकि इसके सुरमणीय तट पर श्यामसुन्दर क्रीड़ा करते हैं, जल में अवगाहन करते हैं। श्यामसुन्दर को मनाने के लिये उन्हीं की शोभा को धारण करने वाली हैं श्रीयमुनाजी। एक बार श्यामसुन्दर ने प्रियाजी से कहा, "प्रिय ! जब कभी तुम मान कर लेती हो तो मनाने में बड़ा श्रम होता है।" प्रियाजी ने सहज स्वभाव में कहा, "प्रियतम ! तुम मान करो तो मैं मनाऊँगी। इस आनन्द का आस्वादन तो

---

1. (भगवत्सेवोपयोगी शरीर) समस्त सिद्धियों की कारण रूपा, मुरारि (श्रीकृष्ण) के चरणारविन्दों से निरन्तर झरते उज्ज्वल रज कण रूपी पराग से परिपूरित तटीय हरित वनों के प्रत्यक्ष आनन्द रूप पुष्पों और जल से सुर-असुर (सभी) द्वारा भलीभाँति पूजित कामदेव (प्रद्युम्न) के पिता श्रीकृष्ण की शोभा को धारण करने वाली यमुना को मैं आनन्दपूर्वक प्रणाम करता हूँ।

करूँ"। श्यामसुन्दर मान करके एक निकुञ्ज में जा बैठे। श्रीराधा अनेक व्याजों से मनाने की चेष्टा करने पर भी सफल न हो पाईं। श्रीललिता तथा विशाखा आदि सखियों की भी एक न चली। श्रीयमुनाजी श्यामसुन्दर का रूप धारण कर उन्हीं के समक्ष विराजमान हुईं तो देखकर श्यामसुन्दर को हँसी आ गई और मान जाता रहा। प्रियाजी ने श्रीयमुनाजी को हृदय से लगा लिया और उन्हें वरदान दिया कि आज से तुम्हारी पूजा इसी हेतु और स्वरूप में होगी। अतः यमुना जी इसी रूप में आज भी पुष्टि मार्गीय साधकों के लिए विराजमान हो कर पथ प्रदर्शन कर रही हैं ।

बैठकें

गोविन्द घाट पर श्रीश्रीवल्लभाचार्य जी महाराज की सबसे प्राचीन बैठक छोंकर वृक्ष के नीचे अद्यावधि विद्यमान हैं। महाप्रभुजी द्वारा जीवों के उद्धार का सर्व प्रथम श्रेय इसी स्थली को प्राप्त है यहाँ श्रीदामोदरदास हरसानी को सर्व प्रथम महाप्रभु वल्लभाचार्य ने दीक्षा दी थी।

इसके अतिरिक्त द्वारिकाधीश जी के मन्दिर में शैय्या बैठक तथा संध्या वन्दन की बैठकें हैं।

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी महाराज की तीन बैठकें, एवं सर्वश्री गिरिधर जी, गोकुलनाथजी, रघुनाथजी, गोवर्धननाथजी की एक-एक बैठक यहाँ दर्शनीय है।

रसखान टीला

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहुँ पुर को तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवों निधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौं॥
रसखान सदा इन नयननि सों ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन्ह हू कलधौत के धाम करील की कुञ्जन ऊपर वारौं॥

भक्त प्रवर रसखान की विरक्ति, उसके साथ-साथ ब्रज के प्रति, वन्य प्रकृति के प्रति, अनुराग, यहाँ तक कि ब्रज की करील कुञ्जों के प्रति प्रगाढ़ प्रेम, श्रीकृष्ण की अलबेली छवि-छटा, गोचारण से लौटते समय ग्वाल-बाल सहित श्रीकृष्ण की मनोहर मूर्त्ति, इन सभी दृश्यों के जादू ने रसखान को कन्हैया का दीवाना बना दिया।

कहीं से श्रीकृष्ण का चित्र देख, उनकी चर्चा सुन, रसखान ब्रज में चले आये। वन-बीहड़ों में, गोचर भूमि में, सरस निकुञ्जों में, यमुना-पुलिन पर, श्याम-तमाल के आश्रय में, सरसता से सिञ्चित लताओं में सुदूर गौओं के समूह में, कोकिला की मधुर स्वर लहरी की रसमयता में, पपीहे की 'पी कहाँ'

ध्वनि में-यही नहीं, इन ब्रज बालाओं से हाँ-हाँ सभी से उन रसिक रिझवार का अता-पता पूछते, उन्हें देखने को आकुल-व्याकुल रसखान श्रीकृष्ण के दर्शन कर रस की खान ही कहलाये। उन्हीं के लिए लालायित हुए, ब्रज-वन-निकुञ्जों में विचरते हुए गाने लगे-'लाड़िलो छैल वही ता अहीर को पीर हमारे हिये की हरैगो।'

वे पीरहारी श्रीकृष्ण अपनी मधुर छटा का प्रसार करते अपने भक्त के सम्मुख प्रकट होंगे यह विश्वास उनकी जीवन मूरि बना पर्याप्त था। विश्वास सफल हो गया। उनके प्रेम के साक्षात् देवता प्रकट हो गये। रसखान विभोर हो गये, मस्त होकर गाने लगे-

'देख्यो दुर्यो वह कुञ्ज कुटीर में बैठ्यो पलोटत राधिका पायन'

श्रीकृष्ण की प्राप्ति महत् जनों की अनुकम्पा से ही सम्भव हो सकती है। श्रीगोसाँई विट्ठलनाथजी की कृपा का आश्रय ले उन्होंने अपना जीवन श्रीकृष्ण के लिए अर्पित कर दिया। इन ब्रज बालाओं ने अता-पता दिया और रसखान चिन्मय देह से निकुञ्ज में प्रविष्ट हुए। वहाँ देखी उन्होंने अपने जीवन-सर्वस्व की प्रणय पगी रूप छटा।

निकुञ्जद्वार पर विवश सी अलस श्रीविभूषित प्रिया-प्रियतम की रूप छटा ने बौरा दिया। ओह ! डगर ही भूल गई बावरी, तन की सुधि न रही, सिर पर धरी मटुकिया भी कब गिर गई, उसे भान ही न रहा। फिर निगोड़ी लाज की चिन्ता कौन करता। लोक-मर्यादा स्वतः ही श्याम-सुन्दर की प्रणय लहरियों में प्रवहमान हो गई। सखी-भाव-भावित रसखान ने मुक्त कण्ठ से गाया-

रसखान लखे मग छूटि गयो डग, भूल गई तन की सुधि सातो।
फूटि गयो सिर को दधि भाजन, टूटिगो नैननि लाज को नातो॥

रसखान के लिए रास भी सहज हो गया। श्रीकृष्ण भक्ति में, मधुर रस के मुक्त गीत रसखान की स्वर लहरी से निःसृत हुए। सखी देह से रास में प्रविष्ट हो रसखान ने अपनी चिर अभिलाषा को साकार किया तथा धन्य हो गये-

आज भटू सुन री बरु के तर, नंद के साँवरे रास रच्यो री।
नैननि सैननि बैननि में नहिं कोऊ मनोहर भाव बच्यो री॥
जद्यपि राखन को कुलकानि, सबै ब्रजबालन प्रान तच्यौ री।
तद्यपि वा रसखानि के हाथ बिकान औ अन्त लच्यो पै लच्यौ री॥

रसखान के प्रेम गीतों की गाथा को सचमुच आज भी अपने गर्भ में संजोये गोकुल गाँव की गलियाँ, स्थलियाँ रसखान की उपस्थिति का प्रत्यक्ष सा भान करा रही हैं।

वही स्थली आज 'रसखान टीला' नाम से विख्यात है तथा दर्शनीय है।

अलीखान पठान

सम्राट अकबर की ओर से ब्रज प्रदेश के हाकिम अलीखान पठान होने पर भी गुसाँई श्रीविट्ठलनाथजी के अनुगत हुए। श्रीकृष्ण के प्रति उनका अनुराग था। गुसाँईजीकी कथा में वे नित्य आते।

एक बार गुसाँई श्रीविट्ठलनाथजी ने उन पर विशेष कृपा कर उन्हें भगवद्दर्शन के योग्य बना लिया था।

बल्लभघाट के पास ही एक जीर्णस्थली इन्हीं के नाम से विख्यात है।

ताज की छतरी

"इन मुसलमान हरिजनन पै कोटिक हिन्दु वारिये"

भक्ति हृद्‌गत विषय है। यद्यपि जाति तथा वर्ण का अपना ही महत्त्व है, फिर भी इसे इयत्ता में बाँधा नहीं जा सकता। अनेक मुसलमान तथा अन्य वर्णों के साधक भक्ति की कसौटी पर पूर्ण उतरे हैं, जिसका साक्षी है हमारा इतिहास। भक्ति के लिए जिस भाव, हृदय का लगाव तथा प्रेमास्पद के प्रति अनुराग की अपेक्षा है, वह जिनमें भी सहज है अथवा हुआ है, वही भगवान के निज जन कहलाये हैं।

हमीदा-हसीना दोनों बहनें, रसखान, अलीखान तथा भक्तिमती 'ताज' मुसलमान होने पर भी श्रीकृष्ण की मधुरा भक्ति में लवलीन हो लीला- स्वादन करते रहे हैं।

भक्तिमती 'ताज' का सम्बन्ध राजघराने से रहा है, यह बात निर्विवाद है। एक बार उन्होंने मौलवी, मुल्लाओं तथा अपने यहाँ के इमाम से पूछा, 'क्या अल्लाह का दीदार हो सकता है ?' उनसे 'हाँ' में उत्तर पाकर वह 'काबा शरीफ' के लिए चल दीं। रास्ते में एक पड़ाव मथुरा में पड़ा। घंटे तथा उच्च नामध्वनि सुन ताज ने अपने साथ के लोगों से पूछा-"यह क्या है ?" साथ के दीवान ने कहा, "यहाँ हिन्दुओं का छोटा खुदा रहता है, लोग उससे अपनी फरयाद कर रहे हैं।" ताज का आग्रह हुआ कि छोटे खुदा से मिल कर ही वह आगे चलेंगी। इमाम के बहुत मना करने पर भी वह दृढ़ रहीं।

भगवान् के दर्शन करने वह जैसे ही मन्दिर में प्रवेश करने लगीं कि पुजारी ने रास्ते में ही 'तुम, हिन्दु नहीं हो' कहकर रोक दिया। प्रीतिपूर्ण चाह किसी भी बन्धन के अधीन नहीं हैं। ताज की भगवद्दर्शन की लालसा देख श्रीठाकुर जी अपने भक्त से मिलने के लिए अधीर हो गये।

वहीं बैठ आकुल-व्याकुल कण्ठ से ताज गाने लगीं-

सुनो दिलजानी, मेरे दिल की कहानी तुम,
हुस्न की बिकानी, बदनामी भी सहूँगी मैं।

देवपूजा ठानी, मैं निमाज हूँ भुलानी,
तजे कलमाकुरान, तेरे गुनन गहूँगी मैं ।

प्रेम की इस आकुल पुकार से, अनन्य निर्भरता से, ताज के हृदय की टीस सुन, नन्दनन्दन श्रीकृष्ण अधिक देर न कर, ताज के पास चले आये । उस रूप-मधुरिमा में छकी ताज तन्मय हो गई और यह स्वर लहरी गूंज उठी-

सांवरा सलौना सरताज सर कुल्हेदार,
तेरे नेह दाघ में निदाघ ह्वै रहूँगी मैं ।
नन्द के फरजन्द कुर्बान ताणी सूरत पै,
हूँ तो मुगलानी हिन्दवानी ह्वै रहूँगी मैं ।

श्रीकृष्ण ने उसी वेष में ताज को दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया और ताज अपने धर्म को तिलांजलि देकर हिन्दवानी होकर श्रीकृष्ण की सेवा में रहने को तैयार हो गईं । भगवान ने ताज को हृदय से लगा लिया और ताज, सदा-सदा के लिये अमर हो गईं । गोकुल की गलियों में अपने प्राणसर्वस्व की रूप-मधुरिमा का पान कर मग्न हो गईं ।

रसखान-टीले के पास ही यह स्थली छोटे-छोटे वृक्षों से घिरी 'ताज की छतरी नाम' से उसी प्रणय गाथा का अता-पता दे रही है ।

कुछ लोग ताज का चबूतरा जतीपुरा में भी मानते हैं ।

रमणरेती

उदासीन सम्प्रदायी विरक्त कार्ष्णिपन्थी महात्माओं की केन्द्र स्थली है । श्रीगोपालदासजी तथा हरनामदासजी महाराज यहाँ उच्चकोटि के महात्मा हुए हैं । दोनों ने ही वैराग्य को प्रधानता दी । आज भी अनेक विरक्त महात्मा यहाँ वास करते हैं तथा साधु-सेवा में विशेष रूप से संलग्न रहते हैं ।

आस-पास की अन्य स्थलियाँ

अभी हम महावन तथा गोकुल की श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं से सम्बन्धित पुण्यमयी लीला-स्थलियों का आस्वादन कर आये हैं, आइये अब आस-पास की अन्य लीला-स्थलियों में रमण कर श्रीकृष्ण चरित्र गान करें ।

लोहवन

लोहजघङ्वनं नाम लोहजघङेन रक्षितम् ।
नवमन्तु वनं देवि सर्व पातकनाशनम् ॥

(आ० वा० पु०)

हे देवि ! (पृथ्वी) लोहजङ्घासुर द्वारा रक्षित लोहजङ्घ नामक नवम वन समस्त पातकों को क्षय करने वाला है ।

श्रीकृष्ण की गोचारण-स्थली है यह । अपने ग्वाल-बाल सखाओं सहित गाय चराते, परस्पर हास विनोद करते, श्रीकृष्ण तथा बलराम इस एकान्तिक स्थली में चले आते हैं । ग्रीष्म की दोपहरी में सघन वृक्षावली की छाया का आनन्द लेते हुए गोप-बालक, परम आनन्द को प्राप्त करते हैं ।

'लोहासुर' की गुफा तथा 'गोपीनाथजी' विशेषतः दर्शनीय हैं ।

आनन्दी बन्दी

वन्दित्यानन्दिन्यौ तत्र च देव्यौ विराजते ।
ये नन्दालयगौमयसञ्चयकर्तरिगणाध्यक्षे ॥

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

यहाँ बन्दी तथा आनन्दी नाम की दो स्त्रियाँ देवी के रूप में विराजती हैं । ये नन्दालय में गोबर बटोरने वाली स्त्रियों की स्वामिनी थीं ।

प्रीति की रीति ही विचित्र है । 'तत्सुखेसुखित्वम्' की मर्यादा में पोषित, पल्लवित प्रीतिलता सच्चे प्रेम का मूर्तरूप है । इसका ज्वलन्त उदाहरण हैं यह ब्रज-बालाएँ जिन्होंने अपना सर्वस्व अपने प्राणधन श्रीकृष्ण के सुख के लिये ही समर्पित कर दिया । इन्हीं की चरण-रज प्राप्ति हेतु उद्धवजी, ब्रज में लता-पतादि बनने को आकुल हो गये । भक्तप्रवर रसखान प्रेम रज्जु में बँधे तृण-वीरुध, पाहन तक बनने को तत्पर हो गये । फिर प्रेम दीवानी इन ब्रज-बालाओं की तो बात ही क्या है । उद्धवजी से अपनी अनन्य निष्ठा की बात कहती हुई गोपिकाएँ बोलीं-

चेरी हैं न ऊधो ! कहू ब्रह्म के बबा की हम ।
सूधो कहि देत एक कान्ह की कमेरी हैं ॥

प्रीतिवश दृढ़ विश्वासपूर्वक एक स्थान पर बोलीं-

'वे तो हैं, हमारे ही, हमारे ही, हमारे ही ।
हम उनही की, उनही की, उनही की हैं ॥

इसी सुदृढ़ विश्वासपूर्ण प्रेम में बँधे इनके प्राणधन नन्दनन्दन चुल्लू भर छाछ के लिये उनके ऋणी बन गये हैं ।

प्रेमपयोधि श्रीकृष्ण की गोपी स्वरूपा यह रस तरंगें प्रेम की साक्षात् देवियाँ हैं । वे उन्हीं के सुख में सुखी रहती हैं । प्रेमास्पद की किसी भी प्रकार की सेवा करने में उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं । सेवा, सेवा ही हैं, उसमें छोटी तथा बड़ी का भान नहीं रहता । सम्पूर्ण सेवा को स्वीकार कर इन्होंने प्रेमोत्कर्ष दर्शाया है ।

वे श्रीकृष्ण-प्रिया भी हैं । नित्य रसकेलि में उनकी अभिन्न रसमर्मज्ञा सखियाँ हैं । उनकी माधुरी का क्षण-प्रतिक्षण रसास्वादन कर सकें-इसलिये नन्दालय में प्रत्येक सेवा सहर्ष स्वीकार करती हैं ।

उन्हीं ब्रज देवियों के नाम से यह ग्राम प्रसिद्ध है । उन्हीं के नाम के प्रतीक स्वरूप 'बन्दी' तथा 'आनन्दी' दो कुण्ड शोभायमान हैं ।

दाऊजी (बलदेव)

रेवतीरमणायैव गोपानां वरदायिने ।
अन्योन्य सन्मुखालोक प्रीयते च नमस्तु ते ॥

(आदि पु०)

हे रेवती रमण ! हे गोपों को वर देने वाले ! आप दोनों ही परस्पर मुख अवलोकन हेतु उत्कण्ठित हैं । आप (दोनों) को नमस्कार है ।

स्थली की उत्पत्ति महिमा

ब्रज का-सा सहज प्रेम दुर्लभ है । एक विशेष स्नेह तथा अपनत्व ब्रज में बिखरा हुआ है, ब्रजवासी श्रीकृष्ण के निजजन जो ठहरे । 'ब्रजवासी ते हरि की शोभा' इन ब्रजवासियों के सच्चे प्रेम तथा स्नेहपाश में बँधे भगवान् श्रीकृष्ण ब्रजवासियों के लिये सहज और सुलभ हैं । श्रीकृष्ण के प्रति सहज आत्मीयता आज भी ब्रजवासियों में भरी पड़ी है । अपने कन्हैया के सर्वस्व होने का सौभाग्य इन्हीं ब्रजवासियों को प्राप्त है, उन्हें इसका गर्व है ।

श्रीनन्दरायजी ने एक बार यादवों को निमन्त्रण दिया और एक लाख गउओं का दूध लाकर यहाँ एकत्र किया । नानाविधि मिष्ठान्न, घृत, शर्कर तथा मधुमिश्रित सुन्दर पायसान्न बलदेवजी की प्रीति के लिये बनाये गये थे । श्रीबलदेवजी के यहाँ पधारने तथा स्वागत किये जाने की यह स्थली 'बलदेव' अथवा 'दाऊजी' नाम से विख्यात हो गई ।

दुग्धकुण्ड

सुधामयपयस्तुभ्यम् हलायुधवरोद्भव ।
चिरायुर्वरदायैव दुग्धकुण्ड नमस्तु ते ॥

(पद्म पुराण)

हे सुधामय दुग्ध वाले ! हे हलधरजी के वर से उत्पन्न ! (कुण्ड) चिरायुवर देने वाले ! (कुण्ड) आपको नमस्कार है ।

जहाँ दूध इकट्ठा किया गया था वह स्थल 'दुग्ध कुण्ड' के नाम से विख्यात हो गया ।

बलदेव-भोजन-स्थल

सकलेष्ट प्रदायव हलिनो भोजनस्थल ।
देवर्षिमनुजानाञ्च हितार्थ सिद्धये नमः ॥

(आ० पु०)

हे सकल इष्ट प्रदान करने वाले ! हे हलधर भोजन स्थल ! आप देवता तथा मनुष्यों के कल्याण के हेतु हैं, आपको नमस्कार है ।

निमन्त्रण में पधारे यादवों सहित बलदेवजी ने यहाँ तृप्तिपूर्वक भोजन किया था । अतः यह स्थली बलदेव भोजन स्थल नाम से विख्यात हो गई ।

त्रिकोण मन्दिर

नन्द-गोप कृतार्थाय त्रिकोणरमणस्थल ।
गोपकामप्रपूर्णाय प्रदक्षिणपदे नमः ॥

हे त्रिकोण रमणस्थल ! आप गोपों की कामनापूर्ति हेतु हैं। आप श्रीनन्दरायजी आदि गोपों को कृतार्थ करने वाले हैं। आपकी प्रदक्षिणा करता हुआ मैं आपको नमस्कार करता हूँ ।

दाऊजी का मन्दिर

श्यामवर्ण दाऊजी के 'श्रीविग्रह स्वरूप' अत्यन्त मनोरम तथा विशेष आकर्षण लिए हैं । सामने एक ओर लोक मर्यादावश नतनयना रेवतीजी विराजती हैं । दोनों ही मधुर अवलोकन द्वारा परस्पर निहार रहे हैं । यवन राजा भी आपके चमत्कारों से प्रभावित हुए। अन्य कई ठाकुर स्वरूपों की भाँति आप यवनों के आक्रमण के समय यहीं विराजमान रहे ।

एक चमत्कार पूर्ण घटना से दाऊजी के वैशिष्ट्य का बोध हो जायेगा जिसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

कहते हैं, अन्य मन्दिरों को ध्वंस करता हुआ औरंगजेब, श्रीदाऊजी के मन्दिर की खोज में, दाऊजी के लिए रवाना हुआ । सारी रात उसकी सेना घूमती रही, परन्तु यह मन्दिर नहीं मिला । परिश्रान्त होकर वह सेना सहित अपने शिविर में लौट गया । यह बलदेवजी का ही चमत्कार था ।

जनश्रुति है कि अकबर के शासन काल में एक स्थानीय कुण्ड से आपका प्राकट्य हुआ था । गोस्वामी श्रीगोकुलनाथजी ने सेवा पूजा आदि का भार श्रीकल्याण जी को सौंप दिया । आज भी उनकी वंशपरम्परा द्वारा सेवा होती आ रही है ।

श्रीदाऊजी सभी ब्रजवासियों के लिए पूजनीय हैं। किसी भी प्रकार की मंगलकामना हेतु ब्रजवासी यहाँ मिश्री-माखन का भोग जो 'दाऊजी का हण्डा' कहा जाता है, अर्पित करते हैं, और उससे अपनी मनौती की सफलता की कामना करते हैं।

सङ्कर्षण कुण्ड

पास ही क्षीर सागर (सङ्कर्षण कुण्ड) है तथा पास ही 'हथौड़ा' ग्राम है जिसे नन्दरायजी की बैठक माना जाता है।

देव नगर

बलदेव ग्राम से दस मील उत्तर की ओर दिवस्पति गोप का स्थान है। यहाँ "राम सागर" तथा "गोवर्धन पर्वत" है। इन गोप ने गोवर्धन पूजन यहीं किया था।

कर्णावल

"कोई लो" ग्राम के पास ही कर्णावल ग्राम है। कहते हैं श्रीकृष्ण बलरामजी का यहाँ कर्ण छेदन संस्कार सम्पन्न हुआ था। "श्रीमथुरेशजी" (ठाकुर स्वरूप) का प्राकट्य भी यहीं से माना जाता है।

यहाँ कर्ण भेद्य कूप, रतन चौक, मथुरेशजी की बैठक, श्रीमदनमोहन जी तथा श्रीमाधवरायजी के मन्दिर हैं।

रावल

रासे सम्भूय गोलोके सा दधार हरेः पुरः।
तेन राधा समाख्याता पुराविद्भिर्द्विजोत्तम॥

(ब्रह्मवैवर्त पुराण ब्र० ख०)

श्रीकृष्ण एवं श्रीराधा दोनों ही तत्त्वतः एक हैं, श्रीकृष्ण ही अपने माधुर्य का रसास्वादन करने के लिए श्रीराधा रूप में प्रकट हुए हैं।

श्रीकृष्ण के वाम पार्श्व से प्रकट हुई उन्हीं की आह्लादिनी-शक्ति, श्रीराधा रूप में वैष्णव मात्र की पूज्या हैं, आराध्या हैं, उनकी जीवन सर्वस्व हैं। श्यामसुन्दर तथा श्री राधा द्वय वपु-एक प्राण हैं। प्रियतम श्यामसुन्दर श्रीराधा के बिना नहीं रह सकते और उन्हीं की प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा श्यामसुन्दर के बिना नहीं रह सकतीं। वे सदैव मिले रहते हैं परन्तु अतृप्ति सदैव बनी रहती है।

'मिलेई रहत मनु कबहुँ मिले ना'

यह अतृप्ति ही प्रेम है । इसी प्रेम के वशीभूत हुए युगल रस बावरे 'दोऊ चकोर दोऊ चन्द्रमा' बने हैं । नहीं कहा जा सकता, रूप मधुरिमा कहाँ अधिक निखर रही है । वास्तव में दोनों ही परस्पर रूप मधुरिमा का निरन्तर पान करके भी अतृप्त बने हैं ।

अनादि काल से माधुर्य की उत्तुङ्ग तरंगें इन प्रणयवारिधि युगल में उठती रहती हैं । उसी के रसास्वादन में निरन्तर मग्न रहते हैं यह रसराज युग्म श्रीश्यामसुन्दर तथा किशोरी श्रीराधा ।

'आदि न अन्त विहार करैं दोऊ-
प्रिया प्रियतम में भई न चिन्हारी ।'

सृष्टि के आदि से रस की यह माधुर्य कादम्बिनी प्रवाहित हो रही है । इस रङ्ग में भरे युगल उसी तन्मयता में मग्न-मत्त हुए रस-पान में रत हैं ।

जो नित्य मिले हैं, क्षण भर के लिए भी अलग नहीं होते, सदा-सदा अपनी मधुर रस-सरिणी के प्रवाह में अवगाहन करते रहते हैं, उनका प्राकट्य ही भला कैसा ? फिर भी भावुक भक्तों को प्रेमानन्द प्रदान करने के लिए वे प्रकट होते हैं । अवतार ग्रहण करते हैं ।

श्रीकृष्ण की आनन्ददायिनी शक्ति हैं श्रीराधा । वे उनकी आदि शक्ति भी हैं । वास्तव में श्रीकृष्ण ही श्रीराधा रूप धारण कर अपने जनों के लिए प्रेम की दिव्य लीला कर रहे हैं । अपने प्राणाधार प्रियतम के सुख के लिए ही जिन्होंने अपना सर्वस्व समर्पित कर रखा है, वे उन्हीं की भावनाओं की छायामूर्त्ति हैं । वे प्रियतम के सुख में ही सुखी रहती हैं । प्रेमस्वरूपा इन बालाओं के स्वसुख से रहित प्रेम को ही 'श्रीनारद भक्ति सूत्र' में 'यथा ब्रजगोपिकानां' कह कर मुक्त कण्ठ से सर्वोत्कृष्ट कहा है । इन्हीं बालाओं की सखी-स्वामिनी श्रीराधा प्रेम की साकार प्रतिमा हैं । प्रियतम श्रीकृष्ण, की हर इच्छा में वे योग देती हैं । उन्हीं के सुख में सुखी रहने का हर विधान जुटाती हैं । इसी प्रेम के वशीभूत हुए श्रीकृष्ण कह रहे हैं-

न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां, स्वसाधु कृत्यं विवुधायुषापि वः ।
या मा भजन् दुर्जर्गेह श्रृख्ङ्लाः, संवृश्च्य तद् वः प्रतियातु साधुना ॥

(श्रीमद्भागवत 10/32/22)

अतः गोपिकाओं के प्रेम से उऋ्रण नहीं हो सकते, ऐसे हैं यह प्रेम-सम्राट तथा महाभाव की उच्चतम मूर्त्ति हैं श्रीराधा, जो प्रियतम के सुख के लिए ही प्राण धारण किये हुए हैं ।

श्वेत वाराहकल्प की अट्ठाइसवीं चतुर्युगी की स्मृति श्रीकृष्ण के सामने है। श्रीराधा उसमें सहर्ष योग देती हैं तथा किसी भी कारण को समक्ष रख भूतल पर अवतरित होने की भूमिका बन जाती है। श्रीकृष्ण तथा उनका परिकर; किशोरी श्रीराधा तथा उनकी सखी वृन्द, सभी अपने निज जनों को लीला का सुख देने के लिए ब्रज में अवतरित होते हैं।

राजा सुचन्द्र ब्रह्माजी से वर प्राप्त कर ब्रज में वृषभानु गोप के नाम से प्रकट हुए और उनकी पत्नी कलावती, कीर्त्तिदा गोपी के रूप में वृषभानुपुर की शोभा बढ़ाने लगीं। इन्हीं महाभागा कीर्त्तिदा रानी को श्रीराधा की जननी होने का महासौभाग्य प्राप्त हुआ।

ब्रह्म मुहूर्त्त आ गया। यमुनातटवर्ती निकुञ्ज में दिव्योन्मादी वातावरण में किशोरी श्रीराधा ने अवतार ग्रहण किया। चारों ओर हर्ष की अपार लहर दौड़ गई। गोपियों तथा गोपों के हर्ष का पारावार न रहा। पुरवासी उतावले होकर इस शुभ समाचार को एक दूसरे को सुनाने के लिए भागे-भागे गये। चारों ओर मंगलवाद्य बजने लगे, गीत गाये जाने लगे-

महारास पूरन प्रकट्यो आनि।
अति फूली घर-घर ब्रज नारी राधा प्रकटी जानी॥

अहा! श्रीराधा के प्राकट्य की बात सुनकर ब्रजाङ्गनाऐं हर्षोल्लास में भर गईं और जय जयकार करने लगीं-

आज रावल में जय-जयकार।
प्रकट भई वृषभानु गोप के श्रीराधा अवतार॥
गृह गृह ते सब चलीं वेग दै गावत मंगलचार।
प्रकट भई त्रिभुवन की सीमा रूप राशि सुख सार॥
निरतत गावत करत बधाई, भीर भई अति, द्वार।
परमानन्द वृषभानु नन्दिनी जोरी नन्द-दुलार॥

यह श्रीराधा की प्राकट्यस्थली 'रावल' नाम से विख्यात है। आज भी यमुना तट पर एक मन्दिर अपने इतिहास की पताका फहरा रहा है। अपनी ननसाल में श्रीराधा का प्राकट्य हुआ, पुनः वे श्रीवृषभानुपुर पधारीं।

श्रीश्रीवृषाभानुनन्दिनी के भूतल पर प्राकट्य सम्बन्धी एक और सरस गाथा अनेक वैष्णव महानुभावों तथा गोस्वामी गण की अनुभूतियों के आधार पर चली आ रही है। वृषभानुपुर में श्रीजी के महल में इसी परिपाटी तथा परम्परा के आधार पर प्राकट्य दिवस मनाया जाता है।

श्रीवृषभानु बाबा भाद्रमास की अष्टमी के दिन नित्य की भाँति 'वृषभानुसरोवर' पर पधारे। वहीं एक सघन कुञ्ज की झुकी वृक्षावलि के पास ही एक बालिका कमल के फूल में सुशोभित, सरोवर में तैरती हुई बाबा की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित कर रही थीं। वे श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधा ही थीं।

कल्पान्त भेद से इस बात की सत्यता में भी कोई आशंका नहीं है।

ब्रज भूमि मोहिनी

श्रीगिरिराज

(श्रीकृष्ण संस्पर्श पुलकिताङ्ग गिरिवर)

तृतीय खण्ड

एकेनैव चिराय कृष्ण ! भवता गोवर्धनोऽयंधृतः
श्रान्तोऽसिक्षणमास्स्वसाम्प्रतममी सर्वे वयं दध्महे ।
इल्युल्लासितदोष्णि गोपनिवहे किञ्चिद्भुजाकुंचन-
न्यञ्चच्छैलभरार्दिते विरुवति स्मेरा हरिः पातु वः ॥

(श्रीशरणस्य)

आस-पास की अन्य स्थलियाँ

1. सकराया
2. नीमगांव
3. कोनई ग्राम
4. कुञ्जेरा ग्राम
5. सूर्य कुण्ड
6. जसोंदी (जसुमति)
7. बसोंति (बसति)
8. मुखराई
9. तोष ग्राम
10. जखिन गांव
11. अड़ींग गांव
12. पैंठा
13. बच्छ गांव
14. गांठोली
15. टोड़ की घनों

ऊपर वाली स्थलियों के अतिरिक्त राधाकुण्ड, गोवर्द्धन, पारासौली, यमुनावतो, आन्योर, पूँछरी, श्यामढाक, जतीपुरा, तथा सखी-स्थल ग्राम प्रसङ्ग आदि में गिरिराज वर्णन में आ गये हैं जिन्हें हमने अलग से नहीं दिया है।

दूरं दृष्टिपथात्तिरोभव हरेर्गोवर्द्धनं बिभ्रत-
स्त्वय्यासक्तदृशः कृशोदरि ! करस्रस्तोऽस्य मा भूदयम् ।
गोपीनामिति जल्पितं कलयतो राधानिरोधाश्रयं,
श्वासाः शैलभरश्रमभ्रमकराः कसद्विषः पातु वः ॥[1]

(श्रीशुभाङ्क)

अहा ! यह सरस कोलाहल, बीच-बीच में चौंका देने वाली हर्षध्वनि, कभी उच्च स्वर में जय-जयकार, परस्पर उत्साह उमंग में थिरकते श्रद्धालुओं के चरण, अवश्य ही किसी स्थली विशेष की बात कह रहे हैं । लो ! सामने ही श्याम तथा गौर सुचिक्कण शिलाओं के पुंजीभूत यह श्रीगिरिराजजी ही तो हैं । वृक्षों की सघन श्रेणी सात कोस लम्बे श्रीगिरिराज की सीमा को घेरे दीख रही हैं । वृक्षों से भरे, लताओं से घिरे, वन्य पशुओं से भूषित, कहीं मृगों के झुण्ड व्यग्र लालसा लिये इधर-उधर घूम रहे हैं । गौओं तथा बछड़ों की प्यार से सिक्त दृष्टि जाने क्या खोज रही है ? कहीं मयूर बौराया-सा उचक-उचक कर जाने किसे खोज रहा है ?

हाँ-हाँ ! सभी, इन अपने प्राणधन गिरिवरधारी की किसी सरस लहरी से उद्वेलित हो रहे हैं । लो ! कोयल कूकी, इधर पपीहा भी 'पी कहाँ' की रट लगाने लगा । कदम्ब की डार से चहचहाने की ध्वनि सुनाई दी, पास ही श्याम-तमाल झुरमुट में से वन्य मृगों के समूह एक भोलापन लिये विस्फारित नेत्र देखते रह गये । सूदूर वंशी गूंज उठी । यह लो ! पास ही की सघन वीथिका, छम-छम ध्वनि से मुखरित हो गई । विभिन्न रङ्गों के वस्त्राभरण धारण किये यह गोप रमणियाँ अपने प्राण-श्रेष्ठ के रसीले आमन्त्रण पा, आ पहुँची श्रीगिरिराज की सरसीली-तलहटी में, एकान्तिक स्थली में । प्रियतम की रसभरी खोज में, यह छम-छम ध्वनि श्रीगिरिराज की अनेक एकान्तिक निकुञ्जों में अलग-अलग गूंज उठी । इन्हीं खोज भरे क्षणों में अपनी सखीवृन्द को आकुल-व्याकुल देख

---

1. हे कृशोदरी राधे ! गोवर्द्धन धारण करने वाले श्रीकृष्ण के नेत्रों के सामने से एक ओर हो जाओ, क्योंकि तुम्हारे मुखमण्डल पर आसक्त दृष्टि वाले इनके (श्याम सुन्दर के) हाथ से कहीं यह गोवर्द्धन पर्वत गिर न पड़े, श्रीराधा के निरोध विषयक गोपियों की ऐसी वाणी सुनकर श्रीकृष्ण के शैल भार जनित श्रम के सूचक तत्कालोत्पन्न दीर्घश्वास तुम्हारी रक्षा करें । तात्पर्य यह है कि दुर्बल पुरुष कमजोरी के कारण जैसे थोड़ा सा परिश्रम करने पर लम्बी-लम्बी श्वास लेने लगता है, उसी प्रकार आह्लादिनी शक्ति श्रीराधा की दृष्टि से दूर होते ही श्रीकृष्ण भी लम्बी-लम्बी श्वास लेने लग गये ।

पास की सघन कुञ्ज में से शत्-शत् वीणाओं को विनिन्दित करती हास ध्वनि सुनाई दी । हाँ, हाँ इसी हास ध्वनि का अनुगमन करती यह छम-छम ध्वनि इसी निकुञ्ज में मूक हो गई ।

अपनी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा तथा निजस्वरूपभूता इन ब्रज-बालाओं सहित श्रीकृष्ण गिरिराज तलहटी में नित्य ही आते हैं । ब्रज ललनाओं की एकान्तिक प्रणय-रस केलि के द्रष्टा हैं यह श्रीगिरिराज । द्रष्टा तो हैं ही स्रष्टा भी हैं, इतना ही नहीं यह हरिदास वर्य हैं । हरिदास वर्य तो हैं ही श्रीकृष्ण स्वयं श्रीमुख से कह रहे हैं-

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणंगतः ।
शैलोऽस्मीति ब्रुबन् भूरि बलिमादद् वृहद्वपुः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/24/35)

अपने जनों को विश्वास दिलाने हेतु भगवान ने अपना यह वृहद्वपुः रूप प्रकट किया है । 'मैं' ही गिरिराज हूँ यह कहकर अपने जनों की रक्षा का भार स्वयं उठा उनके विचारों में निर्भरता का भाव परिपक्व कर रहे हैं ।

श्रीकृष्ण सखाओं सहित गोचारण हेतु नित्य यहाँ आते हैं तथा विभिन्न खेलों में मग्न हो जाते हैं, गउएँ पास ही तृण चरती रहती हैं । इधर कभी छल-छद्म कर प्रणय-प्रवीण कन्हैया अपनी प्रतीक्षा में पलकें बिछाये बाट जोहती इन ब्रज-बालाओं के समूह में आ, रस-रङ्ग की धूम मचा देते हैं ।

यहाँ की श्यामल गौर शिलाएँ, झरते-निर्झर सघन कन्दराओं की नीरवता, नवदूर्वादल-मण्डित यह शिलाएँ, रङ्ग-बिरङ्गे पुष्पों से सज्जित तथा अलबेली लताओं से घिरी सरस निकुञ्जें । ओह ! सभी सजीव लीलास्थली हैं । यहाँ छहों ऋतुएँ विराजती हैं । प्रियतम की इच्छानुसार वृन्दादेवी लीला उपकरण जुटाती हैं, लीलानुसार सरसीला वातावरण स्वयं उपस्थित हो जाता है । केलि-विहार की अन्तरङ्ग-स्थली रस-रङ्ग से सरस हो जाती है ।

दिन में सखाओं सहित गोचारण तथा रात्रियों में सखियों के साथ एकान्तिक विहार, सामूहिक रस विलास, इन्हीं रस कणों से सिक्त-सिञ्चित यह गिरि कन्दराऐं, प्रसन्नता को प्राप्त हो रही हैं । यहीं अपूर्व शोभा को निहार, काम और रति सकुचा कर लजा जाते हैं । यावत् प्रकृति में समाया सौन्दर्य यहीं के रस कणों की उच्छलन ले धन्य होता है । क्यों न हो ? श्रृङ्गार रसराज श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा और उन्हीं की सखीवृन्द की अङ्गकान्ति से यह स्थली सुशोभित जो हो रही हैं ।

श्रीगिरिराज तलहटी अष्टछाप के कवियों की मुख्यतः साधना-स्थली रही है । श्री श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्य जी महाराज तथा गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी,

ने इस स्थली को धन्य किया है। यहाँ की अनुभूतियों का जो मार्मिक तथा सरस वर्णन अष्ट सखाओं ने किया है वह अनुभव का ही विषय है।

नन्दनन्दन गोचारण हेतु श्रीगिरिराज पधारे हैं। गिरि शिखर पर गैया तृण चर रही हैं, आप सखाओं सहित विविध क्रीड़ाओं में संलग्न हैं। इतना खेलकर कोमल वपु कन्हैया को भूख लग गई। अपने सखाओं को पुकार कर पास आने को कह रहे हैं। अहो भैया सुबल, श्रीदामा आओ न गउवों को इधर पास ही ले आओ, वे यहाँ तनिक सुस्ता लेंगी। अरे सखाओं ! तुम सब यहाँ चले आओ। अरे भैयाओं ! अब बहुत देर हो गई है हम लोग भोजन कर लें क्योंकि बहुत सवेरे हमने और कुछ तो खाया नहीं केवल थोड़ा अधचला दही ही तो लिया था। श्रीकृष्ण श्रीगिरिराज की शिलाओं पर बैठे अपने सखाओं सहित भोजन करने लगे। कभी श्रीदामा की छाक में से एक कौर छीन स्वयं आरोग रहे हैं, उसी में से बचा अपने सखा श्रीदामा के मुख में अपने ही हाथ से दे रहे हैं और कभी दो, चार लड्डू उठा मधुमंगल की ओर बढ़ा रहे हैं, जब वे खा लेते हैं तो उसी अवशेष को छीनकर स्वयं ग्रहण कर रहे हैं। दही, माखन की चारों ओर 'मुझे दो', 'मुझे दो' की ध्वनि मानों गूंज रही है ऐसे विविध आमोद-प्रमोदों को निहार परमानन्ददासजी ने गाया -

गिरि पर चढ़ि गिरवरधर टेरें।
अहो भैया सुबल अहो श्रीदामा लावहु गांई खिरक के नेरें॥
खाएँ छाक अब बार भई है कछु करि घैया पिबहि सवेरे।
परमानन्द प्रभु बैठि सिलनि पर भोजन करत चहुँ दिसि फेरें॥

एक ओर सखाओं की भीर गोचारण में अपने कन्हैया के सङ्ग मत्त हो झूम उठी तो दूसरी ओर श्यामसुन्दर इन ब्रज बालाओं में नित्य किशोर रूप में प्रकट होकर उनसे दूध दही का दान माँगने लगे। गिरिराज को अपनी सम्पत्ति की घोषणा कर इन गोप कुमारियों से दूध दही का दान माँग रहे हैं। कभी तो यह रमणी वृन्द अपने प्राणप्रेष्ठ को उनका अभीप्सित सहज ही प्रदान कर सुख में मग्न हो जाती हैं तो कभी यह माँग, प्रणयपगी रार-तकरार में परिणत हो किसी सुरस रस की भूमिका बना देती है। ऐसे ही एक ग्वालिनी से दान माँगने पर वह साहस बटोर उपालम्भ देती हुई कहने लगी 'गिरिवर को अपने घर का ही मान रहे हो कन्हैया ! हम जानती हैं तुम इसी बल पर हमसे दान माँगते हो। तुम अपने को बड़े घर का तो कहते हो , परन्तु वन में गाय चराते घूमना बड़े घर वालों का काम तो है नहीं। कोई आभूषण भी तुम्हारे पास नहीं है अतः तुम बड़े घर के किस आधार पर कहलाना चाहते हो और यह तुम्हारे

हाथ में 'सूर कान्ध कामरी हू जानति हाथ लकुटिया कर को' यह उपालम्भ दे उस बाला ने जब अपने नेत्र उठा श्रीकृष्ण की ओर एक बार निहार भर लिया तो सदा-सदा के लिए उन्हीं की हो गई। अपने प्राण-सर्वस्व की किसी मधुर रस लहरी में खो सी गई।

अनेक लीला स्मृतियाँ, रस विलास की मधुर गाथायें, उन्हीं में रसपगे उपालम्भ और उन उपालम्भों के निराकरण तथा उनके विविध ढंग श्रीगिरिराज की प्रत्येक स्थली में मुखरित हो रहे हैं।

श्रीवृन्दावन के मुकुट स्वरूप श्रीगोवर्द्धन पर्वत श्रीकृष्ण के अभिन्न कलेवर हैं। ब्रज-भूमि, श्रीगिरिराज तथा श्रीयमुनाजी श्रीकृष्ण के दिव्य स्पर्श से सिक्त, सिञ्चित आज भी पूर्ववत् अपना अस्तित्व बनाये हैं।

श्रीगिरिराज वही गिरिराज हैं जहाँ प्रिया-प्रियतम, श्यामा श्याम का केलि विलास, रस विहार अनेकानेक मिस-मिसान्तर से प्रवहमान रहा है- आज भी गतिमान है अभी भी प्रवहमान है "आदि न अन्त विहार करें" यह प्रत्यक्ष हैं तथा, प्रकट हैं, यहाँ अनेकानेक महद्जनों की अनुभूति, साक्षात्कार का हेतु बनी है। प्रिया-प्रियतम के लीला परिकर जिन्हें श्रीकृष्ण ने प्रेरित कर अपनी ही एक अत्यन्त आत्मीया सखी भक्तिमती ऊषा बहन जी को अपनी लीलाओं, अन्तरङ्गतम चरित्रों को सुनाने दर्शन का हेतु लेकर इस दृश्यमान जगत में भेजा, वह दिव्यात्मा ऊषा बहन जी के जीवन में अन्तिम समय तक प्रिया-प्रियतम की लीलाओं को सुलभ करती रहीं, उन द्वारा प्रदत्त लीलाऐं उनके (जो श्रीगिरिराज तलहटी में आज भी गतिमान है) कुछ चित्र पाठकों के आस्वादन हेतु नीचे उद्धृत कर विश्वास और श्रद्धा का सेतु प्रस्तुत करना चाह रहा हूँ। आईये उन्हीं के शब्दो में देखें-

"कन्दर्प केलि विलास की कमनीय, रमणीय इस स्थली (श्रीगिरिराज) की प्रेम पगी महिमा का बखान वाणी और लेखनी के वश में नहीं है। यही वह पुण्य स्थली है जहाँ नवल नागर नटवर श्याम सुन्दर अपनी प्राण प्रियतमा को सङ्ग ले विविध विहार करते हैं। यही वह मुनिजन वन्दिनी पावन भूमि है जहाँ अपनी प्रेयसी वृन्द में प्रेमोन्मत्त हुए मदन विलासी मनमोहन चित्तचोर, चतुर शिरोमणि .... ।"

* * *

"सखाओं की धूम से निवृत्त हो ब्रजराज सुन्दर आज गिरिराज की सुरम्य तलहटी में सुशोभित एक सघन लता मण्डप में आ गए। एक विशाल शिला पर मृदुल वस्त्र बिछा था उसी पर आसीन हो गए ... ।

उधर जब राधिका ने कुञ्ज के भीतर पग धरा तभी प्रिय के केश पाश में जटित मणि के शीतल प्रकाश में उन्होंने लिखा वह वाक्य पढ़ लिया था "नव कुसुमांचित रत्न सम्पुट श्रृङ्गार मञ्जूषा...बंध विनिर्मुक्त माधुर्य रञ्जनातुरा तृषा" प्रियतम ने सुकोमल उंगलियों से प्रिया की चिबुक उठाई। नयनों के मद में और खुमारी भर गई। प्रियतम यद्यपि जान गए थे कि प्रिया ने यह वाक्य पढ़ा है तो भी उस ओर इंगित कर उनके श्रवण में कुछ कहा। प्रिया जी के मद भरे नयन एक बार उठे फिर झुक गए .....।"

* * *

"सन्ध्या समय की श्यामल छाया में गिरि श्रृंग पर विराजित नन्द नन्दन के श्रवणों में मन्द मधुर ध्वनि ने प्रविष्ट हो उन्हें चौंका दिया। पारस्परिक मधुर वार्ता का मन्द रव वहाँ आस पास ही किसी सखी मण्डली की उपस्थिति की सूचना दे रहा था...।

प्रिय वार्ता मग्न वे बालाऐं चौंक गईं, सिहर उठीं पर झुरमुट से बाहर नहीं आईं। हाँ एक ओर के पल्लव दलों को तनिक हटाकर उन्होंने सामने की ओर देखा...उनके राग की मधुर मूर्त्ति, उनके प्राणों के प्राण नयनामृत नन्द नन्दन वृक्ष शाखा पर पिछले मोटे तने की टेक लगाए बैठे थे। उनका अरुण वर्ण उत्तरीय चरण कमलों की अरुणता से होड़ लेता समीरण के झोंकों में झूम रहा था...सांवर किशोर वंशी को वाम कर में लिये उत्तरीय को सम्हाल वृक्ष पर से कूद पड़े। शिलाओं को पार करते हुए उस झुरमुट की ओर चल पड़े जहाँ से अस्फुट सी ध्वनि आ रही थी।"

* * *

एक अन्य लीला का प्रसङ्ग

(प्रिया-प्रियतम रात्रि में इन निकुञ्जों में विश्राम भी करते हैं।)

रात्रि में समेटे रतिकणों को ओस मुक्ताओं में भर रजनी रानी ने अपना डेरा वहाँ से उठा लिया-पर उन मुक्ताओं को वहीं छोड़ गई वह। ऐसे सजीले समय में उनींदे प्रिया-प्रियतम ने अलस भरे मुकुलित नयन तनिक खोले।

प्रभात की अरुणिमा ने ऊषा की श्यामलता को विदा दी और कुञ्ज कुटीर में प्रविष्ट हो रस मत्त युगल को संकेत किया। उस अरुणिम प्रकाश में गौर श्याम कान्ति सौन्दर्य, माधुर्य की अधिष्ठात्री वह अङ्ग प्रभा...। इधर अरुणिमा ने सजग किया और उधर व्रज किशोरियों की पग पैजनियों ने अपनी मधुर झँकार से इन्हें अलस सिन्धु की अगाधता से निकाला। अब दोनों उठे, एक की अलस श्री संकोच में नहाई सी थी और एक की अलस माधुरी चञ्चलता से पूजित थी।

एक अन्य प्रसङ्ग

"श्रीराधिका यह रस रङ्गोत्सव विलोकती रहीं, मुस्कराती रहीं। अब फिर बेसुधि के अंक से निकल, सुधि साम्राज्य में आ चहक उठीं। अब फिर परिहास वचनावली, सरस विनोद मालिका का रस विलास थिरक उठा....।"

*　　　　*　　　　*

यह श्रीगिरिराज परम सौभाग्यशाली हैं जिन्हें श्रीकृष्ण ने सात दिन तक अपनी कनिष्ठ अंगुली पर धारण कर ब्रजवासियों की रक्षा की थी। प्रेम-मूर्त्त श्रृङ्गार रसराज श्रीकृष्ण ने निज जनों की रक्षा हेतु पर्वतराज गिरिराज को धारण कर, पूजनीयता प्रदान की है-

जे वंशी के भार सों झुके जात सुकुंवार।
तिन प्रिय ब्रजजन के लियैं, कर पर धर्‌यो पहार॥
गये तिमिर ऊपर जहाँ, बरसत हैं घन जोर।
गिरितर चंद उदै भयौ भामिनी भई चकोर॥
'नागरि' सों ललिता कहत सब ब्रज गिरि की छांह।
तुम चितवत पिय ओर उत त्यौं-त्यौं कंपै बांह॥

पुराणों में वर्णित श्रीगिरिराज शाप वश तिल-तिल भर नित्य क्षीण होते रहने पर भी वर्तमान में सात कोस लम्बे, आज भी सभी भावुक भक्तों के लिए दर्शनीय, वन्दनीय तथा सेवनीय हैं। इनकी नीलोज्जवल शिलाऐं, चहुँ ओर की सघन वृक्षावलि, स्थान-स्थान पर कुण्ड तथा सरोवर आज भी भक्तों को आकर्षित कर रहे हैं। गिरिराज शिलाओं का सा नीलोज्जवल वर्ण तथा सुचिक्कणता, मसृणता किसी भी पर्वत शिलाओं में देखने को नहीं मिलती। श्रीगिरिराजजी में अनेक गुफाऐं हैं, अनेक स्थानों पर श्रीकृष्ण के प्रकट काल के श्रीचरण चिन्ह भी विराजमान हैं।

श्रीगिरिराज ब्रज-वासियों के अपने देवता हैं। उनकी सभी कामनाओं को सहज पूर्ण करने वाले हैं। आज भी अनेक भक्त पूर्णिमा तथा अमावस्या को नियमित परिक्रमा लगाते हैं। इन्हीं श्रीगिरिराज की तलहटी में अनेक साधक, महात्मा वास कर भजन करते हैं।

माहात्म्य

यह गिरिराज पर्वत धन्य हैं जहाँ श्रीकृष्ण निरन्तर निवास करते हैं।

नित्यं विहरति यस्य कुञ्जेषु राधया हरिः।
किमलभ्यं प्रसादात् दर्शनात् सेवनान्नृणाम्॥

जिन श्रीगिरिराजजी की निकुञ्जों में श्रीराधिका के साथ श्रीकृष्णचन्द्र नित्य विहार करते हैं, ऐसे श्रीगिरिराज महाराज के दर्शन करने से तथा भक्तिपूर्वक सेवा करने से तथा उनकी प्रसन्नता से मनुष्य को कौन-सी वस्तु अलभ्य है ।

गोवर्द्धनश्च भगवान् यत्र गोवर्द्धनो धृतः ।
रक्षिता यादवाः सर्वे इन्द्रवृष्टि-निवारणात् ॥

(स्क० पु०)

श्रीगोवर्द्धन-रूपी भगवान श्रीकृष्ण ने इसी स्थान पर गोवर्द्धन-गिरि को धारण करके देवराज इन्द्र द्वारा की गई प्रलयंकारी वृष्टि से ब्रजवासियों की रक्षा की थी ।

श्री राधाधर सीधु नेत्रचषकैः पीत्वा गमन्मत्ततां
कृष्णः काम कला विलास निपुणो यत्कन्दरामन्दिरे।
न सस्मार दिवानिशं च ललितादत्तैस्तु कालोचितै-
र्भोगैरेष विराजते मणिधरो गोवर्द्धनः क्षमाधरः ॥

(गो० श०)

जिन श्रीगिरिराज की कन्दरा में निपुण श्रीकृष्ण ने निज नयन-सम्पुटों द्वारा श्रीवृषभानुनन्दिनी के अधर सुधा का पान कर श्रीललिता सखी द्वारा समयोचित भोगादि समर्पित किये जाने पर भी अनेक रात्रि दिवसों को जाते हुए नहीं जाना था, वही मणि-मण्डित पर्वतराज श्रीगोवर्द्धन आज भी शोभा पा रहे हैं ।

गेहात्कन्दुकमानय प्रिय सखे त्वं देवप्रस्थ प्रियां
वंशीं पुष्प सरोवरात् सुबल हे, श्रीरोहिणेयं वनात् ।
तानेवं बहुवञ्चयन् गिरिमगात्तत्केलिलिप्सुर्हरिः
तद्राधामिलनस्थली विजयते गोवर्द्धनः शैलराट् ॥

(गो० श०)

हे प्रिय सखे ! मैं अपनी कन्दुक घर पर भूल आया हूँ, उसे ले आओ, और हे देवप्रस्थ ! तुम पुष्प सरोवर पर से मेरी प्यारी मुरलिका ले आओ, हे सुबल ! तुम वन में श्रीबलरामजी को बुलाने जाओ, इस प्रकार अपने सखाओं की प्रवञ्चना करके श्रीकृष्णचन्द्र प्रेम प्राप्ति की लालसा में जिस पर्वत पर पहुँचते हैं, वही श्रीराधिकाजी का मिलन स्थल (श्रीगिरिराज) विजय को प्राप्त हो ।

श्रीगिरिराज का स्पर्श मात्र जन्म-जन्मान्तरों के पापों को क्षय करने वाला है । ब्रह्म राक्षस भी अनायास तथा सहज ही यदि किसी प्रकार से श्रीगिरिराजजी का स्पर्श कर ले तो मुक्त होकर दिव्य स्वरूप को प्राप्त हो जाता है । श्रीगिरिराज साक्षात् श्रीकृष्ण ही हैं- अतः भगवान के दर्शन तथा स्पर्श से जो फल प्राप्त होता है वही फल श्रीगिरिराजजी के दर्शन तथा स्पर्श से सहज प्राप्त हो जाता है ।

स्पृश्यति यदि कदाच्छ्रिद्धया हेलया वा ।
सकृदपि गिरिराजस्यैक मूर्त्ति क्वचिद् यः ॥
द्विज सुर नरघाती तस्करोवान्तकाले ।
ब्रजति स हरिलोकं स्वेष्टदासत्वमाप्य ॥

(आ० वा० पु०)

यदि कोई मनुष्य श्रद्धा अथवा अश्रद्धा पूर्वक श्रीगिरिराजजी की एक मूर्त्ति का एकबार कहीं भी स्पर्श कर ले तो वह चाहे ब्रह्मघाती हो या देवघाती, नरघाती हो अथवा तस्कर ही क्यों न हो, अन्त समय में अपने उपास्य देवको प्राप्त कर श्रीवैकुण्ठ लोक में गमन करता है ।

जो कटि प्रदेश में विद्युत-कान्तिको तिरस्कृत करने वाले पीताम्बर को धारण किये हुए हैं, वक्षस्थल पर मणिमुक्तादि हारों के साथ पञ्चवर्ण पुष्पमाला को भी धारण किये हुए हैं तथा ललित त्रिभङ्ग होकर, करकमलों में धारण कर मधुर-वेणु वादन कर रहे हैं; देखो ! श्री श्रीराधिका के प्राणवल्लभ श्रीकृष्ण श्रीगोवर्द्धन पर्वत के ऊपर विशेष रूप से शोभायमान हो रहे हैं ।

जिन श्रीगोवर्द्धन की कन्दराओं में नाना प्रकार के केलि-विलास वैभव के आश्रय एवं माधुर्य-रूपी-अमृत के समुद्र-स्वरूप श्रीराधा-माधव युगल, प्रिय सखी समूह द्वारा सेवित होकर रास नृत्य में उन्मत्त हो, विशेष रूप से उल्लास को प्राप्त हो रहे हैं, उन कन्दराओं के माहात्म्य का सहस्रयुग तक वर्णन करके भी सम्पूर्ण वर्णन नहीं किया जा सकता ।

राधा स्कन्धे वामबाहुप्रकोष्ठं धृत्वा कृष्णः मन्दमन्दंविहस्य ।
पश्यन् प्राचीं पाटलां सुप्रभाते हास्यं लेभे यत्र तन्मेनिजेष्टः ॥

(गोवर्द्धन शतक)

जहाँ श्रीगोवर्द्धन-शिखर पर प्रभात के समय श्रीकृष्णचन्द्र मन्द-मन्द हास्य सहित श्रीराधिका के स्कन्ध पर अपने वाम बाहु प्रकोष्ठ को रखकर तथा पूर्व दिशा को रक्त वर्ण निहार पुनः मुस्कराने लगे-ऐसे श्रीगिरिराज ही मेरे इष्ट हैं ।

प्राकट्य

सर्वतीर्थमयः श्यामो घनश्यामः सुरप्रियः ॥
भारतात्पश्चिमदिशि शाल्मली द्वीप मध्यतः ।
गोवर्द्धनो जन्मलेभे पत्न्यां द्रोणाचलस्य च ॥
पुलस्त्येन समानीतो भारते ब्रज मण्डले ।
वैदेह तस्यागमनं मया तुभ्यं पुरोदितम् ॥[1]

(गर्ग संहिता 3/9/43-45)

1. नोटः फुटनोट पेज नं. 95 मे हें ।

श्रीगिरिराज का माहात्म्यादि सुनने के बाद राजा बहुलाश्व ने श्रीनारदजी से श्रीगिरिराज के प्राकट्य का प्रसङ्ग जानने की जिज्ञासा प्रकट की। श्रीनारदजी जो भगवान श्रीकृष्ण का हृदय कहे जाते हैं बोले, सबसे पहले विशाल-काय शेषनाग का प्रादुर्भाव हुआ। उन्हीं की गोद में लोक वन्दित महालोक, गोलोक प्रकट हुआ, जिसे पा लेने पर भक्तगण इस संसार में नहीं लौटते। इसी प्रकार भगवान के वामाङ्ग से उन्हीं की इच्छा से उन्हीं की आह्लादिनी शक्ति स्वरूपा श्रीश्रीराधा प्रकट हुईं। श्रीराधा की दोनों भुजाओं से श्रीललिता एवं विशाखा का आविर्भाव हुआ और रोम-रोम से अनेकानेक सखियाँ सहचरियाँ आदि प्रकट हुईं। वहाँ श्रीकृष्ण अपनी प्राणाराध्या श्रीराधा एवं उन्हीं की कायव्यूह स्वरूपा सखिवृन्द सहित रास-मण्डल में प्रविष्ट हुए।

वहाँ नूपुरों की मधुर-ध्वनि हो रही थी। सुन्दर मणियों से आँगन शोभायमान था। अमृत की वर्षा होती रहने के कारण अगणित शोभा हो रही थी। मालती, जुही आदि पुष्पों की सुगन्ध ले समीरण प्रवहमान थी। ऐसे ही वातावरण में कोटि-कोटि मनोज-मोहन श्रीकृष्ण से श्रीराधा ने मधुर भाव में भर गम्भीर वाणी में कहा, "वृन्दावन में, यमुना के तट पर, दिव्य निकुञ्ज पार्श्व भाग में, आप रास के योग्य कोई मनोरम तथा एकान्त स्थली प्रकट कीजिये, हे प्रियतम ! यही मेरा मनोरथ है।"

श्रीनारदजी कहते हैं, भगवान ने 'तथाऽस्तु' कहकर एकान्त लीला के योग्य स्थान का चिन्तन करते हुए नेत्र कमलों द्वारा अपने हृदय की ओर देखा। उसी समय गोपी समुदाय के देखते-देखते हृदय से अनुराग के मूर्त्तिमान अंकुर की भाँति एक सघन तेजोमय पुंज प्रकट हुआ। रसभूमि में गिरकर वह पर्वत के आकार में बढ़ गया। सारा का सारा दिव्य पर्वत रत्नमय तथा धातुमय था। सुन्दर झरनों तथा कन्दराओं से उसकी शोभा हो रही थी। कदम्ब, बकुल, मन्दार और कुन्द वृक्ष से सम्पन्न उस सुरम्य पर्वत पर पक्षी चहचहा रहे थे तथा अमित शोभा को बढ़ा रहे थे। इसे ही विद्वानों ने शतश्रृङ्ग पर्वत कहा है।

इस प्रकार यह गिरिराज साक्षात् श्रीकृष्ण से प्रेरित होकर ब्रज-मण्डल में आये हैं। यह सर्वतीर्थमय हैं। लताकुञ्जों से परवेष्टित, श्यामल-शिलाओं से सुशोभित हैं अतः श्रीगिरिराज देवताओं के भी प्रिय हैं।

श्रीगिरिराज तो ब्रज भक्तों के लिये ही पधारे हैं। साक्षात् श्रीहरि भगवान ही श्रीगिरिराज महाराज के रूप में विराजमान हैं। श्रीसूरदास जी कह रहे हैं-

1. (यह साक्षात् गिरिवर श्रीकृष्ण द्वारा इस ब्रज मण्डल में आये हैं।) लता कुञ्जों से श्याम आभा धारण करने वाले यह श्रेष्ठ गिरि मेघ की भाँति श्याम तथा देवताओं के प्रिय हैं। भारत के पश्चिम में शाल्मली द्वीप के मध्य भाग में द्रोणाचल की पत्नी के गर्भ से गोवर्द्धन ने जन्म लिया। महर्षि पुलस्त्य इसे भारत के ब्रज मण्डल में ले आये। विदेहराज ! गोवर्द्धन के आगमन की बात मैं तुमसे पहले ही निवेदन कर चुका हूँ।

आदिलोक बैकुण्ठ में ब्रज परिपूरन सोय।
ब्रजवासी हितकारने आयौ हरि गिरि होय॥

ब्रज में आगमन

दानलीलां मानलीलां हरिरत्रकरिष्यति ।
तस्मान्मया न गन्तव्यं भूमिश्चेयं कलिन्दजा॥
गोलोकाद्राधया सार्द्धं श्रीकृष्णोऽत्रागमिष्यति ।
कृतकृत्यो भविष्यामि कृत्वातद्दर्शनं परम् ॥
इतिविचार्य मनसा भूरिभारं ददौ करे ।
तदा मुनिश्च श्रान्तोऽभूद्भूत पूर्वगतस्मृतिः ॥
करादुत्तार्य तं शैलं निधाय ब्रजमण्डले ।
लधुशंकांकर्तुमसौ गतोऽभूद्भार पीड़ितः ॥[1]

(ग-सं० 2/2/38-41)

एक समय मुनि श्रेष्ठ पुलस्त्यजी भ्रमण करते-करते शाल्मली द्वीप पधारे तथा द्रोणाचल नन्दन श्रीगिरिराज के दर्शन कर परम प्रसन्न हो गये। द्रोणाचलजी ने पुलस्त्यजी का आदर सम्मान कर उनके आने का कारण जानना चाहा। पुलस्त्यजी महाराज बोले, "हे द्रोण ! तुम पर्वतों में श्रेष्ठ हो तथा समस्त देवताओं द्वारा पूजित हो, नाना प्रकार की दिव्य औषधियों से संयुत हो, मैं काशी वासी मुनि तुम्हारे पास एक प्रार्थना लेकर आया हूँ। मुझे तुम अपने पुत्र गोवर्द्धन को दे दो। देव-देव विश्वेश्वर की जो काशी नगरी है, वहाँ का बड़ा महत्त्व है। यदि किसी पापी का भी शरीर वहाँ छूट जाये तो वह मुक्त हो जाता है। वहाँ साक्षात् विश्वेश्वर विराजमान हैं; वहाँ कोई पर्वत नहीं हैं। मैं इसे वहाँ स्थापित करना चाहता हूँ।"

पुत्र वियोग से दुःखी होने पर भी अभ्यागत के सम्मानार्थ श्रीद्रोण ने पुलस्त्य ऋषि से कहा, "मैं गोवर्द्धन से आपका अभिप्राय कहता हूँ।"

श्रीद्रोण से समस्त वृत्तान्त सुनकर श्रीगिरिराज ने पुलस्त्यजी से कहा मेरी लम्बाई आठ योजन, चौड़ाई पाँच योजन तथा ऊँचाई दो योजन हैं, आप मुझे ले चलने में किस प्रकार सक्षम हो सकेंगे।

---

1. श्रीहरि भगवान यहाँ दानलीला तथा मान लीला करेंगे, इसलिये मुझे यहाँ से अन्यत्र गमन करना नहीं चाहिये, क्योंकि यह भूमि पवित्र है, यहाँ पवित्र श्रीयमुना हैं। यहाँ ही गोलोक से श्रीराधिका सहित श्रीकृष्ण भगवान अवतार ग्रहण कर पधारेंगे। उनके उत्तम दर्शन करके मैं कृत-कृत्य हो जाऊँगा। ऐसा मन में विचार कर श्रीगोवर्द्धन ने मुनि के हाथ पर अपना भार बढ़ाया, मुनि परिश्रान्त हो गये, पहले की बात उन्हें स्मरण न रही, अतः उन्होंने पर्वत को उतार कर ब्रजमण्डल में स्थापित कर दिया।

गोवर्द्धन की बात सुनकर श्रीपुलस्त्यजी ने प्रसन्नतावश अपने तपोबल का विचार कर कहा, "हे पुत्र मेरी हथेली पर विराज कर तुम आनन्द से चले चलो।"

गोवर्द्धन पुनः मुनि से बोले, "रास्ते में अधिक भार के कारण जहाँ भी आप मुझे उतार कर पधरा देंगे पुनः मैं वहाँ से आगे नहीं जाऊँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

श्रीपुलस्त्य-ऋषि ने यह प्रतिज्ञा स्वीकार कर ली तथा अपने तेज-बल से अपनी हथेली पर श्रीगोवर्द्धन को पधराया और महापुरी की ओर चलने लगे। धीरे-धीरे वे ब्रज-मण्डल में आ पहुँचे।

"जाति-स्मर श्रीगोवर्द्धन, भगवान् श्रीकृष्ण के प्राकट्य, ग्वाल-बालकों के सङ्ग-क्रीड़ा, दान मान लीलादि का विचार कर यमुना तीर स्थित ब्रज-भूमि को कभी नहीं छोड़ूँगा" ऐसा विचार करने लगे तथा धीरे-धीरे अपना भार बढ़ाया।

श्रीपुलस्त्यजी परिश्रान्त हो गये तथा उन्होंने श्रीगिरिराज को हथेली से उतार कर ब्रज-मण्डल में स्थापित कर दिया। अपने नित्य कर्म से निवृत्त हो जब वे पुनः चलने लगे तो उन्होंने श्रीगिरिराज को अपने तेज-बल से उठाने का प्रयास किया; परन्तु गोवर्द्धन न उठे।

मुनि ने स्तुति कर गोवर्द्धन से न उठने का कारण जानना चाहा। श्रीगोवर्द्धन ने अपनी प्रतिज्ञा स्मरण कराते हुए मुनि को प्रणाम किया। इस सब का स्मरण कर मुनि स्तब्ध रह गये। क्रोध के कारण उनके अधरोष्ठ प्रकम्पित हो गये तथा श्रीद्रोणाचल नन्दन[1] गोवर्द्धन को शाप देकर बोले, "हे गोवर्द्धन ! तुमने मेरा मनोरथ पूरा होने में विघ्न पहुँचाया है, अतएव आज से तुम तिल-तिल भर प्रतिदिन क्षीण होते जाओगे।" मुनि यह कहकर काशी की ओर चले गये।

श्रीगोवर्द्धन तभी से तिल-तिल भर प्रतिदिन क्षीण हो रहे हैं। आज से शतवर्ष और पंचदश वर्ष पूर्व जो स्वरूप हमारे दृष्टि गोचर थे, आज उस से परिवर्तित दीखते हैं।

इसके अतिरिक्त भी एक अन्य प्रसङ्ग आदि वाराह पुराण के आधार पर विख्यात है ! अवश्य ही त्रेता युग में श्रीरामावतार से सम्बन्धित है। उसका विवरण हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

सेतुबन्ध के समय श्रीरामचन्द्रजी की आज्ञा से हनुमानजी श्रीगिरिराज को अपने कन्धे पर उठाये ला रहे थे, देववाणी हुई "सेतुबन्ध पूर्ण हो गया।"

नोट 1: भारत धर्म प्रधान देश है। हमारे यहाँ हर प्रसंग में देवी देवताओं का पूजन होता है। हमारी श्रीगंगा यमुना नदी रूप में हैं साथ ही देहधारी देवियों के रूप में विराजती हैं। श्रीतुलसी महारानी जहाँ हमारे सामने पौधे के रूप में दीखती हैं वहीं श्वेताम्बरधरा देहधारी देवी भी हैं। हिमाचल पर्वत तथा मैनाजी का प्रसंग जगत् विख्यात है। अतः द्रोणाचार्य के पुत्र के रूप में श्रीगोवर्द्धन के जन्म का प्रसंग सर्वथा संगत है।

यह बात सुनते ही, श्रीहनुमानजी ने, गोवर्द्धन-पर्वत को जहाँ का तहाँ स्थापित कर दिया।

श्रीगिरिराज ने हनुमानजी से कहा, "आपने मुझे भगवान की चरण रज से वंचित रहने दिया है जो आपके सर्वथा योग्य नहीं है।"

भक्तराज श्रीहनुमानजी ने कहा, "हे गिरिवर मुझे क्षमा कीजिये। देवराज इन्द्र जब गोपों द्वारा पूजा ग्रहण करेंगे; भगवान श्रीकृष्ण उसका खण्डन करेंगे। उससे कुपित होकर मद में मतवाले इन्द्र ब्रज में प्रलयंकारी वर्षा करेंगे, उसी समय हे गिरिश्रेष्ठ ! भगवान श्रीकृष्ण, ब्रज-वासियों की रक्षा हेतु, तुम्हें अपनी कनिष्ठ अंगुली पर सप्ताह पर्यन्त धारण किये रहेंगे। अतः तुम उस समय की प्रतीक्षा करो।"

सेवा हेतु लाये गये गिरवर के मन का क्षोभ जान, श्रीरामचन्द्रजी महाराज ने आश्वासन देते हुए कहा, "सेतुबन्ध हेतु लाये गये सभी पर्वत मेरे चरण स्पर्श से मुक्त हो गये। क्योंकि गोवर्द्धन पर्वत इस समय वंचित रह गये हैं; इन्हें मैं सर्वाङ्ग स्पर्श से विविध लीला विलास से, गोचारण लीला के समय, ब्रज गोपिकाओं के साथ एकान्तिक रास-विलासादि के द्वारा सर्वाङ्ग-स्पर्श प्रदान कर हरिदासों में श्रेष्ठ बनाऊँगा।" ऐसा ही हुआ, श्रीकृष्णावतार में श्रीगिरिराज 'श्रीहरिदास-वर्य' कहलाये। आज भी श्रीकृष्ण ही की भाँति हम सभी के ध्येय हैं। कलियुग में कल्प वृक्ष के समान कामना पूर्ण करने वाले हैं। श्रीकृष्ण ने अपना ही दूसरा रूप मान इन्हें 'वृहद्वपुः' कहा है।

तीर्थ स्थलियाँ

गिरिराज के स्वरूप प्राकट्य तथा माहात्म्य के विषय में हम ऊपर पढ़ चुके हैं, आइये अब उन्हीं श्रीगिरिराज के अनेक तीर्थों की महिमा का संक्षेप में आस्वादन करें।

श्रीश्रीराधा कुण्ड (आरिट ग्राम)

सर्वपापहरस्तीर्थ नमस्ते हरिमुक्तिदः ।
नमः कैवल्यनाथाय राधाकृष्णाभिधायिने ॥

(वाराह पु०)

हे श्रीराधा (कुण्ड) कृष्ण (कुण्ड) नाम कुण्ड द्वय आप समस्त पापों को क्षय करने वाले तथा हरि-प्राप्ति रूप कैवल्य को देने वाले हैं। आपको नमस्कार है।

इन कुण्ड-द्वय का माहात्म्य पुराणों में वर्णित है। ऋषि-महर्षियों की ज्ञान-परम्परा को हमारे सामने नये रूप में प्रस्तुत करने वाले महानुभाव श्रीमन्निम्बार्काचार्य

जी, श्रीरामानुजाचार्य जी, श्री विष्णुस्वामी तथा श्रीमध्वाचार्यजी हुए हैं । उन्हीं के विचार एवं भाव-धाराओं को और अधिक सुगम सुबोध बनाकर हमारे सामने प्रस्तुत करने वाले हुए श्रीहरिव्यासदेवाचार्य, श्रीरामानन्दजी, महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी तथा श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ।

कुण्ड-द्वय आचार्यगण तथा भावुक भक्तों को अपने नित्य और प्रकट स्वरूपों का बोध कराते रहे हैं । जो नित्य है, वह भले ही साधारण जगत् के लिए अदृष्ट रहे, परन्तु महानुभावों और भावुक भक्तवृन्द के लिए सदा प्रकट और लीलास्वादन के हेतु रहे हैं ।

श्रीनिम्बार्काचार्यजी ने अपने शिष्य श्रीनिवासाचार्य को इस कुण्ड की महिमा से अवगत कराकर आदेश दिया कि श्रीराधाकुण्ड के तट पर अमुक स्तोत्र का नियमित पाठ करने से उन्हें श्रीराधा-कृष्ण की पूर्ण कृपा का लाभ होगा । ऐसा हुआ भी । उसी स्तोत्र का अंश हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं -

सदा राधिका नाम जिह्वाग्रतः स्यात्।
सदा राधिकारूपमक्ष्यग्र आस्ताम् ॥
श्रुतौ राधिकाकीर्तिरन्तः स्वभावे ।
गुणौ राधिकायाः श्रिया एतदीहे ॥

(मेरे) जिह्वाग्र पर श्रीश्रीराधिका का नाम हो, नेत्रों के आगे श्रीराधा का रूप हो, मेरे कानों में श्रीराधिका की कीर्ति तथा अन्तःकरण में सहज उन्हीं के भाव-गुण आदि का स्फुरण हो ।

अपनी दैनिक चर्या को प्रिया-प्रियतम की लीला-चर्या में पूर्णतः ओत-प्रोत कर देने वाले भक्त भला उससे कैसे वंचित रह सकते हैं ?

कुण्ड द्वय का माहात्म्य

यथा राधा प्रिया विष्णोः तस्याः कुण्डं प्रियं तथा ।
सर्वगोपीषु सेवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ॥

(पद्म पुराण)

जिस प्रकार समस्त गोपियों में श्रीराधाजी श्रीकृष्णको प्रिय हैं; उसी प्रकार श्रीराधाजी का प्रिय कुण्ड भी उन्हें अत्यन्त प्रिय है ।

अरिष्टराधाकुण्डाभ्यां स्नानात् फलमवाप्यते।
राजसूयाश्वमेधाभ्यां नात्र कार्या विचारणा ॥

(आ० वा० पु०)

राजसूय अथवा अश्वमेध यज्ञ करने से जिस फल की प्राप्ति होती है; वही फल अरिष्ट कुण्ड (श्रीकृष्ण कुण्ड) तथा श्रीराधाकुण्ड में स्नान करने मात्र से प्राप्त होता है । इसमें कोई तर्क नहीं करना चाहिये ।

गोवर्धनगिरौ रम्ये राधाकुण्डं प्रियं हरेः ।
कार्तिके बहुलाष्टम्यां तत्र स्नात्वा हरेः प्रियः ॥
नरो भक्तो भवेद्विप्रतत्स्थितस्य प्रतोषणम् ॥

(पद्म पुराण)

श्रीहरि का प्रिय रमणीय श्रीराधाकुण्ड गोवर्द्धन पर्वत की तलहटी में शोभायमान है । कार्तिक मास की कृष्णाष्टमी के दिन यहाँ स्नान करने वाले भक्तों को श्रीराधाकुण्डविहारी श्रीहरि की भक्ति प्राप्त होती है ।

दीपोत्सवे कार्तिके च राधाकृण्डे युधिष्ठिर।
दृश्यते सकलं विश्वं भृत्यैर्विष्णुपरायणैः ॥

(पद्म पुराण)

कार्तिक अर्थात् दिवाली के दिन श्रीराधाकुण्ड में विष्णु परायण वैष्णवों के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड देखे जाते हैं ।

बहुविधिमणिरत्नै श्चित्रितोदारतीर्थे ।
सुमधुरजलपूर्णे कुण्डयुग्मे चकास्तः ॥
विकसितकमलान्तर्नर्तिते खञ्जनात्या ।
प्रशमित भवतापः स्नान-वासादिभिः स्यात् ॥

बहु प्रकार मणि एवं रत्नों द्वारा चित्रित चतुः पार्श्वस्थ प्रशस्त जिनके घाट हैं, ऐसे सुन्दर जल के द्वारा परिपूर्ण श्रीराधाकुण्ड एवं श्री श्यामकुण्ड अतिशय शोभा को प्राप्त हो रहे हैं । उन कमलों पर खञ्जन पक्षी समूह नृत्य निरत हैं । इन कुण्डों में स्नान करने से और तट पर वास करने से तथा दान पुण्यादि करने से मनुष्य के संसारी तापों का नाश होता है ।

कुण्डद्वय का प्राकट्य

कुण्डद्वय के प्राकट्य के सम्बन्ध में पौराणिक प्रमाण तो हैं ही-श्रीजीव गोस्वामीपाद ने गोपाल चम्पू में अरिष्टासुर-वध तथा श्रीराधा-कृष्ण कुण्ड के प्राकट्य सम्बन्धी निम्न वृत्तान्त दिये हैं-

अनेकानेक दैत्यों का वध हो जाने के बाद कंस की चिन्ता और बढ़ गई । उसने अपने विश्वास पात्र अरिष्टासुर और केशी दैत्य को बुलाकर श्रीकृष्ण का वध कराने की असफल चेष्टा पुनः की ।

अरिष्टासुर गोकुल में प्रविष्ट हुआ, लगता था मानो कोई चलता-फिरता पर्वत ही हो । भगवान् श्रीकृष्ण ने उसी का सींग उखाड़कर उसका वध कर दिया ।

'ततस्तु राधिकात्यक्तो ललितामोहनस्तदा ।
अस्माकं नैव संसर्गो वृषहत्यासमन्वितः ॥'

(ब्रज भक्ति विलास)

अरिष्टासुर का वध हो जाने पर बहुत से गोपों ने श्रीकृष्ण को वृष हत्या का दोष लगाया, इससे प्रभावित होकर श्रीराधा तथा अन्य सखियों को भी श्रीकृष्ण से संसर्ग विच्छेद करना पड़ा।

वसन्तकालीन रासलीला के अन्तर्गत आये हुए वृषासुर को मारने के लिए उद्यत श्रीकृष्ण के वेग की शीघ्रता को ही जब देवगण नहीं देख सके, तब उनके परिश्रम का क्या अनुमान कर सकते थे।

विघ्नरूप में आए अरिष्टासुर का श्रीकृष्ण के द्वारा वध हो गया। भगवान श्रीकृष्ण का वेग अभी भी शान्त न हुआ। श्रीकृष्ण की एड़ी के प्रहार से विदीर्ण वह स्थल तीर्थ स्वरूप होकर धर्म, काम, मोक्ष प्रदान करने वाला श्रीकृष्ण-कुण्ड या श्यामकुण्ड नाम से विख्यात हो गया।

श्रीकृष्ण ने सखाओं सहित इसमें स्नान किया और बाहर आकर बहुत-सा दान दिया जिससे सभी ब्रजवासी विप्र प्रसन्न हुए।

वहीं रास के लिए उपयुक्त स्थली रचित थी। अभिसार के समय चञ्चल वस्त्रों वाली ब्रजाङ्गनाओं की श्रेणी शोभा पा रही थी। ऐसा लगता था मानो वे कामदेव की विजय पताकाएँ हों।

श्रीकृष्ण किञ्चित् शान्त होकर अपने द्वारा निर्मित श्यामकुण्ड की ओर इंगित कर प्रियाजी को दिखलाने लगे और परिहास पूर्वक बोले-

'प्रिये ! श्यामकुण्ड नामक यह हमारा सरोवर सागर की तरह श्रीगिरिराज का संयोग पाकर, अनेक प्रकार के कमलों की उत्पत्ति कर रहा है। जिस प्रकार मैं, शिष्टजन-कष्टदायक, पापी, अरिष्टासुर का विनाशक हूँ, उसी प्रकार यह कुण्ड भी घोर पापों, दुःखों को दूर करने वाला है। इसलिए मैंने तो सुकृत का विस्तार करने वाले इस सरोवर की रचना करके कृतार्थता प्राप्त कर ली, किन्तु प्रिये ! तुमने तो ऐसा निपुणतायुक्त कोई पुण्य किया नहीं, अतः गुणियों के बीच में किस प्रकार गणना प्राप्त करोगी।'

सखियों ने खिलखिला कर किशोरी का पक्ष लेते हुए कहा-वृष को मारने का अघ तो आपको ही लगा था। अतः आपने प्रायश्चित किया सो ठीक ही है।

श्रीकृष्ण ने परिहास पूर्वक कहा यह वृष निश्चय ही धर्म एवं गो-समूह का विरोधी था, अतः धर्म की पक्षपातिनी होने के कारण, यह पाप प्रियाजी पर लगता है क्योंकि प्रजा का किया गया पाप राजा को ही लगता है। तुम्हारी किशोरीजी वृन्दावनाधीश्वरी हैं और हम इनकी प्रजा हैं।

अनन्तर उस वसन्त के रास-विलास वाली रात्रि के प्रातःकाल ही अगणित सखियों के द्वारा जिनकी आराधना की गई है एवं उन्हीं की सहायता से जो परिपोषित हैं ऐसी श्रीराधिका के निज करकमलों द्वारा (अर्थात् अपने कङ्कण द्वारा) कुण्ड का निर्माण किया गया। वह सभी के देखते-देखते जल से परिपूर्ण हो गया।

सर्व प्रकार के सुखों तथा भक्ति को प्रदान करने वाला मनोहर श्रीराधाकुण्ड प्रिया-प्रियतम के अत्यन्त सुख रूप परिमल से भली प्रकार उल्लसित हो गया।

श्रीकृष्ण-कुण्ड में सम्पूर्ण तीर्थों ने प्रत्यक्ष होकर प्रवेश किया। श्रीकृष्ण-कुण्ड का जल ही श्रीराधा-कुण्ड में भरने के कारण समस्त तीर्थों का निवास श्रीराधा-कुण्ड में भी हो गया।

गोलोक धाम में श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण कुण्ड

नित्य प्रकट श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा-कुण्ड केवल प्रकट लीला के तीर्थमात्र नहीं है, प्रत्युत इनका सम्बन्ध नित्यलीला से है। वस्तुतः इन कुण्डद्वय का प्राकट्य स्थल प्रिया-प्रियतम का नित्यधाम गोलोक धाम ही है।

गोलोक धाम की रमणीय निकुञ्ज में प्रिया-प्रियतम अपनी प्रिय सखियों सहित विराजमान हैं। मालती, केतकी, जुही, मल्लिका, कुन्द, मन्दारादि की भीनी गन्ध ले सुखद समीर मन्द-मन्थर गति से बह रहा है। शुक-सारिका तथा केकी समूह अपनी मधुर वाणी से वातावरण को सरस बनाये हुए हैं। सुगन्धित पवन का अनुगमन करते भ्रमर समूह बौराए से यत्र-तत्र दीख रहे हैं। शतश्रृङ्ग पर्वत की तलहटी और विरजा का सान्निध्य, कल्पनातीत कमनीयता है।

हाँ, तो श्रीराधा-कृष्ण विराजमान हैं। कुछ सखियाँ व्यजन कर रही हैं, कुछ चँवर डुला रही हैं, नाना वाद्यों के मधुर गुञ्जन से वातावरण मुखरित है। अकस्मात् श्रीकृष्ण राधाभाव-भावित हो अपने को श्रीराधा समझने लगे।

अपने ही संकल्पों की सिद्धि के वशीभूत श्रीराधा भी श्रीकृष्ण-भाव-भावित हो गईं। उनके नेत्रों से अविरल अश्रु प्रवाहित होने लगे।

अपनी प्राण-प्रिया स्वामिनी की मनोदशा देख सेवा-सावधान सखियों ने श्रीराधा को सान्त्वना देने की भरसक चेष्टा की। किञ्चित् संज्ञा प्राप्त कर श्रीराधिका कहने लगीं, अहो ! वे छलिया तो ऐसे हैं ही। कदाचित् विरजा की निकुञ्ज में गये होंगे परन्तु मैं तो उनके बिना जीवन धारण न कर सकूँगी।

श्रीश्रीराधा की मनोदशा देखकर एक सखी श्रीकृष्ण के पास आकर बोली-

"हे प्रियतम ! तुम्हारे वियोग के कारण हमारी सखी-स्वामिनी श्रीराधा अत्यन्त कातर हो रही हैं। उन्हें सान्त्वना देने का एकमात्र उपाय तुम्हारा उनके पास जाना ही है।"

इसी बीच आकाशवाणी हुई-

"हे कृष्ण ! तुम वृथा ही खेद कर रहे हो। श्रीराधा के नवाक्षर मन्त्र का जप करो, उसके वशीभूत हुई श्रीराधा स्वयं तुम्हारे पास आ जावेंगी।"

यही हुआ-श्रीराधा अपनी सखियों सहित श्रीकृष्ण के पास चली आईं। पास

आने पर भी श्रीराधा सहज माणवश नयन नत किये रहीं और भूमि पर ही दृष्टि टिकाये रहीं। इस पर श्रीकृष्ण बोले-

"हे प्रिये! मैं तुम्हारा अपराधी हूँ। मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम चाहो तो मुझे इच्छित दण्ड दे सकती हो, मैंने तुम्हें कष्ट पहुँचाया है जो सर्वथा उचित न था, हे प्रिये! मुझे भी बहुत कष्ट हुआ। इस विरहावस्था में तुम्हारे और मेरे नेत्रों से प्रवाहित अश्रुजल से यह दो कुण्ड स्वरूप दृष्टिगोचर हो रहे हैं। हे मानिनी! तुम्हारे नेत्रों के जल से पूरित कुण्ड श्रीराधा-कुण्ड नाम से विख्यात होगा तथा मेरे अश्रुजल से भरा यह पास ही का दूसरा कुण्ड श्रीकृष्ण कुण्ड के नाम से जाना जावेगा। यहाँ हम जल क्रीड़ा करेंगे। यथा

गलदश्रुप्रवाहोघैरगाधं कुण्डमुत्थितम् ।
मन्नामांकितमेतद्धि कृष्णकुण्डं भविष्यति ॥
तवापि नेत्रसलिलैरंजनच्छुरितैर्बहु ।
जातं कुण्डं च त्वन्नाम्ना राधाकुण्डं भविष्यति॥
जलक्रीड़ा विधानानि भविष्यन्त्यावयोरिह ।
सिद्धिरूपासि चाराध्या राधिका जीवनं मम ॥

(पुराण संहिता 6/34-36)

सखी के समझाने पर श्रीराधा ने मान छोड़ दिया, परन्तु तद्भाव-भावित दशा फिर भी बनी रही।

इस प्रकार प्रिया-प्रियतम अपनी सखियों सहित श्रीराधा-कुण्ड नामक स्थली पर स्नान हेतु पधारे। वहाँ युगल ने श्रीराधाश्रुजल से प्रपूरित कुण्ड श्रीराधा-कुण्ड में स्नान कर पुनः श्रीकृष्णाश्रुजल पूरित कुण्ड (श्रीकृष्ण-कुण्ड) में स्नान किया। श्रीराधारूप भावित श्रीकृष्ण ने अपने स्वरूप को प्राप्त किया। इसी प्रकार श्रीकृष्णरूप भावित श्रीराधा भी अपने स्वरूप में आ गईं। सखियों ने यह सब कौतुहल देखा। यथा-

कृष्णकुण्डे ततः स्नातुं ययौ चोत्कण्ठ्यऽऽकुलः।
राधाश्रुपूरजनिते कुण्डे क्रीडां विधाय च ॥
कृष्णकुण्डावगाहेन स्मृतिमाप्तौ पुनश्च तौ।
राधारूपतिरोधानात्पुनः कृष्णत्वमागतः ॥
कृष्णरूपतिरोधानाद्राधा राधत्वमाययौ ।
सख्यः कुतूहलाक्रान्तास्तयो रूपविपर्ययात् ॥

(पुराण संहिता 7/57-59)

गोलोक धाम के यही श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण-कुण्ड प्रकट लीला में वृन्दावन में अवतरित हुए।

श्री श्रीमन्चैतन्य महाप्रभु द्वारा प्रकाश

एई मत महाप्रभु नाचिते-नाचिते ।
आरिट ग्रामे आसि बाह्य हैल आचम्बिते ॥
आरिटे राधाकुण्ड वार्ता पूछेलोक स्थाने ।
केहो नहिं कहे संगेर ब्राह्मण न जाने ॥

(श्रीचैतन्य चरितामृत)

ब्रज भ्रमण में निकले प्रभु नृत्य तथा गान करते आरिट ग्राम में आकर बाह्य ज्ञान को प्राप्त हुए और उन्होंने श्रीराधा-कुण्ड के विषय में वहाँ के लोगों से पूछा। किसी ने भी कुछ न बताया, यहाँ तक कि साथ में आये मार्ग-प्रदर्शक ब्राह्मण भी इस बात से अनभिज्ञ थे।

उन्होंने अनुभव किया और पास ही के दो धान्य क्षेत्रों को देखा। उन्हीं में से आचमन लिया उनकी रज को मस्तक पर धारण किया।

उपर्युक्त उद्धरण से यह तो स्पष्ट ही है कि आरिट ग्राम पहले से ही विख्यात था। अरिष्टासुर वध के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस कुण्ड का निर्माण किया, वह अरिष्ट कुण्ड भी कहा गया है। अरिष्ट कुण्ड का वर्णन पहले ही से चला आया है। सर्व साधारण जनता अवश्य ही इस बात से अनभिज्ञ रही, परन्तु आचार्यकोटि के महानुभावों के लिए नित्य प्रकट लीला-स्थली पूर्व से ही लीला आस्वादन का माध्यम रही।

प्रकटलीला में अवतरित ये कुण्डद्वय कालान्तर में लुप्त प्रायः हो चुके थे। श्रीवज्रनाभजी ने महर्षि शांडिल्य मुनि के सहयोग से इन कुण्डरूपी तीर्थों की स्थापना की, परन्तु कालान्तर में पुनः यह स्थली लुप्त प्रायः हो गई, जिसका प्रकाश चैतन्य महाप्रभुजी ने किया।

प्रश्न उठता है कि चैतन्य महाप्रभुजी की आज्ञा से श्रीभूगर्भ गोस्वामी तथा अन्य गोस्वामीगण अनेकानेक ब्रज के लुप्त-प्रायः तीर्थों को प्रकट कर चुके थे फिर यही स्थली क्यों अप्रकट रही। इसका उत्तर एक ही है कि अत्यन्त रस गम्भीर तथा अन्तरङ्ग होने के नाते यह स्थली उनके मन की गम्यता से ओझल रही। जब श्रीचैतन्य महाप्रभु प्रेमोन्माद में मत्त होकर ब्रज में पधारे, तभी इस स्थली का प्रकाश सम्भव हुआ।

श्रीरघुनाथदासजी की वन्दना

वन्दे श्रीरघुनाथदासचरणं नित्यं समाधिस्थितम् ।
यः श्री कुण्डतटोत्तरे त्रिपलकंतक्रञ्च पीत्वाऽभजत् ॥

यस्याभीष्टलवेन कुण्डयुगलं संस्कारितं दैवतः ।
प्राच्यां श्यामसरस्तटे त्वखनयद्यो गोपकूपादिकम् ॥

श्रीराधा-कुण्ड के उत्तर तट पर जो सर्वदा समाधि में अवस्थित हैं, और जो सम्पूर्ण दिन में केवल बारह तोला छाछ पीकर भजन करते हैं, जिनकी इच्छामात्र से दैव घटित कारण से श्रीराधा-कुण्ड तथा श्रीकृष्ण-कुण्ड का जीर्णोद्धार हुआ, जिन्होंने श्रीकृष्ण-कुण्ड के पूर्व के किनारे पर गोप कुँआ खुदवाया था, ऐसे श्रीरघुनाथदास की बारम्बार वन्दना करता हूँ ।

कुण्डद्वय का (संस्कार) जीर्णोद्धार

आरिट ग्राम के समीप ही श्रीराधा-कुण्ड के तट पर जिसका प्रकाश श्रीचैतन्य महाप्रभुजी ने किया, उन्हीं के अनुयायी श्रीरघुनाथदासजी निवास करते थे । श्रीकृष्ण-कुण्ड लुप्त प्रायः होकर ब्रज की भोली-भाली जनता की भाषा में 'कारी' तथा 'पीरी' नाम से दो अलग-अलग धान्य के क्षेत्र हो गये थे । वहाँ थोड़ा जल भरा रहता था । आस-पास कोई मीठा कुँआ न था । श्रीपाद रघुनाथदासजी इन्हीं कुण्डों के जल से स्नान आदि कृत्य करते थे ।

एक दिन भजन करते समय उनके मन में विचार आया-'यदि ये कुण्ड जल से पूरित रहते तो कितना अच्छा होता ।' बाद में इस सङ्कल्प का स्मरण होने पर उन्हें पश्चात्ताप भी हुआ ।

दैववश एक घटना घटी । बद्रिकाश्रम में भगवान श्रीबद्रीनारायण के दर्शनों को कोई धनाढ्य व्यक्ति गये । उन्होंने वहाँ बहुत-सी मुद्राएँ भेंट कीं । भगवान् ने रात्रि में उन भक्त हृदय धनाढ्य पर कृपा की और स्वप्न में ही आदेश दिया कि तुम इन मुद्राओं को ले जाकर, गोवर्द्धन पर्वत के निकट, आरिट ग्राम में निवास कर रहे मेरे भक्त श्रीरघुनाथदासजी की सेवा में दे दो । यदि वे इन्हें न स्वीकारें तो उन्हें उनके संकल्प का स्मरण करवाना और सारा वृत्तान्त कहना ।

भक्तहृदय सेठजी आरिटग्राम आये और श्रीरघुनाथदासजी के पास आकर सारा वृत्तान्त कहा ।

श्रीरघुनाथदासजी स्तब्ध रह गये । उन्होंने इस कार्य में भगवान् की इच्छा जान उन सेठजी की बहुत प्रशंसा की और उन्हें भगवान का विशेष कृपा पात्र कहा । कुण्डद्वय को खुदवाने का आदेश दिया गया ।

श्रीराधा-कुण्ड खोदा गया । जब श्रीकृष्ण कुण्ड खोदा जा रहा था, उसके उत्तर के तट पर पाँच पीपल के वृक्ष थे । उन पाँचों वृक्षों को सुबह काटा जावेगा ऐसी योजना थी । रात्रि में श्रीयुधिष्ठिरजी ने स्वप्न में श्रीपाद रघुनाथदासजी

से कहा, "हम पाँचों पाण्डव यहाँ वृक्ष रूप में रहकर ब्रज-रज प्राप्ति के लिए तपस्या कर रहे हैं, आप हमें कटवावें नहीं। कालान्तर में हम स्वयं सूख जावेंगे।

सवेरा हुआ। श्रीरघुनाथदासजी उस स्थान पर पहुँचे। पाँचों वृक्षों को यथावत वहीं देखा। स्वप्न की सत्यता पर विमुग्ध हो गये और उन पाँचों वृक्षों को न काटने का आदेश दिया। कार्य पूरा हुआ। आज भी देखने से लगता है कि श्रीकृष्ण-कुण्ड, श्रीराधा-कुण्ड की भाँति चौकोर नहीं है, उसका उत्तरी तट तो सीधा भी नहीं है।

कुण्ड द्वय लीला-स्थली

अनुदिनमतिरङ्गैः प्रेममत्तालिसङ्घै-
र्वरसरसिजगन्धैर्हारि-वारि प्रपूर्णे ।
विहरत इह यस्मिन् दम्पती तौ प्रमत्तौ
तददति सुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥[1]

(श्री राधाकुण्ड स्तव)

प्रिया-प्रियतम का अत्यन्त प्रिय राधाकुण्ड दिव्य रस से परिपूर्ण है। कुण्ड का जल पद्मगन्ध से सुवासित हो रहा है अथवा युगल की केलि ही इस कुण्ड के रूप में परिणत हो गई है। प्रिया-प्रियतम की अङ्ग सौरभ से सौरभान्वित है यह कुण्ड। अपनी अनन्य प्रिया सखियों सहित श्रीराधा-कृष्ण यहाँ विहार-विलास में मग्न रहते हैं।

वृन्दावन महिमामृत के रचयिता कहते हैं, श्रीराधाकुण्ड युगल की दिव्य रसपूर्ण केलि में तो सहयोगी है ही, उनके जल विहार के समय अङ्गराग से सौरभान्वित हो रहा है साथ-साथ उस चित्रकारी के रङ्ग से रञ्जित भी हो रहा है। यथा-

अनन्त-हरि-राधिका-मधुरकेलिवृन्दैः सदा,
महाद्भुतमहो महारस-चमत्कृतीनां निधिम् ।
महोज्ज्वलं महासुसौरभतमं च वृन्दावने-
स्मरोन्मद-तदीश्वरीदयित-दिव्यकुण्डं नमः ॥[2]

1. अत्युत्कृष्ट पद्मगन्ध से सुवासित और मनोहर जल से परिपूर्ण जो श्रीराधा कुण्ड है, जहाँ श्रीराधाकृष्ण दम्पति युगल प्रेम प्रमत्त होकर प्रतिदिन प्रेममयी सखीगण सहित अनेक रस रंग विहार करते हैं, वही मनोरम श्रीराधा कुण्ड मेरा आश्रय हो।

2. मैं उस दिव्य राधाकुण्ड को नमस्कार करता हूँ जो श्रीराधिका की अनन्त मधुर केलि कलाओं से सुसम्पन्न हुआ अत्यन्त अद्भुत हो रहा है। अहो ! जो अत्यन्त उज्ज्वल है, अत्यधिक सुगन्धि से परिपूर्ण है। श्रीवृन्दावन में विराजित मधुर केलिमत्ता वृन्दावनाधीश्वरी श्रीराधिका का अत्यन्त प्रिय है-हाँ उसी दिव्य राधाकुण्ड को मेरा नमस्कार है।

अहा कैसा चिन्मय ! कैसा मधुर ! कैसा सरस सुन्दर है यह श्रीराधा-कुण्ड । इसके सोपान मणिमण्डित हैं । इसके घाट विभिन्न प्रकार की चित्रकारी से सज्जित हैं । प्रियतम यहाँ विराजमान होकर अपनी चिर-संगिनी मुरली द्वारा आह्वान कर इन रमणी वृन्द सहित मग्न हो जाते हैं ।

श्रीगोवर्द्धन-मौलि-मण्डन-महा रत्नोत्तमं राधिका-
कुण्डं मोहनपुण्डरीकनयनप्राणेश्वरीवल्लभम् ।
घूर्णन्मौलि विलोल कुण्डलवरं तुण्डेन्दु बिम्बोल्लसद्-
वंशंशंसति यत्र मादक गुणान् रोमाञ्चितो माधवः ॥

(बृ० म० 5/13)

अहा ! श्री गोवर्द्धन का मुकुटमणि-महारत्न श्रेष्ठ यही श्रीराधाकुण्ड है । इसकी दिशाएँ-यह देखो ! देखो तो ! इन मनमोहन के (किसी प्रणयावेश में पुलकित हो) शीश हिलाने के कारण जगमग-जगमग करते दोलायमान कुण्डलों की आभा से प्रकाशित हो रहा है । प्रकाश रश्मियों से पूजित इस दिव्य कुण्ड की कैसी मनोमुग्धकारी छटा है । इसी कुण्ड के तट पर बैठकर यह कमनीय किशोर मधुर मुरलिका को अपने कर पर विराजित कर, अधर रस सुधा का संचार कर, परम मादक गुणों का बखान करते हैं, उन्हीं रोमांचित तनु, कमल-नयन, प्राण-वल्लभा-वल्लभ, माधव को जो अत्यन्त प्रिय है वही-हाँ-हाँ वही, यह श्रीराधाकुण्ड है ।

अहो श्रीराधा सरोवर का कैसा अद्भुत स्वरूप है ? क्या त्रिभुवन मनोहारी श्रीकृष्ण का रूप ही कुण्ड रूप में विराजमान है अथवा यूथेश्वरी श्रीराधा का प्रेम ही मूर्त्तिमान होकर कुण्ड रूप में शोभायमान है अथवा दोनों की क्रीड़ा ही विजय को प्राप्त हो रही हैं-इस प्रकार आशंकित-सी बनी अतिशय आनन्द प्राप्त करती हुई श्रीराधा की प्रणयिनी सखियाँ जहाँ यत्र-तत्र विचरण करती रहती हैं-सभी के लिए प्रणम्य, उन श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण कुण्डको प्रणाम है ।

यत्कुञ्जेषु सुनन्दितौ परिलसद् वृन्दादिकालीगणौ ।
राधागोकुलनागरौ गलगतोद्बाहू मुदा क्रीड़तः ॥
तद् वृन्दावनधाम वाम मनिशंसौपानकैर्मण्डितं ।
यूनो केलिचमैरलंकृतमलं कुण्डं सदा मे गतिः ॥

जिसकी कुञ्जों में चारों ओर शोभायमान वृन्दादिक सखियों के साथ प्रसन्न हुई, श्रीराधा तथा गोकुल नागर श्रीकृष्ण परस्पर गलबाँह दिये क्रीड़ा करते रहते हैं तथा श्रीवृन्दावन में मनोहर सीढ़ियों से मण्डित दोनों की केलि समूह से अलंकृत यह श्रीकुण्ड सर्वदा ही मेरी गति हो ।

तीर्थ वर्णन

श्रीकृष्ण कुण्ड, मानस पावन घाट

वायोर्दिश्यस्ति सुबलानन्ददा कुञ्जशालिका।
राधयाङ्गीकृता यस्यास्तीर्थं मानस पावनम्॥[1]

(गो० ली० 7/114)

श्रीराधा नित्य ही इस घाट पर स्नान करती हैं। श्रीप्रियाजी इस कुञ्ज से अत्यन्त स्नेह रखती हैं। श्रीकृष्ण ही की भाँति यह कुञ्ज प्रियाजी को अत्यन्त प्रिय है।

श्रीराधा-कुण्ड के उत्तर में मधुमङ्गलानन्ददा नाम की कुञ्ज, जिसे ललिताजी ने अङ्गीकार किया है, इसमें भिन्न-भिन्न प्रकार की चित्रकारी हुई है। ईशान कोण में उज्ज्वलानन्ददा कुञ्ज है। यह उज्ज्वल सखा की है। इसे विशाखाजी ने अङ्गीकार किया है। इसी भाँति अर्जुन आदि सखाओं की कुञ्जें हैं।

जिह्वा मन्दिर

पास ही श्रीगिरिराज की जिह्वा के तुल्य समादरणीय शिला पूजनीय है, जो 'जिह्वा मन्दिर' नाम से विख्यात है।

श्रीराधावल्लभ घाट

श्रीहितहरिवंशजी महाराज श्रीवृन्दावन पधारने के पश्चात् अन्यत्र कहीं नहीं गये। श्रीराधा-कुण्ड का आकर्षण उन्हें श्रीराधा-कुण्ड खेंच ले आया, अतः जब वे यहाँ पधारे तो इसी घाट पर विराजे। आजकल यहाँ श्रीराधावल्लभ मन्दिर में श्रीप्रिया प्रियतम स्वरूप विराजमान हैं।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी की बैठक

श्रीकृष्णचैतन्य वन भ्रमण करिया।
एई तमालेर तले वसिल आसिया॥

(भ० र०)

यहाँ पास ही परिक्रमा की दाईं ओर तमाल वृक्ष है। ब्रज भ्रमण हेतु आये श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी यहाँ आकर विराजे तथा विश्राम किया। श्रीराधा-कुण्ड प्रकाश सम्बन्धी चर्चा हम पहले कर आये हैं।

1. श्रीश्याम कुण्ड के वायु कोण में 'सुबलानन्ददा कुञ्ज' सुबल सखा की विराजमान है। श्रीराधा इनको अपनी ही मानती हैं। इसमें जो तीर्थ विराजमान हैं उन्हें मानस पावन कहते हैं।

श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की बैठक

ब्रह्मछोंकर वृक्ष के नीचे वल्लभघाट पर श्री श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्य जी की बैठक है। आचार्य पाद यहाँ एक मास रहे। श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण किया।

पास ही श्रीगुसांई विट्ठलनाथजी की बैठक है।

वज्र कुण्ड

पितुरङ्के यथापुत्रस्तत् सुखाय चकास्ति वै।
तथाङ्के श्यामकुण्डस्य कुण्डं वज्रेण निर्मितं॥

पिता की गोद में जिस प्रकार पुत्र का बैठना सुखकर लगता है उसी प्रकार श्रीश्याम कुण्ड की गोद में श्रीवज्रनाभजी द्वारा निर्मित श्रीवज्र कुण्ड भी सुशोभित हो रहा है।

श्याम कुण्ड के चारों ओर अन्य कई मन्दिर हैं। 'श्रीबाँके बिहारी', 'श्रीमदनमोहनजी', 'श्रीराधामाधवजी', 'श्रीसीतानाथजी' आदि दर्शनीय हैं।

श्रीललिता कुण्ड

उदीच्यां श्यामकुण्डस्य विस्तृतमास्ति भक्तिदम्।
पापघ्नं ललिताकुण्डं ललितेव हरेः प्रियम्॥

श्रीश्याम कुण्ड की परिक्रमा के बाँई ओर श्रीललिताजी का एक विशाल कुण्ड है। जैसे श्रीललिताजी श्रीश्यामसुन्दर को अत्यन्त प्रिय हैं वैसे ही यह कुण्ड भी उन्हें प्रिय है।

इस कुण्ड के जल स्पर्श मात्र से जीव के समस्त पाप क्षय हो जाते हैं तथा प्रिया-प्रियतम के युगल चरणारविन्दों में प्रेमा-भक्ति प्रगाढ़ होती है।

श्रीश्रीमन्निम्बार्काचार्यजी के प्रमुख शिष्य श्रीश्रीनिवासाचार्यजी की तपस्थली यही मानी जाती है। यहीं श्रीनिवासाचार्यजी ने 'वेदान्त कौस्तुभभाष्य', 'लघुस्तवराज' आदि कई ग्रन्थों का प्रणयन किया।

श्रीललितबिहारी जी

कुण्ड के ऊपर ही यह मन्दिर स्थित है। निम्बार्कीय स्थान है।

श्री श्रीराधाकुण्ड

तत्र राधा समाश्लिष्य कृष्णमक्लिष्टकारिणम्।
स्वनाम्ना विदितं कुण्डं कृतं तीर्थमदूरतः॥

**राधाकुण्डमितिख्यातं सर्वपापहरं शुभम् ।
अरिष्टराधाकुण्डाभ्यांस्नानात्फलमवाप्नुयात्।।
राजसूयाश्वमेधानां नात्र कार्या विचारणा ।
गो नर ब्रह्म हत्यायाः पापं क्षिप्रं विनश्यति ॥**

(वा० पु०)

श्रीकृष्ण कुण्ड के पास ही श्रीराधिकाजी ने अनायास सर्व कर्म सम्पादक श्रीकृष्ण का आलिङ्गन करके अपने नाम से एक कुण्ड निर्माण किया है ।

समस्त पापों को क्षय करने वाला वह तीर्थ श्रीराधा-कुण्ड नाम से विख्यात है । अरिष्ट कुण्ड अर्थात् श्रीकृष्ण-कुण्ड व श्रीराधा-कुण्ड में स्नान करने से अति शीघ्र ही गौ हत्या, नर हत्या व ब्रह्म हत्या जनित महापाप विनष्ट हो जाते हैं और जीव निस्संदेह अश्वमेध तथा राजसूय यज्ञ के फल को प्राप्त करता है ।

अष्ट सखी कुञ्ज

**स्वसदृक्तीरनीरेण कृष्णपादाब्जजन्मना।
निजपार्श्वोपविष्टेनारिष्टकुण्डेन सङ्गतम्॥
तीरे कुञ्जा यस्य भान्त्यष्टदिक्षु-
प्रेष्ठालीनां स्वस्वनाम्ना प्रसिद्धाः ॥
ताभिः प्रेम्णा स्वीयहस्तेन यत्नात्
क्रीड़ातुष्ट्यै प्रेष्ठयौः संस्कृता ये ॥**[1]

(गो० ली० 7/26-27)

इन कुञ्जों का सौन्दर्य अपार है । वहाँ अनेक भिन्न-भिन्न प्रकार के सुगन्धित कमल शोभायमान रहते हैं । चारों ओर की वन्य प्रकृति से आकृष्ट हुए, प्रिया-प्रियतम की रसमय केलि सदैव गतिमान रहती है । यहाँ की शोभा आस्वादनीय ही है ।

इनमें प्रधाना श्रीललिताजी की श्रीललितानन्ददा तथा श्रीविशाखाजी की मदन-सुखद कुञ्ज है । इन निकुञ्जों की अपूर्व शोभा है । मणिजटित स्तम्भ हैं, मणिमय सोपान हैं, सुन्दर-सुन्दर सुगन्धि युक्त पुष्प खिले हैं । त्रिविध समीरण यहाँ सदा प्रवहमान रहती है । यहाँ की प्रकृति चैतन्य है । पक्षियों का मधुर स्वर एकान्तिक स्थली को और मादक मनहर बना देता है । कभी श्रीललिता

1. श्रीकृष्ण के चरण कमलों से उत्पन्न श्याम कुण्ड से मिले इस राधा कुण्ड के उत्तर कोण से ले कर वायुकोण तक फैली हुई आठ कुञ्जें-श्रीललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रंगदेवी तथा सुदेवी और तुंगविद्या सखियों की शोभायमान है । इनमें प्रिया-प्रियतम विलास विहार करते रहते हैं । सभी सखियाँ इन्हें सुव्यवस्थित रखती हैं ।

की निकुञ्ज में आ प्रियतम विशेष रसकेलि द्वारा सभी को अपने रस कौतुकों से आनन्द प्रदान करते हैं, तो कभी श्रीविशाखाजी का सौभाग्य पुरस्कृत होता है। सभी निकुञ्जों में लीला के अनुकूल वातावरण श्रीवृन्दा देवी की अध्यक्षता में सहज छा जाता है, प्रवेश कर समा जाता है।

प्रियतम जिस किसी कुञ्ज में प्रविष्ट होते हैं सभी ऋतुऐं वहाँ आ विराजती हैं। सरसीली स्थली को सुगन्धि से और-और मादक बनाते पुष्प स्वयं ही खिल उठते हैं। पक्षियों का कलरव, शुक-सारिकाओं की मुखरित स्वर लहरी सभी अनुकूल सरस वातावरण छा जाता है।

कभी झूलनोत्सव में परस्पर उर हार होते प्रणयी रिझवार, पुष्प चयन करने के लिए अनेक नवीन कौतुकों का सृजन करते युगल सुन्दर, कन्दुक क्रीड़ा के समय पुष्प कन्दुक से एक दूसरे पर प्रणय पगे प्रहार करते हैं, कहीं नृत्य में पायलों की झँकार में, नव-नव अलाप ले रसविवश हो जाते हैं, अपनी इन प्राण प्रियाओं सहित विहार रत हो जाते हैं। और फिर-

तत्स्पर्शतः फुल्ल-सरोज-नेत्रा कृष्णाङ्ग-संस्पर्शमिवानुभूय ।
कम्पाकुला कण्टकिताङ्ग यष्टिरुत्कापि गन्तुं स्थगितातदासीत् ॥

(गो० ली० 8/11)

प्रफुल्ल कमल-नयनी श्रीराधा गुञ्जाहार तथा चम्पकलिका के स्पर्श मात्र से प्रिय की सन्निधि में रस मग्न हो गईं। प्रिय को समीप पा, वे पुलकित तथा रोमाञ्चित हो गईं तथा वहीं स्थिर बैठी रह गईं। रस विवश यह स्थिति प्रेमाधिक्य वश थी अथवा प्रणय की रस-तरङ्गों से आलोड़ित श्रीराधा रस मग्न हो बेसुध हो रहीं थीं, यह रस मग्नता कब तक उनके रसाकुल हृदय को हिलोरती रहीं यह कौन कहता ? सखीगण उनकी इस रसदशा को देख स्वयं भी रसीली बेसुधि में मूक मौन थीं, सभी रस मग्न थे।

श्रीराधा-कुण्ड की पूर्व दिशा में 'चित्रानन्ददा' नाम की कुञ्ज है। यहाँ अति रमणीक हिंडोले सजे हैं। आग्नेय कोण में श्रीइन्दुलेखाजी की कुञ्ज विराजमान है जिसे पुर्णेन्दु कुञ्ज कहते हैं। पूर्णिमा के दिन प्रिया-प्रियतम शुभ्र वस्त्र धारण कर यहाँ विराजते हैं। दक्षिण दिशा में चम्पकलताजी की हेम कुञ्ज है। इसी कुञ्ज में भोजन बनाने में परम प्रवीणा चम्पकलताजी ने रसोई घर बना रखा है जहाँ प्रिया-प्रियतम साथ-साथ भोजन करते हैं।

श्रीराधा-कुण्ड के नैऋत कोण में श्रीरङ्ग देवीजी की सघन श्यामलता लिए मनोहर कुञ्ज विराजमान है। अरुण कुञ्ज नाम से विख्यात तुङ्ग विद्याजी की कुञ्ज, श्रीराधा कुण्ड के पशिचम में विराजमान है तथा वायु कोण में श्रीसुदेवीजी की हरि कुञ्ज पासा क्रीड़ा के लिए प्रसिद्ध है।

लगमोहन स्थान

तस्याल्पदूरे हि चकास्ति पूर्वे स्थानश्च कुण्डं लगमोहनाख्यम् ।
नीपैर्वृतं यत्र च चारयन् गाः कृष्णः प्रियायाः सह संयुतोऽभूत् ॥

(गि० मा० 3/21)

अर्थात् श्रीराधा-कुण्ड की पूर्व दिशा में थोड़ी दूर पर कदम्ब वृक्षों से आच्छादित लगमोहन स्थान तथा कुण्ड शोभायमान है। गौ-चारण करते हुए श्रीकृष्ण प्रियाजी से मिलने के लिए प्रायः यहाँ पधारते हैं।

रत्न वेदी पीठ (श्रीराधा-कुण्ड सङ्गम स्थल)

पश्यन्ति कुण्डद्वयसङ्गमेव ये राधिकामाधवपाद्पीठम् ।
स्नानञ्च कुर्वन्ति धनादिदानं ते स्वेशयोर्दास्यसुखं लभन्ते ॥

(गि० मा० 3/22)

जो लोग श्रीराधा-कुण्ड तथा श्रीश्याम-कुण्ड के सङ्गम-स्थल पर श्रीश्रीराधामाधव के मिलन स्थल रत्न वेदी पादपीठ दर्शन कर, दोनों कुण्डों में स्नान करके दान करते हैं, निश्चय ही श्रीयुगल के प्रेम को प्राप्त करते हैं।

श्रीराधाकृष्ण मन्दिर

स्नात्वा कुण्डयुगे भक्त्या दृष्ट्वा कुण्डेश्वरं शिवम्।
राधाकृष्णौ च सम्पूज्य विन्देत् सर्वेप्सितं नरः ॥

(आ० वा० पु०)

श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण-कुण्ड में स्नान करके कुण्डेश्वर भगवान शंकर के दर्शन करके तथा श्रीराधाकृष्ण का पूजन करने से मनुष्य की सभी कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं।

कहते हैं कि गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी द्वारा बाबा गोपालदास जटाधारी को जो सेवा सौंपी गई थी वही युगल मूर्त्ति आजकल यहाँ विराजमान है तथा यहाँ के स्थानीय गोस्वामी समाज इसके सेवाधिकारी हैं।

अन्य स्थल

श्रीमन्नित्यानन्दजी की पत्नी जान्हवीदेवी का मन्दिर तथा घाट, श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी की समाधि, श्रीमन्नित्यानन्दजी का मन्दिर, महाप्रभुजी का मन्दिर, श्रीवृषभानु कुण्ड आदि (जहाँ गिरिराज पूजन के समय वृषभानु बाबा ठहरे) दर्शनीय हैं।

माल्यहारि कुण्ड

श्रीराधा-कुण्ड के पश्चिम में अवस्थित है । माधवी कुञ्ज में बैठकर श्रीराधारानी ने मुक्ता माला का गुम्फन किया था । इसी सरस लीला सम्बन्धी श्रीरघुनाथदास गोस्वामीपाद की सरस अनुभूति निम्न प्रकार से व्यक्त हुई है ।

श्रीगोवर्द्धन में दीपावली महोत्सव मनाने के लिए ब्रजवासी गण उपस्थित हुए । उन्होंने भिन्न-भिन्न श्रृंगार धारण किये थे । ब्रज गोपी समूह रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्राभूषणों से सुसज्जित हो किशोरी श्रीराधा का श्रृंगार करने की दृष्टि से माल्यहारि कुण्ड के निकट ही एक चबूतरे पर बैठकर मुक्तामाला का गुम्फन करने लगीं । श्रीकृष्ण के प्रिय विचक्षण कीर ने सारा वृत्तान्त श्रीकृष्ण से कह दिया । श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधिका की रूप मधुरिमा का पान करने को आकुल हो गये । वहाँ जाकर श्रीकृष्ण ने सखियों से कुछ मुक्ता माँगे ।

नित्य नवीन रसायोजना में निपुण श्रीकिशोरीजी तथा उनकी सखियों ने मुक्ता देने से इन्कार कर दिया ।

श्रीकृष्ण ने पुनः अपनी हंसिनी तथा धेनुद्वय हेतु मुक्ताओं की याचना की । तिस पर भी सरस कौतुकवश वर्जना किये जाने पर श्रीकृष्ण, यशोदा मैया से कुछ मुक्ता ले आये तथा जाकर श्रीयमुनाजी में रोपित कर दिये, शीघ्र ही अंकुरित उन मुक्ता लताओं में सुन्दर-सुन्दर मुक्ता लग गये ।

सभी को आश्चर्य होने लगा । श्रीकृष्ण ने मैया यशोदा को यह चमत्कार दिखलाया ।

धीरे-धीरे यह बात चारों ओर फैल गई । गोपिकाओं को जब इस बात का पता चला तो वे विस्मित-सी हो गईं और श्रीकृष्ण से मुक्ता माँगने लगीं । श्रीकृष्ण ने पहले तो मुक्ता देने से इन्कार कर दिया, परन्तु कुछ अनुनय-विनय पश्चात् मुक्ता देना स्वीकार करते हुए बोले, एक शर्त पर हम मुक्ता दे सकते हैं । उसी शर्त को बड़े सरस ढंग से भक्तप्रवर सूरदासजी ने कहा है-

लै हौं दान अंग-अंग को ।
गोरेभाल लाल सैन्दुर छवि मुक्तावर सिर सुभग मंग को ॥
नकबेसरि कुटिला तरि बन को गर हमेल कुच जुग उतंग को ।
कंठ श्रीदुलरी तिलरी उर माणिक मोती हार अति रंग को ॥
बहु नग लगे जराऊ की अँगिया भुज बाहूबन्द बहुरंग को ।
दानन लैहौं तरुणि रीझत मन कहा बहु अंग अनंग को ॥
जो हरि पग जकरेऊ गाढ़े मनो मन्द-मन्द गति यह मतंग को ।
जोबन रूप अंग पाटम्बर सुनहु सूर सब यह प्रसंग को ॥

श्रीराधाकान्त मन्दिर (कुसुम सरोवर)

श्रीराधा-कुण्ड से लौटते समय बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से सुसज्जित यह मन्दिर श्रीबलवन्त राव मैया साहब द्वारा निर्मित है ।

श्रीराधाकान्त ठाकुरजी की अति सुन्दर झाँकी है ।

बहुत समय के अनेक विरक्त महात्माओं की निवास स्थली रही है । आस-पास की निर्जन स्थली प्रिया-प्रियतम की विहार स्थली है ।

कुसुम सरोवर (उद्धवजी के दर्शन)

गोवर्द्धनाद दूरेण वृन्दारण्ये सखीस्थले ।
प्रवृत्तः कुसुमाम्भोधौ कृष्णसङ्कीर्तनोत्सवः ॥[1]

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य 2/30)

सुदूर घने वृक्षों में झाँकते सुन्दर भवन उनके प्रांगण में सघन हरियाली किसी दिव्य स्थली तथा वातावरण का आभास दे रही है । लो ! सामने ही सुन्दर सोपानों से मण्डित विशाल कुण्ड अपने निर्जन, एकान्त तथा सरस वातावरण से आप्लावित किये दे रहा है । लता-पतादि स्वरूप में उद्धवजी सदैव यहाँ विराजमान रहते हैं । भगवान श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभजी ने श्रीउद्धवजी की साक्षात् कृपा प्राप्त कर, एक मास पर्यन्त श्रीमद्भागवत पाठ का आयोजन कर, द्वारिका की महिषियों को श्रीकृष्णचन्द्र के साक्षात् दर्शन कराये थे ।

यह कुसुमवन है । यहाँ से विविध कुसुमों को चयन कर सखियाँ किशोरी श्रीराधा को लेकर सूर्य पूजन हेतु 'सूर्य कुण्ड' पधारती हैं ।

यहाँ स्नान मात्र से ही श्रीनारदजी को गोपी देह की प्राप्ति हो गई थी ।

प्रसङ्ग

यथा वयं कृष्णपत्न्यस्तथा त्वमपि शोभने ।
वयं विरह-दुःखार्तास्त्वं न कालिन्दि तद् वद ॥[2]

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य 2/9)

श्रीकृष्ण के लीला संवरण पश्चात् द्वारिका की महिषियाँ अत्यन्त विरह-व्याकुल होकर ब्रज में पधारीं तथा श्रीकालिन्दीजी से अपनी मनोदशा कह शान्त

1. श्रीवृन्दावन की सीमा में श्रीगोवर्द्धन के निकट कुसुम सरोवर पर जो सखियों की विहार स्थली है, श्रीकृष्ण कीर्तन उत्सव प्रारम्भ हुआ है ।
2. बहिन कालिन्दी ! जैसे हम सब श्रीकृष्ण की धर्मपत्नी हैं, प्रिया हैं, वैसे ही तुम भी हो । हम सब तो उनकी विरहाग्नि में जल रही हैं । उनके वियोग दुःख से हमारा हृदय व्यथित हो रहा है । किन्तु तुम्हें इस प्रकार का कोई अभाव नहीं लग रहा है, इसका क्या कारण है ? कल्याणि ! कुछ बताओ तो सही ।

हो गईं। उत्तर में कालिन्दी बोलीं, "मुझे श्रीराधा दास्य मंत्र प्राप्त होने के कारण श्रीकृष्ण के विरह का स्पर्श नहीं होता। तुम भी वैसा ही करो। जब श्रीअक्रूर जी के साथ श्रीकृष्ण मथुरा चले गये थे, तब सभी गोपिकाओं को कष्ट हुआ था। उनका समाधान श्रीउद्धवजी ने ही किया था। तुम्हारा समाधान भी वे ही करेंगे। श्रीउद्धवजी गोपिकाओं की चरण-रज प्राप्ति की कामना से श्रीगोवर्द्धन के समीप ही निवास कर रहे हैं। वहाँ श्रीवज्रनाभजी के साथ जाकर सङ्कीर्तन करो। श्रीउद्धवजी प्रकट होकर तुम्हारा समाधान करेंगे।"

द्वारिका की महिषियों ने ऐसा ही किया। श्रीउद्धवजी लता-गुल्म के बीच से सभी के देखते-देखते प्रकट हो गये। चारों ओर 'गोपीजन वल्लभ' की हर्ष ध्वनि होने लगी। किञ्चित्-संज्ञा प्राप्त कर सभी ने थोड़ी देर बाद श्रीउद्धवजी का स्वागत किया।

श्रीउद्धवजी बोले, तुम लोग धन्य हो तथा श्रीकृष्ण-भक्ति से परिपूर्ण हो। इसी से श्रीअर्जुन को आज्ञा कर प्रभु ने ब्रजवास करवाने के लिए आप सबको यहाँ आने का आदेश दिया है। आप सोलह हजार महिषी हो। श्रीकृष्ण की सम्पूर्ण कला ही सहस्र भागों में विभक्त हो गई है। इसी से सोलह कलाओं का विभाजन हुआ है।

'श्रीवज्रनाभजी का स्थान श्रीकृष्ण के चरणों में है, योगमाया के द्वारा अपना स्वरूप भूलने से ही आप लोगों को कष्ट हो रहा है। श्रीकृष्ण प्रकाश के बिना आपका कष्ट दूर नहीं हो सकता।'

वैवस्वतमन्वन्तर स्थित अष्टाविंशचतुर्युगीय द्वापर युग के शेष भाग में जब भगवान स्वयं अपनी माया को हटा लेंगे तथा उनके दर्शन सम्भव होंगे, उस समय को आने में अभी विलम्ब है, परन्तु दूसरा उपाय है 'श्रीश्रीमद्भागवत' जो श्रीकृष्ण के वाङ्मय श्रीविग्रह स्वरूप हैं। श्रीकृष्ण की कृपा से ही मैं भी यहाँ वास करता हूँ।

श्रीपरीक्षितजी आदि को सम्बोधित करके श्रीउद्धवजी ने 'श्रीश्रीमद्भागवत' का पाठ सुनाया और कहा कि कलिनिग्रह भी तुम ही कर सकोगे।

'श्रीपरीक्षितजी द्वारा पूछे जाने पर उद्धवजी ने बतलाया कि श्रीशुकदेव जी तुम्हें 'श्रीमद्भागवत' का श्रवण करवायेंगे, अतः तभी तुम श्रीकृष्ण के नित्यधाम को प्राप्त करोगे।'

श्रीपरीक्षितजी दिग्विजय के लिए चले गये तथा वज्रनाभजी अपनी माताओं सहित पाठ श्रवण हेतु वहीं कुसुम सरोवर पर ठहर गये तथा 'श्रीमद्भागवत' का एक मास तक सेवन करते रहे।

श्रीकृष्ण का कुछ-कुछ प्रकाश दिखलाई देने लगा। लो ! वे प्रकट हो गये। श्रीवज्रनाभजी ने अपना स्थान श्रीकृष्ण के श्रीचरणों में स्पष्ट देखा तथा मातृ वर्ग भी अपनी-अपनी स्थिति यथास्थान देखकर हर्षित हो गया।

सभी नित्यलीला में प्रवेश पा गये। नित्यसिद्ध देह को प्राप्तकर, श्रीगिरिराजजी की निकुञ्जों में तथा श्रीवृन्दावन की निकुञ्जों में प्रवेश कर गये।

कुसुम-सरोवर के तट पर अशोक लता की झाड़ी है जहाँ अर्द्धरात्रि में प्रिया-प्रियतम विहार करते हैं। यह समस्त प्रान्त 'कुसुमवन' कहलाता है।

श्रीवृषभानुनन्दिनी श्रीराधा नित्य ही यहाँ पुष्प चयन हेतु पधारती हैं तथा श्रीकृष्ण के साथ परमानन्द पूर्वक विहार में मग्न हो जाती हैं।

कई महात्मा यहाँ सिद्ध देह से लता-पतादि मध्य निवास करते हैं। कुण्ड के पश्चिम की ओर श्रीनारायण स्वामीजी की समाधि है।

श्रीनारायण स्वामीजी

रावलपिण्डी में आपका जन्म हुआ। बाल्यावस्था से ही भगवद्‌जनों में आपकी आस्था थी। श्रीवृन्दावन की महिमा सुन आप वृन्दावन चले आये। बड़ी तितिक्षा तथा वैराग्य से जीवन यापन करते रहे, परन्तु श्रीराधामाधव के चरणों में प्रगाढ़ प्रेम उत्तरोत्तर बढ़ता रहा। वे डंके की चोट कहा करते "भाई जब तक नन्दनन्दन की मधुर छवि की झलक नहीं मिल जाती, तभी तक उस अखण्ड ब्रह्म ज्योति का चिन्तन साधक से बनता है और एक बार श्यामसुन्दर की छवि निहार कर तो उन्हीं का, केवल उन्हीं का हो जाता है।"

प्रेमियों का संसार ही विचित्र है। जहाँ एक ओर प्रेमास्पद के सुख की भावना में मग्न रहते हैं तो दूसरी और स्नेहाधिक्य तथा दैन्यवश प्रेम भरे उपालम्भ देने को भी विवश हो जाते हैं। श्रीनारायण स्वामी ने एक बार विरह के किन्हीं क्षणों में सहज कहा-

सांवरे क्यों मोसों रिस मानी।
तेरे काज घर-बार त्यागि कै गलियन फिरत दिवानी॥
लोक-लाज, कुल-रीति प्रीति जग इनहूँ कौं दयौ पानी।
नारायण अब तो हँसि चितवौ ऐ, रे रूप गुमानी॥

अपनी ही मस्ती में भ्रमण करते रहते थे। रास तथा रासबिहारी विहारिणी में इनकी अनन्य निष्ठा थी। कहते हैं इनकी पुत्री जब रास करती तो स्वयं प्रकट होकर श्रीकृष्ण उसके साथ विहार करते।

कुसुम सरोवर पर ही आप सं. १९५७ में नित्य लीला प्रवेश कर गये।

यहीं कुसुम सरोवर के पीछे की ओर श्रीउद्धव कुण्ड है तथा पास ही लता-पतादि मध्य श्रीउद्धवजी की निवास स्थली है।

श्रीनारद कुण्ड

कुसुम सरोवर के सामने ही सड़क की दूसरी ओर सघन वृक्षावलि से आच्छादित, मनोरम, निर्जन-स्थल श्रीनारद कुण्ड के नाम से विख्यात है । श्रीनारदजी ने यहीं तपस्या कर सिद्ध गोपी देह की प्राप्ति की थी ।

प्रसङ्ग

श्रीकृष्ण की नित्य तथा प्रकट लीला का दर्शन आस्वादन सर्व जन सुलभ नहीं हैं । निजस्वरूपभूता इन ब्रज बालाओं के साथ रास, विहारादि के दर्शन तो नारी भाव-भावित भक्तों के लिए ही सहज-सुलभ हैं । पुरुष वहाँ एकमात्र श्रीकृष्ण ही हैं, अन्य सभी उनकी प्रिया ब्रज-बालाएँ हैं । श्रीनारदजी स्वयं भगवान का हृदय कहे जाते हैं, उन्हें भी गोपी देह प्राप्त कर ही रास के दर्शन सम्भव हो सके । इसी प्रकार भगवान शंकर गोपी रूप धारण कर आज भी गोपेश्वर स्वरूप में वृन्दावन में वास कर रहे हैं ।

गोपी देह प्राप्ति के लिए उपाय पूछने पर श्रीमहादेवजी ने अपनी असमर्थता दिखलाते हुए श्रीनारदजी से कहा, आप श्रीवृन्दादेवी से इसका उपाय श्रवण करें, क्योंकि उनकी कृपा के बिना कोई भी रास का अधिकारी नहीं हो सकता ।

गोवर्द्धन और श्रीराधाकुण्ड के मध्य भाग में कुसुम-सरोवर के निकटवर्ती स्थल पर श्रीब्रह्माजी से गोपाल मंत्र प्राप्तकर, श्रीनारदजी रागमार्ग, गोपी भाव प्राप्ति के लिए तपस्या करने लगे । उस तपस्या के फलस्वरूप उनके मन में श्रीकृष्ण तथा ब्रज-गोपिकाओं के साथ उनकी मधुर-लीला दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा जगी ।

उन्होंने श्रीवनदेवी से प्रार्थना की । "तुम ऋषि हो इस लीला में तुम्हारा प्रवेश सहज नहीं हैं, इसके लिए गोपी भाव-भावित देह (गोपी देह) ही अपेक्षित है ।" यह कहकर वनदेवी ने श्रीनारदजी की लीला दर्शन की इच्छा को अपूर्ण ही रहने दिया ।

गोपी भाव प्राप्ति का उपाय पूछने पर श्रीकुसुमादेवी ने श्रीकुसुम-सरोवर में स्नान करने का आदेश दिया ।

श्रीनारदजी ने सहर्ष जैसे ही गोपी देह प्राप्त करने की कामना से कुसुमसरोवर में स्नान किया, सुन्दर गोपी देह को प्राप्त हो गये । श्रीवनदेवी ने उन्हें श्रीराधागोविन्द की लीला में प्रवेश करवाया । श्रीनारदजी इस महा-सौभाग्य को प्राप्त कर कृतकृत्य हो गये । उनकी तपःस्थली श्रीनारदकुण्ड नाम से अद्यावधि शोभायमान है ।

श्याम कुटी

कुसुमसरोवर के पास ही सघन वृक्षावलि मध्य स्थित है। चारों ओर का निविड़ स्थल और नीरव वातावरण, बरबस ही श्रीकृष्ण की लीला स्मृतियों से आलोड़ित कर देता है। यहाँ श्रीकृष्ण ने श्याम भूषण, श्याम वर्ण कस्तूरी अनुलेपन तथा श्याम वर्ण वसन पहन कर निकुञ्ज में प्रवेश किया तो सखियाँ भी पहचान न सकीं।

'रत्न कुण्ड' नाम से विख्यात यहाँ एक कुण्ड है। वादिनी शिला है जिसे बजाने से मधुर स्वर नाद होता है। पास ही श्रीकृष्ण के चरण चिन्ह हैं।

रत्नसिंहासन

श्रीगिरिराज तलहटी में रस रास विलास नित्य निरन्तर ही गतिमान रहता है। वसन्त के दिनों में प्रिया-प्रियतम यहाँ आकर विराजते। श्याम कुटी के पास ही यह स्थली है।

श्रीगोपाल कुण्ड (ग्वाल पोखरा)

कुसुमसरोवर से गोवर्द्धन जाते समय दाईं ओर सघन वृक्षावलि मध्य यह स्थली स्थित है। एकान्त तथा नीरवता यहाँ दर्शनीय है।

गोचारण के समय श्रीकृष्ण मध्यान्ह में यहाँ आकर विश्राम करते हैं। अनेकों महात्माओं की सरस अनुभूतियों को साकार करता, श्रीकृष्ण सखाओं की परस्पर छीना झपटी की कहानी दोहराता, यह गोपाल कुण्ड 'ग्वाल पोखरा' नाम से विख्यात है।

एक बार श्रीकृष्ण सुबल तथा मधुमङ्गल सखाओं सहित यहाँ पधारे। परस्पर हास-विनोद चलता रहा।

श्रीबलरामजी ने मधुमंगल के पास एक वस्त्र में कुछ बँधा देखकर पूछा, "मधुमंगल ! यह क्या है" मधुमंगल संकुचित होकर बोले "सूर्य कुण्ड पर ब्रज वासियों से प्राप्त किया है।" श्रीबलरामजी ने कहा इसे सखाओं में वितरण क्यों नहीं कर देते। सखा-मण्डली तो इसी प्रतीक्षा में ही थी। श्रीबलरामजी का संकेत पा मधुमंगल द्वारा वर्जना करने पर भी सभी ने वह पोटली मधुमंगल से छीन ली तथा सामग्री बाँट कर खाने लगे। इस बीच मधुमंगल के वस्त्र भी अस्त व्यस्त हो गए।

मधुमंगल बिगड़े। श्रीकृष्ण के अनन्य सखा होने के कारण उनसे सान्त्वना पाकर शीघ्र ही शान्त हो गए।

अपनी रसीली कथाओं को गर्भ में संजोये यह स्थली आज भी गर्वित हो रही है।

श्रीहरि गोकुल तीर्थ

ग्वाल पोखरा के समीप ही यह स्थल है । यहाँ श्रीनन्दरायजी अपने सहयोगियों सहित ठहरे थे ।

किलोल कुण्ड

'श्रीहरि गोकुल तीर्थ' के पूर्व में 'किलोल कुण्ड' स्थित है । अपने नाम के अनुरूप ही यह कुण्ड प्रिया-प्रियतम की विभिन्न केलियों का स्रष्टा, द्रष्टा तथा चोजों का प्रतीक है । आज भी सघन कदम्ब वृक्षों के मध्य-स्थित इस कुण्ड पर पक्षियों का कलरव श्रवणीय है ।

श्रीकिलोल बिहारीजी के दर्शन हैं । निम्बार्कीय स्थान है ।

गोवर्द्धन ग्राम

मथुरा नगर से लगभग तेरह मील की दूरी पर स्थित है । आज के समय में एक प्रसिद्ध तथा मुख्य दर्शनीय केन्द्र हो गया है । इसके आस-पास अनेक तीर्थ हैं ।

गोवर्द्धन ब्रज का अत्यन्त प्राचीन धार्मिक स्थल है । यहाँ मुख्य विशेषता, श्रीगिरिराज पर्वत हैं, जो श्रीकृष्ण के समय से ही पूजनीय हैं । पहले श्रीयमुनाजी की एक धारा श्रीगिरिराज तलहटी में होकर बहती थी । वर्षा के दिनों में कई बार उस धारा का दर्शन भी मिलता है ।

सभी सम्प्रदायों के लिए एक स्वर से आकर्षणीय तथा पूजन हेतु आज भी यह स्थल महत्त्वपूर्ण है ।

मानसी गङ्गा

स्नात्वा मानसगङ्गायां दृष्टवा गोवर्द्धने हरिम् ।
अन्नकूटं परिक्रम्य किं जनः परितप्यते ॥

(आ० वा०)

श्रीगोवर्द्धन में मानसी गङ्गा में स्नान करके श्रीहरिदेवजी का दर्शन करके तथा अन्नकूट क्षेत्र की परिक्रमा करने के पश्चात् मनुष्य का कौन-सा पाप शेष रह जावेगा ।

प्राकट्य प्रसङ्ग

भगवान श्रीकृष्ण वृषभासुर का वध करने के उपरान्त किशोरी श्रीराधा तथा ब्रज बालाओं से मिले तो कौतुकवश तथा तीर्थ प्राकट्य के हेतु से सभी सखियों ने कहा, श्यामसुन्दर ! इस हत्या का प्रायश्चित करना आपके लिए

अनिवार्य है। श्रीकृष्ण भगवान् ने वृष हत्या से मुक्त होने के लिए अपने मानस से ही मानसी गङ्गा को प्रकट किया, जो दुग्धमयी हैं, पवित्र हैं तथा समस्त पापों को क्षय करने वाली हैं।

एक अन्य प्रसङ्ग में एक बार समस्त गोप गण गङ्गा स्नान हेतु जाने की तैयारी करने लगे। इसी स्थान पर रात्रि में विश्राम किया। ब्रज में समस्त तीर्थों का निवास दिखलाते हुए श्रीकृष्ण ने श्रीनन्दरायजी तथा अन्य गोपों से कहा, "समस्त तीर्थ ब्रज में ही विराजते हैं, फिर भला आप स्नान हेतु ब्रज से बाहर जाने की क्यों सोच रहे हैं", 'कन्हैया' अभी बालक है, यह कहकर गोपों ने उसकी बात अनसुनी कर दी।

श्रीकृष्ण ने अपने सभी सम्बन्धियों के देखते-देखते अपने मानस में गङ्गाजी का आह्वान किया। सभी के सामने समस्त कलुषों का हरण करने वाली गङ्गाजी साक्षात् प्रकट हो गईं। सभी ने यहाँ स्नान किया। दीपावली का दिन था, सभी ने दीप दान किया। श्रीगिरिराज के नेत्र स्वरूप यह मानसी गङ्गा समस्त पाप तापों को क्षय करने वाली हैं। दीप-दान का यहाँ विशेष महत्त्व है।

वर्तमान में भी कभी-कभी मानसी गङ्गा में चमत्कार पूर्ण घटनाएँ घटित होती रहती हैं। अनेक वृद्ध वैष्णवगण, साक्षी स्वरूप आज भी हमारे सामने हैं। मुकुट से दूध की धारा प्रत्येक वर्ष (अन्नकूट के दिनों में) निकल कर मानसी गङ्गा के मध्य से होती हुई, अन्तिम छोर तक जाती हैं, जो कई घण्टों तक साधारण मनुष्य के लिए भी गोचर होती है। इस वर्ष भी वह धारा अनेक भावुक भक्तों के देखने में आई थी।

नौका लीला (मानसी गङ्गा में)

एक बार श्रीकृष्ण तथा उनकी प्राणाराध्या किशोरी श्रीश्रीराधा जल केलि के लिए उत्सुक हुए। नित्य नवीनता प्रिय इन प्रणयी बावरों की रसकेलि के ढंग सदैव नवीन ही होते हैं। नौका विहार प्रारम्भ हुआ।

यस्यां माधवनाविको रसवतीमाधाय राधां तरौ।
मध्ये चंचलके निपातवलनात्रासैः स्तवत्यास्ततः॥
स्वाभीष्टं पनमादधे वहति सा यस्मिन् मनोजाह्नवी।
कस्तं तन्नवदम्पतिप्रतिभुव गोवर्द्धनं नाश्रयेत !॥[1]

(स्तवावलि)

1. रस कौतुकी नाविक श्रीमाधव रसमयी श्रीराधा को नौका में बिठाकर, उत्तुंग हिलोरें लेते जल के मध्य में ले गये। सभीता श्रीराधा श्रीकृष्ण की भाँति-भाँति से अनुनय-विनय करने लगीं तथा उन्होंने अपना अभीष्ट पन अदा किया। वही मानसी गंगा नवदम्पति के द्वितीय स्वरूप सदृश जहाँ प्रवहमान हैं, उन श्रीगिरिराज का आश्रय कौन न लेगा ?

श्रीकृष्ण नाविक बने नाव खेह रहे थे। नित्य नव-नवायमान श्रीराधा की रूप-छटा निहार श्रीकृष्ण विनोद करते हुए नौका को तेजी से बढ़ाने लगे। प्रियाजी भयभीत हो गई, अभी कुछ दूर बैठी थीं, अब प्रियतम के पास आ बैठीं। प्रियतम ने चतुराई से नाव को डगमगा दिया। अत्यन्त भीत होकर प्रियाजी अपने इन भयहारी प्रियतम से लिपट गईं। प्रियतम तो पहले से ही प्रणय रस-सिन्धु की लहरियों में डूब उतर रहे थे। रस की उस केलि का वर्णन कौन कर सकता है ? जिन्होंने वह रसपूर्ण छवि निहारी वे भी रसमग्न हो गये।

एकान्तिक क्षणों की इस रसदान-पान की नित्य साक्षी श्रीगङ्गाजी समस्त हृद्विकारों को नाश कर श्रीकृष्ण-भक्ति प्रदान करने वाली हैं।

श्रीहरिदेवजी

करोद्धृतनगेन्द्राय गोपानां रक्षकायते ।
सप्ताब्दरूपिणे तुभ्यं हरिदेवाय ते नमः ॥

(स्क० पु०)

सात वर्ष की अवस्था में विराजमान हे हरदेवजी ! आप श्रीगिरिराज को धारण किये हुए हैं तथा समस्त गोपों के रक्षक हैं, आपको नमस्कार है।

श्रीकृष्ण के गोवर्द्धनधारी स्वरूप आज भी श्रीहरदेवजी के रूप में यहाँ विराजमान हैं।

यवनों के आक्रमण के समय भी आप यहीं विराजे रहे। श्रीहरदेवजी सेव्य विग्रह स्वरूप का प्राकट्य बिलछु कुण्ड से ही हुआ था। कहते हैं श्रीकेशवाचार्य नाम के कोई महात्मा गोवर्द्धन में वास करते थे। उन्हें स्वप्न हुआ कि अमुक स्थान से हमारे श्रीविग्रह को प्रकट करो। दूसरे दिन अनेक ब्रजवासियों के साथ श्रीआचार्यजी बिलछु कुण्ड पहुँचे। श्रीविग्रह के प्रकट होने पर भी कोई उन्हें हिला न सका। उन्हीं की ओर से संकेत पाकर श्रीआचार्य उन्हें उठाकर ले आये तथा मन्दिर में स्थापना की। उन्हीं आचार्य जी की परम्परा में ही श्रीहरदेवजी की अद्यावधि सेवा चली आ रही हैं।

ब्रह्मकुण्ड

ब्रह्मादिनिर्मितस्तीर्थ शुद्धकृष्णाभिषेचन ।
नमः कैवल्यनाथाय देवानां मुक्तिकारक ॥

(कूर्म० पु०)

हे ब्रह्मादिक द्वारा निर्मित तीर्थ ! हे शुद्ध तथा श्रीकृष्ण के अभिषेक स्थल ! हे कैवल्यनाथ ! आप देवताओं को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं।

यहाँ ब्रह्मादि देवता आकर उपस्थित हुए थे। ब्रह्माजी ने सामवेद द्वारा यथाविधि सर्वार्थ सिद्धि हेतु श्रीकृष्ण का अभिषेक किया। जहाँ वह जल एकत्रित हुआ वही ब्रह्मकुण्ड कहलाया।

यहाँ पर मन से किया गया पुण्य भी फलप्रदायी है।

मनसा देवी

मनसा कामदायैव मनसायै नमो नमः।
नमः देव्यै महादेव्यै धन धान्य फलप्रदे॥

(वा० पु०)

हे मनसा देवी ! मनः कामना पूर्ण करने वाली आपको नमस्कार है। देवि ! हे महादेवी ! धनधान्य, फल प्रदान करने वाली आपको नमस्कार।

मानसी गङ्गा के दक्षिण तट पर देवी का मन्दिर है। व्रज की अत्यन्त प्राचीन लोक देवी यहाँ विराजती हैं।

चक्रतीर्थ

चक्र तीर्थ नमस्तुभ्यं कृष्णचक्रेण लाञ्छितं।
सर्व पापच्छिदे तस्मै कृष्ण निर्मल निर्मितम्॥

(वा० पु०)

हे चक्रतीर्थ तुम्हें नमस्कार ! तुम श्रीकृष्ण के चक्र से चिन्हित हो। हे समस्त पाप नाशकारी ! हे श्रीकृष्ण द्वारा निर्मित स्थल आपको नमस्कार है।

श्रीचक्रेश्वर महादेव

चक्रेश्वराय रूद्राय पञ्चास्यशिव मूर्तये।
ब्रजमण्डलरक्षाय नमस्ते भव मूर्तये ॥

(रूद्रयामल)

हे चक्रेश्वर रुद्र ! आपको नमस्कार। आपके पाँच मुख हैं। आप कल्याण मूर्त्ति स्वरूप हैं, आप ब्रजमण्डल की रक्षा के लिए हैं। गोपजनों के उत्सव स्वरूप आपको नमस्कार है।

यहाँ देवताओं ने चक्रेश्वर महादेव की स्थापना की जो समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाले हैं।

मानसी गङ्गा के उत्तरी तट पर श्रीचक्रेश्वर महादेव का दर्शन है। जनश्रुति प्रसिद्ध है कि-

देवराज इन्द्र जब ब्रज में धुंआधार वर्षा कर रहे थे, समस्त ब्रजवासी अपने गोधन तथा अन्य सामान सहित श्रीकृष्ण के आश्रय में श्रीगिरिराज जी के

नीचे सुरक्षित चले गये, उस समय भगवान के चक्र श्रीगिरिराज जी के ऊपर मँडराते रहे तथा अपने प्रचण्ड अग्नि तेज से वर्षा को वहीं सोखते रहे। तभी से यह स्थल, चक्रेश्वर तीर्थ के नाम से विख्यात हो गया।

ब्रज में महादेवजी के चार स्वरूप विख्यात हैं। श्रीगोवर्द्धन में आप चक्रेश्वर नाम से विराजते हैं। श्रीशिवचतुर्दशी की रात्रि को यहाँ का उत्सव दर्शनीय है।

श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की बैठक

श्रीमदाचार्य यहाँ एक सप्ताह पर्यन्त रहे तथा श्रीमद्भागवत पारायण किया। ऐसी मान्यता है कि महादेवजी भी अपने दिव्य स्वरूप से कथा श्रवण करते थे। "८४ बैठकन कौ चरित्र"

भक्तप्रवर नन्ददासजी मानसी गङ्गा के पास श्रीगिरिराज जी के सातवें द्वार के मुखिया कहलाते हैं। "८४ वैष्णवन की वार्ता भाव प्रकाश"

श्रीसनातन गोस्वामी की भजन कुटी

चक्रेश्वर महादेव के निकट ही एक निर्जन स्थली पर श्रीसनातनजी भजन करते थे। मच्छरों का यहाँ बहुत उत्पात रहता था। श्रीसनातनजी के भजन में भी विक्षेप होने लगा। उन्होंने विवश होकर इस स्थान को छोड़ देने की सोची, परन्तु अपने जनों पर अनायास ही प्रसन्न हो जाने वाले महादेवजी ने, विप्र रूप धारण कर श्रीसनातनजी को दर्शन दिये और कहा, "तुम यहाँ से स्थान छोड़कर मत जाओ। भविष्य में मच्छर तुम्हें न सतायेंगे।" ऐसा ही हुआ। आज भी यह चमत्कार यहाँ दीखता है, चारों ओर कितने भी मच्छर हों श्रीचक्रेश्वर के आस-पास मच्छरों का उत्पात प्रायः नहीं होता।

श्रीसनातनजी तितिक्षा पूर्वक यहाँ निवास करते थे। श्रीगिरिराजजी की परिक्रमा का उनका नियम था। वृद्ध शरीर होने पर सात कोस, परिक्रमा में कठिनाई होने पर भी वे अपना नियम निभाते रहे। एक दिन एक परम सुन्दर बालक ने आकर कहा, "बाबा! अब इतने वृद्ध हो गये हो, परिक्रमा का नियम छोड़ दो तथा यहीं भजन किया करो।" श्रीसनातनजी नियम के पक्के रहे तथा परिक्रमा करते रहे। एक दिन पुनः वह बालक आया तथा श्रीगिरिराजजी की एक शिला पर अपना श्रीचरण चिन्ह अंकित कर इन्हें देकर बोला, "बाबा! आजसे इसी शिला की प्रदक्षिणा कर लिया करो, तुम्हें गिरिराज परिक्रमा का ही फल प्राप्त होगा" अपना स्वरूप प्रकट कर जब कन्हैया ने श्रीसनातनजी को यह सब जतलाया, तो वे विभोर हो गये। गद्गद वाणी, अश्रुपूरित नेत्र, खुले के खुले रह गये। वे कुछ कह न सके। सनातनजी की दशा देखकर प्रभु ने अपना भान कराया-

शिला समर्पिया कृष्ण हैला अदर्शन ।
बालक न देखि व्यग्र हैला सनातन ॥
सनातन व्याकुल देखिया अदृश्येते ।
निज परिचय दिला विह्वल स्नेहेते ॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण चरण चिन्ह अंकित यह शिला आज भी श्रीवृन्दावन में, श्रीराधादामोदर मन्दिर में दर्शनीय है !

सिद्ध श्रीकृष्णदास बाबा की समाधि पास ही है ।

सिद्ध श्रीकृष्ण बाबा

गौड़ीय महात्माओं/साधकों की चिन्तन प्रणाली का दिग्दर्शन कराने वाले सिद्ध बाबा का प्रारम्भिक जीवन जयपुर तथा नन्दग्राम में बीता । वहीं श्रीराधारानी की कृपा की अनुभूति कर आप चक्रेश्वर आकर रहने लगे । शास्त्राध्ययन की कामना ने बड़ी तीव्रता से इन्हें आलोड़ित कर दिया । अपनी असमर्थता देख इन्हें जीवन निराशामय लगने लगा ।

ऐसी विचित्र परिस्थिति में श्रीसनातन गोस्वामी तथा श्रीललिताजी की अनुभूति ने सम्बल दे जीवन की सभी विघ्नपूर्ण परिस्थितियों को क्षय कर दिया । शास्त्र तथा वैष्णव ग्रन्थ सहज स्फुरित होने लगे ।

सम्प्रदाय ग्रन्थों की मर्यादा में आपने अष्टकालीन लीला के साथ-साथ प्रिया-प्रियतम की अष्टकालीन लीला स्मरण पद्धति का निरूपण कर 'गुटिका' के रूप में प्रचलन किया ।

प्रिया-प्रियतम की कृपा की इनकी अनेक अनुभूतियाँ साधकों के लिए प्रकाश स्तम्भ बनी है ।

श्रीलक्ष्मीनारायण मन्दिर

लक्ष्मीनारायणायैव गोवर्द्धनसुखायते ।
नमस्ते गोपवृन्दानां परिपूर्णब्रजोत्सव ॥

(रूद्रयामल)

हे लक्ष्मीनारायण ! आपको नमस्कार । आप गोवर्द्धन में सुख प्रदान करने हेतु विराजते हैं । गोपवृन्दों के उत्सव रूप आपको नमस्कार है ।

ब्रज में श्रीगिरिराजजी के निकट "श्री" सम्प्रदाय की गद्दी सोलहवीं शताब्दी से ही विराजमान है । इस गद्दी के प्रथम आचार्य हुए श्रीशठकोप मुनि । उन्होंने 'सहस्र गीति सार' ग्रन्थ की रचना की जिसमें श्रीगिरिराज जी के सरस चित्र अंकित किये हैं ।

श्रीशठकोपमुनि महाराज

श्रीरामानुज सम्प्रदाय के अधिकांश आचार्य दक्षिण में ही हुए तथा उसी क्षेत्र में निवास भी करते रहे हैं, परन्तु फिर भी श्रीवृन्दावन तथा वृन्दावनविहारी के प्रति उनका अनुराग रहा है ।

श्रीशठकोपमुनि भी विशेष ख्याति प्राप्त आचार्य हुए हैं । वे श्रीगिरिराज में रहते रहे । अपने ग्रन्थ 'सहस्रगीति सार' में उन्होंने श्रीकृष्ण की वृन्दावन लीला का विस्तृत वर्णन किया है । एक जगह वे स्पष्ट कहते हैं कि 'श्रीमन्नारायण' नाम स्मरण का फल श्रीकृष्ण की अहैतुकी कृपा, उन्हीं की लीला में अभिनिवेश तथा उन्हीं की प्राप्ति है ।

कृष्णपादाम्बुजद्वन्द्वं प्राप्तुं कुतुकिनान्तु वः ।
चिन्तनीयं सदा नाम नारायण इति ध्रुवम् ॥[1]

(सहस्र गीति सार 10/5/1)

श्रीकृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रीति, आचार्यों महानुभावों के जीवन का एक अङ्ग रही है । श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान के उपासक होने पर भी श्रीकृष्ण के प्रति श्रीशठकोपमुनि अत्यन्त निष्ठावान रहे हैं ।

इन्द्रध्वज वेदी

इन्द्रध्वजवेदी एई नन्दराय ।
करितेन इन्द्रपूजा सर्वलोके गाय ॥

(भ० र०)

गोवर्द्धन ग्राम की पूर्व दिशा में स्थित है । श्रीनन्दरायजी इसी स्थली पर इन्द्रपूजन किया करते थे । भाद्रमास की इन्द्रद्वादशी में यह पूजा की जाती है । पश्चात् श्रीकृष्ण ने इन्द्रपूजा के स्थान पर गोवर्द्धन पूजन का आयोजन करवाया, जिसका वर्णन हम आगे गोविन्द कुण्ड के प्रसङ्ग में करेंगे ।

ऋण मोचन तथा पाप मोचन

उक्त दोनों कुण्ड अब लुप्त प्रायः हो चुके हैं । एक कुण्ड की स्थिति बड़ी शोचनीय है, दूसरा पाटकर बिजली कार्यालय बना दिया गया है । इनके पास ही एक,"धर्म रोचन कुण्ड" भी लुप्त प्रायः हो गया है; स्मृति सूचक एक पत्थर अवश्य वहाँ लगा है ।

1. श्रीनारायण भगवान का सतत स्मरण करने से श्रीकृष्ण के पाद-पद्मों में अनुराग सहज हो जाता है, यह बात ध्रुव सत्य है ।

दान घाटी

गोवर्द्धन से आन्यौर ग्राम की ओर परिक्रमा में, प्रारम्भ में ही, यह स्थली दर्शनीय है। श्रीकृष्ण की, दान के मिस हुई अनेक सरस वार्ताओं से यह स्थली, आज भी मुखरित है। अत्यन्त मनोरम वृक्षावलि अपने में ही सौन्दर्य लिये पूर्व गाथाओं को दोहरा रही है।

श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी जब श्रीगिरिराज परिक्रमा हेतु पधारे तो दान प्रसङ्गादि के विषय में जिज्ञासा करने लगे-

अहे ! श्रीनिवास एई दान घाटी स्थान।
रसिकेन्द्र कृष्ण एथा साधे गव्यदान ॥
एई खाने श्रीचैतन्य संगेर विप्रेरे ।
जिज्ञासेन दान प्रसङ्गादि धीरे-धीरे ॥[1]

दान ग्रहण करने वालों में उत्तम हैं नन्दनन्दन। गोरस बेचने जाती, ब्रज बालाओं के मन की अभिलाषा को पूर्ण करने के लिए नन्दनन्दन ब्रज बालाओं से दान माँगते हैं और उन्हीं ब्रजबालाओं की भावनाओं को सत्कारने, सहलाने, हेतु सरस वर्जना-तर्जना कर, और-और रस वर्द्धन करते हैं और यह बालाएँ 'हाँ-हाँ ते भली नाहीं' में सन्निहित 'नहीं में नहीं' के मिस हाँ-हाँ ही कहना चाहा करती हैं तथा यह गोरस दान में पगी सुरस विवशता, किस प्रकार रसीली, रङ्गीली केलि में परिणत हो जाती है तथा मधुर रस प्रवहमान हो जाते हैं, यह कहने का सामर्थ्य लेखनी में कहाँ है भला ?

घट्टक्रीड़ाकुतुकितमनानागरेन्द्रो नवीनो,
दानी भूत्वा मदननृपतेर्गव्यदानच्छलेन ।
यत्र प्रातः सखिभिरभितो वेष्टितः संरुरोध,
श्रीगान्धर्वां निजगणव्रतां नौमितां कृष्णवेदीम् ॥[2]

(स्तवावलि)

दूध-दही बेचने का क्रम ब्रज में सदा से ही चलता आया है, परन्तु इन ब्रज बालाओं का दूध-दही बेचने का एक मिस नन्दनन्दन श्यामसुन्दर की, छवि माधुरी का, उनके साथ रसमयी बतरान, रसीली-रङ्गीली स्मृतियों में भर उन्हीं

1. हे श्रीनिवास यहीं दान घाटी नामक स्थल है। यहीं श्रीकृष्ण ने गोपिकाओं से दान माँगा था। इसी स्थल पर श्रीचैतन्य महाप्रभु ने ब्रजयात्रा के समय साथ के ब्राह्मण से दान प्रसंगादि के विषय में पूछा था।
2. इस स्थली पर दान ग्रहण करने की लीला के कारण कौतूहलाक्रान्त मन से नवीन नागरराज श्रीकृष्ण प्रातः काल दान ग्रहण करने वाले का वेष धारण कर चारों ओर से सखा मण्डली द्वारा परिवेष्टित होकर मदन महीपति को प्राप्त दुग्धादि ग्रहण करने के छल से सखियों द्वारा परिवेष्टित श्रीराधा को रोक लेते हैं- उसी श्रीकृष्ण वेदी (दान घाटी) की मैं स्तुति करता हूँ।

की सन्निधि का, आस्वादन करना है। वे दूध-दही बेचने जाती तो अवश्य हैं-परन्तु श्रीकृष्ण की खोज में उनके नेत्र सदा चञ्चल बने रहते हैं। उन जादूगर की मोहनी से ठगी-सी कई बार वे सारा का सारा दूध-दही वापिस घर लौटा लाती हैं। प्रेम के उस जादूगर की अनन्य प्रियाएँ, अपने जीवन सर्वस्व को आनन्दित करने के लिए, सब कृत्य करती हैं।

श्रीगिरिराज की सघन वृक्षावलि मध्य से होकर आती पग-डण्डियों पर, रङ्ग-बिरङ्गे वस्त्राभरण पहनें, सिर पर मटुकियाँ धरे, छम-छम ध्वनि से मार्गों, वीथियों को गुञ्जायमान कर देती हैं और यह गिरि गुहाएँ अपने सौभाग्य पर पुरस्कृत होने की प्रतीक्षा में रहती हैं। इसी छम-छम ध्वनि को सुन प्रणयी रिझवार रसिकेन्द्र दानवीर, इन ब्रजाङ्गनाओं के मार्ग में आस-पास की शिलाओं से कूद, उन्हें कब रोक लेते हैं और दान माँगने लगते हैं-किसी को पता ही नहीं चलता। हाँ, तो ये बालाएँ दूध-दही बेचने जाती हैं। 'मटकी ढोरी सीस ते' वहाँ दूध-दही की कीच ही मच जाती है। रास्ते में आ जाते हैं नन्दनन्दन-

देढ़ी पाग बनाइ कै, दान कहति हैं लैन।
ललित त्रिभंग ठाड़े भये, ग्वालन दै-दै सैन॥

दान लेने की भूमिका क्या बनी कि ग्वालिनि चल दी-

पीठ मोरि आगै चली ऊतर नारि बनाय।
सारी झलके वदन पै, सोभा बरनि न जाय॥

दान-मान के रहस्यों में प्रवहमान, रस से आप्लावित तथा अपने सौभाग्य पर गर्वित यह स्थली, सुखद है, सुन्दर है।

अति सुख पायौ सुन्दरी, वृन्दाविपिन विलास।
गोविन्द-प्रभु स्यामहि मिलि, पूजी मन की आस॥

धन्य हैं यह ब्रजाङ्गनाएँ तथा उनके जीवन-धन श्यामसुन्दर।

श्यामसुन्दर कभी-कभी मार्ग में आ खड़े होते हैं और जब यह रगमगी भीर दूध-दही लिये गिरिराज की संकुचित वीथियों से होकर आती है तो यह-

अहो नागरी! गोवर्द्धन गिरि की-
बिनु लाहैं क्यों उतरैगी घाटी।

बिना दान लिये मार्ग से जाने नहीं देते उस 'हाँ' और 'ना' में मची रार-तकरार, उसमें 'दान निबेरने' के अनूठे ढङ्ग और इन्हीं चतुराई पगे वाक्यों से मुखरित, गिरिराज की एकान्तिक स्थलियाँ, सघन वीथियाँ, हाँ, हाँ सभी इन प्रसङ्गों से धन्या हुई इस सौभाग्य मद से गर्वित हो रही हैं।

सुरस केलि रहस्यों की यह स्थली 'दानघाटी' नाम से विख्यात है।

हाथरस वाला लक्ष्मी नारायण मन्दिर

यहाँ भगवान विष्णु तथा लक्ष्मीजी विराजमान हैं। इसी के प्राङ्गण में पूज्य पंडितजी महाराज नाम के एक परम विरक्त, भागवत स्वरूप महात्मा भजन-लीला चिन्तन में निमग्न रहे।

श्रद्धेय पंडित गया प्रसादजी

ब्रज के उन महानुभावों में जिन्होंने वैराग्य के साथ-साथ प्रिया प्रियतम के अनुराग में परिपूर्णता निभाई श्री महाराज जी को कदापि अग्रणी मानना अत्युक्ति न होगी। उत्कृष्ट वैराग्य का जो स्वरूप पू.पंडित जी के जीवन का अलंकार बना रहा वह अद्वितीय था। ऐसी निस्पृहता, सजगता, आदर्श तथा अनुरक्ति दुर्लभ ही कहनी होगी।

महाराज जी का जन्म फतहपुर जनपद की तहसील खागा के कल्याण पुर ग्राम में १५.११.१८९३ में हुआ था। वहाँ से आपके पिताश्री कारणवश हाथरस चले आए। वहीं आपका पूर्व का जीवन व्यतीत हुआ। विवाह हुआ। एक पुत्र तथा एक पुत्री आज भी इस भूमि को गौरवान्वित कर रहे हैं। नौकरी की है बड़ी ईमानदारी से। जब उस फैक्टरी के मालिक उसे पंजाब ले गए, पू. पंडित जी को साथ चलने के लिये आग्रह किया पर आपने मना कर दिया तथा यहीं श्रीमद्भागवत अध्यापन का कार्य प्रारम्भ कर दिया। अत्यल्प अर्थ व्यवस्था के साथ अपने परिवार का आदर्श रूप में परिपालन करते रहे।

परम पूज्य श्री उड़िया बाबा का त्याग वैराग्य आपका आदर्श बना। उसी रहनी से आप भजन में रत हो गए। पंडित जी महाराज रास के प्रेमी थे। एक बार रास में निमग्न थे। करहला की मण्डली के श्रीठाकुर स्वरूप ने पुष्प फैंककर संकेत किया और आप छोटे-छोटे बालकों को भगवान के भरोसे छोड़ वृन्दावन पैदल ही चले आए। पानीघाट के दूसरी ओर खड़े वृन्दावन में प्रवेश की सोच रहे थे कि श्याम सुन्दर ने अपनी अनुपम बंकिम झाँकी से पंडित जी महाराज को मोह लिया और वे अपने जीवन का उत्तरार्ध अन्तिम समय तक ब्रज में ही विराजते रहे।

लक्ष्मीनारायण मन्दिर में अपने जीवन काल के अन्तिम दिनों तक वे विराजमान रहे। परिक्रमा और मधुकरी का नियम वे अपना सामर्थ्य रहते निबाहते रहे। आप पैदल ही वृन्दावन जाते। श्री गुरु महाराज के तथा श्रीबिहारी जी महाराज के दर्शन कर लौट आते।

रास स्वरूपों में मुकुट धारण करने के पश्चात् उनकी दृढ़ भगवद्भावना रहती। अपनी गोद में बिठा बाल भाव से उन्हें दुलारते, खिला पिला कर परम प्रसन्न होते।

वैसे तो उनका वात्सल्य भाव ही प्रधान रहा। ब्रजाङ्गनाओं, सखी समुदाय की वे चर्चा प्रायः नहीं करते थे, परन्तु एक बार भक्तिमती ऊषा बहन जी जिनका श्रीराधाष्टमी पर बरसाने जाने का नियम ही था। वे श्री गिरिराज होकर ही जाया करतीं। वहाँ पू. पंडित जी महाराज के दर्शन अवश्य करने जातीं। प्रसङ्गवश एक बार किशोरी जी के प्राकट्य, अष्ट सखियों तथा अन्य गोपिकाओं के प्राकट्य, युगल के विहार में ललिता, विशाखादि सखियों की सेवा का स्वरूप वर्णन करते करते वे गद्गद् हो गए थे। यह बात जब बहुत से लोगों को पता चली तो वे स्तब्ध रह गए। बात भी विचित्र थी- पू. बहन जी के प्रति उनकी विशेष आत्मीयता थी तथा पू. बहन जी से मिलने का भी एक विशेष संयोग है।[1] उसी के वशीभूत हो उनके अनजाने में यह चर्चा स्फुरित हुई।

सद्गुरु आज्ञा पालन, महद् आश्रय, नारी समुदाय से सावधानी, केवल आवश्यक संग्रह, नाम में प्रगाढ़ निष्ठा, आत्म निरीक्षण, मौन, संयम इत्यादि के प्रति सभी साधकों को सजग रहने पर दृढ़ बल देते। स्वयं तो बड़ी कठोरता और सजगता से पालन करते।

श्रीकृष्ण की अनुभूति/साक्षात्कार कर वे अपनी तन्मयता में तलहटी में ही विराजमान रहे। पूजनीया ऊषा बहन जी ने एक बार उनसे बात बात में पूछ लिया। महाराज जी, "शास्त्र मत है, संतों ने भी इसी का अनुमोदन किया है कि श्री गिरिराज की शरण में आने पर श्याम सुन्दर का साक्षात् दर्शन सहज सुलभ हो जाता है-आप यहाँ वर्षों से रह रहे हैं।" पू. पंडित जी का बड़ा ही संकुचित तथा नपा तुला उत्तर था, "सन्तन ने सांची कही है"। दैन्य उनमें पूर्णतः समा, स्वभाव बन गया था।

समर्पण तथा भगवन्नाम के सातत्य पर वे अधिक बल देते। अनन्यता के विषय में यह दृष्टान्त वे अवश्य देते। "पहले दास प्रथा थी। दास बिकते। एक बार एक सेवक कूँ खरीद के मालिक लायो। वा ते पूछी, "तुम्हारौ नाम कहा ए।" बोल्यौ, "जो आप रख देंगे।" काम कहा करोगे, "आप जो कहेंगे" महाराज जी सदा कहते, समर्पण कौ यह स्वरूप होनौ चहिये।"

इसी प्रकार श्याम सुन्दर की लीला-चिन्तन में निमग्न वे अपना जीवन यापन करते रहे। भादौं कृष्ण चतुर्थी, सम्वत २०५१ को आप नित्य लीला में सम्मिलित हो गए।

यमुनावतो

गोवर्द्धन से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर स्थित है। किसी समय में यहाँ श्रीयमुनाजी प्रवहमान थीं, उसी से इसका नाम 'यमुनावतो' हो गया। बाढ़ के

1. ब्रज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती ऊषाबहन जी ग्रन्थ का पृष्ठ ४६१ देखें।

दिनों मे आज भी श्रीयमुना की धारा यहाँ से होकर जाती है। श्रीकुंभनदासजी तथा श्रीचतुर्भुजदासजी की जन्मभूमि है। वे यहीं रहते थे।

'कुंभन तलाई' तथा 'श्यामा गाय की बैठक' आज भी यहाँ के मुख्य आकर्षण हैं। कहते हैं कि एक पीपल का वृक्ष है, जो शाखा प्रशाखा अद्यावधि विद्यमान है, उसके नीचे कुंभनदासजी तथा श्रीनाथजी प्रायः मिलते थे।

पारासौली (चन्द्र सरोवर)

गोवर्द्धन ग्राम से डेढ़ मील की दूरी पर स्थित है। गोवर्द्धन क्षेत्र में रासस्थली रूप में इसी स्थली का वर्णन मिलता है। वैष्णव ग्रन्थों के अनुसार इसे सारस्वत कल्प की महारास स्थली भी माना गया है। यहाँ श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज ने रासलीला के प्रत्यक्ष दर्शन किये थे। श्रीगोपालदासजी ने चन्द्र-सरोवर के निकट की सम्पूर्ण स्थली को रासस्थली मान आदि वृन्दावन के नाम से सम्बोधित किया है। एक पद में यहाँ की शोभा का वर्णन करते हुए वे कह रहे हैं-

'चारों ओर सघन निकुञ्जें हैं, जहाँ वल्लरियों ने पुष्प, उपहार स्वरूप प्रदान कर स्थली को सौरभान्वित कर, रासलीला के लिये उपयोगी बना दिया है। पुष्पों पर भ्रमर गुञ्जायमान हैं। तमाल वृक्षों के आश्रय में हेम वल्लरियाँ सुशोभित हो रही हैं। अनेक वाद्यों की मधुर ध्वनि हो रही है, जिसका श्रवण कर मयूर बौरा गये हैं। इन्हीं रसमयी निकुञ्जों में प्रिया-प्रियतम, निज-स्वरूप-भूता सखियों सहित रास-विलास में निमग्न हो रहे हैं।

कुञ्ज सदन सुहामणा शोभा तणों नहीं पार।
विविध रास मण्डल रची खेलें श्रीनन्दकुमार॥

'आदि वृन्दावन' का वर्णन करते हुए भक्तप्रवर 'सूरदासजी' अपने ग्रन्थ 'सूर सारावली' में कहते हैं-

जहाँ वृन्दावन आदि अजर जहाँ कुञ्ज लता विस्तार।
तहाँ विहरत प्रिया-प्रियतम दोऊ निगम भृङ्ग गुञ्जार॥

ब्रज की प्रत्येक स्थली, श्रीकृष्ण की किसी न किसी लीला से सम्बंधित है। श्रीगिरिराज जहाँ एक ओर गोचारण के लिये अत्यन्त उपयोगी हैं, वहाँ गिरि कन्दराओं में इन ब्रज-बालाओं सहित एकान्तिक रास-विलास से धन्य है यह स्थली। पारासौली, चन्द्र सरोवर सभी श्रीकृष्ण की एकान्तिक रसमयी लीलाओं के सृजन में, सहायक है। पास ही श्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक है।

महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक

सरोवर के पास ही छोंकर वृक्ष के नीचे श्रीमदाचार्य की बैठक है।

एक बार एक वैष्णव ने श्रीमदाचार्य से, श्रीनाथजी के प्रत्यक्ष दर्शन करने की इच्छा व्यक्त की। महाप्रभुजी किसी विशेष चिन्तन में बैठे थे, उन्होंने सहज कह दिया, "यदि तुम श्रीगिरिराज की, बिना रुके तीन परिक्रमा कर लो, तो तुम्हें साक्षात् रूप में भगवान के दर्शन हो जावेंगे।" वैष्णव ने श्रद्धा पूर्वक, इसी निष्ठा, से परिक्रमा शुरु कर दी। परिक्रमा में पहले तो उसे श्वेत रङ्ग का एक सर्प दिखलाई दिया। अपशकुन मान वैष्णव ठिठक गया। पूंछरी की ओर आगे जाने पर एक ग्वारिया ने कहा "अरे वैरागी, आगे मत जाओ सिंह खड़ा है" भयभीत उस वैष्णव ने महाप्रभुजी को याद किया और आगे जाने पर उसे एक गाय मिली। परिक्रमा समाप्त करके वह महाप्रभुजी के पास पहुँचा, और अपनी निराशा उनसे कही।

महाप्रभुजी ने सारा विवरण जानकर कहा, "भगवान के दर्शन तो तुम्हें हुए, परन्तु उनकी इच्छा के बिना ज्ञान नहीं मिलता, आस्वादन नहीं हो सका।" महाप्रभुजी ने कृपा कर उसे दर्शन करवाये।

श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी की बैठक

पुष्टिमार्ग के स्तम्भ माने जाते हैं गुसांईजी। आप बड़े विद्वान तथा भावुक थे। आचार्य पद को लेकर घरेलु विवाद चल ही रहा था। आप सर्वथा योग्य थे, परन्तु कुछ वैष्णव इनके बड़े भाई श्रीगोपीनाथजी के सुपुत्र श्रीपुरुषोत्तमजी को आचार्य पद पर आसीन करना चाहते थे। श्रीकृष्णदासजी, श्रीनाथजी के मन्दिर के अधिकारी थे। वे प्रभावशाली थे ही, साथ-साथ उनका झुकाव भी पुरुषोत्तमजी के पक्ष में ही था। इसी विवाद को लेकर श्रीकृष्णदासजी ने गुसांईजी के लिए श्रीनाथजी की ड्योढ़ी बन्द कर दी थी। उस समय गुसांईजी चन्द्रसरोवर पर ही विराजते रहे।

श्रीनाथजी के दर्शनों के अभाव में वे अत्यन्त व्याकुल हो गये। उस व्याकुलता में इनका हृदय ही उमड़ पड़ा। उन्हीं दिनों आपने 'नव विज्ञप्तियां' श्रीनाथजी को सम्बोधन कर लिखीं हैं, लगता है इनका व्याकुल हृदय ही उनमें समाविष्ट हो गया है। राजा बीरबल, गुसांईजी का अनुगत था-जब ड्योढ़ी बन्द की बात उसे पता चली, तो उसने श्रीकृष्णदास को दण्ड देने का प्रस्ताव रखा, परन्तु गुसांईजी ने स्पष्ट रूप से मना कर दिया।

श्रीसूरदासजी

पुष्टिमार्ग के जहाज श्रीसूरदासजी की भजन स्थली है। 'सूर-कुटी' तथा 'सूर समाधि' दोनों ही श्रीश्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक के घेरे में स्थित हैं। राज्य सरकार ने इनका पुनः निर्माण करवा दिया है।

सूरदासजी साक्षात्कारी थे । श्रीनाथजी उनके लिए बिल्कुल प्रत्यक्ष तथा प्रकट थे । वे यहाँ निवास करते रहे । जो-जो अनुभूतियाँ उन्हें हुईं, उन्हीं के पदों की रचना कर वे गाते रहे । वही सब पद 'सूरसागर' के रूप में संग्रहीत हुए उपलब्ध हैं । सूरदासजी, श्रीनाथजी की नित्य, सेवा में यहीं से जाया करते ।

श्रीकृष्ण के प्रति उनका दृढ़ अनुराग था । उनके दर्शनों की चाह तीव्रतर होती गई तथा श्रीकृष्ण प्रेम में वे डूबते गये । सूरदासजी ने, ग्वारिया वेश में सुसज्जित, लकुटि से लिपटे खड़े, अपने प्राण सर्वस्व को देखा । उनकी मधुर अवलोकन, मन्द मुस्कान, सभी ने सूर के मन का अपहरण कर लिया । मुकुट की लटक ने जादू-सा कर दिया, श्रवणों में प्रियतम की शत-शत वीणाओं को विनिन्दित करती मधुर स्वर लहरी प्रविष्ट हो गई-ऐसे त्रिभंग सुन्दर की छवि माधुरी का वर्णन करना लेखनी के वश की बात नहीं है ।

निम्न पद में एक गोपी की मनोदशा का वर्णन करते हुए कह रहे हैं -

अब तो प्रकट भई जग जानी ।
वा मोहन सौं प्रीति निरन्तर क्यों निबहेगी छानी ।
कहा कहौं सुन्दर मूरति इन नयनन मांझ समानी ।
निकसत नाहिं बहुत पचिहारी रोम-रोम अरुझानी ।
अब कैसे निरवारि जात है मिल्यौ दूध ज्यौं पानी ।
सूरदास प्रभु अन्तरजामी ग्वालिनी मन की जानी ।

बेचारी भोली-भाली गोपबाला की मनोदशा देखिये । सौन्दर्य, माधुर्य की अथाह राशि नैनों में समा गई । प्रयत्न करने पर भी उसे निकाल पाने में समर्थ नहीं हो रही । जिस अखण्ड ज्योति को युगों तक प्रयास करने पर भी योगी, मुनि प्राप्त नहीं कर सकते, उसी रूप माधुरी को अनायास प्राप्त कर, ग्वालिनी अपने हृदय से निकालने का प्रयास कर रही है, परन्तु और और उलझती जा रही है । ओह ! भला इन सांवर किशोर से, उस ब्रज बावरी की मनोदशा, कहाँ छिपी रहती, उन्होंने आ उसके जीवन में और सरसता भर दी ।

दैन्य सूरदासजी की सम्पत्ति थी । एक बार श्रीचतुर्भुजदासजी ने कहा सूरदासजी ने भगवत यश बहुत गाया, आचार्य महाप्रभु के यश का वर्णन कहीं नहीं किया । श्रीसूरदासजी ने उत्तर दिया, "मैंने तो सब आचार्य चरण का ही यशोगान किया है 'कछू न्यारो देखतो तो न्यारोई गामतो' पर तुम्हारे सामने कहता हूँ"-

भरोसो दृढ़ इन चरणन केरो ।
श्रीवल्लभ नख चन्द्र छटा बिन सब जग मांझअन्धेरो ।
साधन और नाहि या कलि में जासों होत निबेरो ।
'सूर' कहा कहुँ द्विविध आंधरो बिना मोल को चेरो ।

अपना अन्तिम समय निकट जान एक दिन मङ्गला आरती के पश्चात् सूर दासजी पारासौली ग्राम आ गये। गुसांईजी ने सब जान लिया। अपने सेवकों से कहा, "आज पुष्टि मार्ग का जहाज जाने वाला है जिसको जो कुछ लेना हो वह ले ले।"

गुसांईजी की आज्ञानुसार सभी सूरदासजी के पास आ गये। राजभोग पश्चात् गुसांईजी भी पधारे। सूर उस समय लीला चिन्तन में मग्न संज्ञा हीन से दीख रहे थे। गुसांई विट्ठलनाथजी ने सूरदासजी का हाथ पकड़ कर कहा, 'सूरदासजी ! क्या बात है।' सूरदासजी ने नेत्र खोल गुसांईजी को प्रणाम किया तथा निम्न पद गाते-गाते नित्य लीला में प्रवेश कर गये।

खंजन नैन रूपरस माते।
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।
चलि चलि जात निकट श्रवननि के उलटि पलटि ताटंक फंदाते।
सूरदास अञ्जन गुण अटके न तर अब उड़ जाते॥

उनके जीवन की अनेक घटनाऐं प्रसिद्ध हैं।

श्रीचन्द्रबिहारी, तथा दाऊजी का मन्दिर है। पास ही गन्धर्व कुण्ड है।

आन्यौर

'चन्द्र सरोवर से लभगभ दो मील की दूरी पर गिरिराज तलहटी में यह गाँव अपनी शोभा बढ़ा रहा है। श्रीश्रीनाथजी यहीं, श्रीगिरिराज शिला के नीचे से प्रकट हुए थे।

श्रीश्रीमन्महाप्रभु बल्लभाचार्यजी की बैठक

यह बैठक श्रीसद्दू पाण्डे नामक वैष्णव के घर में है। उन्हीं के परिवार के लोग यहाँ सेवा पूजा करते हैं। पाण्डे परिवार का सौभाग्य अक्षुण्ण था। उन पर भगवत्कृपा रही है। श्रीमती भवानी, पुत्री नरो तथा श्रीसद्दू पाण्डे का चरित्र परम धार्मिक तथा विलक्षण है। श्रीनाथजी के प्राकट्य का श्रेय मूलतः इस परिवार को ही है। "८४ बैठकन कौ चरित्र"

प्राकट्य प्रसङ्ग (श्रीनाथजी)

श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी महाराज धर्म प्रचार हेतु भ्रमण कर रहे थे। वे झाड़खण्ड क्षेत्र में पधारे। वहाँ श्रीगोवर्द्धन नाथजी ने दर्शन दिये और कहा, "हमें अमुक स्थान से प्रकट कर सेवा का प्रकाश करो।"

श्रीमदाचार्य कुछ समय बाद ब्रज में इसी उद्देश्य से पधारे। पूर्व मिले

संकेतों के आधार पर, आन्यौर ग्राम में श्रीसद्दू पाण्डे नामक वैष्णव के घर रुके। शरणापत्ति को लेकर परस्पर चर्चा चल पड़ी। इधर श्रीगोवर्द्धन नाथजी बालक रूप में श्रीपाण्डे के घर आकर उनकी पुत्री नरो से दूध की याचना करने लगे। नरो ने उत्तर दिया, "थोड़ी देर ठहरो, महमानों की सेवा कर लूँ।" परन्तु श्रीगोवर्द्धन नाथजी को देरी क्यों कर सहन होती। नरो ने दूध दिया। दुग्ध पान कर श्रीनाथजी जब लौट गये तो महाप्रभुजी ने पूछा, यह बालक कौन था ? नरो ने भोला-भाला साधारण-सा उत्तर दिया, यह पर्वत के देवता 'देव दमन' थे।

श्रीमन्महाप्रभुजी को झाड़खण्ड का सम्पूर्ण वृत्तान्त स्मरण हो आया। उसी भावुकता में वे बौरा से गये, शरीर में सभी सात्विक भाव उदय हो गये, पात्र में अवशिष्ट उच्छिष्ट को उन्होंने तुरन्त पान कर लिया।

दूसरे दिन महाप्रभुजी ने कहा, 'तुम लोग ब्रजवासी हो।' 'देव दमन' के प्रति तुम्हारा प्रगाढ़ प्रेम है, अतः तुम्हारे लिये आचार विचार का कोई बन्धन नहीं है। 'देव दमन' की प्राकट्य वार्ता, तुम सविस्तार कहो।

'देव दमन' की प्राकट्य वार्ता, श्रीसद्दू पाण्डे ने, सभी के सामने निम्न प्रकार कही-

एक ग्वारिया था। वह गाय चराया करता था। एक गाय जिसके नीचे पर्याप्त मात्रा में दूध था, नित्य ही उसे भी चराने के लिये ले जाया करता था। एक बार कई दिन लगातार सन्ध्या में दूध न मिलने के कारण उस गाय के स्वामी, एक ब्राह्मण ने ग्वारिया से सारा वृत्तान्त जानना चाहा।

ग्वारिया ने कहा, "मैं तो दूध दुहता नहीं, परन्तु इतना अवश्य है कि यह गैया अकेली ही श्रीगिरिराजजी की एक स्थली पर चली जाया करती है। वहाँ इस गाय का दूध स्वतः ही स्रवित हो जाता है।" सभी ग्रामवासी कौतुहलवश दूसरे दिन इस सबकी सत्यता देखने के लिये गये तो ग्वारिया की बात ठीक निकली। जब वहाँ से शिला हटाई गई, वहाँ से जो ठाकुर स्वरूप प्रकट हुए, वे स्वरूप श्रीनाथजी के नाम से प्रसिद्ध हुए। उस भुवन मोहनी छवि को निहार सभी जन चकित विस्मित रह गये। सभी को पुलक रोमाञ्च हो गया।

श्रीमहाप्रभुजी के साथ वे सभी वैष्णव पुनः गये। महाप्रभुजी को सेवा प्रकाश करने का आदेश पहले ही हो चुका था-अतः उन्होंने एक छोटा सा मन्दिर बनवाकर सेवा प्रारम्भ करवा दी। बाद में सेवा का भार श्रीकृष्ण दास अधिकारी ने सम्हाल लिया। (८४ वैष्णव वार्ता)

श्रीश्रीनाथजी के प्राकट्य सम्बन्धी एक और सरस इतिहास वैष्णव समाज में विख्यात है। उसे भी हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

श्रीपाद माधवेन्द्रपुरीजी महाराज भ्रमण करते-करते एक बार श्रीगिरिराजजी में गोविन्द-कुण्ड के निकट ठहरे। अयाचक वृत्ति होने के कारण दोपहर में भूखे

ही एक वृक्ष के नीचे पड़े रहे। सन्ध्या में एक ब्रजवासी बालक, दूध का कटोरा लिये इनके पास आकर बोला, "बाबा ! मेरी मैया ने कुछ दूध देकर तुम्हारे पास भेजा है, इसे ग्रहण करो।"

पुरी महाराज उस अत्यन्त सुन्दर श्यामलोज्ज्वल छवि को निहार कुछ खो से गये। दुग्ध पान कर बालक के कहे अनुसार पात्र लौटाने की प्रतीक्षा करने लगे। वह बालक बहुत देर तक न लौटा। इन्हें कुछ तन्द्रा-सी आ गई।

स्वप्न में उसी बालक ने अपना परिचय देकर श्रीगोपाल जी का स्वरूप दर्शाया तथा रहस्य प्रकट किया। यह भी कहा कि यवनों के भय से पुजारी लोग मुझे दबाकर चले गये थे। तुम हमारी सेवा की व्यवस्था करो। श्रीपुरी महाराज ने सेवा प्रारम्भ कर दी। कहते हैं वही गोपालजी श्रीश्रीनाथ स्वरूप ही थे।

(श्री चैतन्य चरितामृत)

उपरोक्त दोनों घटनाओं से यह तो स्पष्ट ही है कि श्रीनाथजी स्वयं प्रकट ठाकुर हैं। उनका प्राकट्य श्रीगिरिराजजी से हुआ है, यह भी निर्विवाद है। श्रीश्रीनाथजी लीला कौतुकी हैं। उनकी अनेक लीलाएँ भक्तों के साथ प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ बनी आज भी हमारा पथ प्रशस्त कर रही हैं। उनके प्राकट्य का कौतुक उनके अपने ही हाथ की बात है। प्राकट्य एक पहेली ही बना रहे यह भी उन्हीं का एक कौतुक है। वे किसी इयत्ता में तो बँधे हैं नहीं। यह भी सम्भव है कि श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी तथा श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी महाराज, दोनों ही को श्रीनाथजी ने अलग-अलग समय में अलग-अलग दर्शन दिये हों। श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद ने इस सम्बन्ध में दोनों ही का प्रशस्ति गान करते हुए कहा है-

अधिधरमनुरागं माधवेन्द्रस्य तन्वंस्तदमल,
हृदयोत्थां प्रेम सेवां विवृण्वन् ।
प्रकटित निजशक्त्या वल्लभाचार्यभक्त्या,
स्फुरतु हृदि स एव श्रीलगोपालदेवः ॥

(गोपाल देवाष्टक)

आइये इस प्राकट्य सम्बन्धी इतिहास को यहीं छोड़ श्रीनाथजी के लीला चरित्रों का गान आस्वादन करें, श्रीनाथजी आपके हैं, हमारे हैं तथा हम सबके हैं।

सङ्कर्षण कुण्ड

यह कुण्ड आन्यौर गाँव से सटा हुआ परिक्रमा मार्ग के दाईं ओर है। उत्तरी तट पर सङ्कर्षण भगवान का मन्दिर है। भक्तप्रवर कुंभनदासजी का इस स्थान से विशेष सम्बन्ध था। उनके दर्शन करने राजा मानसिंह यहीं आये थे। यहीं श्रीकुंभनदासजी की समाधि भी है।

पास ही गिरिराज पर बाजनी शिला हैं, जिसे बजाने से मधुर ध्वनि होती

है। गोविन्द कुण्ड के पश्चिम में श्रीगिरिराज शिला पर श्रीकृष्ण के हस्ताक्षर चिन्ह तथा लकुटि का चिन्ह है। आन्यौर तथा जतीपुरा के मध्य मार्ग में श्रीगिरिराजजी के ऊपर सिन्दूरी शिला है।

गौरी तीर्थ

आन्यौर से कुछ आगे परिक्रमा के बाँई ओर यह तीर्थ विद्यमान है। श्रीचन्द्रावलीजी गौरी पूजन के मिस श्रीकृष्ण से मिलने के लिये यहाँ पधारती हैं, वे श्रीकृष्ण की अनन्या प्रिया हैं न!

नीप वृक्षों से आच्छादित यह स्थली अत्यन्त रमणीय है।

अन्नकूट स्थान

कृष्णस्त्वन्यतमं रूपं गोपविश्रम्भणं गतः।
शैलोऽस्मीति ब्रुवन् भूरिबलिमादद् वृहद्वपुः॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/24/35)

श्रीकृष्ण द्वारा प्रेरणा पाकर, श्रीनन्दरायजी तथा अन्य गोपों ने, जो सामग्री इन्द्र पूजा के लिये तैयार की थी, वह सभी श्रीगिरिराज पूजन हेतु समर्पित कर दी। ब्राह्मणों ने यज्ञ तथा स्वस्तिवाचन करवाया।

पश्चात् सभी ब्रजवासी श्रीगिरिराज की परिक्रमा करने के लिये चल दिये। ब्रजवासियों की प्रसन्नता का ठिकाना न रहा। उन्होंने देखा कि उनका सखा देव रूप में विराजमान होकर उनके द्वारा समर्पित सामग्री को यथावत् रुचि पूर्वक ग्रहण कर रहा है। जहाँ श्रीकृष्ण ने अन्नकूट की सामग्री ग्रहण की, वही स्थली 'अन्नकूट स्थल' नाम से विख्यात है। आज भी उसी तरह यहाँ पूजन की परम्परा चली आ रही है।

पास ही सद्दू पाण्डे का घर है। श्रीगिरिराज के निकट ही श्रीनाथजी का प्राकट्य स्थल है।

गोविन्द कुण्ड

अन्नकूटस्य सान्निध्ये तीर्थं शक्रविनिर्मितं।
तस्मिन् स्नाने तर्पणे च शतक्रतुफलं लभेत्॥[2]

(आ० वा०)

---

1. भगवान श्रीकृष्ण गोपों को विश्वास दिलाने हेतु श्रीगिरिराज के ऊपर एक दूसरा विशाल वपु धारण करके प्रकट हो गये, 'मैं गिरिराज हूँ' इस प्रकार कहते हुए सारी सामग्री आरोगने लगे।
2. अन्नकूट स्थान के निकट ही देवराज इन्द्र द्वारा प्रकाश किया हुआ गोविन्द कुण्ड नामक तीर्थ है। यहाँ स्नान तथा तर्पण करने से शत-शत यज्ञ करने का फल मिलता है।

इन्द्र पूजन की सम्पूर्ण ब्रज में, घर-घर में सोत्साह तैयारी होते देख बालक कन्हैया के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। विविध पकवान बना ब्रजवासी, घर के देवता को छोड़, देव पूजन करेंगे-यह बात ब्रजवासियों के लिये शोभनीय न लगी। भोले-भाले ब्रजवासियों को नियमादि पूर्वक पूजन के लिये तत्पर देख, श्रीकृष्ण ने नन्दबाबा से पूछा, "बाबा ! आप लोगों के सामने कौन-सा बड़ा भारी काम है; कौन-सा उत्सव आ पहुँचा है ? इसका फल क्या है ? किस उद्देश्य से, कौन लोग, किन साधनों के द्वारा यह यज्ञ किया करते हैं ? आप मुझे अवश्य ही सविस्तार समझाइये।

कन्हैया की बाल सुलभ भोली-भोली बातों के सामने श्रीनन्दरायजी क्या कहते-वे बोले-

"बेटा ! इन्द्र वर्षा करने वाले मेघों के स्वामी हैं। मेघ उन्हीं के अपने रूप हैं और जब वे वर्षा करते हैं तो सभी प्राणियों की जीवन रक्षा होती है। इस यज्ञ से जो कुछ अवशेष रहता है उसी को हम अपने त्रिवर्ग की सिद्धि के लिये प्रयोग में लाते हैं। यह धर्म हमारी कुल परम्परा से चला आ रहा है।"

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, 'बाबा ! प्राणी अपने कर्मानुसार ही पैदा होता है तथा मरता है। मनुष्य अपने स्वभाव के अधीन है। वैश्यों की वृत्ति चार प्रकार की है, परन्तु हम लोग केवल गो पालन ही करते आये हैं। बाबा ! न तो हमारे पास कोई बड़ा राज्य है, जिससे यज्ञादि के प्रयोजन पूरे किये जाएँ। हम लोग तो सदा से बनवासी हैं और पर्वत ही हमारे घर हैं। इसलिए मेरी तो सम्मति है कि इन्द्र यज्ञ के लिए बनी सामग्री से हम श्रीगिरिराज, गौओं और ब्राह्मणों का यजन करें।" श्रीनन्दबाबा तथा सभी अन्य गोपों ने इस बात को सहर्ष स्वीकार कर लिया क्योंकि कन्हैया के विलक्षण चरित्र से वे सब पहले ही परिचित थे, अतः इन्द्रयज्ञ हेतु एकत्रित सभी सामग्री श्रीगिरिराजजी को सादर-सप्रेम भेंट कर दी गई।

ब्राह्मणों का आशीर्वाद लेकर गोप तथा गोपिकाऐं भिन्न-भिन्न प्रकार के श्रृङ्गारादि धारण कर श्रीगिरिराजजी की प्रदक्षिणा के लिए उत्सुक हो गये।

भगवान श्रीकृष्ण ने वह सम्पूर्ण सामग्री श्रीगिरिराज के ऊपर दूसरा विशाल शरीर धारण करके आरोग ली। सभी को विश्वास हो गया कि देवता स्वयं प्रकट होकर ग्रहण कर रहे हैं।

इधर इन्द्र को जब यह सब पता चला तो उनसे क्रुद्ध होकर संवर्तक नामक मेघों को ब्रज में घोर वर्षा करने का आदेश दिया। ब्रज में मूसलाधार वर्षा होने लगी। ब्रजवासियों के लिए, अपने ठहरने तथा पशुओं के लिए कोई स्थान

न रह गया। ठंड से वे काँपने लगे। उन्होंने श्रीकृष्ण से अपनी व्यथा कही।

वे बोले, "प्यारे कृष्ण तुम बड़े सामर्थ्यवान हो। तुम्हारे भाग्य से ही हमारी रक्षा हो सकती है। इस सारे गोकुल के एक मात्र तुम्हीं स्वामी हो तथा रक्षक भी हो।"

भगवान श्रीकृष्ण को इन्द्र का घमण्ड चूर-चूर करना ही था, उन्होंने सबके देखते-देखते

इत्युक्त्वैकेन हस्तेन कृत्वा गोवर्द्धनाचलम्।
दधार लीलया कृष्णश्छत्राकमिव बालकः॥

(भागवत 10/25/19)

इस प्रकार कहकर भगवान श्रीकृष्ण ने खेल-खेल में ही एक ही हाथ से श्रीगिरिराज गोवर्द्धन को उखाड़ लिया और जैसे छोटे-छोटे बालक बरसाती छत्ते के पुष्प को उखाड़ कर हाथ में रख लेते हैं, वैसे ही उन्होंने उस पर्वत को धारण कर लिया।

भगवान ने सभी ब्रजवासियों को गिरिराज पर्वत के नीचे आ जाने को कहा। अपनी कनिष्ठ अङ्गुली पर श्रीगिरिराज गोवर्द्धन को सात दिन तक धारण किये रखा। इन्द्र भी योगमाया के प्रभाव को देखकर आश्चर्यचकित रह गया।

कुछ वात्सल्य भाव भावित गोपों ने तथा माँ यशोदा ने, सखाओं को सम्बोधित करते हुए कहा, "अरे बालकों! तुम देख नहीं रहे हो-कन्हैया ने अपनी कनिष्ठ अंगुली पर श्रीगिरिराज गोवर्द्धन को धारण कर रखा है-तुम लोगों को कुछ विचार नहीं आता क्या।" सखागण बोले, "मैया तू तो सदा से ही भोरी है। देख नहीं रही, हम सबने, लाठियाँ लगाकर श्रीगिरिराज को रोक रखा है, कन्हैया के हाथ पर तो इसका भार तनिक भी नहीं है।" यह सुनकर श्रीकृष्ण मुस्कराने लगे।

वर्षा के बन्द हो जाने पर, श्रीकृष्ण ने सभी गोपों से अपने सामान, गोधन आदि के साथ बाहर जाने को कहा तथा सभी के सामने गिरिराज पर्वत को पूर्ववत स्थापित कर दिया।

ब्रजवासियों का हृदय प्रेम में सराबोर हो गया। वे श्रीकृष्ण के पास दौड़े आये और अपने कन्हैया को हृदय से लगा लिया, आनन्द और स्नेह से सभी ने दही, चावल आदि से श्रीकृष्ण का पूजन किया। देवता शंख बजाने लगे, गन्धर्वादि ने पुष्पों की वर्षा की।

देवराज ने, भगवान का अभिषेक कर स्तुति की। अभिषेक का जल जहाँ एकत्रित हो गया, जल पूरित वही स्थल, 'श्रीगोविन्द-कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया। यह कुण्ड आज भी हमारी श्रीकृष्ण में प्रगाढ़ प्रीति कराने वाला है।

यहाँ श्रीमाधवेन्द्र पुरीजी, श्रीवल्लभाचार्यजी, तथा श्रीविट्ठलनाथजी की बैठकें हैं । श्रीगोविन्दजी, और श्रीश्रीनाथजी के दर्शन हैं । कुण्ड के तट पर अनेक विरक्त महात्मा भजन करते हैं ।

ढोका दाऊजी

श्रीगोविन्द कुण्ड से आगे श्रीगिरिराज के ऊपर ही मन्दिर में श्रीदाऊजी विराजमान हैं ।

नागाजी की समाधि

श्रीचतुरानन नागा की समाधि है । यहीं श्रीनागाजी का देहावसान हुआ था । यह स्थान गोविन्द कुण्ड से थोड़ा आगे चलकर है ।

पूंछरी

श्रीगिरिराजजी के पीछे के हिस्से को पूंछरी कहा गया है । श्रीगिरिराजजी का आकार गौ स्वरूप माना गया है, अतः श्रीराधाकुण्ड श्रीकृष्ण कुण्ड, नेत्र तथा पूंछरी गाँव में पूंछ की भावना की जाती है । जिस प्रकार गौ के लिए पूंछ का महत्त्व है उतना ही महत्त्व इस तीर्थ का है ।

पास ही 'नृसिंह टीला', 'नवल कुण्ड', 'अप्सरा कुण्ड' पर 'अप्सरा बिहारी', ठाकुरजी विराजमान हैं ।

पूंछरी का लौठा

पूंछरी गाँव से बाहर के मन्दिर में पहलवान मूर्त्ति के आकार का एक स्वरूप पूंछरी का लौठा नाम से विख्यात है । इसे श्रीकृष्ण का सखा मानते हैं ।

श्रीराघव पण्डित की गुफा

श्रीगिरिराज की तलहटी में रहकर श्रीराघव पण्डितजी भजन करते थे । गुफा द्वार आजकल बन्द है ।

श्रीरामदासजी की गुफा

अप्सरा कुण्ड के पास ही बल्लभ सम्प्रदाय के परम भागवत श्रीरामदासजी भजन करते थे ।

सुरभि तथा ऐरावत कुण्ड

एवं कृष्णमुपामन्त्रय सुरभिः पयसाऽऽत्मनः ।
जलैराकाशगङ्गाया ऐरावतकरोद्‌धृतैः ॥
इन्द्रः सुरर्षिभिः साके नोदितो देवमातृभिः ।
अभ्यषिञ्चत दाशार्ह गोविन्द इति चाभ्यधात्॥[1]

(श्रीमद्‌भागवत 10/27/22-23)

श्रीकृष्ण की भगवत्ता से इन्द्र लज्जित हो गये । उन्होंने विविध भाँति से भगवानका अभिषेक किया । अभिषेक की वे सभी स्थलियाँ क्रमशः कुण्डों के नाम से प्रसिद्ध हो गईं । तभी से 'सुरभि कुण्ड' तथा 'ऐरावत कुण्ड' विख्यात हो गये ।

पास ही कुनवाड़े का तथा श्रीगिरिराजजी को भोग समर्पित करने का स्थान है । यहीं श्रीपरमानन्ददासजी विराजते तथा श्रीनाथजी की सेवा करते थे ।

कदम्बखण्डी

यत्र कृष्णस्तु गोपीनां मनोस्याह्लादनंकरोत् ।
कदम्बोपरिः संविष्टो मुरलीवादनं शुभम् ॥
गोप्योऽधःस्थल-संस्थास्ता रासक्रीड़नतत्पराः ।
यतो कदम्बखण्डाख्यं वनं जातं महद्‌भुतम् ॥[2]

(भविष्य पुराण)

गिरिराज की तलहटी, गिरि गुफाएँ, गिरिराज की एकान्तिक निकुञ्जें, प्रिया-प्रियतम की विहार विलास लीलाओं से स्पृष्ट हैं, सिञ्चित हैं तथा परिपुष्ट हैं । कदम्ब सौरभ से उन्मादित इन रस बावरों ने ब्रज की प्रत्येक स्थली को अपने मधुर रस से पोषित किया है ।

श्रीनाथजी के सेवक सखा भक्तप्रवर श्रीगोविन्द स्वामीजी यहीं निवास करते थे, श्रीगिरिराज के चतुर्थ द्वार पर श्रीगोविन्द स्वामीजी सेवा में विराजते हैं ।

(८४ वैष्णव वार्ता)

रुद्र कुण्ड

एकान्त तथा निर्जन स्थली है । श्रीमहादेवजी श्रीकृष्ण दर्शन हेतु यहीं विराजे, अतः यह स्थली, 'रुद्र-कुण्ड' नाम से विख्यात हो गई ।

1. परीक्षित ! भगवान श्रीकृष्ण से ऐसा कहकर कामधेनु ने अपने दूध से देव माताओं की प्रेरणा से देवराज इन्द्र ने, ऐरावत की सूँड से लाये हुए आकाश गंगा के जल से, देवर्षियों के साथ, यदुनाथ श्रीकृष्ण का अभिषेक किया और उन्हें गोविन्द नाम से सम्बोधित किया ।

2. यही वह कदम्ब वृक्ष समूह का विशेष सघन तथा रमणीक स्थल है । श्रीकृष्ण ने अनेकानेक रस रासलीला विहार में गोपिकाओं सहित यहाँ रमण किया । उनकी नित्य संगिनी वंशी की तान सुन आत्मविभोर ब्रजरमणी वृन्द, विशेष आमन्त्रण पा रस मग्न हो जाती हैं ।

पास ही 'हरजी की पोखर' है। अत्यन्त रमणीय स्थली है। यहाँ 'बूढ़े बाबू महादेवजी' के दर्शन हैं।

रुद्र कुण्ड के पास ही श्रीगिरिराजजी का पाँचवाँ द्वार माना जाता है, जहाँ भक्त श्रीचतुर्भुजदासजी सेवा में रत हैं। (८४ वैष्णव वार्ता)

श्याम ढाक

श्याम ढाक के दौना, जा में खावै श्याम सलौना।

यह उक्ति ब्रज में अति प्रसिद्ध है। अनेकानेक श्याम पलाश वृक्षों के झुरमुटों से आच्छादित यह स्थली, श्याम ढाक नाम से प्रसिद्ध है। पूंछरी ग्राम से डेढ़ मील दूरी पर स्थित है।

यहाँ आज भी वर्षा ऋतु में कदम्ब पुष्पों की सौरभ से मन मधुकर बावरा हो जाता है। सरसता, स्निग्धता के वातावरण में अनेकानेक-स्मृतियाँ साकार हो जाती हैं। एकान्त तथा निर्जन यह स्थली श्रीकृष्ण की गो चारण लीलाओं से, सिक्त-सिञ्चित है।

कहते हैं एक बार भोजन करते समय श्रीकृष्ण को दोना की आवश्यकता हुई तो उन्होंने पास ही के एक कदम्ब वृक्ष से एक पत्ता तोड़ लिया, वह दोने के आकार का ही था। उन परम ब्रह्म श्रीकृष्ण की इच्छा से ही बने उस दोने के प्रमाण आज भी आप यहाँ देख सकते हैं।

श्रीनाथजी प्रायः यहाँ खेलने चले आते। एक बार श्रीनाथजी यहाँ पधारे। श्रीगोविन्द स्वामी साथ थे। एक वृक्ष पर बैठकर श्रीनाथजी वंशी बजाने लगे। थोड़ी देर हो गई। इधर मन्दिर में उत्थापन का समय हो गया। श्रीगुसांईजी मन्दिर में पहुँचे। श्रीनाथजी उतावली में वृक्ष से कूद पड़े, उनका पटका एक डाली में उलझकर फट गया। फटा छोर वहीं अटका रह गया और स्वयं श्रीनाथजी मन्दिर में समय पर पहुँच गये। गुसांईजी फटे पटके को देख विस्मित हो गये। गोविन्दस्वामी ने बाद में आकर बतलाया और पटके का फटा छोर सबको वहीं ले जाकर दिखलाया।

श्रीगोविन्द स्वामी जी का भाव सिद्ध था। उन्हीं के साथ खेलने हेतु श्रीनाथजी श्याम ढाक पधारे थे।

यहाँ गोपी तलैया, गोप सागर, जलघड़ा तथा गुसांई श्रीविट्ठलनाथजी की बैठक है।

जतीपुरा (गोपालपुर)

श्रीगिरिराज की प्रत्येक शिला श्रीकृष्ण स्पर्श से, उनकी लीला से स्पृष्ट है। जहाँ एक ओर आन्यौर ग्राम अनेक लीलाओं से धन्य हुआ है दूसरी ओर जतीपुरा

नामक यह स्थल श्रीनाथजी की अनेक सुरस स्मृतियों को अपने वातावरण में संजोए आज भी वैष्णवों के लिये अत्यन्त पूजनीय बना है ।

वल्लभ सम्प्रदाय के प्रधान स्थानों में यह भी एक विशेष स्थान है । श्रीनाथजी, जो 'देव दमन' तथा 'गोपालजी' के नाम से जाने जाते हैं, वे यहीं विराजते थे । यद्यपि यवनों के आक्रमणों के भय से श्रीश्रीनाथजी को श्रीनाथद्वारा ले गये तथापि उनका वही मन्दिर, प्रतीक स्वरूप आज भी हम सभी के लिये प्राचीन स्मृतियों को प्रत्यक्ष कर रहा है ।

कौतुक प्रिय श्रीनाथजी के नवीन, कौतुकों से ब्रज-स्थली सदा धन्य होती रही है । लो ! यह नया कौतुक श्रीनाथजी को सूझा । श्रीनाथजी ने आचार्य से कहा, 'मुझे गैया अत्यन्त प्रिय है; मेरे लिये गैया मँगवा दो । आचार्य श्रीमहाप्रभुजी ने कहा ठीक है तथा श्रीसद्दू पाण्डे को यह वृत्तान्त कहा । सुनकर श्रीपाण्डेजी बोले, आचार्य पाद ! यह सब गैया श्रीनाथजी की ही तो हैं, परन्तु फिर भी श्रीनाथजी का आग्रह है तो और गैया अवश्य आएँगी । कहते हैं तभी से श्रीनाथजी को गोपाल कहा जाने लगा । यह सब विचार कर गुसांई श्रीविट्ठलनाथजी ने बाद में इस स्थली का नाम 'गोपालपुर' बदल दिया ।

आज से लगभग पाँच सौ वर्ष पूर्व भक्ति की मन्दाकिनी प्रवाहित हो रही थी । उसी समय में श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी, श्रीचैतन्य महाप्रभु जी, गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी, श्रीमन्नित्यानन्दजी, अष्ट छाप के आठ भक्त कवि, षड गोस्वामीगण, मीराबाई, कबीर, तुलसी आदि ने इस धराधाम पर अवतरित होकर, जन-जन में भक्ति का स्रोत उँड़ेल दिया । भक्ति युग की उन्हीं लहरों से बिखरे रस कण आज भी हमारा पथ संचालन कर रहे हैं ।

श्रीनाथजी

श्रीनाथजी, अपनी भुवन मोहिनी छवि-छटा का प्रसार कर लाखों भक्तों को अपने रूप-सौन्दर्य से, अपने प्रत्यक्ष दर्शन तथा लीला-माधुरी का आस्वादन कराकर, आकृष्ट करते रहे हैं-कर रहे हैं । श्रीनाथजी की सेवा, उनके प्रति लाड़-चाव का अभीप्सित क्रम जो चल रहा है, वह दर्शनीय तथा आस्वादनीय ही है ।

यह बात निर्विवाद है कि श्रीनाथजी का प्राकट्य श्रीगिरिराज कन्दरा से ही हुआ । महाप्रभु वल्लभाचार्यजी ने एक मन्दिर में पधरा कर सेवा प्रारम्भ कर दी । (प्राचीन स्थल आज भी जतीपुरा में विद्यमान है) । औरङ्गजेब के धर्म विरोधी विचारों को देखते हुए, अन्य कई स्वरूपों की भाँति श्रीनाथजी भी स्वेच्छा से बाहर चले गये ।

श्रीनाथजी अपने सेवा काल में जहाँ-जहाँ विराजे, वहाँ उनकी चरण चौकियाँ अङ्कित हैं। जतीपुरा तथा 'सतघरा' (मथुरा) में श्रीनाथजी की चरण चौकी विराजमान हैं। श्याम ढाक, गुलाल कुण्ड, टोड की घनो तथा पारासौली ग्राम में श्रीनाथजी की बैठकें अद्यावधि पूजनीय हैं।

श्रीनाथजी माधुर्य तथा लावण्य पूर्ण आकर्षण लिये हुए हैं। इनके श्रीअङ्गों पर विविध चिन्ह तथा अलङ्कार स्वतः ही बने हैं। इनकी पीठ पर शुक, मेष, सूर्य तथा गायों के चिन्ह हैं, ऐसा वार्ता साहित्य से पता चलता है।

श्रीनाथजी का चरित्र बड़ा ही विलक्षण तथा अपनत्व पूर्ण है। वे अपने जनों से प्रत्यक्ष बोलते, उनके साथ खेलते तथा बोलकर अपनी इच्छा अभिव्यक्त करते रहे हैं।

उन्होंने अनेक भक्तों को प्रत्यक्ष दर्शन देकर अपनी अहैतुकी कृपा का पात्र बनाया है। श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी महाराज को जहाँ एक ओर आपने सेवा प्रकाशित करने के लिये आदेश दिया तो दूसरी ओर अकारण कृपालु श्रीनाथजी श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी की अगवानी के लिये पर्वत से नीचे उतर आये तथा उन्हें दर्शन देकर अनुग्रहीत किया। श्रीमाधवेन्द्रपुरीजी महाराज, गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी, श्रीसूरदासजी, श्रीकुंभनदासजी, श्रीगोविन्द स्वामीजी प्रभृति महत्‌जनों को श्रीनाथजी के प्रकट दर्शन हुए हैं।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी ब्रज भ्रमण करते-करते यहाँ पधारे तो श्रीकृष्ण के अभिन्न कलेवर श्रीगिरिराज के ऊपर जाकर श्रीश्रीनाथजी के दर्शन करने न गये, परन्तु श्रीनाथजी के दर्शन की उत्कट अभिलाषा उन्हें थी। उसी दिन किसी व्यक्ति ने आकर सूचना दी कि यवनों के आक्रमण का भय है और आप लोग श्रीगोपालजी को लेकर कहीं अन्यत्र चले जाएं। (कहते हैं गोपालजी स्वयं ही उस स्वरूप में आये) अधिकारियों ने ऐसा ही किया। घट-घट की जानने वाले श्रीनाथजी ने श्रीचैतन्य महाप्रभुजी की अभिलाषा पूर्ण करनी थी। श्रीमन्महाप्रभुजी कहते हैं-

गोवर्द्धन ऊपरे आमि कभू ना चढ़िव।
गोपाल रायेर दर्शन केमने पाईव॥
एक जन आसि रात्र्ये ग्रामी के बलिल।
तोमार ग्राम मारिते तुरुकधारी साजिल॥
शुनिया ग्रामेर लौक चिन्तित हईल।
प्रथमे गोपाल लईया गांठुलि ग्रामे थुईल॥

सेई ग्रामे गिया कैल गोपाल दर्शन ।
प्रेमावेशे प्रभु करे कीर्तन नर्तन ॥[1]

(श्री चैतन्य चरितामृत)

दूसरा प्रसङ्ग

श्रीरामानन्द, श्रीवल्लभाचार्यजी के सेवक थे। वे बड़े विद्वान थे। एक बार श्रीरामानन्दजी ने बहुत ही श्रद्धा पूर्वक वल्लभाचार्य जी को अपने यहाँ थानेसर पधारने की प्रार्थना की, श्रीमहाप्रभुजी उनके यहाँ पधारे।

भोर में ही एक दिन श्रीरामानन्द जी ने अपनी पत्नी से कहा, 'बेगि के, गोबर सकेलि, नांतर वैष्णव उठि के गोबर ले जाईंगे।' श्रीरामानन्दजी की बात सुनकर श्रीवल्लभाचार्यजी को बहुत कष्ट हुआ। उन्होंने वैष्णव अपराध जान, उन्हें शिक्षा देने हेतु ही उनका परित्याग कर दिया।

श्रीरामानन्दजी के मन का स्तर गिर गया, परन्तु श्रीनाथजी के प्रति उनकी एक निष्ठा बनी रही। वे जब कुछ ग्रहण करते, श्रीनाथजी को भोग अवश्य समर्पित करते। एक बार वे कहीं जा रहे थे, मार्ग में जलेबी बनती देख वे अपना लोभ संवरण न कर सके। जलेबी मोल लेकर उन्होंने श्रीनाथजी के लिए समर्पित की। श्रीनाथजी ने जलेबी स्वीकार कर लीं।

श्रीमन्महाप्रभुजी जब अपरस में श्रीनाथजी के पास पधारे, तो जलेबी देख बोले, "लाला यह कहाँ ते लायो है।" श्रीनाथजी ने कहा, "श्रीरामानन्दजी ने भोग में धरीं सो मैंने आरोग लईं।" आचार्य श्री ने कहा, "लाला आप जानो नाओ, हमने तो उनको परित्याग कर दियो है।" श्रीनाथजी बोले, "सो तो ठीक है। परित्याग तो तुमने कियो है, मैंने नहीं। मैं तो वचन बद्ध हूँ। एक बार जाकूँ ब्रह्म सम्बन्ध कर आप मेरे सम्मुख ल्याओगे मैं वाय न छोड़ुंगो। मैंने तो अपनी आन राखी है।"

ऐसे रहे हैं श्रीनाथजी के चरित्र। श्रीनाथजी तथा गोविन्द स्वामी में अनन्य मैत्री थी। वे साथ-साथ खेलते, खाते तथा बाहर घूमने जाते। एक बार गोविन्द स्वामी ने रसोई वाले भीतरिया से कहा, "श्रीनाथजी के भोग से पहले मुझे दिया करो" भीतरिया को ठाकुर श्रीनाथजी के प्रति अवहेलना का भाव ठीक न लगा। उन्होंने गुसांईजी से जाकर कहा, "महाराज ! गोविन्द का मस्तिष्क ठीक नहीं है। मुझे कहते हैं कि श्रीनाथजी से पहले भोजन उन्हें दिया करूँ।" गुसांईजी

1. मैं गोवर्द्धन के ऊपर कभी न चढ़ूँगा परन्तु श्रीगोपालजी के दर्शन फिर किस प्रकार से सुलभ हो सकेंगे। उसी दिन रात्रि में किसी ने आकर कहा कि ग्राम पर यवन चढ़ाई करने वाले हैं। ग्राम के लोग चिन्तित हो गये। श्रीनाथजी को लेकर गाँठौली ग्राम चले गये। वहाँ जाकर महाप्रभु ने दर्शन किये तथा नृत्य और कीर्तन करने लगे।

इस रहस्य को समझ गये। उन्होंने सभी लोगों के सामने यह सब प्रकाशित करने के लक्ष्य से गोविन्द स्वामी को बुलाकर इसका कारण जानना चाहा। गोविन्द स्वामीजी ने कहा, "श्रीनाथजी को भोग पहले धरें, तो वे जल्दी-जल्दी स्वयं पाकर, मेरे पास आकर कहें, कि 'तू जल्दी कर, ओर मेरे सङ्ग खेलवे कूं चल।' न उठूँ तो च्यौटि भरें, तो मुझे बीच में ते उठनो परै है।"

गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने यह सब विचार कर गोविन्द स्वामी के लिए श्रीनाथजी के साथ-साथ प्रसाद पाने की व्यवस्था करवा दी थी।

श्रीनाथजी के ऐसे अनेक चरित्र विख्यात हैं।

श्रीनाथजी के कीर्तनियाँ

श्रीनाथजी की सेवा प्रारम्भ हो गई। उसके लिए अन्य सब व्यवस्था अभी जुटानी थी। श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी धर्म प्रचारार्थ चले गये।

श्रीगोस्वामी विट्ठलनाथजी ने चार श्रीमहाप्रभुजी के और चार अपने शिष्यों को श्रीनाथजी की अष्ट प्रहर सेवा में नियुक्त कर दिया। वे नित्य ही जिस लीला का आस्वादन करते, उसे लेखनी बद्ध कर लेते। पुनः श्रीनाथजी को जाकर मन्दिर में सुनाते। श्रीनाथजी प्रकट होकर उनसे वार्ता करते थे, यह सब छिपा नहीं है। वे सभी आस-पास के क्षेत्र में निवास करते थे, तथा श्रीनाथजी की सेवा में बारी-बारी से उपस्थित रहते थे। ये आठों कीर्तनियाँ श्रीनाथजी को पद सुनाकर प्रसन्न होते हों, इतना ही नहीं, प्रत्युत श्रीनाथजी भी इनके पद सुनने को लालायित बने रहते। यहाँ तक कि पद बिना सुने श्रीनाथजी भोजन ही न आरोगते, शयन न करते। अपने जनों को आनन्द प्रदान कर श्रीनाथजी भी सुख लेते रहे हैं।

श्रीकुंभनदासजी

एक बार गुसांईजी यात्रा के लिए प्रस्थान करने लगे तो कुंभनदासजी को बुलाकर पूछा, "हमारे साथ चलोगे।" यह बात कुंभनदासजी को अखरी क्योंकि श्रीनाथजी की सेवा में वे इतने सजग रहते थे कि उन्हें सेवा से वंचित होना सुहाता ही न था। गुरु आज्ञा थी कैसे टालते ? कुछ चुप हो उत्तर दिया, 'प्रभो ! आज्ञा होगी तो अवश्य चलूँगा।' श्रीनाथजी की सेवा से अलग रहने का विचार भी उन्हें सालने लगा, वे उदास हो गये। श्रीनाथ जी के सामने भाव-विभोर हो वे गाने लगे-

किते दिन ह्वै जु गए बिन देखे।
तरुन किशोर रसिक नन्द नन्दन कछुक उठत मुख रेखे॥

वह शोभा वह कान्ति वदन की कोटिक चन्द विशेखे ।
वह चितवन वह हास मनोहर वह नटवर वपु भेखे ॥
स्यामसुन्दर संग मिलि खेलन की आवत जिय अपेखें ।
'कुंभनदास' लाल गिरधर बिन जीवन जन्म अलेखें ॥

वे अपने को सम्हाल न सके, श्रीनाथजी का वियोग उन्हें क्षण भर के लिए भी सह्य न हुआ । वे उनकी रूप माधुरी पान किये बिना नहीं रहना चाहते थे । गुसांईजी ने उनकी मनोदशा देख उन्हें ले चलने से मना कर दिया ।

श्रीनाथजी ने पुकार सुन ली । कृपावश अपनी सेवा में ही रखा । रूप सौन्दर्य की अनगिन लहरियों को सम्हाल पाने में असमर्थ से हो कुम्भनदासजी की वाणी मुखरित हुई और उन्होंने गाया-

'छिन -छिन बानिक औरहि और'

उन्होंने देखी नवीनता से परिपूर्ण छटा, रूप की नित-प्रति बदलती माधुरी का आस्वादन कर, किस छवि का वर्णन करें । एक ही छवि तरङ्ग से मुग्ध हो, तन्मयता से किञ्चित् संज्ञा प्राप्त कर, जब पुनः छवि निहारी, तो माधुरी कुछ और ही थी । बस, और-और-और ही कहते बना । 'दिने-दिने नवं नवं' नहीं 'क्षणे क्षणे नवं नवं हैं' यह नटवर श्याम सुन्दर ।

इसी प्रकार श्रीनाथजी की नित-प्रति सेवा करते हुए श्रीकुंभनदासजी 'आन्यौर' गाँव में सङ्कर्षण कुण्ड के पास एक पीपल के पेड़ के नीचे सदा सदा के लिए श्रीनाथजी की नित्य सेवा में प्रवेश कर गये ।

श्रीसूरदासजी

'बाल्मीक तुलसी भए उद्धव सूर शरीर'

श्रीसूरदासजी उद्धवजी के अवतार माने जाते हैं । इन्हें नेत्रहीन मानना अपने को आध्यात्मिक जगत से अछूता ही मानना होगा । सूरदासजी के वे नेत्र थे जो हमारे नहीं हैं । हम अपने नेत्रों से वह देखते हैं, जो देखने योग्य नहीं है और सूरदासजी ने देखीं श्रीनाथजी की दिव्य तथा चिन्मयी लीलाऐं जिन्हें देख वे धन्य हो गये । देदीप्यमान सूर्य की भाँति हमारे लिए प्रकाश-स्तम्भ हो गये ।

सूरदासजी के नित्य नवीन पदों का संग्रह 'सूर सागर' उनकी अनुभूतियों का संग्रह ही है । श्रीवल्लभाचार्यजी ने कृपा की तथा भगवद् गुण-गान का सामर्थ्य प्रदान किया । सूरदासजी ने वात्सल्य, सख्य तथा माधुर्य का जितनी सजीवता से चित्रांकन किया है वह अन्यत्र दुर्लभ ही है । इतना ही नहीं श्रीनाथजी उनके सेव्य थे, उनके साथ सूरदासजी की अनेक सरस अनुभूतियाँ

हैं, वही अनुभूतियाँ सूरदासजी की रागिनी में बद्ध हुईं, श्रीनाथजी ने स्वीकार की हैं। वही सरस अनुभूतियाँ पुनः संग्रह के रूप में हमारे सामने प्रकट हो गईं। उन्होंने श्रीनाथजी के साक्षात् दर्शनकर कहा-

देख री नवल नन्द किशोर।
लकुट सों लपटाय ठाड़े युवति जन मन चोर॥
चारु लोचन हँसि विलोकनि देखि के चित चोर।
मोहनि मोहन लगावत लटकि मुकुट झकोर॥
स्रवन धुनि सुनि नाद मोहत करत हिरदै फोर।
सूर अङ्ग त्रिभङ्ग सुन्दर छवि निरखि तृण तोर॥

माधुरी छवि, लकुट सों लपटाए, चञ्चल नेत्र, हास पूर्ण मुस्कान, मुकुट की लटकन, सभी ने सूरदासजी के मन का अपहरण कर लिया।

सूरदासजी जो देखते वही गाते थे। नित्य का यह क्रम चलता था। उनके पदों में रूप वर्णन देख सभी चकित विस्मित रह जाते। एक बार कौतुक वश यह सोचकर कि सूर वास्तव में सब अनुभव कर गातें हैं, अथवा कोई उन्हें श्रृंगार वर्णन कर देता है, उसी को पद बद्ध कर गा देते हैं। ऐसा प्रश्न उठा ! पुजारी ने श्रीनाथजी का बहुत हल्का सा केवल पुष्पों से ही श्रृङ्गार किया। जब सूरदासजी दर्शन करने पधारे तभी दर्शन के लिए पट खोले। दर्शन कर सूर खड़े रह गये। पुजारी ने पूछा सूरदासजी, "आज का श्रृङ्गार कैसा है ?" पहले तो सूरदासजी चुप रहे, फिर ठहाका मारकर हँसे और गाया-

'आज भए हरि नंगम नंगा।'

पद सुनकर सभी वैष्णव स्तब्ध रह गये। श्रीसूरदासजी ने अपना सर्वस्व श्रीनाथजी की सेवा में समर्पित कर दिया। वे अन्तिम दिनों तक पारासौली ही रहते रहे। वहीं उनकी भजन कुटी तथा समाधि है।

अन्तिम समय में श्रीगोसांईजी ने पूछा, "सूर ! चित्त वृत्ति कहाँ है।" उन्होंने गाया-

'खंजन नैन रूप रस माते।'
अतिशय चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते।

गोसांईजी ने कहा, ओह ! पुष्टिमार्ग का जहाज चला गया।

श्रीपरमानन्ददासजी

आप कन्नौज के ब्राह्मण परिवार से थे। एक बार प्रयाग गये, श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी के एक सेवक ने महाप्रभुजी के पास पहुँचा दिया। आचार्यजी

ने कृपा कर कहा, 'कुछ लीला वर्णन करो।' आप बोले, मैं कुछ समझता नहीं। कृपा कर महाप्रभुजी ने दीक्षा दी और श्रीमद्भागवत की अनुक्रमणिका सुनाई। बस शक्ति का सञ्चार हो गया-श्रीश्रीनाथजी की सेवा में पहुँच गये।

श्रीनाथजी के दर्शन कर गाया-

लाल नेंक टेकहु मेरी बहियाँ।
औघट घाट चढ़्यो नहिं जाई, रपटति हों कालिन्दी महियाँ॥
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन देखि रूप ग्वालिनी अरुझानी।
उपजी प्रीति काम अंतर गति तब नागर, नागरि पहचानी॥
हँसि ब्रज नाथ गह्यो कर पल्लव जल भरी गगरी गिरन न पावै।
परमानन्द ग्वालिनी सयानी कमलनयन तन परस्यो भावै॥

"परमानन्ददासजी इहलोक में पुरुष देह से सखा तथा सिद्ध देह से गोपी भाव भावित हो गोपी प्रेम का रसास्वादन करते रहे। घाट से जल भरी गगरी लेकर कैसे चढ़े ग्वालिनी, जब तक श्याम सुन्दर अपनी भुजा का सहारा न दें, हँसकर प्रियतम ने कर पकड़ा रस समुद्र उमग पड़ा। रस घट पूरित वह ग्वालिनी प्रेम मद में छकी सी, भूली भटकी सी, रसीले भावों में खो गई।"

श्रीकृष्ण के लावण्य, माधुर्य की बात ही क्या कहें ? 'साक्षात् मन्मथ-मन्मथः श्रीकृष्ण, गोपी-प्रेम में लुट गये। यह देख परमानन्ददास जी ने गाया-

कौन रस गोपी लीनों घूट।
मदन गोपाल निकट कर पाये प्रेम काम की लूट॥
निरख स्वरूप नन्दनन्दन को लोक लाज गई छूट।
परमानन्द वेद सागर की मर्यादा गई टूट॥

वेद सागर की मर्यादा, गोपी समूह की प्रीति-सरिता में बह गई। इतना ही नहीं रास रस समुद्र में अवगाहन कर अनेक रत्नों का संचय किया उन्होंने। श्रीनाथजी को रिझाना ही उनका जीवन था।

कहते हैं एकबार इनका पद 'हरि तेरी लीला की सुधि आवे', सुनकर महाप्रभुजी तीन दिन तक इसी तन्मयता में रहे।

इसी प्रकार श्रीनाथजी को रिझाते-रिझाते सुरभि कुण्ड के तट पर इन्होंने नित्य लीला में प्रवेश किया।

श्रीकृष्णदासजी

श्रीवल्लभाचार्यजी विश्राम घाट पर बैठे थे। इधर से श्रीकृष्णदास घूमते-घूमते वहाँ आ पहुँचे। महाप्रभुजी ने देखा, संस्कारी जीव है। पास बुलाया, सब

वृत्तान्त जानकर दीक्षा दी। श्रीहरि की लीला स्मरण हो आई। श्रीनाथजी की सेवा में आ गये।

श्रीनाथजी, श्रीकृष्णदासजी की सेवा से कितने प्रसन्न थे कि एकबार इन्होंने पद गाया-

'श्रीवृषभानु नन्दिनी नाचत गिरधर संग।'

श्रीनाथजी तथा स्वामिनीजी नृत्य करने लगे।

सूरदासजी सदा श्रीकृष्णदासजी से कहा करते, 'तुम्हारे पदों में हमारी छाप मिलती है।' कोई एक ऐसा पद बनाओ जो बिल्कुल ही नया हो। कृष्णदासजी ने एकान्त में पद की तीन पंक्तियाँ तो लिख लीं; पर, पद आगे न चला। पद को अधूरा ही छोड़ आप प्रसाद पाने चले गये। श्रीनाथजी ने आकर आगे की पंक्तियाँ स्वयं लिख दीं। श्रीकृष्णदासजी ने वह पद सूरदासजी को सुनाया-

आवत बने कान्ह गोप बालकन संग नेचुकी खुर रेणु छुरित अलकावली।
भौंह मन्मथ चाप वक्र लोचन बान सीस सोभित मत्त मयूर चन्द्रावली।
उदित उडुराज सुन्दर सिरोमणि वदन निरखि फूलो नवल जुवती कुमुदावली।
अरुण सकुच अधर बिम्बफल हंसति कहति कछुक प्रकटित होत कुंददसनावली।
श्रवण कुण्डल भाल तिलक बेसर नाक कण्ठ कौस्तुभ मणि सुभग त्रिवलावली।
रतन हाटक खचित पुरसि पदिकनि पाँति बीच राजत सुभ पुलक मुक्तावली॥

यहाँ तक सुनकर सूरदासजी चुप रहे, पर जब आगे की तुक गाई तो समझ गये।

वलय कंकण बाजूबंद शोभित, आजानु भुज मुद्रिका कर दल विराजत नखावली।
करतल मुरलिका मोहित अखिल विश्व गोपिका जन मसि ग्रसित प्रेमावली।
हृदय कृष्णदास गिरिवरधरणलाल की चरण नख चन्द्रिका हरति तिमिरावली॥

सूरदासजी बोले, 'मेरा तुमसे वादा था तुम्हारे हिमायती से नहीं।'

ऐसे ही श्रीकृष्णदासजी के साथ प्रकट होकर श्रीनाथजी ने अनेक लीलाएँ कीं।

एकबार किसी कार्य से आप आगरा गये। वहाँ नर्तकी को मधुर कण्ठ से गाते देखा। रुक गये, पास जाकर बोले, "मेरा श्याम, राग का बड़ा रसिक है, उसको रिझाने चलोगी।" वह सहमत हो गयी। कृष्णदासजी उस नर्तकी को साथ ले आये। श्रीनाथजी के सम्मुख करते हुए बोले, "पत्र, पुष्प तथा फल से रीझने वाले नवल रसिक! यह जीवित उपहार स्वीकार करो।" उस नर्तकी ने गाया-

मो मन गिरधर छवि पर अटक्यो।
ललित त्रिभंगी अंगनि पर चलि गयो तहांई ठटक्यो॥

सजल श्याम घन चरण लीन ह्वै फिर चित अनत न भटक्यो।
कृष्णदास कियो प्राण निछावर यह तन जग सिर पटक्यो॥

श्रीनाथजी अपने प्रेमी द्वारा लाये उपहार को क्यों स्वीकार न करते। वे रीझ उठे-और उसे अङ्गीकार कर लिया। यह पद गाकर जैसे ही नर्तकी ने सिर उठाया तो सदा-सदा के लिये वह श्रीनाथजी के पास चली गयी।

कृष्णदासजी आजीवन श्रीनाथजी की सेवा में रत रहे। एकबार गिरिराज तलहटी में एक कुँआ बनवा रहे थे-उसमें झाँकने लगे उसी में गिर गये और नित्यलीला में प्रवेश कर गये। यह 'विल्छू वन' में रहते थे, इनकी स्मृति स्वरूप एक चबूतरा वहाँ बना हुआ है।

श्रीनन्ददासजी

निकले थे रणछोड़जी के दर्शन करने, आ पहुँचे गोकुल ग्राम। श्रीगुसांईजी ने बुलावा भेजा, आये और शरणापन्न हो गये। श्रीनवनीत प्रियाजी के दर्शन कर, श्रीगोवर्द्धन में श्रीनाथजी की सेवा में आ, मानसी गङ्गा के तट पर निवास करने लगे।

एक बार तुलसीदास जी इनसे मिलने ब्रज में आये तो कहने लगे, "भैया! गिरि रुचे तो चित्रकूट रहो, ग्राम रुचे तो अयोध्या, पुरी रुचे तो काशी रहो तथा वन रुचे तो दण्डकारण्य रहो, श्रीरामजी ने अनेक धाम पवित्र किये हैं। हमारे सङ्ग चलो।"

श्रीनन्ददासजी ने अपनी निष्ठा कही और बोले-

जो गिरि रुचे बसो गोवर्द्धन, ग्राम रुचे तो बसो नन्दग्राम।
नगर रुचे तो बसो श्रीमधुपुरी, सोभा सागर अति अभिराम॥
सरिता रुचे तो बसो यमुना तट, सकल मनोरथ पूरन काम।
नन्ददास कानन रुचे तो बसो भूमि वृन्दावन धाम॥

यह तो थी उनकी नाम, रूप, धाम तथा इष्ट के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा।

वे सदैव श्रीकृष्ण रूप माधुरी का आस्वादन करते तथा श्रीनाथजी की सेवा में पद गान करते। एक बार श्रीकृष्ण की मधुर लीला का आस्वादन कर आपने गाया -

मेरी री बगर में आवत छवि सों कमल फिरावत।
औरन सौं बतरावत मो तन चितवत चतुर परोसन देख-देख मुस्कावत॥
नयनन मनुहार करत बैनन समुझावत नेह जनावत भौंह चढ़ावत।
नन्ददास प्रभु सौं स्नेह लोक लाज बाढ़ी कैसे के धीरज आवत॥

इन लीला बिहारी की रूप छटा में मतवाली ग्वारिन कैसे धैर्य रखे, बात कहीं तथा दृष्टि कहीं। अड़ोस-पड़ोस में चर्चा होने लगी। नयन संकेतों से, मधुर बतरान से स्नेह दर्शाते, प्रणयी रिझवार ने अपनी लीला माधुरी में सराबोर कर दिया। उन्हीं के रूप में मदमाती बाला को लोक लाज ही कैसी ?

श्रीनाथजी इनके इष्ट थे, उनकी सेवा में इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दिया। अनेक लीला चित्र इन्होंने अनुभव कर प्रस्तुत किये हैं। एक जगह कह रहे हैं-

है काहू को ढोटा स्याम सलोने गात।
आई हूँ देख खिरक ठाड़ो न कछुक कहन की बात ॥
कमल फिरावत नैन नचावत मोतन मुरि मुस्कात।
छवि के बल जग जीत गर्व भर्‌यो मैन मान्यौ इतरात ॥
नखसिख रूप अनूप छवि कवि पै वरन्यो न जात।
नन्ददास चातक की चोंच पुट सब घन कैसे समात ॥

अभी हाल ही में खिरक में खड़े अपने प्रियतम को देखा। हाथ में कमल लिये, चञ्चल चितवन से उसने मेरी ओर देखा। ओह ! रूप सौन्दर्य को देख लगता है, जैसे कामदेव ही चञ्चल हो उठा हो। ऐसी रूप माधुरी का आस्वादन कर कोई क्या कहता ? कह भी कोई कितना सकेगा ?

'रूप मञ्जरी' उनकी एक परम मित्र थीं। अकबर के दरबार में वह दासी थीं, कहते हैं अकबर भी एकबार इनके पद की पंक्ति 'नन्ददास गावे तहाँ निपट निकट देखो' सुनकर इनके दर्शन करने आया था।

मनसा देवी के मन्दिर के पास पीपल के पेड़ के नीचे आप निवास करते थे, वहीं निम्न दोहे को कह सदा-सदा के लिये नित्यलीला में प्रवेश कर गये-

मोहन प्रिय की मुसकनि, ढुलकनि मोर मुकुट की।
सदा बसौ मन मेरे फरकनि पियरे पट की ॥

श्रीचतुर्भुजदासजी

ये श्रीकुम्भनदासजी के पुत्र थे। जिस दिन श्रीनाथजी ने कुम्भन दासजी को चतुर्भुज स्वरूप में दर्शन दिये, उसी दिन 'जमनावतो' ग्राम में आपका जन्म हुआ। बचपन से ही भक्तिमय वातावरण में पले। श्रीकुम्भनदास जी ने बालपन में श्रीगुसांईजी से ब्रह्म सम्बन्ध दिलवा दिया।

बड़े होकर श्रीनाथजी की सेवा में आ गये। एक बार श्रीकुम्भनदासजी तथा चतुर्भुजदासजी दोनों ही अपने ग्राम में अपने घर में बैठे थे। श्रीनाथजी के मन्दिर के दीपक का प्रकाश झरोखे में छनकर दिखलाई दे रहा था। लीला रस में मग्न श्रीकुम्भनदासजी ने उस दीपक की किरणों को देखकर गाया-

"वह देखो बरत झरोखन दीपक-
हरि पौढ़े ऊँची चित्र सारी ।"

अगली तुक में श्रीचतुर्भुजदासजी ने गाया-

"सुन्दर वदन निहारन कारन, राखे हैं बहुत जतन कर प्यारी"

यह सुनकर कुंभनदासजी को बहुत सन्तोष हुआ और चतुर्भुजदासजी की भक्ति भावना का आभास मिल गया।

इनकी भक्ति सख्य भाव की थी। श्रीनाथजी तथा इनकी प्रगाढ़ मैत्री थी।

एक बार श्रीनाथजी इन्हें किन्हीं ब्रजवासी के यहाँ माखन चोरी के लिए ले गये। श्रीनाथजी ने खूब माखन खाया। इतने में गृहस्वामिनी आ गई। उसे दीखे चतुर्भुजदासजी ही। श्रीनाथजी भाग गये। गोपिका ने चतुर्भुजदासजी को पकड़ कर मार लगाई। चतुर्भुजदासजी ने श्रीनाथजी से कहा, 'मौकूं तो तुमने अच्छी मार खवाई' श्रीनाथजी बोले, "सामर्थ्य होवती तो भाज आमतो।"

श्रीनाथजी की नित्यप्रति और, और रूप माधुरी का पान कर आप कहते हैं-

आज और काल्ह और दिन दिन प्रति और,
और देखिये रसिक गिरिराज धरन ।
छिन प्रति छिन नव छवि वरनै सो
कौन कवि नित श्रृंगार बागे बरन बरन ॥
शोभा सिंधु अंग-अंग मोहन कोटि अनंग
छविकी उठत तरंग बिस्व को मनहरन ।
चतुर्भुज प्रभु गिरधर को स्वरूप सुधा
पान कीजे रहिये सदा ही सरन ॥

यह सुन एक वैष्णव ने गुसांईजी से कहा, 'महाराज ! भगवत् लीला तो नित्य और सर्वत्र है फिर चतुर्भुजदासजी ने 'और' 'और' क्यों गाया।

गुसांईजी ने उत्तर दिया, "भगवत् लीला की यही विलक्षणता है कि वह नित्य होते हुए भी क्षण-क्षण में नूतन ही लगती है तथा नूतन रुचि उपजाती है।"

शयन की एक झाँकी कर चतुर्भुजदासजी स्तब्ध रह गये तथा उन्होंने श्रीनाथजी को सुनाया-

रजनी राज लियो निकुञ्ज नगर की रानी ।
मदन महीपति जीति महारण श्रम जल सहित जँभानी ॥
परम सूर सौन्दर्य भ्रकुटी धनु अनियारे नयन बान संधानी ।
दास चतुर्भुज प्रभु गिरधर रस संपति विलसी ज्यों मन मानी ॥

विलास भरी रात्रियों में परिश्रान्त हो किशोरी श्रीराधा के मुख पर स्वेद बिंदु झलक उठे। नयन कुछ-कुछ निमीलित हो गये। इतना ही नहीं मदालस से कोमल वपु कुछ शिथिल सा हो गया। अवश्य ही चञ्चलता तथा चपलता अपने उत्कर्ष का जयघोष कर शिथिल हो गई होगी। कितनी सजीव और पूर्णता है चतुर्भुजदासजी के पदों में।

एक बार गुसांईजी बाहर यात्रा के लिए गये। उनके पुत्र श्रीगिरधर जी ने श्रीनाथजी को मथुरा में अपने निवास पर पधराया। चतुर्भुजदासजी श्रीनाथजी के विरह में सुध बुध खोकर पद गाया करते। श्रीनाथजी भी नित्य उन्हें दर्शन देने गिरिराज पधारते। एक दिन अत्यन्त कातर होकर चतुर्भुजदासजी गा रहे थे-

'गोवर्द्धन वासी सांवरे लाल तुम, बिन रह्यो न जाय हो।'

श्रीनाथजी से इनकी दशा देखी न गई। उन्होंने श्रीगिरधरजी को तुरन्त श्रीगिरिराज चलने की प्रेरणा दी और सुबह का श्रृङ्गार भोग मथुरा में कर, राजभोग के लिए श्रीगोवर्द्धन में ही पधारे। कितनी कृपा थी श्रीनाथजी की श्रीचतुर्भुजदासजी पर इसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

वे 'यमुनावतो' में अपने निवास स्थान पर थे। गुसांईजी के देहावसान का समाचार सुनकर बहुत दुःखी हुए, वे श्रीनाथजी के सामने आये और गुसांईजी की स्तुति करने लगे। स्तुति के पद गाते हुए रुद्र कुण्ड पर ही एक इमली के वृक्ष के नीचे अपनी पार्थिव देह को त्याग, सदा के लिए नित्य लीला में प्रवेश कर गये।

श्रीछीत स्वामी

मथुरा के चौबे जन्म से ही नटखट थे। श्रीगुसांईजी की परीक्षा लेने आये स्वयं ही ठगे गये। गुसांईजी के चमत्कार पूर्ण चरित्र की चर्चा चारों ओर फैल रही थी। श्रीछीतू चौबे ने सुना 'श्रीगुसांईजी का जादू सभी पर चढ़ जाता है।' एक खोटा रूपया तथा सूखा नारियल ले गुसांईजी के पास पहुँचे। गुसांईजी ने कहा नारियल फोड़ो, जब नारियल फोड़ा गया तो उसमें गिरी निकली, रूपया भी खन्न से बोला।

भई अब गिरधर सों पहचान।
कपट रूप धरि छलबे आये, पुरुषोत्तम नहिं जान॥
छोटो बड़ो कछु नाहिं जान्यो, छाय रह्यो अग्यान।
छीत स्वामी देखत अपनायो विट्ठल कृपा निधान॥

कुछ समय बाद स्थायी रूप से गोवर्द्धन आ गये। पूंछरी में श्याम तमाल के नीचे रहने लगे। श्रीनाथजी को नित्य पद सुनाने जाते।

छीत-स्वामी बड़े ही निस्पृह थे। राजा बीरबल के पुरोहित होने के नाते इनके परिवार पोषण हेतु राजा बीरबल की ओर से वृत्ति की व्यवस्था थी। एकबार जब ये वृत्ति लेने गये तो बीरबल ने गुसांई श्रीविट्ठलनाथ जी के लिये कुछ हल्के शब्दों का प्रयोग किया। छीत स्वामी गुसांईजी को प्रत्यक्ष भगवान स्वरूप मानते थे। छीतस्वामी ने आजीवन बीरबल से वृत्ति लेनी बन्द कर दी।

श्रीछीतस्वामी की गुरुनिष्ठा सराहनीय थी। बीरबल भी श्रीगुसांईजी के सेवक थे-सो एकबार उनके बुलाने पर आगरा गये वहाँ एक पद पढ़ा-

जे वसुदेव किये पूरन तप, तेई फल फलित श्रीवल्लभदेह।
जे गोपल हुते गोकुल में, तेई अब आनि बसे घर गेह॥
तै वे गोप वधू हुती ब्रज में, जे अब वेद रिचा भई एह।
छीतस्वामी गिरधरन श्रीविठ्ठल वेई एई, एई वेई, कछू न संदेह॥

बीरबल बोले, "इतना भी तौ बढ़ि कै कहना क्या लाजम ?" छीत स्वामी को बहुत दुःख हुआ और जो कुछ भेंट राजा बीरबल ने उन्हें दी थी-सभी वेश्याओं में यह कहकर बाँट दी कि यह धन वैष्णव सेवा योग्य नहीं है-क्योंकि बीरबल की निष्ठा में कमी है।

काव्य प्रतिभा इनमें सहज थी। इनकी श्रीनाथजी के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा थी। अनेक लीलानुभूतियों को इन्होंने सरस पदों के रूप में बद्ध किया है। एक बार इन्होंने श्यामसुन्दर को प्रियाजी सहित एक सघन कुञ्ज में देखा। भोर का समय था। रूप माधुरी का पान कर मत्त हो गये। "पाग ढीली है, माला शिथिल हो रही है, टूटी माला तथा डगमगाती चाल से आते देख लगा जैसे रात्रि विहार में मग्न युगल बावरे, किसी निकुञ्ज में ही शयन के अङ्क में विश्राम करते रहे हैं।" उसी को देख इन्होंने गाया-

भोर भए नव कुञ्ज सदन ते आवत लाल गोवर्द्धन धारी।
लटपटी पाग मरगजी माला सिथिल अङ्ग डगमग गति न्यारी॥
बिनु गुन माल विराजत उर पर नख छत द्वैज चन्द अनुहारी।
छीत-स्वामी जब चितये मो तन तब हौं निरखि गयो बलिहारी॥

ब्रज के प्रति इनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। यहाँ रहते हुए, दान केलि, मान केलि, गोचारण, पनघट तथा प्रियाजी सहित रास विलास सभी की कामना कर, इन्होंने अनुभूति की तथा उसी को चित्रांकित कर, हमारे लिए मार्ग प्रशस्त किया। एक जगह लिखते हैं-

अहो विधना तो पे अचरा पसार मांगों,
जनम जनत दीजो याही ब्रज बसिबो।

अहीर की जाति समीप नन्द घर,
घरी घरी घनश्याम मुख हेरि हेरि हँसिबो।
दधि के दान मिस ब्रज की बीथिन्ह मांहि
झकझोरन अंग अंग को परसिबो ।
छीत स्वामी गिरिधरण श्रीविट्ठल,
शरद रैन रस रास को विलसिबो ॥

सुध बुध बिसराये, श्रीगिरिराज की निकुञ्जों में डोलते रहते । पूंछरी में अप्सरा कुण्ड के निकट ही आप गिरिराज तलहटी में, एक तमाल वृक्ष के नीचे, लीला में प्रवेश कर गये ।

श्रीगोविन्द स्वामी

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के अलौकिक चरित्र तथा भगवद् प्राप्ति से गोविन्द स्वामी पहले ही परिचित हो चुके थे, दर्शन करने जब गोकुल पधारे तो-श्रीगुसांईजी को श्रीयमुना तट पर, नित्य संध्या करते देख, गोविन्द स्वामी आश्चर्यचकित हो बोले, "आप तो कपट रूप दिखलाते हैं। साक्षात पूर्ण पुरुषोत्तम होकर भी वेदोक्त तर्पण आदि कर रहे हैं। साधारण जगत इस सबसे भ्रमित ही होगा।"

श्रीगुसांई ने उत्तर दिया, "भैया ! भक्ति मार्ग, फूल का वृक्ष है तथा कर्म मार्ग, काँटो की बाड़, कर्म मार्ग की बाड़ के बिना भक्ति मार्ग के पुष्प की रक्षा ही नहीं होती ।"

मन तो गुसांईजी को समर्पित कर ही चुके थे, तन भी समर्पित कर दिया। श्रीगुसांईजी की आज्ञा से श्रीनाथजी की सेवा में आ गये तथा श्रीगिरिराज में विराजने लगे ।

इनके पद गान की प्रशंसा तानसेन भी करते थे । कहते हैं, तानसेन ने इनसे सङ्गीत की शिक्षा ली थी ।

श्रीगोविन्द स्वामी और श्रीनाथजी में प्रगाढ़ मैत्री थी । वे साथ-साथ खेलते, बातें करते ।

जनश्रुति है कि 'एक बार स्वामीजी, श्रीहरिदासजी के दर्शन हेतु श्रीवृन्दावन पधारे । श्रीहरिदासजी सङ्गीत के महाज्ञाता तो थे ही, साथ ही अनन्य रसिक तथा भक्ताग्रगण्य भी थे । वे इनके गान की प्रशंसा सुन चुके थे, इनसे बोले, "भैया गोविन्द ! कोई पद सुनाओ ।" इन्होंने पद सुनाया । पद सुनकर स्वामी जी रीझ उठे तथा कहने लगे, 'गोविन्द श्रीकृष्ण तुम्हारे पद सुनते ही हैं, कि गाते भी हैं ।" गोविन्द सखा ने कहा, "प्रभो ! श्रीकृष्ण पद गाते भी हैं (अर्थात्

गोविन्द स्वामी ने श्रीकृष्ण गान सुना है) । गोविन्द स्वामी की प्रार्थना पर श्रीकृष्ण ने पद गाया । स्वामी श्रीहरिदास जी महाराज पद सुन कर तन्मय हो गये व वाह वाह करने लगे । स्वामी जी ने गोविन्द स्वामी से पुनः पूछा "भैया कभी श्रीजी का गान भी सुना है ?" गोविन्द सखा ने कहा "नहीं" -तथा आग्रह किया, "प्रभुपाद ! यदि मुझे योग्य समझते हों तो सुनवा कर कृतार्थ करें"। कहते हैं स्वामीजी की बात रखते हुए किसी प्रसङ्ग में प्रियाजी ने मधुर अलाप लिया । उस, शत शत वीणाओं को तिरस्कृत करती मधुर ध्वनि को सुन, गोविन्द स्वामी मूर्छित हो गये तथा भावाभिभूत हुए मग्न हो गये ।

कुछ महानुभावों ने उपरोक्त घटना को अन्य ढंग से कहा है । उसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं । सम्भव है यह दो अलग-अलग घटनाऐं ही हों-

गोविन्द स्वामी तथा श्रीनाथजी की मैत्री है यह बात किसी से छिपी न थी । गुसांई विट्ठलनाथजी यह सब जानते थे । एक बार श्रीकृष्ण गान कर रहे थे । बीच में प्रियाजी ने अलाप लिया । उस मधुर सुरीली ध्वनि को सुन गोविन्द स्वामी चकित रह गये । गुसांईजी समझ गये । किसी प्रसङ्ग विशेष में गुसांईजी ने गोविन्द स्वामी से पूछा, "गोविन्द ! श्रीनाथजी कैसा गाते हैं" आप तन्मय हो गये । किञ्चित् संज्ञा प्राप्त कर बोले, "प्रभो ! आप सब जानते ही हैं । मैं क्या हूँ । ऐसा लगता है श्रीनाथजी तो बहुत ही सुन्दर गाते हैं, परन्तु जब प्रियाजी अलाप लेती हैं तो गान में और, और मधुरता भर जाती है ।"

एक जगह श्रीकृष्ण के रूप सौन्दर्य का वर्णन करते हुए श्रीगोविन्द स्वामी कह रहे हैं-

अबही ते ढौटा चित चोरत आगे आगे कहा जु करैगो ।
नेक बड़ौ होय हौं बलि जाऊँ सकल ब्रज युवतिन के मन जु हरैगो ॥
देखन के बहाने से उदर में सप्तद्वीप नवखंड,
रानी जसुदा कों दिखायो सोई सांची अनुसरैगो ।
गोविन्द प्रभु के नैन बैन रस सींचत मेरे जाने मन्मथ जु लरैगो ॥

श्रीनन्दरायजी का लाल बालक है तो श्रीनन्दरायजी तथा माता यशोदा के अंक में । ब्रज बालाओं ने तो उसे प्रथम दिन से ही किशोर देखा है । लो ! आज भोर ही में गिरिराज की सघन कुञ्जों में "जाचत दान प्रिया सों ।"

महादानी वृषभानु कुमारी , कृपा अवलोकनि दान दै री ।
सब विध सुघर सुजान सुन्दरि, सुनि विनति तू कान दे री ।
गोविन्द प्रभु प्रिय चरण परसि कह्यो जाचक को तू मान दै री ॥

ऐसी अनेक अनुभूतियाँ श्रीगोविन्द स्वामी ने की तथा श्रीनाथजी को गा-गा कर रिझाते रहे ।

अन्त में गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी के साथ ही श्रीगिरिराजजी की कन्दरा में प्रवेश कर गये। वह कन्दरा द्वार आज भी उनकी भक्ति पूर्ण निष्ठा की गाथा को दोहराता हम सबके लिए मार्ग दर्शन कर रहा है। अद्यावधि वह स्थली, जतीपुरा में दर्शनीय है।

श्रीश्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक

दूराद्वीक्ष्यकदम्बानां खण्डकन्दरां च गिरेः।
गोवर्द्धनार्चनस्थलमेतद् दृष्ट्वा स्थितस्तत्र॥
क्षेमं करतरु निकटे पारायणमत्र विहितं तै।
दीपोत्सवमिह विहितं महोत्सवं चान्नकूटस्य॥

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

श्रीमन्महाप्रभुजी यहाँ पधारे, यहीं कदम्ब खण्डी है। श्रीगिरिराजजी की कन्दरा है, श्रीगिरिराजजी की पूजा की स्थली है; इन सब स्थलियों को देखकर श्रीमन्महाप्रभुजी ने छोंकर वृक्ष के नीचे बैठकर सप्ताह पारायण किया। यहाँ दीपोत्सव तथा अन्नकूट उत्सव मनाया।

जिस समय श्रीमहाप्रभुजी श्रीश्यामसुन्दर का श्रृंगार कर रहे थे तो सहसा ही नूपुर ध्वनि सुनाई पड़ी। दृष्टि उठाकर सामने की ओर देखा तो प्रियाजी श्रृंगार सामग्री लिये सामने खड़ी थीं। कहते हैं प्रियाजी द्वारा लाई श्रृंगार सामग्री, महाप्रभुजी ने श्रीश्यामसुन्दर को पुनः धारण कराई।

यहाँ वल्लभ कुल की सातों निधि के दर्शन थे, श्रीमथुरानाथजी के मन्दिर में कई बार सब इकट्ठे विराजते थे। कालान्तर में किन्हीं कारणों से सब अलग हो गये तथा बाहर चले गये।

दण्डौती शिला

यहाँ दण्डौती शिला के दर्शन हैं। श्रीनाथजी के दर्शन करने जाने से पहले सभी वैष्णव श्रीगिरिराजजी को यहाँ दण्डौत करते हैं। श्रीगिरिराज पर चढ़ने से जो अपराध होता है, उसी के मार्जन हेतु यह क्रम अपनाया गया है। पास ही 'सुन्दरी शिला' है।

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी का लीला में प्रवेश

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी की भक्ति जगत्प्रसिद्ध है। श्रीनाथजी की सेवा में आप श्रीगिरिराज तलहटी में विराजते रहे। अष्टछाप के सभी भक्तों ने आपका यशोगान किया है। किसी लीला का आस्वादन करते-करते आप उठकर

श्रीगिरिराज कन्दरा में चले गये। श्रीचतुर्भुजदासजी उस समय वहीं उपस्थित थे। उन्होंने करुण स्वर से गाया -

श्रीविठ्ठलनाथ से प्रभु भये, न ह्वै हैं।
पाछे सुने न देखे आगे, वह संग फिर न बनै हैं॥
श्री वल्लभ सुत दरसन कारन अब सब कोऊ पछितै हैं।
चतुर्भुजदास आस इतनी जो सुमिरन जनमु सिरै हैं॥

कहते हैं गुसांईजी से श्रीचतुर्भुजदासजी ने निवेदन किया, "प्रभो ! मुझे भी साथ ले चलिये' साथ ही चतुर्भुजदासजी भी गिरि कन्दरा में प्रविष्ट हो, श्रीनाथजी की सेवा में सदा के लिये चले गये।

यह स्थली आज भी दर्शनीय है। अपने करुण प्रसङ्ग से आज भी भावुक भक्तों को कुरेदती हुई (जतीपुरा) गोपालपुर में दर्शनीय है।

बिलछू कुण्ड

परिक्रमा की बाँई ओर जतीपुरा से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित है। श्रीकृष्णदास अधिकारी की निवास स्थली है। श्रीकृष्ण की कन्दुक क्रीड़ा स्थली है यह।

एक बार किशोरी श्रीराधा अपनी सखियों सहित यहाँ उद्यान में विचरण कर रही थीं। कभी वे पुष्प चयन करतीं, कभी माला बना सम्हाल रखतीं और कभी सखियों पर पुष्पों से प्रहार करतीं। प्रिय स्मृति में वे इतनी निमग्न थीं कि उन्हें बाह्य कुछ विशेष सुधि न थी।

इधर प्रियतम ने श्रीगिरिराज पर खड़े दूर से सखियों को देखा। सखाओं सहित वहीं चले आये और पास ही गेंद खेलने लगे। कभी स्वयं उछालते और पकड़ते और कभी सखाओं को पकड़ने के लिये कहते, जानबूझकर एकबार गेंद को ऐसे उछाला कि गेंद उद्यान में जा गिरी। सखाओं से अनुनय विनय करने लगे, बोले-"भैया तुम मेरी गेंद ले आओ" परन्तु किसी भी सखा ने उत्साह न दिखाया। अन्ततः स्वयं ही उस उद्यान में गये, जहाँ प्रियाजी थीं और गेंद खोजने लगे।

वृषभानु दुलारी के पाँव का बिछुआ खो गया था। सखियाँ पहले से ही उसे खोज रही थीं, परन्तु बहुत खोजने पर भी न मिला। ढूँढ़ती-ढूँढ़ती कुछ सखियाँ वहीं आ गई और श्यामसुन्दर से बोलीं, "तुमने हमारी किशोरी का बिछुआ देखा है क्या ?" आपने उनकी ओर बिना देखे ही उत्तर दिया, "बिछुआ, बिछुआ हम क्या जानें ? हम तो अपनी गेंद खोज रहे हैं।" उनकी ओर देख पुनः बोले, "लगता है तुम लोगों ने मेरी गेंद अपने पास सम्हाल कर रख ली है। यदि नहीं

तो तलाशी दो। बेचारी ललिता तथा विशाखा झूठ-मूठ के लगे इस आरोप से सकुचा गईं तथा तलाशी देने को मान गईं।

प्रियतम ने टटोल कर देख लिया, गेंद फिर भी न मिली। बोले, "लगता है अपनी स्वामिनी के पास छिपा आई हो, तभी निधड़क होकर यहाँ विचरण कर रही हो और ऊपर से मुझ पर आरोप लगा रही हो कि किशोरी का बिछुआ खो गया है।" बिछुआ तो श्यामसुन्दर ने पहले ही अपने पटके के छोर में बाँध लिया था। सखा गउओं को घेरने के लिए चले गये, और नन्दनन्दन किशोरी श्रीराधा के पास, गेंद खोजने के बहाने से सखियों के साथ-साथ जा पहुँचे।

प्रियतम के रसीले संस्पर्श ने किशोरी श्रीराधा को किसी सुरस स्मृति से झकझोर दिया। पता नहीं फिर गेंद खोजी अथवा नहीं। बिछुए की बात का स्मरण दिलाते हुए प्रियतम बोले, "प्रिये यदि मैं तुम्हारा बिछुआ खोज कर ला दूँ तो पुरस्कार स्वरूप क्या प्रदान करोगी।" किशोरी श्रीराधा, मुँह माँगी वस्तु देने को तैयार हो गईं। प्रियतम ने तुरन्त अपने पटके के छोर से बिछुआ निकाल धारण करा दिया और बोले, "रैन निवास" प्रियाजी सकुचा गईं। प्रियाजी की सकुच-श्री का लाभ उठाते यह प्रणयी प्रियतम मग्न हो गये। प्रियाजी की वह रसमयी उमड़न तथा इन प्रणयी प्रियतम की रसीली चेष्टाऐं। रस विलास की मधुर केलि अविराम गतिमान रही। श्रीगिरिराज की सघन कन्दराओं में युगल सुन्दर तथा इनकी निज-स्वरूपभूता किशोरी वृन्द, रस-मग्न हो गईं।

उन्हीं रस वार्ताओं को दोहराती यह स्थली 'बिलछू वन' नाम से विख्यात है। श्रीहरदेव जी का प्राकट्य यहीं से हुआ।

जान अजान

गोपीभियौ पृष्टौ कृष्ण ज्ञातो च अज्ञातः।
वृक्षौ तन्नाम्नाख्यातौ चाख्याय तौ दृष्टौ॥

(श्रीवल्लभदिग्विजय)

श्रीकृष्ण के छिप जाने पर गोपिकाओं ने पूछा, श्रीकृष्ण किधर गये हैं। एक वृक्ष ने कहा हम जानें, तथा दूसरे ने कहा हम न जानें, अतः एक ही जाति के यह दो वृक्ष 'जान' तथा 'अजान' नाम से विख्यात हो गये।

कई भक्तों ने यहाँ श्रीश्यामसुन्दर की आँख मिचौनी लीला के दर्शन किये हैं।

सखी स्थली

अहे श्रीनिवास ! एई सखी स्थली ग्राम।
चन्द्रावली स्थिति एथे-सखी-धरा नाम॥

(भ० र०)

वर्तमान में यह स्थली सखी-थरा नाम से विख्यात है। मानसी-गङ्गा के उत्तर में तथा श्रीगोवर्द्धन के पश्चिमोत्तर में स्थित है।

श्रीकृष्ण की प्रिय सखी चन्द्रावलीजी का प्रिय स्थल है। पास ही सखी-वन है। सखी-वन में ही एक स्थान, सखी-स्थल नाम से प्रसिद्ध है।

यहाँ सखि कुण्ड है।

सकराया

गोवर्द्धन ग्राम के पश्चिम में डेढ़ मील दूर है। कहते हैं जिस समय देवराज इन्द्र श्रीगोविन्द भगवान का अभिषेक करने ब्रज में आये तो इसी स्थल पर उतरे थे।

'शक्र आया' शब्द सुविधानुसार ग्रामीण भाषा में 'सकराया' नाम से विख्यात हो गया।

नीम ग्राम

श्रीनियमानन्दजी का जन्म दक्षिण में गोदावरी तटवर्ती वैदूर्यपत्तन नामक स्थान में हुआ। वे ब्रज में कब और कैसे पधारे ! इस विषय में कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। वे ब्रज में पधारे तथा श्रीगिरिराज जी के निकट नीम-ग्राम में निवास करने लगे। कहते हैं श्रीनारदजी ने इन्हें गोपाल मन्त्र की दीक्षा स्वयं ही दी थी।

श्रीनियमानन्दजी नीमग्राम में विराजते थे। एक बार एक यति धर्म-चर्चा हेतु, इनके पास पधारे। दो भक्तों का मिलन था। चर्चा में इतने तन्मय हो गये कि सन्ध्या हो गई। श्रीनियमानन्दजी ने यतिजी से भोजन करने का आग्रह किया, किन्तु सूर्यास्त के पश्चात् यतिजी ने भोजन ग्रहण करने से इन्कार कर दिया। श्रीनियमानन्दजी को अभ्यागत को निराहार लौटाने में कष्ट हुआ। तभी सामने के एक नीम के वृक्ष के पीछे से प्रकाश दीखा और सूर्य भगवान के साक्षात् दर्शन हुए। यह सब देख यतिजी ने प्रसाद ग्रहण किया। कहते हैं वह प्रकाश भगवान के चक्र का था। इसी घटना के पश्चात् श्रीनियमानन्दजी, निम्बादित्य अथवा निम्बार्क नाम से जाने गये। यह सब श्रीनिम्बार्क भगवान की दिव्य शक्ति का ही प्रकाश था। वे भगवान के सुदर्शन चक्र का अवतार माने जाते हैं।

आपने द्वैताद्वैत सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। 'वेदान्त-पारिजात सौरभ', 'वेदान्त कामधेनु', 'रहस्य षोडशी', 'प्रपन्न कल्पवल्ली' तथा 'श्रीकृष्ण स्तोत्र' आदि की रचना की।

श्रीराधाजी की श्रीकृष्ण के समान महत्ता को सर्वप्रथम निम्बार्क सम्प्रदाय में ही स्वीकार किया गया था, इसका श्रेय मुख्य रूप से श्रीमन्निम्बार्काचार्यजी को ही दिया जावेगा जैसा कि दश श्लोकी के निम्न श्लोक से स्पष्ट है-

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा, विराजमानामनुरूपसौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितांसदा, स्मरेम देवीं सकलेष्टकामदाम् ॥[1]

श्रीनिम्बार्काचार्य जी का कथन है कि यदि साधक दैन्यादि गुणों से भूषित हो प्रिया-प्रियतम का उक्त प्रकार से चिन्तन करे तो उनकी अहैतुकी भक्ति प्राप्त करता है ।

आपके मुख्य शिष्यों में श्रीनिवासाचार्यजी, श्रीऔदुम्बराचार्यजी तथा गौरमुखाचार्य जी के नाम उल्लेखनीय हैं । श्रीऔदुम्बराचार्यजी ने प्रिया-प्रियतम के निकट श्रीमन्निम्बार्काचार्य जी महाराज के श्रीरङ्गदेवी के रूप में दर्शन किये थे ।

नीम ग्राम में ही आप विशेषतः निवास करते रहे हैं । यहाँ श्रीसुदर्शन जी का मन्दिर तथा श्रीसुदर्शन कुण्ड है ।

कोनई ग्राम

कै ना आई दूती रे श्रीकृष्ण पूछय ।
ए हेतु 'क्यों नाई' अब कोनई कहे ॥

(भ० र०)

एक बार श्रीकृष्ण किसी लीला विशेष में अपनी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा की प्रतीक्षा में किञ्चित् व्याकुल हो गये । श्रीराधा तब भी न आईं । उन्होंने किसी सखी को भेजकर न आने का कारण जानना चाहा । जैसे ही सखी ने किशोरी श्रीराधा का नाम लिया, आगे की बात सुनने की प्रतीक्षा किये बिना ही श्यामसुन्दर 'क्यों न आई' 'क्यों न आई' कहकर पुनः पुनः पूछने लगे । इसी से यह स्थली कोनई ग्राम के नाम से प्रसिद्ध हो गई ।

श्रीराधा-कुण्ड से लगभग साढ़े तीन मील दूर है । यहाँ देवी का प्राचीन मन्दिर है । ग्वाल कुण्ड है ।

कुञ्जेरा

अबे लोग कहे कुंजेरा नामे ग्राम ।
ऐथा राधा कृष्णेर विलास अनुपम ॥

(भ० र०)

1. श्रीराधा श्रीकृष्ण के वामांग में सर्वदा विराजमान रहती हैं । वे उनके अनुरूप शील, सौन्दर्य सम्पन्न, सहस्र-सहस्र सखियों द्वारा परिसेवित हैं । उन्हीं सकल इष्ट प्रदान करने वाली देवी श्रीराधा का मैं स्मरण करता हूँ ।

नित्य नवीनता प्रिय इन बावरों को सदा ही नये-नये कौतुक सूझते हैं। अनेक निकुञ्जों में नवीन केलि प्रिय, श्यामसुन्दर, नवल रसास्वादन में मत्त हो जाते हैं। किन्हीं एकान्तिक निकुञ्जों में रस की यह केलि, किसी विशेष रस को ले गतिमान होती है। उन्हीं केलि रहस्यों में महा-मातङ्ग श्यामसुन्दर का करिणी स्वरूपा सखियों सहित रास-विलास सभी को आत्म-विभोर कर देने वाला है। जिसने देखा वही दिव्योन्माद में भर गया। उसी रस रहस्य को अपने गर्भ में छिपाये यह स्थली कुञ्जेरा नाम से विख्यात हो गई।

श्रीराधा-कुण्ड से दो मील दूरी पर स्थित है। यहाँ की लीला का (मत्त मातङ्ग तथा करिणी स्वरूप सखियों का) एक चित्र मन्दिर में दर्शनीय है। कहते हैं यहीं से श्रीराधा-कुण्ड की निकुञ्जों का प्रारम्भ होता है।

सूर्य कुण्ड (छोटा भरना)

यमुनाजनकं सूर्य सर्वरोगापहारकम्।
मङ्गलालयरूपं तं वन्दे कृष्णरतिप्रदम्॥[1]

(भ० र०)

श्रीकृष्ण का ब्रज में प्राकट्य सुन सभी देवता, मुनिगण ब्रह्मा तथा शंकर आदि दर्शन करने पधारे। अपनी सुपुत्री श्रीयमुनाजी की श्रीकृष्ण चरणों में भक्ति देख सूर्य देव भी ब्रज में धन्य होने चले आये। अपने जनों की भावनाओं को सदा से ही सत्कार देते श्रीकृष्ण ने श्रीराधा तथा अन्य सखियों सहित उन्हें दर्शन देकर अनुग्रहीत किया।

श्रीराधाजी नित्य ही सूर्य पूजन हेतु यहाँ पधारती हैं और यह छलिया नागर पुरोहित का वेष धारण कर सूर्य पूजन कराने हेतु यहाँ चले आते हैं। कौतुकपूर्ण मिलन की यह स्थली किसी अन्य ही रस पूजन की भूमिका बन जाती है।

श्रीराधा-कुण्ड से लगभग पाँच मील की दूरी पर है। यहाँ सूर्य भगवान का मन्दिर है। सूर्य कुण्ड है। सिद्ध बाबा की भजन स्थली है।

कहते हैं यहाँ श्रीमधुसूदनदास बाबाजी महाराज भजन करते थे। स्वप्न में श्रीकिशोरीजी ने उनसे कहा, "मेरी चन्द्रिका कुण्ड में गिर गई है। तुम जाकर कुण्ड के अमुक स्थल से निकाल लो।" बाबा सुबह होते ही वहाँ गये और चन्द्रिका निकाल लाये। आज भी वह चन्द्रिका के स्वरूप का एक शिला खण्ड स्थानीय महात्माओं ने सम्हाल रखा है। जो सर्वसाधारण के लिए दर्शनीय है।

जसोंदी (जसुमति)

श्रीराधा कुण्ड से श्रीवृन्दावन मार्ग पर लगभग तीन मील की दूरी पर

1. श्रीयमुनाजी के पिता, सर्व रोगों को क्षय करने वाले तथा श्रीकृष्ण चरणों में अनुराग प्रदान करने वाले व मंगल करने वाले, सूर्यदेव की मैं वन्दना करता हूँ।

स्थित है। भगवान श्रीकृष्ण की जसुमति सखी का गाँव है। सूर्य कुण्ड यहाँ दर्शनीय है।

बसोंति (बसति)

श्रीराधा कुण्ड से वृन्दावन मार्ग पर लगभग दो मील की दूरी पर स्थित है। वसुमति सखि की निवास स्थली है।

'वसन्त कुण्ड' तथा 'राज कदम्ब' यहाँ के मुख्य आकर्षण हैं।

मुखराई

श्रीराधा कुण्ड के दक्षिण की ओर लगभग सवा मील की दूरी पर स्थित है। श्रीराधारानी की नानी मुखरादेवी यहीं निवास करती थीं। वह श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा का परस्पर अनायास मिलन देखकर बहुत प्रसन्न होती थीं।

तोष ग्राम

यह गाँव बहुला वन (वाटी) से नैऋत्य दक्षिण में लगभग ढाई मील की दूरी पर स्थित है। तोष नाम के श्रीकृष्ण के प्रिय सखा थे, उन्हीं का यह गाँव है। ये नृत्य कला में पारङ्गत थे। कहते हैं श्रीकृष्ण ने नृत्य की शिक्षा इनसे भी प्राप्त की थी।

यहाँ तोष कुण्ड, गोपालजी तथा राधारमणजी की स्थलियाँ विशेष दर्शनीय हैं।

जखिन गाँव

तोष ग्राम से पश्चिम दक्षिण में लगभग चार मील की दूरी पर स्थित है। रोहिणी कुण्ड तथा बलदेवजी का मन्दिर है। पास ही बलभद्र कुण्ड भी है।

अड़ींग

गोवर्द्धन से मथुरा मार्ग पर लगभग तीन मील की दूरी पर स्थित है। यह बलदेवजी का स्थान है। ऐसी मान्यता है कि कंस का बध हो जाने के बाद उसके आठों भाई यहाँ भाग आये थे, जिन्हें बलरामजी ने मार दिया था।

कुण्ड के अग्नि कोण में किलोल बिहारी के दर्शन हैं।

गोपिकाएँ इस मार्ग से दूध-दही बेचने जाया करती थीं। श्रीकृष्ण प्रायः दूध-दही का दान लिये बिना उन्हें जाने न देते। एक बार ब्रज बालाएँ दूध की मटकियाँ सिर पर धरे जा रही थीं-श्रीकृष्ण द्वारा दान माँगे जाने पर भी उन्होंने अनसुनी कर दी, बस फिर क्या था-यह रिझवार अड़ गये। किसी का हाथ बढ़ा रोकते हुए, किसी की मटुकी बरबस ढुरकाते हुए, किसी की साड़ी का छोर खींचते हुए, किसी को मार्ग में बरबस खड़े होकर रोक भाँति-भाँति से सभी

गोपिकाओं को रस में मज्जित करने लगे। 'अड़' 'अड़' कर दान लेने की यह स्थली 'अड़ींग' नाम से विख्यात हो गई।

पैंठा

पारासौली ग्राम से लगभग डेढ़ मील की दूरी पर स्थित है। जनश्रुति है कि श्रीगिरिराज धारण करने से पहले सखाओं ने श्रीकृष्ण की परीक्षा लेनी चाही। अपने प्रिय सखा से कहा, "कन्हैया यदि तू इस कदम्ब वृक्ष को उखाड़ दे तो मानें, श्रीगिरिराज उठा सकैगो।" भगवान श्रीकृष्ण ने उस कदम्ब वृक्ष को जैसे ही उखाड़ने का प्रयास किया तो अपने प्रिय सखा में विश्वास दिखलाते, सखा बोले, "भैया रे ! तेरी बात ठीक है, तू श्रीगिरिराज को उठाय सकै है।" वह वृक्ष आज भी अपनी स्मृति दिलाता यहाँ दर्शनीय है।

यहाँ चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन हैं। 'क्षीरसागर' 'नारायण सर' 'बलभद्र कुण्ड' तथा 'लक्ष्मी कूप' दर्शनीय हैं।

बच्छ गाँव

पैंठा के तीन मील दक्षिण में 'बच्छ गाँव' है। यहाँ 'कनक सागर', 'सहस्र कुण्ड', 'रामकुण्ड', 'रावरी कुण्ड', 'माखन चोर ठाकुर' अपने बछडों की रक्षा करने वाले 'वत्स बिहारी ठाकुर' दर्शनीय हैं।

गांठौली

एथा होलि खेलि दौंहे वैसे सिंहासने।
सखी दुहू वस्त्रे गांठि दिला संगोपने॥

(भ० र०)

ब्रज की होरी की धूम जन मानस में उन्माद भर देती है। बालक, युवक, वृद्ध तथा युवति जन, नवीन उत्साह में भर हर्षित प्रफुल्लित हो जाते हैं। यावत् प्रकृति में छाई यह फाग की अनुराग लहरी इन रसिक बावरों की किसी सहज तरङ्ग को अपने में संजोए बौरा जाती है।

होरी की इस उमङ्ग तरङ्ग से उल्लसित ब्रज रमणी वृन्द इन रसिक बावरों सहित झूम में उमड़े। अबीर गुलाल से रञ्जित नवल हो गये रस बावरे। परम कोमलाङ्गी किशोरी को श्रमित जान प्रियतम क्षण भर को कुछ शान्त से हो गये। रङ्ग की उस धूम में तनिक विराम दीखा। प्रियाजी एक शिला पर आकर बैठ गईं। प्रियतम की उमङ्ग लहरी अभी भी चपल हो रही थी। वे भी रस विवश से हो, वहीं पास आ विराजे। सखियों को कौतुक सूझा। उन्होंने चुपके से दोनों के वस्त्रों में गाँठ लगा दी तथा उस मधुरिमा का पान करती रहीं। जब दोनों

ही चलने को उद्यत हुए तो अपने वस्त्रों में गाँठ लगी देख, विवाहोत्सव का सा कौतुक जान अनुराग रङ्ग में भर गये। हृदय का अनुराग उछल पड़ा, किशोरी श्रीराधा नयन नत कर सकुचा गईं। वस्त्रों में गाँठ लगाने के कारण इस स्थान का नाम गाँठौली हो गया।

श्रीनाथजी की अनन्य सेविका 'पाथो गूजरी' यहीं की थीं। इस गूजरी के खेत श्रीगिरिराज तलहटी में थे। जब वह अपने खेतों में जाती, तो प्रायः श्रीनाथजी उसकी रोटी लूट-लूट कर खा लेते। श्रीनाथजी की कृपा भाजन थी वह।

'जहाँ अष्टछाप गावें, तहाँ ललिता बीन तथा श्याम पखावज बजावें' श्रीनाथजी के पखावजी श्रीश्यामजी तथा उनकी पुत्री ललिता दोनों ही श्रीनाथजी के पद गान के समय अपने वाद्यों से सङ्गत देते। कहते हैं श्रीनाथजी कभी-कभी गांठौली में श्याम पखावजी तथा उनकी पुत्री ललिता से बीन सुनने पधारते।

पास ही गुलाल कुण्ड है।

गुलाल कुण्ड

ए हेतु गांठोली- ए गुलाल कुण्ड जले।
एबे फाग देखे लोक वसन्तेर काले॥

(भ० र०)

होरी का उत्सव, उसमें उमगे अनुराग-रङ्ग में छके रसिक शेखर तथा इनकी प्राणाराध्या श्रीराधा और उन्हीं की काय-व्यूह स्वरूपा यह ब्रज बालाऐं। अनुराग रङ्ग की यह खुमारी रस रङ्ग में भीज और, और निखर गई। अबीर तथा गुलाल के बादल आकाश में छा गये। उसी में भीजे तन, मन, वसन। सखियों ने अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधा को होरी के लिए आमन्त्रित किया-

'अरी चल वेगि छबीली, हरि सौं खेलें फाग।

अपनी-अपनी पिचकारी लिए, हाथ में गुलाल ले नव उमंगों में भरी प्रिय मिलनोत्कण्ठा में सजी, संवरी यह बालाऐं! होरी का रङ्ग सभी को रञ्जित करने लगा। वे चल दीं-

भरि-भरि रंग पिचकारिन छवि सों छिरकत हरि तन तीय।
कुटिल कटाक्ष प्रेम रंग भरि-भरि भरति पीय को हीय॥'

इधर पिचकारियों से रङ्ग बरसने लगा, उधर बालाओं के हृदय उमगने लगे। प्रिय की रूप मधुरिमा, अङ्ग मधुरिमा का सामीप्य पा, किसी नवल रस में भर, खो जाने को जी चाहने लगा। वे अपने प्राणप्रेष्ठ की कुटिल कटाक्षों से झरती रस माधुरीपूर्ण उमंग को अपने हृदय में भर, बसाये ले रही हैं। और फिर-

दुरि मुरि भरन बचावनि छवि सों बाढ़्यो है रंग अपार ।
मैंन मुनि सी बोलत डोलत पग नूपुर झंकार ॥

होली के खेल में यह चपलाऐं मत्त, उन्मत्त दीख रही हैं और उनके प्रेम मतवाले यह रसिक शेखर भी होरी के रङ्ग में, मिलनोत्कण्ठा में उमगे-उमगे पड़ रहे हैं । ऐसे रङ्ग भीजे युगल और निजस्वरूपभूता इन ब्रजबालाओं को देख श्रीनन्ददासजी ने कहा-

'नन्ददास अपने ठाकुर की दौरि बलैया लेय ।'

लो ! यह रङ्गीले खिलाड़ी अब स्नान हेतु जल में प्रविष्ट हुए । होरी की वह धूम अभी भी संयम में न आई । जल की अनवरत बौछारें, इनके सुभग गात से रञ्जित वह कुण्ड, गुलाल के रङ्ग से रञ्जित हो गया । तभी से यह कुण्ड 'गुलाल कुण्ड' कहलाया ।

आज भी फाग में यहाँ बिखरा अनुराग भक्तों को रस में सराबोर कर देता है ।

टोड़ की घनो

यह एक सघन वन है । श्रीनाथजी को यवनों के आक्रमणों के भय वश उन दिनों कई बार यहाँ लाकर सघन वन में छिपाया था ।

मीठा सा परिहास करते हुए श्रीकुंभनदासजी ने इस कंटकाकीर्ण वन को ले कर श्रीनाथजी को उपालम्भ दिया है-

भावति तोहि टोड़ को घनो ।
काँटा लगे गोखरू टूटे, फाट्यो है सब तन्यौ ॥
सिंहहि कहा लोमड़ी को डर यह कहा बानिक बन्यौ ।
कुंभनदास तुम गोवर्द्धन धर वह तो नीच डेढ़नी जन्यौ ॥

सघन वन होने के कारण ही इस स्थली को 'टोड़ की घनों' कहकर पुकारा जाता है । श्रीनाथजी को यह स्थली अत्यन्त प्रिय थी ।

ब्रज भूमि मोहिनी

कामवन

(विमल काम की फूली बेलि)

चतुर्थ खण्ड

तत्र कामवने रम्ये दिव्य मन्दिर संयुते ।
क्रीड़न्त्यः कन्दुकैः सर्वास्तस्थुः कृष्णप्रियाः शुभाः ॥

आस-पास की अन्य स्थलियाँ

1. द्योसेरस (देव शीर्ष स्थान)
2. सामरीखेरा
3. परमदरा
4. आदिबद्री
5. नवनीतपर्वत
6. गोदृष्टिवन (गुहाना)
7. बूढ़ेबद्री
8. कनवारो

चतुर्थ काम्यकवनं वनानां वनमुत्तमम् ।
तत्र गत्वा नरो देवि ! मम लोके महीयते ॥[1]

(आ० वा० पु०)

श्रीनारदजी ने भक्ति सूत्र में प्रेम का वर्णन करते हुए 'यथा ब्रज-गोपिकानां' कहकर उत्कर्ष दिखलाया है। वास्तव में गोपिकाऐं प्रेम की मूर्तरूपा हैं। उनका प्रेम स्वार्थ रहित प्रेम है। श्रीकृष्ण के सुख हेतु ही उनका प्रेम निखरा है। 'प्रेमैव गोपरामाणां काम इत्यगमत् प्रथाम्' गोपिकाओं का प्रेम, जो 'तत्सुखे सुखित्वं' की मर्यादा में पल्लवित तथा पोषित हुआ है, 'काम' ही कहा गया है। यह 'काम' शब्द लौकिक तथा वासनाजन्य नहीं है। काम तो भगवान शङ्कर ने पहले ही भस्म कर दिया था, अतः श्रीकृष्ण ने तो उसे जीवन दान दिया है। शत्-शत् कामदेव तो श्रीकृष्ण के दर्शन करके ही विलुण्ठित हो जाते हैं। यह 'काम' अत्यन्त पवित्र तथा विशुद्ध है। श्रीकृष्ण लीला सिद्धावस्था के साधकों के लिए ही अनुभवगम्य है। जहाँ लौकिकताकी गन्ध नहीं, स्वार्थ का प्रवेश नहीं, आत्म सुख की चाह नहीं तथा प्रेमास्पद के प्रति समर्पण ही समर्पण है, वहीं प्रेम है। श्रीकृष्ण के प्रति पूर्णतः समर्पित होने पर प्रेम ही, लौकिक भाषा में 'काम' शब्द से अभिव्यक्त किया गया है।

श्रीकृष्ण-प्राप्त लीला परिकर के किन्हीं संत ने श्रीकृष्ण प्रेम की गरिमा दिखलाते हुए कहा है, "समस्त लौकिक कामनाओं का त्यागी ही श्रीकृष्ण काम भोगी हो सकता है।"

यह काम नित्य वर्धमान है, क्योंकि प्रेम का स्वरूप भी नित्य वर्धमान है। ब्रजाङ्गनाओं में किसी प्रकार के लौकिक काम की गन्ध की कल्पना करना भी घोर पतन में ले जाने वाला है। इन ब्रजबालाओं का स्वार्थ कुछ है ही नहीं। वे जो भी कृत्य करती हैं, श्रीकृष्ण के लिए ही है। अपना श्रृंगार करती हैं, इसी आशय से कि श्रीकृष्ण उसे देखकर सुखी होंगे; दूध दही तथा माखन सम्हाल-सम्हाल कर रखती हैं, इसलिए कि श्रीकृष्ण उसका आस्वादन करेंगे, घाट-बाट में, यमुना तट पर, वंशीवट पर जाने में उनका हेतु श्रीकृष्ण को सुख प्रदान करना ही है। वे श्रीकृष्णमयी हैं; 'जित देखों तित श्याममयी हैं' अतः श्रीकृष्ण के लिए ही वे जीवन धारण किये हुए हैं। एक स्वर से कहना होगा कि

1. चतुर्थ कामवन नामक वन सभी वनों में श्रेष्ठ है। हे देवि ! इस वन में गमन करने वाला मेरे धाम में पूजनीय होता है।

जो भाव सहज ही श्रीकृष्ण की ओर ले जाने में सहायक है, वही प्रेम है अथवा शुद्धतम काम है, इसके अतिरिक्त सभी विडम्बना है तथा त्याज्य है ।

इन ब्रज गोपिकाओं की कामनाओं की उत्पत्ति तथा विविध प्रकार से श्रीकृष्ण द्वारा उनकी कामनाओं का शमन इसी स्थान पर होने के कारण यह स्थली 'कामवन' कहलाती है ।

जहाँ ब्रजाङ्गनाओं तथा अन्य सभीका अभीप्सित 'काम' बनता है-वही कामवन है।

ब्रज की मुख्य लीला स्थलियों में से एक है । 'कामवन' को आदि वृन्दावन भी कहा गया है । यहाँ श्रीवृन्दादेवी विराजती हैं । श्रीवृन्दावन की सीमा का विस्तार दूर-दूर तक फैला हुआ है । श्रीगिरिराज, बरसाना तथा नन्दग्राम आदि स्थलियाँ, श्रीवृन्दावन की सीमा के अन्तर्गत ही मानी गई हैं । ब्रज की सभी स्थलियाँ, श्रीवृन्दावन की सीमा के अन्तर्गत ही मानी गई हैं । ब्रज की सभी स्थलियाँ किसी न किसी लीला से संयुत हुई, श्रीकृष्ण से सम्बन्धित हैं ।

महाभारत में वर्णित 'कामवन' भी यही माना गया हैं । पाण्डवों ने यहाँ अज्ञातवास किया था । वर्तमान कामवन में अनेक ऐसे स्थल दिखलाई देते हैं, जिससे इसे महाभारत से सम्बन्धित भी माना जा सकता है । पाँचों पाण्डवों की मूर्त्तियाँ यहाँ विराजमान हैं ।

धर्मराज युधिष्ठिरजी के नाम से धर्म कूप तथा धर्म कुण्ड भी विख्यात हैं । इस स्थली से पाण्डवों का सम्बन्ध रहा दीखता है ।

कामसेन राजा का सिद्धि स्थल भी यही माना गया है ।

यहाँ अनेक तीर्थ, सरोवर, कुण्ड तथा मन्दिरों में विराजमान श्रीगोपी-नाथजी, गोकुल चन्द्रमाजी, मदनमोहनजी, ठाकुर स्वरूप दर्शनीय हैं ।

कामवन के अधीश्वर श्रीगोपीनाथजी हैं ।

माहात्म्य

ततः काम्यवनं राजन् ! यत्र बाल्ये स्थितो भवान् ।
स्नानमात्रेण सर्वेषां सर्वकामफलप्रदम् ॥

(स्क० पु०)

हे महाराज ! उसके पश्चात् काम्यवन है । जहाँ बाल्यावस्था में आप पधारे थे । इस वन में स्नान मात्र से सभी की प्रत्येक कामना पूर्ण हो जाती हैं ।

जहाँ सभी कामनाएँ सहज ही पूरी हो जाती हैं, वही कामवन है ।

विष्णु पुराण के अनुसार यहाँ छोटे-बड़े असंख्य तीर्थ हैं । ८४ तीर्थ, ८४ मन्दिर, ८४ खम्भ, जोकि राजा कामसेन द्वारा निर्मित हैं । देवताओं तथा असुरों ने मिलकर १६८ खम्भ बनाये थे-ऐसी भी मान्यता है ।

विमल कुण्ड

विमलस्य च कुण्डे च सर्वपापप्रमुच्यते ।
यस्तत्र मुञ्चति प्राणान् मम लोकं स गच्छति ॥[1]

(आ० वा०)

यत्तत्र विमल कुण्डं सर्वतीर्थोत्तमोत्तमम् ।
तत्र स्नातो नरो भद्रे वैष्णवं लभते पदम् ॥[2]

(वृ० ना० पु०)

दत्त्वामुक्तिं नृपतये श्रीकृष्णो भगवान्स्वयम् ।
तत्सुताः सुन्दरीर्नीत्वा ब्रजमण्डलमाययौ ॥[3]

(गर्ग संहिता 4/7/25)

सिन्धु देश में चम्पक नगरी के राजा विमल थे। उनके कोई सन्तान न थी। श्रीयाज्ञवल्क्यजी की कृपा से उनकी छः हजार रानियों के अनेक कन्याओं ने जन्म लिया। वे सब कन्याएँ श्रीराम अवतार के समय आश्वासन प्राप्त अयोध्या वासिनी स्त्रियाँ थीं। इन सुन्दर रूपवती कन्याओं के विवाह के लिये श्रीयाज्ञवल्क्य ऋषि द्वारा सुझाए गये योग्य वर (श्रीकृष्ण) की खोज में राजा विमल ने अपना दूत भेजा। वह मथुरा नगरी में आया।

मथुरा में भोजराज कंस के भय से सभी आतङ्कित थे तथा बहुत छिपकर उस दूत को वसुदेवजी के छः पुत्रों के वध की तथा सातवीं कन्या के आकाश में चले जाने की बात पता चली।

भीष्मजी के सहसा वहाँ चले आने से सारी घटना का प्रकाश हुआ, तो वह दूत पुनः वृन्दावन में, यमुना तट पर श्रीकृष्ण के दर्शन करके कृतार्थ हो गया।

राजा विमल का निमन्त्रण पा श्रीकृष्ण चम्पक नगरी पहुँचे तथा राजा विमल की कन्याओं को अपने साथ ले, ब्रजमण्डल में आ गये। वे कन्याएँ रमणीय काम्यवन में भगवान श्रीकृष्ण के साथ कन्दुक क्रीड़ा द्वारा आमोद-प्रमोद में रत हो गईं। इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने उतने ही रूप धारण कर इन विमल कन्याओं के साथ रास किया।

उस रासमण्डल में उन विमल कुमारियों के आनन्दाश्रुओं से प्रपूरित यह कुण्ड 'विमल-कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया।

---

1. विमल कुण्ड सर्व पापों को क्षय कर देने वाला है। इस कुण्ड पर मृत्यु को प्राप्त जन निश्चय ही मेरे धाम को प्राप्त होते हैं।

2. ब्रज में सभी तीर्थ निवास करते हैं। काम्यवन में उत्तम से भी उत्तम विमल कुण्ड है, जहाँ स्नान करने वाला वैष्णव पद को प्राप्त करता है। अतः विमल कुण्ड यथा नाम तथा गुण की उक्ति से सर्वथा भूषित है।

3. इस प्रकार राजा को मोक्ष प्रदान करके स्वयं भगवान श्रीकृष्ण उनकी कुमारियों को साथ ले, ब्रज मण्डल में आ गये।

विमल कुण्ड का दर्शन, पान तथा पूजन करके मनुष्य के सभी पाप क्षय हो जाते हैं ।

इसके अतिरिक्त विमल कुण्ड के प्राकट्य के विषय में एक अन्य गाथा जनश्रुति रूप में विख्यात है-

चतुर्मास में सभी तीर्थ ब्रज में निवास करते हैं । एकबार जब पुष्करराज यहाँ न पधारे तो श्रीकृष्ण ने योगमाया का स्मरण किया । कहते हैं, उसी समय पृथ्वी में जल प्रकट हुआ, उस जल से एक सुन्दर स्त्री प्रकट हुई । वह सुन्दर स्त्री (विमला) शुद्ध तथा किसी भी प्रकार के मल से रहित थी, अतः श्रीकृष्ण ने वरदान दिया कि "तुम्हारा आज से विमलादेवी नाम से पूजन होगा और यह स्थली कुण्ड का आकार ले तुम्हारे ही नाम से विख्यात हो जायेगी । जो भी इस विमलकुण्ड में स्नान करेगा, वह सभी पापों से मुक्त हो जावेगा तथा उसका चित्त शुद्ध हो जायेगा । उसे सात बार पुष्कर स्नान का फल प्राप्त होगा ।" तभी से यह कुण्ड 'विमल-कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया ।

यह ग्राम के दक्षिण पश्चिम कोने में स्थित हैं, दृश्य बड़ा ही रमणीय है । कुण्ड के चारों ओर दाऊजी, सूर्यदेव, नील कण्ठेश्वर महादेवजी, श्रीगोवर्द्धननाथजी, श्रीमदनगोपालजी तथा श्रीकामवन विहारी, श्रीविमला देवी, श्रीमुरली मनोहर, श्रीगङ्गाजी, श्रीगोपालजी विराजमान हैं ।

श्रीजयकृष्णदास बाबा (विमल-कुण्ड)

ये उच्चकोटि के भक्त थे । विमल कुण्ड पर ही निवास करते, मधुकरी वृत्ति से जीवन यापन करते । इनकी मानसी सेवा सिद्ध हो गई थी । एक बार सेवा में रत थे-सहसा इन्हें बड़ी व्याकुलता हुई । बाहर चले आये । कुण्ड पर चारों ओर गौ, ग्वालों को देखा । ऐसे मनोहारी दृश्य को देख स्तब्ध हो गये । श्रीकृष्ण, बलराम तथा अन्य ग्वाल बालकों ने बाबा से आग्रह पूर्वक माँगकर जल पान किया । वे अपनी कुटिया में चले गये । वहाँ उन्हें उस दृश्य को देखने की लालसा अधीर करने लगी ।

पुनः जब बाबा उस मण्डली को देखने आये तो न तो गउएँ ही थीं न ग्वाल बालक ही । इन्हें बहुत कष्ट हुआ और उदास हो गये । इन्हीं विचारों में रत थे तो इन्हें ऐसा आभास हुआ कि श्रीकृष्ण कह रहे हैं "मैं कल तुम्हारे पास आऊँगा ।" यही हुआ अगले दिन एक वृद्धा ने गोपाल स्वरूप लाकर सेवा में अपनी असमर्थता दिखला इन्हें सौंप दिये । वे श्री गोपाल स्वरूप सदा-सदा के लिये इन्हें कृतार्थ करते रहे । इनकी माधुर्य-रस उपासना सिद्ध हो गई थी ।

कहते हैं जब वे नित्यधाम को पधारे तो उनके अन्तिम शब्द थे 'मेरा लहँगा, 'मेरी फरिया' कहाँ है ?'

चरण कुण्ड

श्रृङ्गाररससार युगल रस विग्रह श्रीश्यामसुन्दर तथा श्रीश्रीराधा रानी ही लीला में एक बार सहसा यहाँ आकर बैठ गये तथा श्रीचरणों से जल उलीचते रहे तथा अठखेलियाँ करते रहे। पाद-प्रक्षालन कर किन्हीं सरस स्मृतियों में पगे रसमग्न हो गये।

तभी से यह स्थली युगल के चरणों की रज से अभिषिक्त, अभिसिञ्चित 'चरण कुण्ड' नाम से विख्यात हो गई।

पास ही 'वैद्यनाथमहादेवजी', 'विष्णुसिंहासन', 'गरुड़ जी', 'चन्द्र-भासा कुण्ड', 'चन्द्रेश्वर महादेव', 'वाराह कूप', 'वाराह कुण्ड', 'यज्ञ कुण्ड' व 'धर्म कुण्ड' हैं।

धर्म कुण्ड

एई धर्म कुण्ड धर्म रूपे नारायण।
एथा विलसये शोभा ना हय वर्णन॥

(भ० र०)

यहाँ श्रीनारायण भगवान धर्म रूप में विराजते हैं तथा धर्म प्रतिपादन करते हैं। अनुपम शोभामय यह तीर्थ प्रसिद्ध है। भाद्रपद श्रीकृष्णाष्टमी को यहाँ स्नान का विशेष महत्त्व है।

पास ही 'नारायण कुण्ड', 'पञ्च पाण्डव', 'नील वाराह', 'श्रीहनुमान जी' तथा 'पञ्च पाण्डव कुण्ड' है।

मणिकर्णिका

मणिकर्णिका स्थान पर विश्वनाथ भगवान श्रीशङ्करजी का प्रभाव सर्वविदित है।

श्रीयशोदा कुण्ड

मधुसूदनस्य कुण्डं ददृशुः कुण्डं यशोदायाः।
यस्य यशोदातनययशोधरस्यात्र धामासीत॥

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

(श्रीवल्लभाचार्य जी ने) श्रीमधुसूदन तथा श्रीयशोदा कुण्ड को देखा, यहाँ नन्द ग्राम से श्रीयशोदाजी के पुत्र श्रीकृष्ण आकर विराजते थे।

देखई यशोदा कुण्ड परम निर्मल ।
एथा गोचारणे कृष्ण हईया विह्वल ॥

(भ० र०)

प्रकट लीलाओं में गोचारण, श्रीकृष्ण का नित्य ही का क्रम है । ब्रजराज का गाय चराने जाना आवश्यक हो ऐसी बात नहीं, परन्तु यह एक मिस तो है ही । एक बार एक सखी ने दूसरी से अपनी मनः स्थिति का वर्णन कर कहा-

याते माई ! भवन छांड़ि वन जईयतु, ।
अंखरस, कनरस, बतरस, सबरस नन्दनन्दन मँह पईयतु ॥

श्रीकृष्ण गोचारण को जाते हैं, अपनी इन प्रियाओं की भावनाओं को दुलारने, सहलाने उन्हें सुख प्रदान करने और यह बालाएँ अपने जीवन-धन की रूप माधुरी का पान करने, वन निकुञ्जों में, तरह-तरह के बहाने बना चली आती हैं । कभी दूध दही बेचने के लिए और कभी पनघट पर जल भरने के लिये और फिर रस की मधुर लहरियों में डूबते उतराते यह ब्रज-जन-मनरञ्जन श्रीश्यामसुन्दर !

भोर में उठ गोचारण की तैयारी में रत हो जाते हैं । श्रीकृष्ण, गो, गोप, ग्वाल-बाल, सभी के नेत्र अपने इन जीवन सर्वस्व की रूप-माधुरी का पान करने को आकुल रहते हैं । वात्सल्यमयी माँ भला इतने लम्बे अभाव को कैसे सहन करे ? वे किसी न किसी सखा अथवा सखियों द्वारा छाक भेजती हैं और कभी-कभी स्वयं कन्हैया को देख अपने नेत्रों की प्यास बुझाने चली आया करती हैं । इधर मातृ वात्सल्य श्रीकृष्ण को बरबस ही आकृष्ट करता है और वे जहाँ कहीं भी हों मैया के पास चले आते हैं । मैया की प्रतीक्षातुरी को धन्य करते, कन्हैया भागकर मैया से चिपट जाते हैं । इसी वात्सल्य रस की पुष्टि करती, श्रीयशोदा तथा कन्हैया की मिलन स्थली, यशोदा कुण्ड नाम से विख्यात है ।

यहाँ स्नान करने से श्रीकृष्ण प्रेम की अभिवृद्धि होती है ।

श्रीनारद कुण्ड

देखई नारद कुण्ड नारद एई खाने ।
हैल महा अधैर्य कृष्णेर लीला गाने ॥

(भ० र०)

श्रीनारदजी भगवान का हृदय कहे जाते हैं । उनकी वीणा श्रीकृष्ण लीला गान से सदा ही झंकृत रहती है, उसकी प्रत्येक झँकार में श्रीकृष्ण ध्वनि ही सुनाई देती है । श्रीनारदजी ब्रज में आ श्रीकृष्ण माधुरी का पान कर, तन्मय हो गये । अष्ट सात्विक भाव उनकी देह में प्रकट हो गये । वे श्रीकृष्ण दर्शन

लालसा के कारण अधीर हो गये। अपने जनों की हर पुकार को सत्कार देते, नन्द नन्दन ने उन्हें दर्शन देकर धन्य कर दिया।

सेतुबन्ध कुण्ड

लङ्काकुण्डं याता हरिणा सेतुर्निबद्धाऽत्र ।
रामावतारलीला स्वेभ्यः संदर्शिता योगात् ॥

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

परस्पर आमोद-प्रमोद हो रहा था। ब्रजवासियों ने श्रीकृष्ण से त्रेता युग की लीला के दर्शन करने की कामना की। कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने उन सभी लीलाओं का अभिनय करते हुए अपने जनों को वह शक्ति प्रदान की, कि जिससे सभी लीलाएँ ब्रजवासियों के दृष्टिगोचर हो गईं।

वही मुख्य स्थली सेतुबन्ध कुण्ड नाम से विख्यात है।

लुक-लुक कुण्ड

समपश्यन् पद्माख्यं निलयनाख्यं च कुण्डवरम् ॥

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

(आचार्यजी) पद्म तीर्थ दर्शन करके लुक-लुक कुण्ड पधारे, यहाँ श्रीकृष्ण ने आँख मिचौनी लीला की थी।

यत्र निलायनरमणं गुहात्र कृष्णस्तत्राम्र ।
तस्यां लीनो हित्वैनां गवागोवर्द्धनं वेणुरवं चक्रुः ॥

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

यहाँ लुक-लुक कन्दरा है, जहाँ छिपकर तथा बाद में पर्वत पर प्रकट हो कर श्रीकृष्ण ने वेणुनाद किया था।

प्रणयी ब्रजकिशोर, उनकी प्राणाराध्या श्रीराधा तथा यह ब्रज-बालाऐं नित्य ही नये-नये रसायोजनों द्वारा रसमग्न रहते हैं, इन रसायोजनों को सजाती संवारती हैं, रसविज्ञा यह ब्रजबालाऐं।

आज आँख मिचौनी लीला का आयोजन हुआ। स्थली सुनिश्चित हो गई। सभी सखियों सहित रासेश्वरी श्रीराधा इस निर्जन स्थली पर आ गईं। इसी सघन वनस्थली में प्रियतम भी आ पहुँचे। आज का पहला दाव प्रियतम को देना था। सखियाँ छिप गई। श्रीकृष्ण ढूँढ़ने लगे, श्रीराधा अपनी अन्तरंग सखी श्रीललिता तथा विशाखा सहित एक निकुञ्ज में जा छिपीं। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते प्रियतम उसी निकुञ्ज तक आ गये तथा एक ओर ढूँढ़ने का अभिनय सा करते रहे। जब बहुत देर हो गई तो ललिता तथा विशाखा दोनों ही प्रियतम को देखने के बहाने बाहर आ गईं तथा आगे बढ़ती चली गईं। रसिया नागर ने देख तो

लिया तथा अनुमान लगा कर कि प्रियाजी यहीं होंगी उस सघन कुञ्ज में गमन किया तथा ध्यान मग्ना किशोरी को जा कर छू लिया। प्रतीक्षा में किसी उधेड़ बुन में बैठी किशोरी चौंक गईं। रस की विशेष उच्छलन में दोनों ही मग्न हो गये। यह स्थली धन्या हुई और इसी लीला की मधुर स्मृति को अपने वातावरण में संजोये आज भी उस रस को मुक्त हो लुटा रही है।

पास ही 'कमलाकार सरोवर' है। उसके पास 'जलक्रीड़ा कुण्ड' है। 'ध्यान कुण्ड' तथा 'तप्त कुण्ड' है। यहाँ स्नान करने वाले वैष्णवों के समस्त पाप क्षय हो जाते हैं। यहीं श्रीकृष्ण श्रीराधा के ध्यान में विभोर हो गये थे।

चरण पहाड़ी

ठाड़े री मोहन चरण पहाड़ी।
पीताम्बर फहरात पवन बस मुकुट लटक छवि न्यारी॥
पुनि कीरति की लली भली छवि ता ग्रीवा भुजडारी।
जाके रूप रंग रस बस ह्वै वन-वन नचत बिहारी॥
उन्मद मदन रहत निसिवासर संग ललित ललनारी।
वृन्दावन हित विमल कुण्ड तट केलि विमल विस्तारी॥

गोचारण में सखाओं के साथ आमोद-प्रमोद में रत श्यामसुन्दर अकेले ही कब चरण पहाड़ी पर आ विराजे, सखाओं को पता न चला। सखा अपनी गउओं को खोजने लगे और नन्दनन्दन श्यामसुन्दर अपनी प्रतीक्षा में आकुल-व्याकुल, इन बालाओं की प्रेम पगी भावनाओं को सत्कृत करने इधर आ चरण-पहाड़ी पर विराज गये।

समीरण उनके पीताम्बर से अठखेलियाँ करने लगी। फहराता पीत पट दूर से ही सखियों की दृष्टि में आ गया। अपने प्राणधन को एकान्त में देख उस पीताम्बर की फहरान को प्रियतम का रसामंत्रण जान, वे वहाँ चलीं आईं। अपनी चिर सहचरी स्वामिनी श्रीराधा को प्रियतम के पास बिठा दोनों की अनुपम रूप माधुरी का पान करने लगीं।

कभी श्यामसुन्दर के मुकुट की लटकन की प्रशंसा करतीं तथा कभी प्रियाजी की चन्द्रिका का प्रशस्ति गान करतीं। प्रियतम के पीत पट की शोभा को बढ़ाती, प्रियाजी की नीली साड़ी का बखान करने लगीं। दोनों के सरस नेत्रों की गाथा कहने लगीं। रूप मधुरिमा की चर्चा करने लगीं। उनकी वनमाला तथा प्रियाजी की कण्ठी की सरसता की बात कहने लगीं, यही नहीं, रूप मधुरिमा की बात कहती-कहती वे उसी में तन्मय हो गईं। युगल रस बावरे अपनी सुरस स्मृतियों में मग्न हो गये।

रूप सौन्दर्य की यह सुरस केलि कब तक प्रवहमान रही और कब वे सभी बावरे सुधि विहीन से अपने घर लौट गये कोई भी जान न सका। उस सुरस गाथा के प्रेमाधिक्य में इस पर्वत शिला ने प्रिय पद चिन्ह अपने हृदय पर अंकित कर लिए। वही सुरस लीला स्थली आज भी 'चरण पहाड़ी' नाम से श्यामसुन्दर तथा इन ब्रज बालाओं की मिलन-स्थली के रूप में विराजमान है।

विह्वल कुण्ड

देखई विह्वलकुण्ड राई एई खाने।
हईला विह्वल कृष्ण मुरलीर गाने॥

(भ० र०)

वेणु नाद का प्रवाह बरबस ही मन प्राणों को आकर्षित कर लेता है। प्रियतम मधुर गीत द्वारा रसामन्त्रण दे पुकार रहे हों, फिर इन बालाओं का घर पर रहना कैसे सम्भव हो भला ? यह वंशी रव, प्राणों में रस संचार करने वाला तो है ही आत्म विस्मृत करने वाला भी है। इस वंशी निनाद को सुन इन बालाओं के मन, प्राण, प्रिय मिलन-त्वरा वश छटपटा जाते हैं और ये, प्रिय मिलन के लिए विह्वल हो जाती हैं।

वंशी की मधुर स्वर लहरी, प्रियाजी के कर्णों में प्रविष्ट हुई, वे अरबरा सी गईं। किसी मधुर तान का अनुगमन करती हुईं, एक निकुञ्ज में आ गईं। प्रियतम के सामीप्य की लालसा क्षण-क्षण में वर्धित होने लगी। वे विकल तथा विह्वल हो गईं। उनकी इस विह्वलता से खिंचे यह प्रणयी रिझवार, प्रियाजी के मुख पर विक्रीड़ित प्रणय लहरियों को निरखते रहे। अधिक देरी इन्हें भी सहन न हुई और प्राणप्रिया के पास आ पहुँचे। उस परम सुखकर सामीप्य की बात फिर कौन कहता ? उसे ये दोनों ही जानते हैं-या फिर इस एकान्तिक स्थली ने प्रणय के उन रस कणों को धरोहर रूप में अपने पास सम्हाल रखा है, आइये इसी से पूछें।

तभी से यह स्थली 'विह्वल कुण्ड' नाम से विख्यात हो गई।

पास ही श्याम कुण्ड, ललिता कुण्ड, विशाखा कुण्ड, मान कुण्ड, मोहनी कुण्ड तथा बलभद्र कुण्ड हैं।

पिछलिनी शिला

चन्द्रसेन पर्वत ए पिछलिनी शिला।
एथा सखा सह कृष्ण करे एई खेला॥

(भ० र०)

अखिल ब्रह्माण्ड नायक, आनन्द-घन श्यामसुन्दर की एक झलक के लिए योगी, मुनि, तपस्वी वर्षों तपस्या करने पर भी, जिसे सहज प्राप्त नहीं कर सकते, वही आप्तकाम, पूर्णकाम परब्रह्म पुरुषोत्तम, नन्दबाबा की पौरी की देहलीज पर आधे लटके अश्रुपूरित नेत्रों से मैया से पार उतरने के लिए आग्रह कर रहे हैं । है न प्रेम वैचित्र्य ! इसी प्रेम के वशीभूत हुए नन्दनन्दन 'छछिया भरि छाछ' के लिए ठुमका लगा कर गोपिकाओं को परमानन्दित करते हैं । आज वही सखा, सुहृद कन्हैया अपने अनन्य सखाओं सहित इस चिकनी शिला से फिसल-फिसल कर आनन्द ले रहे हैं ।

उनकी सख्य लीलाओं की साक्षी यह 'फिसलिनी शिला' उनके अंग स्पर्श से धन्या हो आज भी हम सबके लिए दिव्य आनन्द प्रदान कर रही है ।

काम सरोवर

तत्र कामसरो राजन् ! गोपिकारमनं सरः ।
तत्र तीर्थसहस्राणि सरांसि च पृथक्-पृथक्॥

(स्क० पु०)

कामवन में गोपिका रमण सरोवर विराजमान है, उसी काम्यवन में सहस्रों तीर्थों के पृथक्-पृथक् सभी सरोवर विद्यमान हैं ।

नित्य शुद्ध देहा इन ब्रज रमणियों के सौभाग्य का लेखा कौन दे सकता है ? उनका प्रत्येक क्षण श्रीकृष्ण के सुख के लिए ही समर्पित है । वे दही बिलोती हैं, तो इसी विचार से कि श्रीकृष्ण उसे ग्रहण करेंगे । घर, हाटबाट में पलकें बिछाए उन्हीं की प्रतीक्षा में रत रहती हैं । अपनी प्राण प्रियाओं के प्रेम के वशीभूत हुए नन्द नन्दन उनके हृदय की प्रत्येक भावना को स्वीकारते हैं, सत्कारते हैं, प्यार से दुलारते हैं । उनकी कामना उन्हीं श्रीकृष्ण को लेकर ही है, केवल उन्हीं के लिए है, इसी आशा, विश्वास पर वे जीवन धारण करती हैं ।

श्रीकृष्ण उनके अपने हैं और वे सदा उन्हीं की हैं ।

इन गोपिकाओं का काम विशुद्ध काम है, नित्य शुद्ध प्रेम है । उस में स्वसुख का लेश भी नहीं, अतः वह निर्मल प्रेम है । लौकिकता की दुर्गन्ध उनके स्नेह में नहीं है और न ही वहाँ शारीरिक आसक्ति का रञ्चमात्र प्रवेश है । उनकी समस्त कामनाएँ दिव्य तथा शुद्ध प्रेम को लेकर ही हैं । अतः वे प्रेम ही का मूर्त रूप हैं ।

ब्रज रमणियों का परस्पर विहार, रस-विलास, प्रियतम के सुख के लिये है । इसी से बँधे स्वयं श्रीकृष्ण श्रीमुख से सराहना करते हैं ।

जिस प्रेम को स्वयं नन्दनन्दन पूर्ण रूप से शुद्धतम कह रहे हैं, उसी शुद्ध काम का यह स्थल काम-सरोवर नाम से विख्यात हो गया ।

इस सरोवर में स्नान-करने से समस्त कामनाएँ पूर्ण हो जाती हैं ।

सुरभि कुण्ड (श्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक)

श्रीनन्द कूप के पास ही शमी वृक्ष के नीचे श्रीश्रीमन्महाप्रभुजी की बैठक विराजमान है, जहाँ श्रीमद्भागवत का वातावरण आज भी स्थली की दिव्यता की सुरक्षा कर रहा है।

सुरभि कुण्ड पर श्रीमदाचार्य पधारे और रात्रि में वहीं निवास करने का विचार कर रहे थे कि पुरोहितजी ने कहा, महाराज ! यह स्थान ठीक नहीं है, यहाँ एक प्रेत का निवास है। वह प्रेत यहाँ रहने वाले व्यक्ति के प्राण हरण कर लेता है। यह सुनकर आचार्य प्रभु चुप ही रहे। भोर में एक भक्त आपके वस्त्र प्रक्षालन के लिये जैसे ही कुण्ड पर गया तो उसे प्रेत दीखा। वह चिल्लाया, महाप्रभुजी ने उसके पूर्व जन्म का वृत्तान्त कहा-

"यह ब्राह्मण ब्रज में ऐश्वर्य से रहता था। इसने अपने द्वारा दान की हुई भूमि को पुनः वापिस लौटा लिया था, इसी दुष्कृत्य के कारण यह ब्राह्मण, प्रेत की देह को प्राप्त हुआ।" इसके पश्चात् वह ब्राह्मण महाप्रभुजी की कृपा से मुक्त हो गया।

यहाँ स्नान करने से सभी की मनोकामना पूर्ण हो जाती है।।

पास ही भोजनथाली है। (जनश्रुति है कि श्रीशङ्कराचार्यजी महाराज को श्रीकृष्ण की ग्वाल गोष्ठी का दर्शन यहीं हुआ था। परस्पर छाक आरोगते, एक दूसरे के मुँह में कौर देते, छीना-झपटी कर आनन्द में मग्न ग्वाल-बाल श्रीकृष्ण सहित भोजन यहीं कर रहे थे।) जहाँ सखाओं सहित श्रीकृष्ण ने भोजन किया था। बाजनी-शिला, श्रीपरशुरामजी का स्थान, शान्तनु कुण्ड, वेद कुण्ड, दामोदर कुण्ड, गन्धर्व कुण्ड तथा पृथूदक कुण्ड है। अयोध्या कुण्ड, श्रीनृसिंह कुण्ड, अर्घ्य कुण्ड, मधुसूदन कुण्ड, श्रीरोहिणी कुण्ड, गोपाल कुण्ड, गोदावरी कुण्ड, श्रीदेवकी कुण्ड सभी श्रीकृष्ण लीला से सम्बद्ध हैं।

व्योमासुर गुफा

श्रीकृष्ण, माधुर्य की साक्षात् मूर्त्ति हैं। वे मधुर हैं, माधुर्य रस सार सिन्धु हैं, चापल्य सीम हैं तथा चपलाओं द्वारा अनुभव किये जाते हैं। ब्रज-रमणियों के अपने, बहुत अपने प्राणप्रेष्ठ हैं। श्रीकृष्ण कोमल से कोमलतम हैं, जो केवल वंशी के भार से ही त्रिभंग हो रहे हैं, वे ही श्रीकृष्ण दूसरी ओर अपनी ऐश्वर्य शक्ति द्वारा बड़े-बड़े दैत्यों का वध भी कर रहे हैं।

केशी वध हो जाने के बाद भगवान श्रीकृष्ण अपने सखाओं, ग्वाल बालकों सहित पुनः आमोद-प्रमोद में मग्न हो गये, वे लुका-छिपी का खेल खेलने लगे। कुछ सखा चोर बनते, दूसरे उन्हें ढूँढ़ते। जब वे अपने खेल में पूर्णतः मग्न हो गये तो कंस का भेजा हुआ व्योमासुर नाम का दैत्य भी ग्वाल वेष धारण कर इस मण्डली में प्रविष्ट हो गया। भगवान श्रीकृष्ण यह सब

समझ गये। व्योमासुर नाम का वह दैत्य बहुधा खेल में चोर ही बनता और बारी-बारी से पकड़ -पकड़ कर सखाओं को एक पर्वत की गुफा में बन्द कर आता। धीरे-धीरे जब चार-पाँच सखा ही बाहर रह गये तो श्रीकृष्ण ने उसे पहचान कर पकड़ लिया। मयासुर के उस पुत्र, व्योमासुर ने अपना असली रूप दिखलाया। भगवान श्रीकृष्ण ने उसका वध कर दिया तथा अपने सखाओं को पर्वत गुफा के पीछे से निकाला।

यह स्थली व्योमासुर को मोक्ष प्रदान करने वाली, 'व्योमासुर गुफा' के नाम से प्रसिद्ध हो गई।

इसके पास ही लक्ष्मी कुण्ड तथा प्रह्लाद कुण्ड हैं।

रति केलि कुण्ड

रतिकेलिसखी यत्र स्नानं प्रतिदिनमकरोत्।
रतिकेलिकृतं कुण्डं सर्वसौभाग्यवर्धनम् ॥

(वा० पु०)

श्रीकृष्ण की अत्यन्त प्रिया सखी रतिकेलि यहाँ नित्य स्नान करती हैं। उन्हीं के लिये निर्मित कुण्ड सभी के सौभाग्य को बढ़ाने वाला है।

श्रीकामेश्वर महादेव

कामेश्वराय देवाय कामनार्थप्रदायिने।
महादेवाय तुभ्यं नमस्ते मुक्तिदोद्भव ॥

हे कामेश्वर महादेव ! आप काम तथा अर्थ प्रदान करने वाले हैं। हे महादेव ! आप मुक्ति प्रदान करने वाले हैं। आपको नमस्कार है।

कामेश्वर महादेव, समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाले हैं। श्रीकृष्ण की प्रीति की चाह के अतिरिक्त वाञ्छनीय, कामना ही और क्या हो सकती है ? समस्त लौकिक कामनाओं को क्षय कर श्रीकृष्ण के प्रति विशुद्ध काम प्रदान करने वाले हैं।

ग्राम के उत्तर-पूर्व कोने में क्षेत्रपाल के रूप में आप विराजमान हैं।

गोकुल चन्द्रमाजी (श्रीठाकुर स्वरूप)

महावन की एक क्षत्राणी पर कृपा कर, ब्रह्माण्ड घाट पर, श्रीयमुना महारानी की रज में से आप प्राप्त हुए। उस क्षत्राणी ने श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी को समर्पित कर दिया। आचार्य प्रभु ने अपने सेवक श्रीनारायणदास ब्रह्मचारी के यहाँ इन्हें विराजमान कराकर, सेवा सौंप दी। श्रीब्रह्माचारी के गोलोक धाम प्राप्त होने के पश्चात् गोकुल चन्द्रमाजी, श्रीविट्ठलनाथजी की सेवा में चले आये। पुनः गुसांईजी के पञ्चम पुत्र श्रीरघुनाथजी के यहाँ विराजने लगे।

यवनों से भीत होकर श्रीरघुनाथजी के वंशज इन्हें पहले जयपुर, पीछे बीकानेर ले गये।

आजकल काम्यवन में वैष्णव मात्र के आकर्षण बने हुए हैं।

गोकुलनाथजी के निमन्त्रण पर अन्नकूट के समय श्रीठाकुरजी कुछ समय जतीपुरा में निवास करते हैं।

श्रीमदनमोहन जी

गोस्वामी श्रीविट्ठलनाथजी ने इन श्रीठाकुर स्वरूप की सेवा अपने सातवें पुत्र श्रीघनश्यामजी को प्रदान की थी। यवनों के अत्याचारों से बचने के लिये श्रीघनश्यामजी के वंशजों ने मदनमोहनजी को जयपुर में पधराया। व्यवस्था के अभाव में वहाँ से बीकानेर ले गये।

श्रीगोकुल चन्द्रमाजी जब कामवन पधारे तो श्रीमदनमोहनजी भी कामवन आ गये। अद्यावधि वहीं विराजते हैं।

अभी हम कामवन की मुख्य स्थलियों का महत्त्व पढ़ चुके हैं, आइये अब आस-पास की अन्य स्थलियों से सम्बन्धित लीलाओं का आस्वादन करें।

द्यौसेरस (देवशीर्ष स्थान)

आर एई लीला स्थली अति तेजोमय।
देख 'देवशीर्ष' स्थान कुण्ड सुशोभय॥

(भ० र०)

अपने सखा श्रीदामा, सुबल तथा मधुमंगलादि सहित श्रीकृष्ण नित्य ही गोचारण हेतु यहाँ पधारते हैं। एकबार देवताओं की श्री कृष्ण तथा ग्वाल-बाल सखाओं के दर्शन करने की इच्छा हुई। देवलोक में यह सब कहाँ सुलभ है? देवता मिलकर ब्रज में पधारे तथा सौन्दर्य एवं माधुर्य रस सार सिन्धु श्रीकृष्ण को, ग्वाल मण्डली में शोभायमान देख, चकित विस्मित हो गये। अखिल ब्रह्माण्ड-नायक, साधारण ग्वाल वेष धारण किये, ब्रज की वन्य स्थलियों में गायों के पीछे 'हीओ' 'हीओ' पुकारते घूम रहे हैं।

यह स्थली देवशीर्ष नाम से विख्यात हुई आज भी पूर्व इतिहास को दोहरा रही है। लाठावन से उत्तर में लगभग पाँच मील की दूरी पर स्थित है। पास ही (मुनि शीर्ष स्थान) 'मुड़ सेरस', लाठावन से लगभग चार मील की दूरी पर है।

सामरी खेरा (सामीही खेरा, सूर्य पतन वन)

श्रावणकृष्णद्वादश्यामागतो ब्रजयात्रया।
त्रेतायुगे समायाते सूर्यो यत्र पपात ह॥

रावणस्य भयं लब्ध्वा श्रीरामशरणागतः ।
यती सूर्यप्रपाताख्यं वनं यत्र प्रजायते ॥

(आदित्य पु०)

श्रावण मास की कृष्णद्वादशी को यात्रा के लिए यहाँ आवे । त्रेता युग के आने पर रावण के भय से सूर्य नारायण यहाँ पृथ्वी पर उतर, श्री रामजी की शरण में आये । इसीलिए इस स्थली का नाम सूर्यप्रपातवन हो गया ।

जनश्रुति है कि श्री कृष्ण की प्रिय सखी 'सामरी सखी' का सम्बन्ध भी इसी ग्राम से रहा है ।

यहाँ 'गोपाल कुण्ड', 'गोपाल मन्दिर', 'सूर्य कुण्ड' तथा 'विहारीजी' के दर्शन हैं।

परमदरा (प्रमोदना)

परमदरापावनाय श्रीदाम्नः सख्युरिहधाम ।
तत्र सरः कृष्णस्य राधाराधेशयोर्वेदी ॥

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

नित्य नवीनता प्रिय श्यामसुन्दर की नित्य नवीन केलि का वर्णन कौन कर सकता है ? रसिकों ने 'क्षणे-क्षणे नवं-नवं' कह कर अपनी भावना को किञ्चित् अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है । आमोद तथा प्रमोद की तरंगे श्रीकृष्ण के अङ्ग प्रत्यंग से छलकती रहती हैं । लीला कथन, श्रवण से ही भक्त-हृदय, रस मधुरिमा में मज्जित हो जाते हैं-फिर रूप मधुरिमा पान कर बौरा जाना अस्वाभाविक नहीं है । कन्हैया एक ओर मैया से माखन मिसरी के लिए हठ कर रहे हैं, तो दूसरी ओर मटकी लिए माखन खा रहे हैं, लुटा रहे हैं । कभी अपनी पग पैंजनियों से मधुर स्वर करते, श्रीनन्दरायजी के प्रांगण में विचर रहे हैं । मैया यशोदा का यह सौभाग्य नित्य बना है । ये ही रसिया नागर अपने प्रिय सखाओं सहित विभिन्न क्रीड़ाओं द्वारा ब्रजवासियों को आनन्द में सराबोर करते रहते हैं । परस्पर हँसी, छेड़-छाड़ का मानो स्रोत ही उमड़ा चला आता है ।

इनकी प्रत्येक मधुर लीला की साक्षी ब्रज बालाऐं, इनकी चिरसङ्गिनी हैं । इनकी मधुर रस चर्चा कुछ निराली ही है । यह मधुर चर्चा किसी गाम्भीर्य को ले प्रणय रस में निमज्जित कर देती है । उन्हीं सुरस लहरियों से यह बालाएँ आज भी सिंचित हैं, पोषित हैं ।

इन्हें आमोद-प्रमोद द्वारा सुख प्रदान करने वाली यह स्थली विशेष, (प्रमोदना) परमदरा नाम से विख्यात है ।

'श्रीदाम सखा' का स्थान है । 'कृष्ण सरोवर' 'श्री प्रिया-प्रियतम की बैठने की स्थली' विशेष रूप से दर्शनीय हैं । ग्राम के पूर्व में 'चरण-कुण्ड' है ।

आदिबद्री

आदिबद्रीकोवनं नारायणो यत्रतपोलीला ।
यत्रादर्शि प्रियाभ्यः कृष्णेनैताः सोऽत्रतयो ः॥

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

श्री बद्री नारायणजी की तप स्थली कहलाती है । श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं का आस्वादन करने के अधिकारी केवल उनके निजजन ही हैं । अन्यान्य देवतागण अनेक साधनों के उपरान्त भी इसके दर्शन नहीं कर पाते हैं जब तक श्यामसुन्दर ही कृपा न कर दें ।

चारों ओर वृक्षों से तथा पर्वत श्रेणी से आवृत्त अत्यन्त रमणीय एकान्तिक स्थली का दृश्य देखते ही बनता है । यहाँ की वास्तविकता तथा सौन्दर्य को देख बद्री धाम ही स्फुरित हो जाता है ।

अपने जनों के लिए श्यामसुन्दर ने अनेक तीर्थों को ब्रज में ही प्रकट कर ब्रज का गौरव बढ़ाया है ।

एक बार सभी ब्रजवासी श्रीबद्रीनारायण भगवान के दर्शन करने को इच्छुक हुए । श्रीकृष्ण को जब पता चला तो उन्होंने श्रीनन्दरायजी से कहा, "बाबा ! श्रीबद्रीनारायण भगवान तो यहीं ब्रज में विराजते हैं ।" श्रीकृष्ण ने श्रीनन्दरायजी तथा अन्य ब्रजवासियों को यहाँ-लाकर, श्रीबद्रीनारायण जी के दर्शन कराये ।

यह स्थली 'आदि बद्री' नाम से विख्यात है । 'अलकनन्दा' भी यहाँ प्रवहमान है । पास ही 'सेऊ' ग्राम है, जहाँ 'सौगन्धी शिला' है ।

नवनीत पर्वत (कदम्ब कानन)

एई आगे देख शुद्ध कदम्ब कानन ।
एथा सुखे मग्न राधाकृष्ण सखीगन॥

(भ० र०)

कदम्ब वृक्षों की मधुर सौरभ, उनका अलबेलापन, उनकी सघनता, ब्रज में स्थान-स्थान पर विख्यात है । कदम्ब वृक्ष का सौभाग्य कोई क्या कहे ? कदम्ब श्रीश्याम सुन्दर, उनकी प्रेयसि श्रीराधा तथा सखि वृन्द के श्रृङ्गार में आ धन्य हो गया है, इन्हीं कदम्ब की सघन वृक्षावलि में, प्रिया-प्रियतम अपनी सखियों सहित रस विहार, विलास में मग्न रहते हैं । कदम्ब वृक्ष झूलनोत्सव में न जाने कितने-कितने रस प्रकरणों की भूमिका बन जाया करती हैं ।

समीप ही 'धवल पर्वत' है जिसे 'नवनीत पर्वत' भी कहते हैं । पास ही 'नील पर्वत' भी है । श्याम तथा गौर वर्ण प्रिया-प्रियतम की स्मृति दिलाते पास, पास ही शोभायमान हैं ।

पास ही परमदरा से कामवन के मार्ग पर 'इन्द्रौली' ग्राम है । कहते हैं - देवराज इन्द्र यहाँ भगवान श्री कृष्ण का ध्यान कर कृतकृत्य हो गये ।

गुहाना (गोदृष्टि वन)

गोचारण हेतु आये श्रीकृष्ण अपने सखाओं सहित विविध आमोद-प्रमोद में मग्न रहते हैं । कहीं सुबल सखा से किसी दाव पेंच की बात करते-करते श्यामसुन्दर मग्न हो रहे हैं, तो कहीं यह ग्वाल गोष्ठी गोरस लूटने की सरस योजना बनाने में तन्मय हो जाती है ।

ऐसे में गउओं का चरते-चरते दूर चले जाना कोई अस्वाभाविक नहीं है । इसी स्थली पर उन्हें नाम ले लेकर पुकार कर लौटा रहे हैं । संध्या समय यह ग्वाल मण्डली अपना गोधन साथ लिए नन्दगाँव के लिए लौट आती है ।

यह स्थली गोदृष्टि वन नाम से विख्यात है । यहाँ श्याम कुण्ड तथा गोपाल कुण्ड हैं ।

बूढ़े बद्री

आदि बद्री से कुछ आगे चलकर पर्वत श्रेणी तथा सघन वन के मध्य में बूढ़े बद्री नारायण विराजमान हैं । इस पर्वत श्रेणी को गन्ध मादन पर्वत खण्ड भी कहा गया है । यहाँ 'हरिद्वार', 'लछमनभूला', 'कनखल', 'ऋषिकेष' आदि तीर्थ हैं ।

कनवारो

अहे श्रीनिवास एई देख सन्निधान ।
'कनोयारो' ग्राम कण्व मुनि तपः स्थान ॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण लीलाओं का दर्शन, देव वन्द्य इन्द्र को भी सहज सुलभ नहीं, फिर अन्य देवताओं, मुनियों आदि की तो बात ही क्या है ? एक बार कण्व मुनि श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा से ब्रज में पधारे, क्योंकि अखिल ब्रह्माण्ड नायक श्रीकृष्ण वन-वन में अपने सखाओं तथा गोधन सहित विचरण कर रहे थे । "कण्व मुनि ने तप किया जिससे दिव्य दृष्टि प्राप्त कर भगवान श्यामसुन्दर के दर्शन प्राप्त किये ।"

यहाँ कण्व कुण्ड, पनिहारि कुण्ड, श्रीकृष्ण कुण्ड हैं । 'खोह', 'कमरख', 'अलीपुर', 'केशर पर्वत', 'शङ्खकूट पर्वत', 'मालादेवी मन्दिर', 'गौरी कुण्ड' आदि स्थल पास-पास दर्शनीय हैं ।

ब्रज भूमि मोहिनी

श्रीवृषभानुपुर

(अति सुख बरस रह्यो बरसाने)

पञ्चम खण्ड

वैदग्ध्यसिन्धुरनुराग रसैकसिन्धु-
र्वात्सल्यसिन्धुरतिसान्द्रकृपैकसिन्धुः ।
लावण्यसिन्धुरमृतच्छविरूपसिन्धुः
श्रीराधिका स्फुरतु मे हृदि केलिसिन्धुः ॥

आस-पास की अन्य स्थलियाँ

1. चकसौली
2. सुनहरा ग्राम
3. ऊँचा ग्राम
4. रीठौरा
5. डभारो
6. कामई
7. करहला
8. पिसायो (पिपासा वन)
9. साहार (सारिका वन)
10. आंजनौक (अंजन वन)
11. प्रेम सरोवर
12. विह्वल वन
13. संकेत

यस्याः कदापिवसनाञ्चल खेलनोत्थ
धन्यातिधन्यपवनेनकृतार्थमानी ।
योगीन्द्रदुर्गमगतिर्मधुसूदनोऽपि,
तस्या नमोस्तु वृषभानुभुवो दिशेऽपि ॥

(राधा सुधानिधि)

अत्यन्त सुहावना मौसम है। चारों ओर उमड़-घुमड़कर श्यामल घटाओं ने आकाश को आच्छादित कर दिया है। दूर-दूर तक प्रकृति सौन्दर्य छटा का प्रसार कर रही है। पास ही केकी की हर्ष ध्वनि से स्थली मुखरित हो रही है। पपीहा भी अपनी प्रसन्नता की बात कहता, कुछ चञ्चल हो गया है। लो ! सामने ही कोयल की कुहू ध्वनि ने सारी स्थली को रोमांचित कर दिया। किन्हीं सरस स्मृतियों में भरी किशोरी श्रीराधा, अपने भवन से निकल अट्टालिका पर यह दृश्य निहारने लगीं। त्रिविध समीरण, उनके वस्त्राञ्चलों से अठखेलियाँ करने लगी, अङ्गों में लगी चन्दन, कुंकुम तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों से स्पृष्ट हो, एक सरस उन्माद में भर, कुछ बौरा-सी गई, नन्दगाँव का अता-पता पूछती, श्यामसुन्दर को ढूँढ़ने लगी। अपनी प्राणाराध्या श्रीराधा के अङ्गों से स्पृष्ट-सिञ्चित इस मादक समीरण के संस्पर्श ने, प्रियतम की तन्मयता को झकझोर, चञ्चल-सा कर दिया और यह मादक समीरण, अवश्य ही वृषभानुपुर की ओर से प्रवहमान है, तभी तो मैं..मुझे एक सरसता ने विवश-सा कर दिया है। अपने सौभाग्य पर गर्वित हो उठे प्रियतम श्यामसुन्दर। गर्वित ही नहीं स्वयं को धन्यातिधन्य मानने लगे, उन्हीं श्रीवृषभानुनन्दिनी की दिशा को प्रणाम है।

श्रीकृष्ण प्रिया-श्रीराधा की लीला स्थली वृषभानुपुर अनेक लीलाओं की, उनकी सरस केलि रहस्यों की, मनो-भावनाओं तथा कामनाओं की स्मृतियों को अपने गर्भ में संजोये वैष्णव जगत के लिए अत्यन्त ही प्रणम्य है। यहाँ की भूमि, यहाँ के सरोवर, यहाँ के उद्यान, गह्वर वन, दानगढ़, मानगढ़ तथा सांकरी-खोर प्रभृति सभी स्थलियाँ, सुरस केलि रहस्यों की भिज्ञा हैं। भिज्ञा ही नहीं यह चेतन प्रकृति प्रियाजी की लीलाओं के उपकरण ही हैं। युगल का सरस रस विहार यहाँ सदैव गतिमान रहता है। वास्तव में नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण, प्रिया श्रीराधा के पास सदा ही विराजमान रहते हैं और इनकी सुरस केलि की सहायिका निजस्वरूपभूता सखि वृन्द इनके रस संकेत पा, प्रकट हो जाती हैं, मानो वहीं छिपी हों।

अंगे तु वामे वृषभानुजां मुदा,
विराजमानामनुरूप-सौभगाम् ।
सखीसहस्रैः परिसेवितां सदा,
स्मरेम देवीं सकलेष्टाकामदाम् ॥[1]

(श्रीमन्निम्बार्काचार्य)

किशोरी श्रीराधा की कृपा कटाक्ष के बिना मधुर रस का आस्वादन नहीं हो सकता। श्रीकृष्ण भी इनके प्रेम में मतवाले तथा इनकी चरण रज के लिए लालायित रहते हैं। वस्तुतः श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण एक ही रस समुद्र के दो महान रत्न हैं, आनन्द आस्वादन हेतु ही दो देह धारण कर माधुर्य का आस्वादन कर रहे हैं।

ब्रज की प्रत्येक स्थली युगल की किसी न किसी लीला से सम्बन्धित है, फिर भी निम्न दोहे में कुछ स्पष्ट संकेत कर अपनी भावाभिव्यञ्जना कर भक्तों ने अपनी मनोकामना पूर्ण की है-

ब्रज चौरासी कोस में चार गाँव निज धाम।
वृन्दावन और मधुपुरी, बरसानो, नन्दगाम॥

यह चार स्थल प्रिया-प्रियतम के निज धाम ही हैं। मधुपुरी को श्रीकृष्ण जन्म-भूमि होने का गौरव प्राप्त है तो वृन्दावन युगल के माधुर्य पूर्ण रास विहार के लिए प्रसिद्ध है। उसी के समान व महत्त्व श्रीनन्दगाँव तथा बरसाना को भी प्राप्त है।

अपनी मधुर तथा तोतली बोली से श्रीवृषभानु बाबा तथा कीर्तिदा जी को सुख प्रदान करती बाल स्वरूपिणी श्रीराधा वृषभानुपुर की प्रत्येक स्थली को अपने चरण स्पर्श से धन्य करती हैं।

वृषभानु बाबा की लाड़िली सुकुमारी, मैया श्रीकीर्तिदाजी का आँचल पकड़ उन्हें जगा, आग्रह कर रही हैं।

मैया उठि भोर भयौ दधि बिलोई री।
बीते सब जाम रात पीरी यह होति जाति,
वदन खोल देख लेहि अब न सोई री।
बार-बार कहति तोहि माखन दै काढ़ मोहि
सुनत नहि रानी नींद भोई री।

(चाचा वृन्दावनदास)

1. श्रीराधा श्रीकृष्ण के वामांग में सदा विराजमान रहती हैं। वे उनके अनुरूप शील-सौन्दर्य सम्पन्न तथा सहस्र-सहस्र सखियों द्वारा परिसेवित हैं। उन्हीं सकल इष्ट प्रदान करने वाली देवी श्रीराधा का मैं स्मरण करता हूँ।

बाल स्वरूपिणी श्रीराधा, मैया से पहले ही जाग गईं तथा मैया से माखन के लिए आग्रह करने लगीं। धूप बढ़ती जा रही है, मैया अभी विश्राम कर रही हैं। परन्तु श्रीराधा को भूख लगी है-अतः मैया से माखन की याचना कर रही हैं। वाह ! रे प्रेम वैचित्र्य।

एक ओर श्रीराधा की बाल लीलाओं का आस्वादन कर वात्सल्यमयी मैया तथा बाबा प्रसन्नता में भरे हर्षोल्लास में मग्न हो रहे हैं-वहीं दूसरी ओर माधुर्य रससार सिन्धु, नित्य किशोरी, 'चौंसठ कला प्रवीण तदपि अति भोरी' हैं। एक ओर अपनी बाल सुलभ चेष्टाओं से वृषभानु बाबा के आंगन में छम-छम करती कीर्तिकुमारी सभी को आनन्दित कर रही हैं, वहीं दूसरी ओर जगज्जननी श्रीराधा, नित्य किशोरी हैं और उनके प्राण सर्वस्व नन्द-नन्दन हैं चिर किशोर। यह रहस्य केवल उन्हीं की अनन्या सखियाँ ही जानती हैं-अथवा मधुर भावोपासक भक्त वृन्द भी किञ्चित् इस सबसे परिचित हैं।

नन्दगाँव से श्रीकृष्ण वृषभानुपुर चले आते हैं। श्रीकीर्तिदाजी उन्हें लाड़ लड़ाती हैं और फिर दोनों ही चिर सङ्गी भिन्न-भिन्न खेलों में मग्न हो जाते हैं। बाल लीलाओं का आस्वादन करते सभी ब्रजवासी गण अपने सौभाग्य मद पर गर्वित हो जाते हैं।

वृषभानुपुर जहाँ एक ओर बाल स्वरूपिणी श्रीराधा की भोली भाली तोतली बोली से मुखरित हो उठता है, वहाँ दूसरी ओर अपने नित्य कैशोर्य से मण्डित यह ब्रज राजदुलारी अपने प्रियतम ब्रजराज नन्दनन्दन के सङ्ग गह्वर वन में, सांकरीखोर में, विलासगढ़, मानगढ़, दानगढ़ आदि क्रीड़ा स्थलियों में रस निमज्जित हो परस्पर सुख में मग्न हो जाती हैं।

चारों ओर आस-पास ही श्रीललिता, विशाखा, चित्रा, इन्दुलेखा, चम्पकलता, रङ्गदेवी, तुङ्गविद्या तथा सुदेवी अष्ट सखियों के गाँव हैं।

उत्पत्ति

पुराकृतयुगस्यान्ते ब्रह्मणा प्रार्थितो हरिः।
ममोपरि सदा त्वं हि रासक्रीड़ां करिष्यसि॥
सर्वाभिर्ब्रज गोपीभिः प्रावृट् काले कृतार्थकृत्॥

(पद्म पुराण)

श्रीभगवानुवाच–

ततो ब्रह्मन् ! ब्रजं गत्वा वृषभानुपुरङ्गतः।
पर्वतो भवसि त्वं हि मम क्रीडां च पश्यसि॥
यस्माद् ब्रह्मा पर्वतोऽभूद् वृषभानुपुरे स्थितः॥

कृतयुग के अन्त भाग में ब्रह्माजी ने श्रीहरि से उनकी माधुर्यमयी लीलाऐं-ब्रज ललनाओं के साथ दिव्य रास-विलास देखने की प्रार्थना की। श्रीहरि ने

इसका एकमात्र उपाय देख ब्रह्मा जी को आदेश दिया कि वृषभानुपुर में जाकर पर्वत रूप में विराजमान हो जाओ। उस स्वरूप से सभी माधुर्यमयी लीलाऐं देखने में समर्थ हो सकोगे। "वर्षाकालीन तथा फाग का विशेष रसास्वादन तुम कर सकोगे।" ऐसा ही हुआ और ब्रह्मा जी ने ब्रज में आकर पर्वत के रूप में अपनी चिर अभिलाषा को सफल किया।

ब्रह्मगिरि नाम से विख्यात यह पर्वतश्रेष्ठ वही है जहाँ आज भी श्रीजी विराजती हैं तथा अपनी चरण रज से अभिषिक्त कर रही हैं।

तीर्थ दर्शन

विष्णुब्रह्माख्ययनामानौ पर्वतौ द्वौ परस्परौ। दक्षिणपार्श्वे ब्रह्म नाम पर्वतः वामपार्श्वे विष्णुनामपर्वतः। ब्रह्मपर्वतोपरि श्री राधा कृष्णमन्दिरम्। श्रीराधाकृष्णदर्शनम्। तदधोभागे श्रीवृषभानु मन्दिरम्। वृषभानुकीर्तिदा श्रीदाम्नां त्रयाणां दर्शनम्। तत्पार्श्वे ललितासखीनां प्रियासहितानां मन्दिरम्। राधादिनवसखीनां दर्शनम्। ब्रह्मपर्वतोपरि दानमन्दिरम्। हिण्डोलस्थलं। मयूर कुटी स्थलम्। रासमण्डलम्। विष्णुब्रह्मनाम्नोरूभयोः पर्वतयोः सांकरीखोरि स्थलम्। ब्रह्मपर्वतोपरि श्रीराधामन्दिरम्। अग्रे लीलानृत्य मन्दिरम्। तत्पार्श्वे विलासमन्दिरम्। तत्पार्श्वे गह्वरवनं। तद्धोस्थले रास -मण्डलम्। राधासरोवरः। तत्पार्श्वे दोहनीकुण्डम्। तत्पार्श्वे चित्रलेखयाकृतं मयूरसरः। तत्रैव भानुसरोवरः। तत्पार्श्वे ब्रजेश्वराख्यमहारुद्रमूर्त्तिः। तद्वाम भागे कीर्तिसरः। तत्रैव युगलदर्शनं भवति।

(पद्म पुराण)

अर्थात् श्रीविष्णु और ब्रह्मा नाम के पर्वत एक दूसरे के सामने विराजमान हैं। दक्षिण पार्श्व में ब्रह्मा तथा वाम पार्श्व में विष्णु पर्वत है। ब्रह्मपर्वत के ऊपर श्रीराधाकृष्ण मन्दिर है। श्रीराधाकृष्ण दर्शन हैं। नीचे वृषभानु मन्दिर है, उसमें श्रीवृषभानु बाबा, श्रीकीर्तिदाजी तथा श्रीदामा तीनों का दर्शन है। उसके पास ही श्रीप्रियाजी सहित श्रीललिता जी का मन्दिर है, जहाँ श्रीराधादि नव सखियाँ विराजती हैं।

ब्रह्मपर्वत पर दान मन्दिर है, हिण्डोला स्थान है, मयूर कुटी नामक स्थल है, रास मण्डल है। दोनों पर्वतों के मध्य भाग में सांकरी खोर नामक स्थली है। ब्रह्मपर्वत पर श्रीराधा मन्दिर के आगे लीला नृत्यमण्डल स्थली है। उसके पास विलास मन्दिर है, उसके पास गह्वर वन है, उसके नीचे के भाग में रास-मण्डल तथा श्रीराधासरोवर एवं दोहनी कुण्ड है। उसी के पास श्रीचित्रलेखाजी विरचित मयूर

सरोवर शोभायमान है। वहाँ भानु सरोवर, ब्रजेश्वरी नामक महारुद्र मूर्ति, वाम भाग में कीर्तिसरोवर है, वहीं युगल दर्शन हैं।

वर्तमान नाम बरसाना है। ग्राम के पूर्व भाग में श्रीभानुसर, पश्चिम उत्तर कोण में श्रीकीर्तिदा कुण्ड तथा पश्चिम दक्षिण कोण में विहार कुण्ड (तिलककुण्ड) है। सांकरी खोर के पास ही चकसौली ग्राम तथा अन्य तीर्थ हैं।

श्रीराधाकृष्ण दर्शन

ततो राधा प्रियकृष्णं वाक्यमूचे कृतार्थकृत्।
मम पितृपुरे त्वं हि मया सह प्रतिष्ठतु॥

(प० पुराण)

श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण का प्रेम जगद् विख्यात है। श्री वृषभानु बाबा और श्रीकीर्तिदाजी तथा श्रीनन्द बाबा एवं श्रीयशोदाजी इस प्रणय सूत्र से सर्वदा परिचित हैं। लीला अभिनय में यह स्थापित सम्बन्ध है। जो नित्य हैं, शाश्वत हैं, उस सबका वर्णन करना भला किसके सामर्थ्य की बात है। रसिकों ने 'एक प्राण द्वय देही', 'मिले रहत मानो कबहुँ मिले न' तथा 'दोऊ चकोर दोऊ चन्द्रमा' कहकर अपने भावोद्‌गार किञ्चित् व्यक्त किये हैं। जो नित्य हैं, संयोग सुखास्वादन में मग्न हैं, मत्त हैं, लीला विनोद के लिये नित्य मिलते दीखते हैं। वृषभानु बाबा की लाड़ली किशोरी कभी नन्दगाँव चली जाती हैं और श्रीनन्दगाँव से ब्रजभूषण श्रीकृष्ण का वृषभानुपुर आना-जाना लगा ही रहता है। प्रेम सम्बन्ध की प्रगाढ़ता में क्षण भर का विछोह भी असहनीय लगता है।

एक बार विनोद ही विनोद में प्रणय पगी किसी मत्त लहरी से उद्वेलित हो भोली-भाली किशोरी ने सकुचाकर प्रियतम से कह ही दिया, "प्रियतम ! मेरे पिता की नगरी में तुम मेरे साथ सर्वदा विराजमान रहा करो, ऐसी मेरी प्रार्थना है इससे मेरा स्थान प्रियकर होगा।" अनन्य प्रेमी श्रीकृष्ण अपनी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा की बात किस प्रकार टाल सकते थे ? अतएव उन्होंने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

मन्दिर में प्रिया-प्रियतम के दिव्य दर्शन हैं। पास ही जयपुर राजा द्वारा निर्मित एक और श्रीराधा-कृष्ण मन्दिर है।

गह्वरवन

गह्वराख्याय रम्याय कृष्णलीलाविधायिने।
गोपीरमणसौख्याय वनाय च नमो नमः॥ [1]

(वृहन्नारदीय पुराण)

1. हे गह्वर नामक रम्य श्रीकृष्ण लीला विधान के स्थल ! आपको नमस्कार। आप गोपीरमण श्रीकृष्ण के सुख हेतु ही हैं।

गह्वरवन, अपने नाम के सर्वथा अनुकूल सघनवन, प्रियाजी की मधुर लीलाओं की एकान्तिक विहार स्थली है ।

प्रिया-प्रियतम के दिव्य विलास से मधुर एकान्तिक रस विहार से, सखियों के प्रणयावेग से उच्छलित रस हिलोरों से, उनकी सुरस रस केलि से यह स्थली स्पृष्ट है, पोषित है तथा पुष्ट है ।

भक्त प्रवर श्रीहित हरिवंशजी महाराज ने इसी दिव्य रस केलि का आस्वादन किया । सखी ने युगल रस बावरों को किसी सघन वीथिका में, गह्वरवन में, परस्पर एक दूसरे के स्कन्ध पर बाहु धर विहार करते देखा, किसी अन्या को सम्बोधन करके कहने लगी-

देख सखि राधा पिय केलि ।
ये दोऊ खोरि, खिरक, गिरि, गह्वर,
विहरत कुंवर कण्ठ भुज मेलि ॥

ओह ! कैसी थी रूप की यह सौन्दर्य माधुर्य पूर्ण रस राशि ! लगता था कनक बेलि, तमाल विटप के आश्रय में शोभायमान है अथवा दोनों ही प्रणय के उद्दाम वेग को थामे विवश परवश से दीख रहे हैं। अधिक सम्हलने और सम्हले रहने की स्थली यह न थी। दोनों ही किसी मद झूम में भर, रस सिन्धु की उत्तुङ्ग हिलोरों में डूबने उतरने लगे। यह रस हिलोरें, कब इन्हें अपने तल में ले जा, प्रणय-विलास की भूमिका संजो, मग्न कर गईं, इन्हें भी पता न चला। उस समय की सुरस गाथा का अता-पता पूछती सखियाँ तन्मयता में भर, खो गईं।

आज भी यह दिव्य केलिविलास गह्वरवन में प्रवहमान है। प्रियाजी अपनी सखियों सहित आज भी यहाँ नित्य ही विहार में रत रहती हैं । भाग्यशाली भक्तों की अनुभूतियाँ साक्षी हैं, इन सबके प्रमाण स्वरूप। आप और हम उसी का चिन्तन कर, प्रतीक्षा करें।

श्रीकिशोरी अलि

कुछ ही वर्ष पूर्व की घटना है कि एक पंजाबी सज्जन श्रीकिशोरी अलि अपनी दिवंगत पत्नी किशोरी को पुकारते 'किशोरी...किशोरी' कहते गह्वर वन में व्याकुल होकर घूम रहे थे । इधर से प्रियाजी अपनी सखियों सहित आ निकलीं । ध्वनि सुन वे चौंक गईं । श्रीललिता से पूछने लगीं– ललिते ! यह कौन है जो मेरा नाम लेकर इतनी व्याकुलता से पुकार रहा है । सखी ने बहुत समझाया, "किशोरी ! यह तो अपनी पत्नी 'किशोरी' के अभाव में इतना व्याकुल हो रहा, यह तुम्हें नहीं पुकार रहा है ।" अकारण करुणा की राशि किशोरी श्रीराधा ने अपनी स्नेह पूर्ण वाणी में कहा, "हे सखि ! इस गह्वरवन

में तो यह व्यक्ति मेरा ही नाम ले ले पुकार रहा है। इसे मेरे पास ले आओ।" प्रियाजी ने अकारण ही उन सज्जन पर कृपा की। बाद में वही सज्जन किशोरी अलि नाम से भक्त हुए और प्रियाजी की अपूर्व करुणा, ममता से परिप्लावित वह महाभाग दिव्य शरीर प्राप्त कर लीला में प्रवेश कर गये।

लता-पतादि मध्य, श्रीकृष्ण कुण्ड के सन्निकट पश्चिम भाग में आज भी उनकी समाधि भक्तों के लिये प्रेरणा स्रोत बनी है।

श्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक

श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्य जी यहाँ पधारे तथा श्रीमद्भागवत पारायण किया। गह्वरवन में एक अजगर रहता था। चींटियों द्वारा सताया हुआ देख श्रीमन्महाप्रभुजी ने उसका पूर्व वृत्तान्त कहा। श्रीवृन्दावन का यह महन्त वैष्णव सेवा के नाम से बहुत धन एकत्रित करता, परन्तु उचित व्यय न कर अपने ही उपयोग में ले लेता। शरीर छूटने के बाद उसे अजगर की योनि प्राप्त हुई और उसके सेवक चींटियों के रूप में उसे सताने लगे।

श्रीमन्महाप्रभुजी ने उस अजगर देहधारी को चरणोदक पान कराया तथा प्रिया-प्रियतम का प्रसाद दिया। वह अजगर योनि से मुक्त हो गया।

श्रीकृष्णकुण्ड

चारों ओर से लता परिवेष्टित वृक्षों से आच्छादित यह सरोवर गह्वरवन की शोभा है तथा अनेक वैष्णवों के लिये श्रद्धा का स्थल है।

प्रिया-प्रियतम की रसमयी केलि स्थली में जलकेलि के आयोजन की सार्थकता हेतु यह सरोवर शोभायमान है।

मयूरकुटी

किरीटिने नमस्तुभ्यं मयूरप्रियवल्लभ !
सुरम्यायै महाकुट्यै शिखण्डिपदवेश्मने॥[1]

(ब्राह्मै)

ब्रह्माचल पर्वत के ऊपरी भाग में अत्यन्त रमणीय स्थली पर एकान्त में मयूर कुटी स्थित है। यह रासस्थली है, माधुर्य रस का अजस्र स्रोत, प्रिया-प्रियतम का रसमय-विलास, ऐसी ही अनेकानेक लीलाओं की साक्षी है यह स्थली। अहा ! यहाँ की मनोहरता देखते ही बनती है।

---

1. हे किरीटधारी मयूर प्रिय श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार है। हे मयूर कुटी नामक मनोहर महाकुटी ! आपको नमस्कार है।

संयोग तथा वियोग, माधुर्य रस के अभिन्न अंग हैं । संयोग सुखवर्धन हेतु मान का योग अद्वितीय भूमिका बन मधुरता में और-और रस हिलोरें भर देता है । जो नित्य ही एक रस रहते हैं, एक भाव-एक मन हैं, उनके वियोग की कल्पना भी कैसी ! फिर भी लीलाभिनय हेतु प्रियाजी किञ्चित मान भी करती हैं और यह माधुर्य रस सारसिन्धु उन्हें मनाने में अपनी सम्पूर्ण कलाओं का उपयोग कर प्रियाजी की मान-मनुहार करते हैं ।

एक बार श्रीराधा किञ्चित मान कर बैठीं । उधर रस विवशता की उद्दाम हिलोरें प्रियतम को और, और विवश, परवश करने लगीं । बहुत मान-मनुहार करने पर भी जब प्रियाजी का मान न छूटा तो अत्यन्त प्रवीण, 'चातुर्यैकनिदानसीम', प्रियतम श्यामसुन्दर ने एक नवीन कौतुक रचा । प्रियाजी के सामने ही कुछ दूरी पर प्रियतम, मयूर वेष धारण कर नृत्य करने लगे । नृत्य मुद्राओं का प्रदर्शन वे इतनी सुघरता से करते रहे कि प्रियाजी जान ही न सकीं । नृत्य करते-करते वे कभी प्रियाजी के पास तक चले आते और कभी दूर से भावभङ्गियों द्वारा प्रियाजी को रिझाते रहे । इस अद्भुत नृत्य को देख प्रियाजी को मान की विस्मृति हो गई और हर्षोल्लास में भर बोलीं, 'मोर-मोर' (ब्रजभाषा में मोर शब्द का अर्थ मेरा भी होता है ।) यह सुन प्रियतम समीप आ गये और छद्म वेष उतार कर बोले, "प्रिये ! मैं सदा-सदा तुम्हारा ही तो हूँ ।"

किञ्चित् अवरोध पा रससिन्धु की तरङ्गों में उफान आ गया, वह उत्तुङ्ग हिलोरें दोनों ने ही कैसे झेलीं, सम्हाली, यह तो वे दोनों ही जानें ।

उसी दिव्य रस को अपने सरसीले वातावरण में संजोए यह स्थली 'मयूरकुटी' नाम से विख्यात है ।

दानगढ़

दानवेषधरायेव दध्युपास्याभिलाषिणे ।
राधानिर्भर्त्सितायैव कृष्णाय सततं नमः ॥ [1]

(ब्राह्मै)

दूध, दही बेचने की ब्रज में रीति सदा से चली आ रही है । घोष कुमारियों का यह क्रम नित्य का है । कौन जानता है यह, निज स्वरूपभूता नित्य सिद्ध देहा इन ब्रज-बालाओं का बहाना मात्र है, श्रीकृष्ण से मिलने का मिस ही है । तभी एक बाला ने कहा -

1. हे दान वेषधारी ! हे दूध-दही की अभिलाषा करने वाले ! श्रीराधा द्वारा भर्त्सित श्रीकृष्ण ! आपको नमस्कार है ।

'या ते माई भवन छांड़ि वन जईयतु ।
अँखरस, कनरस, बतरस, सबरस, नन्दनन्दन मँह पईयतु।'

ब्रज में वे दूध दही बेचने जाती हैं और रास्ते में नन्दबाबा का लाड़ला, रसिक छैल, इन ब्रज रमणी वृन्द की मनोकामना पूर्ति हेतु, कहीं न कहीं से, अनायास इनके सामने प्रकट हो जाता है। ये बावरियां 'गोविन्द लेहु, लेहु कोऊ गोविन्द' की रट लगातीं ब्रज वन बीथियों में पुकारती हैं-उनकी ध्यान प्रगाढ़ता धन्य है। बस ऐसे ही किसी दिवस की बात है, अपनी दिनचर्या निबाहती ये बालाऐं, दूध-दही की मटकी सिर पर धरे इसी वन पथ से जा रही थीं। अपने प्रियतम से मिलने की व्यग्रता उनके चरण नूपुरों की छम-छम ध्वनि से सहज प्रस्फुटित हो रही थी। इसी निभृत निकुञ्ज के समीप से, जब यह सखी वृन्द निकलने को हुईं ; तो श्यामलोज्ज्वलमाधुर्य रसविधु के नेत्रों में भरी रस सुधा का पान कर, बौरा गईं। उनके चरणों की छम-छम ध्वनि शिथिल हो गई-नेत्र अचञ्चल हो गये। डगमगाती सी यह बालाऐं सघन केश राशि से आवृत मुख विधु को निहार अपनी सुधि ही भूल बैठीं। लो ! वह समीप आ गये- और पास आ, उन्हें प्रणय रस लहरियों में और-और सराबोर करते बोले, "तुम लोग कौन हो जो नित्य इस वन पथ से बिना कर दिये चली जाती हो। कन्दर्पराज ने, हमें कर लेने के लिए यहाँ नियुक्त कर रखा है।" कुछ-कुछ सजग होती सी इन बालाओं ने कहा, "अरे ! यह तो अनन्त कोटि सौन्दर्यमयी हमारी किशोरी का राज्य है। जिनकी एक कटाक्ष को सहन करने में असमर्थ कन्दर्प का यहाँ प्रवेश ही कैसे सम्भव हो सकता है ?" यह कहकर जैसे ही श्रीराधा को आगे कर वे चलने को उद्यत हुईं, तभी यह परम दानवीर मग रोककर खड़े हो गये। इसी सरस चित्र को भक्त प्रवर सूरदासजी ने गाया-

लै हों दान अंग अंग को।
गोरे भाल लाल सैंदूर छवि मुक्ता, वश शिर सुभग मंग को॥
नकबेसर खुटिला तरिवन को गहर मेल कुच युग उतंग को।
कण्ठ सिरी दुलरी तिलरी उर माणिक मोतीहार रंग को॥
बहु नग लगे जराव की अंगिया भुजा बहूटनि वलय संग को।
कटि किंकिणी को दान जु लैहौं तिय रीझत मन अनंग को॥
जेहरि पग पकरचो गाढ़े मनु मंद-मंद गति यह मतंग को।
जोबन रूप अंग पाटम्बर सुनहु सूर सब यह प्रसंग को॥

फिर कैसे-कैसे यह रसचर्या क्रियान्वित हुई इस सबकी गाथा इसी स्थली ने अपने वातावरण में संजो रखी है, छिपा रखी है।

तभी से यह स्थली 'दान गढ़' नाम से विख्यात हो गई। निर्जन तथा

रमणीय स्थली है। ब्रह्माचल पर्वत के ऊपर स्थित है। राजदान लीला तथा छद्म लीलाओं की विशेष स्थली है।

मानगढ़

देवगन्धर्वरम्याय राधामानविधायिने।
मानमन्दिरसंज्ञाय नमस्ते रत्नभूमये॥[1]

प्रेम की पराकाष्ठा का दिग्दर्शन ब्रज की इन भोली-भाली किशोरियों, उनकी सखी, स्वामिनी, सहचरी श्रीराधा में सहज ही होता है। जहाँ विशुद्ध प्रेम है, वहीं प्रेम की पराकाष्ठा सम्भव है। संयोग तथा वियोग प्रेम के दो अभिन्न पहलू हैं। प्रेमास्वादन में, उत्कर्ष हेतु मान की प्रक्रियाऐं होती हैं। यहाँ मान भी प्रियतम के सुखानन्द में और, और सरसता लाने के लिए ही है। वे गोपिकाऐं जो 'तत्सुखे सुखित्वं' परिभावना से ओत-प्रोत हैं, भला स्वसुख के लिए मान कैसे कर सकती हैं ?

जो नित्य ही प्रियतम के सुख का विधान करती हैं-उन्हीं के सुख हेतु मान भी करती हैं।

श्रीकृष्ण एक बार आश्वासन देकर भी जब न आ सके तो प्रियाजी को मान हो गया। रस प्रवीण प्रियतम ने आकर जब प्रियाजी को पुकारा, तो वर्जन-तर्जन करती प्रियाजी ने मुख फेर लिया। मान मनुहार करने में निपुण प्रियतम की एक न चली। सखियों ने किशोरी श्रीराधा की रिस छुड़ाने की भरसक चेष्टा की, श्रीकृष्ण विनय कर कहने लगे -

तू रिस छाँड़ री राधे राधे।
ज्यौं-ज्यौं तोकौ गहरु, त्यौं-त्यौं मोकौं बिथा री साधे साधे॥
प्रानन को पोषत है री सुनियत तेरे वचन आधे आधे।
श्रीहरिदास के स्वामी स्यामा कुन्जबिहारी तेरी प्रीति बांधे बांधे॥

इतने पर भी जब मान न छूटा तथा प्रियतम की अधीरता और-और बढ़ती ही गई, तो सखियों के परामर्श से प्रियतम ने छद्म वेष धारण कर प्रियाजी के पास गमन किया। एक नवीना सखि को देख प्रियाजी का मन आकृष्ट हो गया तथा विविध प्रश्न करने लगीं। जैसे ही संगीतादि की निपुणता का परिचय मिला, तो सखी को अपने हृदय से लगा लिया। स्पर्श अनुभव कर समझ गईं

1. देव गन्धर्वादि के लिये रमणीय, श्रीराधा के मान का विधान करने वाले मान-मन्दिर नामक रत्नमय स्थल ! हे मान मन्दिर ! आपको नमस्कार है।

कि यह छद्म वेषधारी प्रियतम ही हैं। प्रियतम ने विविध भाँति से उस सुभग स्थली को धन्य किया। प्रियाजी का मान जाता रहा।

इन्हीं रसकेलि क्रीड़ाओं की साक्षी यह स्थली 'मानगढ़' के नाम से विख्यात हो गई।

ब्रह्माचल पर्वत पर एकान्त में यह स्थली, अत्यन्त रमणीय है। वर्षा ऋतु में तो यहाँ का दृश्य देखते ही बनता है। पास ही हिंडोला, रासमण्डल तथा रत्नाकर सरोवर है।

सांकरी खोर

घेर लई आय नन्दराय के कुमर कान्ह,
मारत मधुर मुस्काई नेह कांकरी ।
मुरि मुख आंचर दै रसिक-रसीली राधे,
ठाड़ी छवि धाम हेरै चितवन बांकुरी ॥
रोके राह ठाड़ो मनमोहन मुकुन्द प्यारौ,
झमकि झरोकन ते देखे सखी झांकरी ।
नैनन की कोर चितचोर बरजत जात,
सांकरी गली में प्यारी 'हां'करी न 'नां' करी ॥

श्यामल तथा गौर शिलाओं के मध्य, गमनागमन का यह संकुचित मार्ग, 'सांकरी-खोर' के नाम से प्रसिद्ध है। यह निर्जन स्थली अनेकानेक रसमयी क्रीड़ाओं की द्रष्टा है।

दूध-दही बेचने को ब्रजकुमारियाँ इसी पथ से होकर जाती हैं। प्रिय-मिलनातुरा यह बालाएँ प्रियतम की खोज में चकित, विभ्रमित नेत्रों से, चञ्चल घूंघटों से इधर-उधर निहारती जाती हैं और ऐसे में 'घेर लई आय नन्दराय के कुमर कान्ह', है न विचित्र रसमयता, श्यामसुन्दर वहीं चले आये। नयन सायकों द्वारा प्राणों को बिद्ध कर दिया। राह रोककर खड़े हो गये, हाथ पकड़ अपने पास, ओह वे स्वयं भी किसी अलस श्री से विभूषित हो पास ही की शिला पर बैठ गये। सहसा ही मेरी दृष्टि जो उठी मैंने देखा सुदूर अपने गवाक्ष से झाँकते हुए एक बाला को, फिर क्या हुआ, क्या कहती प्रेम रंग में भरी वह बाला।

'यही न ! एक दिन यह नन्दरायजी का लाड़ला, इसी सांकरी गली में मुझे मिल गया। इस ऊँची-नीची घाटी की बीथियों में बरबस ही मेरी मटकी को

फोड़ दिया और सारा दूध-दही बिखरा दिया । मैंने भी साहस बटोरकर उसके धनी होने पर व्यंग्य कर अपनी इंडुरी की बहुमूल्यता की बात कही, यही नहीं सखि ! अपनी नृत्य प्रवीणता की बात कह मैंने पुनः कहा, तुम्हारी बाँसुरी की ध्वनि से भी उत्कृष्ट ध्वनि है मेरे पग नूपुरों की और सखि ! जब उन्होंने मेरे पास आ मेरे कर.. कैसा था वह रूप का जादूगर, इसी प्रणय बेबसी में खो-सी गई मैं, अहा-अहा..। प्रीति की रीति ही है यह सम्भवतः, मैं गाती रही 'मोरमुकुट वारो साँवरिया मोहे मिल्यो है सांकरी खोर ।"

इन्हीं सुरस स्मृतियों को अपने गर्भ में संजोए यह स्थली आज भी अपनी सुरस लीलाओं का आस्वादन, भक्तों को करा रही है ।

लगभग पचास वर्ष पहले की घटना है कि एक ग्वालिनी श्रीकृष्ण भाव में पगी, सिर पर मटुकिया धरे दही बेचने को जा रही थी । उसका हृदय आकुल था तथा नयन चञ्चल हो रहे थे । अपनी मस्ती में श्रीकृष्ण भाव भावित वह बाला जैसे ही 'सांकरी खोर' से निकलने लगी कि नन्दलाल ऊपर से कूदे और उस बाला की मटकी में से दही छीन, उस बाला को अपनी रूप माधुरी का पान करा, छका गये । वह बाला वर्षों उसी भावोन्माद में तन्मय हुई कहती फिरती 'लै गयौ' 'लै गयौ ।'

अन्त में इसी तन्मयता में नित्यधाम में प्रवेश कर गई ।

कीर्तिदा कुण्ड

नमः कीर्तिर्महाभागे सर्वेषां गोब्रजौकसां ।
सर्वसौभाग्यदे तीर्थे सुकीर्तिसरसे नमः ॥

('वृहत्पाराशर' ब्रज भक्ति विलास)

हे श्रीकीर्तिदा महाभागे । श्रीवृषभानु बाबा तथा सभी ब्रजवासियों को समस्त सौभाग्य देने वाले हे कीर्ति सरोवर ! आपको नमस्कार है ।

जहाँ श्रीकीर्तिदाजी नित्य स्नान करती थीं, वही सरोवर, कीर्ति सरोवर नाम से विख्यात है । भानु सरोवर के वायु कोण में स्थित है ।

श्रीराधा सरोवर

देवकृतार्थरूपाय श्री राधासरसे नमः ।
त्रैलोक्यपदमोक्षाय रम्यतीर्थाय ते नमः ॥

(वृहन्नारदीय पुराण)

हे राधिका सरोवर ! देवताओं को कृतार्थ करने वाले ! आपको नमस्कार है । आप तीनों लोकों में मोक्ष प्रदान करने वाले हैं तथा मनोहर तीर्थ हैं ।

यहाँ किशोरी श्रीराधिका अपनी अन्तरङ्ग सखियों सहित जल केलि करती थीं। इसी से यह सरोवर श्रीराधा सरोवर के नाम से विख्यात हो गया।

ब्रजेश्वर महादेव

ब्रजेश्वराय ते तुभ्यं महारुद्राय ते नमः।
ब्रजौकसां शिवार्थाय नमस्ते शिवरूपिणे॥

(गौरी तन्त्र)

हे ब्रजेश्वर! हे महारुद्र! आपको नमस्कार है। आप ब्रजवासियों के मंगल के लिये हैं! शिव स्वरूप आपको नमस्कार है।

भानु सरोवर के पास ही, श्रीवृषभानु बाबा प्रभृति गोपों द्वारा इष्ट सिद्धि के लिये स्थापित यह शिव स्वरूप ब्रजवासियों का हित करने वाले हैं।

इन शिव स्वरूप के लिए एक जनश्रुति प्रसिद्ध है, कहते हैं कि जिस स्थान पर यह स्वरूप विराजमान हैं, वहाँ से हटाकर कुछ ब्रजवासियों ने अन्यत्र ले जाना चाहा। जैसे-जैसे लोग खुदाई करते गये, वैसे-वैसे इन स्वरूप की विशालता की प्रतीति सबको होती रही। अन्ततः अपना विचार छोड़, महादेवजी से प्रार्थना कर ब्रजवासियों ने इनका यहीं विराजमान रहना उचित समझा।

शूर सरोवर

कृतार्थरूपिणे तुभ्यं शूरस्य सरसे नमः।
धर्मार्थकाममोक्षाणां वैकुण्ठपददायिने॥

(ब्रज भक्ति विलास से उद्धृत)

हे शूर सरोवर! कृतार्थ रूप आपको नमस्कार है। आप धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष और वैकुण्ठ पद को भी अनायास ही देने वाले हैं।

विलास गढ़

विलासरूपिणे तुभ्यं नमः कृष्णाय ते नमः।
सखीवर्गसुखाप्ताय क्रीडाविमलदर्शिने॥

(आ० वा० पु०)

हे श्रीकृष्ण के विमल क्रीड़ा स्थल! तुम सखी समुदाय को सुख प्रदान करने वाले हो। विलास के साक्षात स्वरूप हो। तुम्हें तथा श्रीकृष्ण को नमस्कार है।

नित्य केलि प्रिय युगल, सदा सर्वदा रस में निमग्न रहते हैं, उन सब केलि रहस्यों के उपकरण जुटाती हैं, इन्हीं की कायव्यूह स्वरूपा यह ब्रज की भोली-भाली बालाऐं। वह सामूहिक रस-विलास कभी-कभी परम गोपनीय रहस्योद्घाटन हेतु एकान्तिक निकुञ्जों में प्रवहमान होता है।

'मिले रहत मानौं कबहुँ मिले ना' नित्य ही यह युगल मिलते हैं- फिर भी अतृप्त से ही बने रहते हैं। वास्तव में, प्रेम में अतृप्ति ही अतृप्ति है, और, और पान करने की रस लालसा बनी ही रहती है तथा प्रेम की यह सरिणी, सदैव गतिमान रहती है। एक बार प्रणय की किसी उद्दाम लहरी से झकझोरे से युगल सहसा ही एक सघन निकुञ्ज में आ गये। दोनों ही एक दूसरे की स्थिति से सर्वथा अपरिचित थे। परस्पर की गात सुरभि ने उस रसमय बेसुधि में कुछ चेतना सी ला दी। प्रणय की रसमय केलि वश, सुरस चाह वश, रस पान की लालसा वश, दोनों ही, रसोद्वेलित से पास आ गये। अतृप्ति और आस्वादन का सरस संगम, रस विलास की सुखद केलि, कब तक गतिमान रही, कौन कहता ? इसी सुरत रस विलास से जगे से यह युगल प्रणयी बावरे कब तक अपनी प्रेम कहानी को दोहराकर प्रेम पाठ पढ़ते, पढ़ाते रहे-कौन जानता है ? इनकी इस विलास माधुरी का पान करतीं, उन्हीं की स्वरूपभूता यह बालाऐं उस रसावशेष का आस्वादन कर मद में छकी सी वहाँ आईं तो देखा, दोनों की अस्त-व्यस्त वेश-भूषा, श्लथ मालावलि, अनस्थानीय वस्त्राभरण, बिथुरी केशावलि, उभयांगों पर विभिन्न रसांक और अलसश्री से मंडित मुखश्री, बस ! कहते ही बना।

'परमानन्द प्रभु सुरत समै रस मदन नृपति की सेना लूटी'

ऐसी ही प्रिया-प्रियतम की रसमयी केलि के रसावशेषोंसे पुष्ट यह स्थली आज भी युगल की विलास पूर्ण क्रीड़ाओं की गाथा दोहरा रही है। यह विष्णु पर्वत के ऊपर स्थित है।

वृषभानु सरोवर

निर्धूतकिल्विषायैव गोपराजकृताय ते।
वृषभानुमहाराजकृताय सरसे नमः ॥

('विष्णु धर्मोत्तरे' ब्रज भक्ति विलास)

हे कल्मष को धोने वाले ! हे गोपराज वृषभानु द्वारा विनिर्मित भानु सरोवर ! आपको नमस्कार है।

श्रीवृषभानु नन्दिनी श्रीराधा तथा नन्द-नन्दन श्रीकृष्ण दोनों को ही यह सरोवर अत्यन्त प्रिय है। दोनों ने यहाँ विविध भाँति जल क्रीड़ा की है। जल क्रीड़ा में, रूप माधुरी का आकर्षण कब हृदय को झकझोर सा देता और यह युगल रसिक नव किशोर जल विहार में ही स्थल विहार की रसमय केलि में मग्न हो जाते हैं, यह कहना कठिन है। यदि जानना ही है तो भानु सरोवर की एकान्तिक किसी स्थली पर बैठ अपने विचारों की प्रत्यक्ष अनुभूति कर धन्य हो जाऐं, जहाँ यह सब सहज सुलभ है।

जल और स्थल के सभी रहस्यों को अपने तल में छिपाये यह रमणीय सरोवर आज भी असंख्य भक्तों के लिये विशेष आकर्षण बना है।

यह सरोवर बरसाना ग्राम के पूर्व में स्थित है। जनश्रुति है कि वृषभानु बाबा भाद्रमास में शुक्लपक्ष की अष्टमी के दिन नित्य की भाँति जब यहाँ पधारे तो एक पुष्प में सरोवर में तैरती हुई एक बालिका के दर्शन हुए। बाबा उस बालिका को अपने महल में ले आये, वे जगज्जननी श्रीराधा ही थीं।

पीली पोखर

एई पिलूखोर एथा पीलूफल छके।
सखीसह राईकानूक्रीड़ा कुतूहले॥

(भ० र०)

श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज यहाँ पीली पोखर पर पधारे। यहीं श्रीस्वामिनीजी ने उबटना लगाकर स्नान किया था।

पीलू के वृक्षों से घिरा यह सरोवर प्रियाजी की एकान्तिक जलकेलि का स्थान है। अपने शरीर में उबटना लगाकर प्रियाजी द्वारा स्नान करने से ही इस कुण्ड का जल पीला हो गया था। इसी से यह कुण्ड पीली पोखर नाम से विख्यात हो गया। यह अत्यन्त रमणीय स्थली है।

श्रीवामन द्वादशी के दिन यहाँ होने वाली 'डोंगी लीला' विशेष दर्शनीय है। यह स्थली प्रिया कुण्ड नाम से भी विख्यात है।

अभी हम वृषभानुपुर की लीला स्थलियों का आस्वादन कर आये हैं, आइये अब आस-पास की अन्य स्थलियों में विचरण कर लीलास्वादन करें।

चकसौली

चिकसौली ग्राम पूर्वे एई चित्रशाली।
एथा राई विचित्र वेशेते दक्ष आली॥

(भ० र०)

श्रृङ्गार पटु सखियाँ यहाँ श्रीराधाजी का विशेष रूप से श्रृङ्गार कर लीला हेतु निकुञ्ज में उन्हें अपने साथ ही ले गई थीं।

यह चित्रा सखी का गाँव है। 'सांकरी खोर' से बिल्कुल सटा हुआ है।

एक बार श्रीकृष्ण गोचारण में अपने साथ के सखाओं को ले यहाँ एक खेत में हरे चने चुराने आये। उन्होंने चने तोड़ लिये। इधर रखवारिन को पता चला तो पकड़ने को भागी। कन्हैया भला कहाँ हाथ आते। एक बगल में हरे बूट

दबाये भागे तथा गह्वरवन में आकर रुके । अन्य सखा वहाँ बैठे थे, उन्होंने होरा बनाकर खाये । वहीं वह ग्वालिनी भी आ पहुँची । श्रीकृष्ण की रूप छटा का पान कर सब गुस्सा भूल गई तथा वात्सल्य पूर्ण भावना में पगी मुग्ध हो गई, स्वयं ही चने छीलकर खिलाने लगी । श्रीनागरीदासजी महाराज ने उस लीला का बड़ा ही सरस वर्णन किया है ।

चना तथा चने से बने पदार्थ प्रिया-प्रियतम दोनों ही को रुचिकर लगते हैं । वह पद हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

चकसौली के चना चुराये ।
गारी दै दौरी रखवारिन ग्वारिन सहित गुपाल भजाये ॥
हरे बूट दावे बगलनि में स्वास भरे वन गह्वर आये ।
कहत आतुरे बोल लोल दृग हँसत-हँसत सब बरन चढ़ाये ॥
हरे चबात, कोऊ होरा करि, वन की लीला लाल लुभाये ।
नागरिया बैठी छकि हारी छील-छील नँदलालहिं ख्वाये ॥

दोहनी कुण्ड

रक्तनीलसिताधूम्रापीतागोदोहनप्रद ।
वृषभानुकृतस्तीर्थ नमस्तुभ्यं प्रसीद मे ॥

(वृहन्नारदीय पुराण)

लाल, नीली, धवल, काली, पीली गौओं का दोहन कर श्रीवृषभानु बाबा ने इस स्थली को तीर्थ ही बना दिया है । हे (दोहनीकुण्ड) स्थल ! आपको नमस्कार है । आप मुझ पर प्रसन्न हो जाएँ ।

मयूर सरोवर

मयुरक्रीडिने तुभ्यं चित्रलेखे नमोऽस्तु ते ।
त्रैलोक्यपदमोक्षाय मयूरसरसे नमः ॥

(वृहन्नारदीय पुराण)

मयूर क्रीड़ा प्रिये ! हे चित्रलेखे ! आपको नमस्कार है । तीनों लोकों का पद तथा मोक्ष देने वाले ! हे मयूर सरोवर आपको नमस्कार है ।

मयूर क्रीड़ा श्रीचित्राजी को विशेष प्रिय है । वे नित्य ही यहाँ आती हैं । मयूरों के झुण्ड के झुण्ड अनायास ही यहाँ आ जुटते हैं । श्रीचित्राजी उन्हें खिलाती हैं, कभी-कभी मयूर समूह उन्हें चारों ओर से घेर लेते हैं । ऐसे में प्रिया-प्रियतम भी झूमते, इठलाते इधर ही चले आते हैं । मयूर समूह हर्ष ध्वनि कर अपना भाव प्रदर्शित कर प्रिया-प्रियतम की अगवानी करते हैं । परस्पर

नृत्य मग्न हो कभी प्रियाजी के पास आते हैं और कभी प्रियतम की सन्निधि पा विशेष उमंग, उल्लास में भर नृत्य मग्न हो जाते हैं। श्रीचित्राजी भी अपने सौभाग्य मद से पुलकित हो जाती हैं। मयूरों से घिरे प्रियतम की छवि निहार रस में सराबोर हो जाती हैं, और इधर नृत्य देख, युगल रस बावरे अपनी ही सुरस चेष्टाओं से इस स्थली को और, और सरसा देते हैं। इन सब केलि रहस्यों की विज्ञा इस स्थली ने इन लीलाओं को उपहार रूप में पा, भक्तों को वितरण करने के लिए सम्हाल रखा है।

देह कुण्ड के पास ही मयूर सरोवर है।

मुक्ता कुण्ड

देख मुक्ता कुण्ड एथा राधिका सुन्दरी।
मुक्ता खेत केला कृष्ण सह वाद करी॥

(भ० र०)

एक बार बात ही बात में श्रीकृष्ण और श्रीराधा में विनोद पूर्ण विवाद छिड़ गया। जहाँ श्रीकृष्ण अखिल ब्रह्माण्ड नायक हैं तो श्रीकृष्ण प्रेयसी श्रीराधा भी शक्ति स्वरूपा हैं, उन्हीं की प्रेम लालसा मूर्तिमान रूप में श्रीराधा हैं। इसी होड़ा-होड़ी में श्रीराधा ने एक खेत में मुक्ता रोपित कर उगा दिये। उन मुक्ताओं से प्रिया-प्रियतम दोनों ने ही श्रृङ्गार किया। तभी से यह क्षेत्र 'मुक्ता कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया।

सुनहरा ग्राम (स्वर्णहार) तथा कदम्बखण्डी

देखई कदम्बखण्डि स्वर्णहारग्राम ।
रत्नकुण्ड चतुर्मुख स्थान अनुपम ॥
स्वर्णहार स्थानेते विलास अतिशय ।
'सोनआर' सोनहेरा नाम अबे कय ॥

(भ० र०)

श्रीयुत वल्लभाचार्यजी महाराज भी स्वर्णप्रस्थ पर्वत और सुनहरा की कदम्ब खण्डी पधारे, जहाँ रास-स्थली है, हिंडोले की जगह है तथा जल-शैय्या है।

एकान्तिक रास विलास की यह स्थली कदम्ब वृक्षों के मध्य में स्थित है। ग्रीष्म का ताप भी कदम्ब पुष्पों की सौरभ में अस्तित्वहीन हो जाता है तथा यहाँ का वातावरण सदैव शीतल बना रहता है। वर्षा की फुहारों से नहाई सी कदम्ब पुष्पों की सौरभ मन भ्रमर को और, और उन्मत्त कर देती है। यह कदम्ब सौरभ किन्हीं माधुर्याम्बुधि की रस कणिका को स्पर्श कर बौराई सी इठला रही है।

यह महाभागा स्थली उसी सौरभ से, प्रिया-प्रियतम के पद चिन्हों से, उनकी प्रत्येक रसमय केलि के रस कण संचय कर उन्मत्त रहती है। कदम्ब वृक्षों की यह शीतल, सघन स्थली, रास-क्रीड़ा की यह एकान्तिक विहार स्थली, दिव्य तथा मधुर रस से स्पृष्ट है।

पास ही रत्न कुण्ड है।

सुनहरा ग्राम 'सुदेवी' तथा 'रङ्ग देवी' दोनों सखियों की जन्म स्थली है। 'श्रीरङ्ग देवी' प्रियाजी के श्रीचरणों में महावर लगाने में प्रवीण हैं तथा 'श्रीसुदेवी' प्रियाजी की वेणी रचना तथा शुक एवं सारिका को शिक्षा देने में अत्यन्त पटु हैं।

श्रीनागाजी (चतुर चिन्तामणि)

ब्रज में 'पयगाँव' में आपका जन्म हुआ। प्रारम्भ से ही महान विरक्त थे। ग्राम के पास ही कदम्ब खण्डी में विरक्ति से रहने लगे।

ब्रज में भ्रमण तथा ब्रज यात्रा में आपकी अत्यधिक रुचि थी। जहाँ भी कहीं इच्छा होती वहीं जाकर निवास करते। सुनहरा ग्राम की कदम्ब- खण्डी में आप निवास कर प्रिया-प्रियतम के सुख में मत्त रहने लगे।

एक बार यह भ्रमण कर रहे थे। जटाऐं इनकी बहुत बड़ी-बड़ी थीं, एक हींस की झाड़ी में अटक गईं। भाव विभोर हुए लीला चिन्तन में मत्त वहीं खड़े हो गये। उसी भाव मग्नता में ये तीन दिन तक इसी प्रकार खड़े रहे। श्रीकृष्ण स्वयं आकर अपने भक्त की जटाऐं सुलझाने लगे। आपने पूछा, कौन हो ? (किशोरी श्रीराधा के प्रति इनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। उन्हीं के कृपा-बल भरोसे जीवन यापन करते थे।) श्यामसुन्दर तो प्रियाजी के साथ ही शोभायमान होते हैं। किशोरी श्रीराधा वहीं प्रकट हो गईं। श्रीराधा-कृष्ण की रूप माधुरी पानकर आप कृत-कृत्य हो गये। बाद में वृन्दावन चले आये तथा विहार घाट पर निवास करने लगे।

ऊंचा ग्राम

यत्र गोपसुताः सर्वा ललितादिप्रभृतः ।
क्रीडाश्चक्रुःसमासेनश्रीकृष्ण-गुणमोदिताः॥
यस्मात्सखी गिरिर्नाम बभूव ब्रजमण्डले ॥

(विष्णु रहस्ये)

श्रीकृष्ण की अष्ट प्रधाना सखियों में भी प्रधान हैं, श्रीललिताजी। प्रिया-प्रियतम की एकान्तिक विलासमयी लीलाओं में भी इनका प्रवेश है। इन्हीं की

यह जन्म स्थली है । यथा नाम तथा गुण से भूषिता श्रीललिता जी अत्यन्त कोमलांगी हैं । श्रीललिताजी का मन्दिर दर्शनीय है । प्रिया-प्रियतम के प्रति उनका अनुराग, नई-नई लीलाओं की समायोजना में सहयोग, ललिताजी का क्रीड़ा-स्थल, मदनमोहन को भी अत्यन्त प्रिय है । किन्हीं रसिक सन्त ने प्रिया-प्रियतम के तथा श्रीललिताजी के परस्पर सम्बन्ध का सर्वांगीण वर्णन कर श्रीललिताजी को भाव भीनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित की है ।

श्रीराधाजी को अमित सुख प्रदान कराने वाली हैं तथा इनकी प्रिया-प्रियतम की निगूढ़ केलि में भी सहज गम्यता है । इनके निःस्वार्थ प्रेम के वशीभूत हुए युगल रिझवार इन्हें सदा-सदा अपने साथ ही रखते हैं । वे कहते हैं-

ललिता ललित रूप मन-मीठी, ललित त्रिभंगी मोहे ।
श्रीराधा रस वर्धन कारिणी, संग विशाखा सोहे ॥
सखिन मध्य महामणि चमकै, अतिशय हास स्वभाव ।
नित्य नई लीला के सर्जन, करति रहति मृदुचाव ॥
नव-नव लाड़ प्यार सों पोषैं, सबहिं भाँति हित मानैं ।
युगल लाड़िले संग लिये, नित नव रस कौतुक ठानैं ।
जब-जब रूठैं प्रिया मानिनी, मानें नहीं हठीली ।
तब-तब रसिकराय हित ललिता कहि-कहि बात रसीली ॥
मान मनावैं, अति दुलरावैं, करि-करि कै नव साज ।
या भाँति बिलसत मन हुलसत रस रानी, रस राज ॥

श्रीललिताजी प्रिया-प्रियतम की ताम्बूल सेवा करती हैं । बहुत ही कुशाग्र बुद्धि हैं । प्रिया-प्रियतम के आनन्दवर्धन में सहायिका तथा प्रत्येक आयोजन का विधान बहुत ही निपुणता से करती हैं । ये इन्द्रजाल की भी पण्डिता हैं ।

यहाँ पूर्व की ओर श्रीबलदेव मन्दिर तथा नैऋत में 'नारायण भट्टजी' की समाधि है ।

श्रीनारायण भट्टजी

दक्षिण में मधुरापत्तन प्रदेश में इनके पिता श्रीभट्ट भास्कर नाम से तैलंग ब्राह्मण परम्परा में विख्यात थे । चौदह वर्ष की आयु में ही संवत १६०२ के आस-पास आप ब्रज में पधारे ।

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया, सम्वत् १६२६ के दिन आप ही पर अनुग्रह कर वर्तमान श्रीवृषभानुपुर में विराजमान श्रीजी स्वरूप आपके लिए प्रकट हुए ।

ब्रज के प्रति आपकी अनन्य निष्ठा रही । आप बड़े विद्वान थे । अनेक ग्रन्थों का आपने प्रणयन किया । ब्रज परिक्रमा तथा तीर्थों का वर्णन किया । आपने 'ब्रज भक्ति विलास' का प्रकाश कर वैष्णव जगत का बहुत बड़ा उपकार किया है ।

सखीगिरि

यहाँ श्री कृष्ण के गुण समूहों पर मुग्ध होकर ललितादि गोप कन्याओं ने सर्व प्रकार से क्रीड़ा की है, इसलिए इसका नाम सखी गिरि करके ब्रज मण्डल में प्रसिद्ध है ।

श्रीकृष्ण की रूप मधुरिमा का जादू यावत् प्रकृति में समा गया । इन भोली-भाली ब्रज-बालाओं का तो फिर कहना ही क्या ? ब्रज-बालाओं के हृदय उमङ्ग में भर गये । वे वन निकुञ्जों में, घाट-बाट में, पनघट पर यत्र-तत्र किसी रूप के जादूगर की रसमयी खोज में विचरने लगीं । इसी प्रेम के वशीभूत हुए उन्हीं के जीवन धन यह सांवर किशोर रस केलि के लिए सर्वदा लालायित बने रहते हैं । इन महाभागाओं ने भी अपना सर्वस्व ही इन अपने जीवन सर्वस्व प्रिया-प्रियतम के लिए समर्पित कर दिया है ।

ब्रज की प्रत्येक स्थली श्रीकृष्ण केलि कला रहस्यों की विज्ञा है ।

अनेक लीलाओं का स्रष्टा-द्रष्टा है, यह सखीगिरि पर्वत । अपने युगल प्रणयी मतवारों की सरस केलि में मग्न, मत्त है । यहाँ सखी वृन्द क्या-क्या नहीं करतीं ? वही रसमय केलि इन्हीं स्थलियों पर आज भी गतिमान है । ब्रजवासियों की वही धरोहर, इन गिरि गुहाओं ने यत्न पूर्वक अपने अङ्क में सम्हाल रखी है । प्रिया-प्रियतम की एकान्तिक विहार-स्थली है । ललितादि सखियों की रसीली भावनाओं से परिपूर्ण यह स्थली 'सखी गिरि' नाम से विख्यात है ।

फिसलिनीशिला

सखी गिरि के ऊपर यह अत्यन्त रमणीय स्थान है । यहाँ सखियों ने विविध प्रकार की लीलाऐं की हैं ।

चित्र-विचित्र शिला

फिसलिनी शिला के पास ही यह शिला शोभित है । सखियों द्वारा की गई चित्रकारी की उत्कृष्ट कृति, आज भी देखते ही बनती है । शिलाओं पर विभिन्न

रङ्गो से बनी यह चित्रकला अपने में एक नमूना है। वर्षा, जाड़े तथा धूप का भी इस कलाकृति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वर्षों से इसी प्रकार दर्शनीय बनी है।

जिस समय सखियों ने प्रिया-प्रियतम का शृङ्गार किया तथा श्री ललिता के साथ श्यामसुन्दर के विवाह का आयोजन किया, उनके मेंहदी रञ्जित कर कमल इस शिला पर टिके। यह सौभाग्य पुनः कब प्राप्त होगा, इसी आतुरी में इस शिला ने वह प्रणय भीने रस रङ्ग के अङ्क अपने हृदय पर अङ्कित कर लिए। उन्हीं से गर्वित होकर ही तो आज यह इठला रही है।

श्रीललिता विवाह-स्थल

व्रजोत्सवाय कृष्णाय व्रजराजाय शोभिने।
ललितायै नमस्तुभ्यं व्रजकेल्यै नमो नमः॥

(ब्र० भ० वि०)

हे ब्रज के उत्सव स्वरूप ! हे श्रीकृष्ण ! हे ब्रजराज ! हे शोभन स्वरूप ! आपको नमस्कार है। हे श्रीललिते ! ब्रज-क्रीड़ा परायण आपको नमस्कार है।

श्रीकृष्ण ने सात वर्ष की अवस्था में ही श्री ललिता जी की मनोकामना पूर्ण कर उनसे विवाह कर लिया था। आज भी यहाँ वही स्थली श्रीराधा अष्टमी के बाद भाद्र शुक्ला द्वादशी को विवाहोत्सव की धूम से गूंज उठती है।

अत्यन्त रमणीय तथा निर्जन स्थली है यह।

त्रिवेणी तीर्थ

कृष्णाज्ञासंप्रवर्तिन्यै त्रिवेण्यै सततं नमः।
परं मोक्षपदं देहि धनधान्यप्रवर्द्धिनी॥

(ब्र० भ० वि०)

हे श्रीकृष्ण की आज्ञा से प्रवर्तिते त्रिवेणी ! आपको नमस्कार। आप श्रेष्ठ मोक्ष को दें तथा धन, धान्य एवं सुख की वृद्धि करें।

इस स्थल से धूलि उठाकर मस्तक पर धारण करने से त्रिवेणी संगम स्नान का फल प्राप्त होता है।

सखी कूप

कृतार्थोऽसि सखीकूप देवानां मुक्तिहेतवे।
ललितायाः स्वपानाय सखीकूप नमोऽस्तुते॥

(ब्र० भ० वि०)

पर्वत के पास ही सखी कूप है। श्रीकृष्ण से आश्वासन पाकर यहाँ सखी वृन्द अपनी प्रणयिनी किशोरी के आगमन की बाट जोहती रहीं। किशोरी के वहाँ आने पर लीला का आयोजन हुआ। पुनः जल पान हेतु सखियों ने कुऐं का निर्माण कर सभी को जल पिलाया तथा स्वयं भी पान किया।

तभी से यह कूप 'सखी कूप' नाम से विख्यात हो गया।

श्रीबलदेव स्थल

रेवतीरमणायैव नमस्ते मुसलायुध ।
लाड़िलेय समंताय हलायुध नमोऽस्तु ते ॥

(प० पु०)

हे रेवतीरमण ! मूसलायुधधर ! आपको नमस्कार है। हे हलायुध लाड़िलेय आपको नमस्कार है।

यह बलदेवजी का स्थान है। ऐसी मान्यता है कि यहाँ विराजित स्वरूप श्री बलदेव जी, नारायण भट्ट जी के लिए एक वृक्ष झुरमुट से प्रकट हुए थे। उन्हीं का विशाल मन्दिर आज भी वृक्ष झुरमुट में शोभित है।

गोपी पुष्करिणी

पुष्करिण्यै नमस्तुभ्यं मुक्तिदायै नमो नमः ।
साफल्यपदप्राप्तयै सर्वकल्मषनाशये ॥[1]

(प० पु०)

सखीगिरि पर्वत, सखी वृन्द की लीला स्थली है। यहाँ सखियों ने स्नान किया। इस पर्वत के शिखर पर यह पुष्करिणी सुशोभित है। यह निर्जन स्थली सखियों के बाल स्वरूप चरण चिन्हों से अङ्कित है। ध्यान से देखने पर यह चरण चिन्ह आज भी दिखलाई पड़ते हैं।

यह पुष्करिणी समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली है। भक्ति व मोक्ष को अनायास प्रदान करने वाली तथा समस्त पापों को क्षय करने वाली है।

देह कुण्ड

जनश्रुति है कि एक बार किसी विशेष पर्व पर प्रिया-प्रियतम ने इस कुण्ड में स्नान किया। परस्पर जल उलीचना, हास-विनोद तथा अन्य सुरस गीतों से यह स्थली मुखरित हो रही थी। एक दीन ब्राह्मण ने आकर धन की याचना

---

1. हे गोपी पुष्करिणी ! आप को नमस्कार। आप मुक्ति देने वाली हैं। साफल्य पद प्राप्ति के लिये और समस्त कल्मष नाश के लिये आपको नमस्कार है।

की। अपनी प्रिया को जो सर्वदा आदर देते हैं, उन्हीं श्याम सुन्दर ने प्रियाजी से उन्हीं के बराबर तोल का स्वर्ण दिलवाकर उस ब्राह्मण की अभिलाषा पूर्ण की।

श्रीकृष्ण भक्ति प्रदायी यह 'देह कुण्ड' आज भी यथावत अपनी गरिमा को प्रकट कर रहा है।

वेणी शङ्कर महादेव

वेणीशङ्कररुद्राय नमस्ते शिवरूपिणे।
गोपकुलशिवार्थाय नमस्ते भवमूर्तये॥

(अग्नि पुराण)

गोप कुल के मङ्गल के लिए जो कल्याण स्वरूप हैं; जिनके दर्शन मात्र से त्रिवेणी सङ्गम के स्नान का फल प्राप्त होता है। ऐसे यह वेणी शङ्कर महादेव देह कुण्ड के तट पर विराजमान हैं।

इन महादेव स्वरूप की स्थापना गोपिकाओं ने की थी।

रीठौरा (चन्द्रावली-वन)

कृष्णसौख्य-महोत्साह ! गुणरूपकलानिधे।
चन्द्रावलि-निवासाय नमस्ते कृष्ण वल्लभ॥[1]

(ब्र० भ० वि०)

श्री चन्द्रावलीजी, श्रीकृष्ण की अनन्या प्रिया हैं। श्रीकृष्ण भी इनके प्रति विशेष प्रेम रखते हैं।

सौन्दर्योत्सवकेलिपौरुषरसं गायिन्त ताः सुस्वरं।
वीणावेणुमृदङ्गतालमहतीं संवादयन्त्योऽपि च॥
राधानृत्यति दक्षिणे रसवती चन्द्रावली वामतः।
मध्ये श्यामलसुन्दरो रसकलामुद्दीपयन्नुत्तमाम्॥

(श्रीराधारस मञ्जरी-28)

उक्त श्लोक से श्रीकृष्ण का श्रीचन्द्रावलीजी के प्रति अनुराग तो प्रकट हो ही रहा है, प्रत्युत उनकी केलि में प्रवहमान रस की निगूढ़ता भी झलक रही है। उस रहसि केलि में सहायक वाद्यों की अनुरूप ध्वनि हो रही है। श्री राधाजी दाईं ओर तथा चन्द्रावलीजी बाईं ओर, दोनों के मध्य में श्रीकृष्ण रसोद्दीपन करते हुए नृत्य में निमग्न हैं। कैसी है रस की यह अद्भुत केलि ? दर्शनीय तथा आस्वादनीय ही है।

---

1. हे श्रीकृष्ण के सौख्य, उत्सव, गुण रूप कलाओं की राशि ! हे चन्द्रावली निवास स्थल ! श्रीकृष्ण के प्रिय ! आपको नमस्कार है।

प्रियाजी के समान ही श्रीचन्द्रावली जी, श्रीकृष्ण की प्रिया हैं । ये यूथेश्वरी हैं । प्रियतम श्यामसुन्दर उनके प्रति विशेष भाव रखते हैं ।

यहाँ 'चन्द्रावली सरोवर' तथा 'श्रीविट्ठलनाथजी' की बैठक है ।

डभारो

डभरारो ग्राम एई कृष्ण ऐइ खाने ।
भरिल नयने अश्रु राधिका दर्शने ॥

(भ० र०)

प्रेम की अनोखी ही रीति है। प्रेमास्पद का विछोह अत्यन्त कष्टप्रद होने पर भी एक सरसता की लहर से मन को उद्वेलित करता रहता है। किन्हीं रसिक ने कहा है-

हौं जानत प्रिय मिलन ते, विरह अधिक सुख होय।
मिलते मिलिये एक सौं, बिछुरे सब ठां सोय ॥

सामीप्य में, प्रेम प्रगाढ़ता के कारण आत्म विस्मृति भी, कभी-कभी विरह का भान करा देती है तथा सब असह्य-सा हो जाता है । अपनी प्राणाराध्या किशोरी श्री राधा के साथ नित्य ही संयोग और वियोग के आवर्तों में मत्त प्रियतम आज प्रियाजी को देख हर्षोल्लास में भर सजल नेत्र हो गये। जाने कौन सी भ्रू कटाक्ष का यह रसमय संकेत था। जब सभी कुछ अनुकूल हो तो प्रेम तरंगों में उफान आना स्वाभाविक ही है। अतः रस की यह भूमिका चरितार्थता इन्हीं प्रेमी रस बावरों के सामर्थ्य की बात है ।

तुङ्गविद्या सखी का जन्म स्थान है ।

कामेई (कामना वन)

कामाई ग्रामे ते विशाखार जन्म हय ।

(भ० र०)

श्री कृष्ण की प्रधान अष्ट सखियों में श्रीविशाखाजी का स्थान अद्वितीय है। उन्हीं का जन्म स्थान है यह ग्राम ।

कर्पूर आदि सुगन्धित द्रव्यों से प्रिया-प्रियतम के श्रीअंगों पर विलेपन करने की इनकी सेवा है। श्रीयुगल के श्रृंगार में बेल-बूटे तथा कढ़ाई में यह अत्यन्त पटु हैं, यह पूर्ण विदुषी हैं ।

करहला

श्रीललिताजी यहाँ रही हैं । यह भगवान श्रीकृष्ण की दधि-दान लीला का स्थल कहा जाता है ।

यहाँ जलघड़ा कुण्ड तथा 'श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी महाराज की' बैठक है। 'श्रीगुसांई विट्ठलनाथजी' ने 'रासपञ्चाध्यायी पर टिप्पणी' नामक ग्रन्थ की रचना यहीं की थी।

ब्रज में रासलीला का प्रारम्भ यहीं से 'श्रीघमण्डदेवजी ने किया', ऐसी मान्यता है। इसे ब्रज की नाभि माना जाता है।

श्रीउद्धवजी (घमण्डी)

घमण्डी रस में घुमड़ि रह्यो वृन्दावन निज धाम।
बंशीवट तट वास कियो गायो श्यामा श्याम॥

(श्रीध्रुवदासजी)

श्री घमण्डी जी का जन्म राजस्थान में हुआ। सन्तों में इनकी अगाध निष्ठा थी। छोटी अवस्था में ही श्रीश्रीहरिदेवजी से दीक्षा ग्रहण कर आप ब्रज में वास करने लगे। अपने आराध्य का इन्हें दृढ़ भरोसा था। इसी कृपा-बल के भरोसे वे गर्व में भरे रहते थे। इसी कारण से वे समाज में 'घमंडी' नाम से विख्यात हुए।

ब्रज की स्थलियों में प्रायः घूमते रहते। एक बार करहला ग्राम में आये तथा वहीं निवास करने लगे। ये उच्च कोटि के महात्मा थे। प्रिया-प्रियतम ने प्रकट होकर, इन्हें आदेश दिया कि 'ब्राह्मण बालक लेकर रास द्वारा हमारी लीला का प्रकाश करो;' इन्हें श्रीठाकुरजी ने अपना मुकुट तथा प्रियाजी की चन्द्रिका भी प्रदान की। इन्होंने मथुरा के ब्राह्मण बालकों को ले रासलीला प्रारम्भ की। कहते हैं कि वे सभी स्वरूप वहाँ से लोप हो गये तथा श्रीकृष्ण के परिकर में जा मिले। उन स्वरूपों के विषय में श्रीकृष्ण ने इन्हें भान कराया, "उन स्वरूपों को मैंने ही स्वीकार कर लिया है। अब तुम करहला के ब्राह्मण बालकों द्वारा रास-प्रचार करो।"

इन्होंने रास का पुनः आयोजन कराया। रास परम्परा प्रारम्भ करने का सर्व प्रथम श्रेय आप ही को प्राप्त है।[1] रास की वह परम्परा रासपूर्णिमा उत्सव के रूप में अद्यावधि मनाई जाती है।

बाद में आप श्रीवृन्दावन आकर निवास करने लगे।

रासानुकरण, प्राकट्य निरूपण सम्बन्धी एक पद हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं, जिससे रसिक महानुभावों के लिए यह विषय और अधिक सुस्पष्ट हो सकेगा-

रास बिहारी लाल दृगन ते दूर भयो जब।
तिमिर ग्रसित भौ भाव नहीं जाने कोऊ तब॥

1. कुछ लोगों का मत है कि यह करहला में निवास करने वाले घमण्ड देव जी कोई अन्य ब्राह्मण रहे जो मूलतः वहीं के निवासी थे, उन्होंने रासलीला का प्रारम्भ किया।

श्रीस्वामी हरिदास खास ललिता वपु तिनकौ ।
प्रकट करन भई रास महल ते आज्ञा जिनकौ ॥
नाम घमंड सनकादि सम्प्रदा रसमय जिनकौ ।
अधिकारी रसमयी समुझि निरमल बुधि तिनकौ ॥
श्री मधुपुरी समीप घाट विश्रांत नाम तहँ ।
श्री आचारज विष्णु स्वामी मत पोषक है जहँ ॥
कहीं चलौ नित आस पास मेरी वे पुजवें ।
सेवा रीत अलौकिक प्रगटी है जिन ब्रज में ॥
तिन ढिग स्वामी गये कुशल पूछी बैठारे ।
कहो प्रिये सखि कवन हेतु यहाँ चरण पधारे ॥
तब स्वामी हरिदास कह्यौ प्रभु अन्तरजामी ।
तुमते कछु नहिं छिपौ कहा पूछत जग स्वामी ॥
ऐसौ करो उपाय रास रस प्रगटै जन में ।
जो कछु इच्छा रही कहो तुम आगे मन में ॥
कोई पर्व निमित्त रहे तहं वामन राजा ।
श्रीगोस्वामी कह्यौ लेहु कुछ इनसों काजा ॥
प्राणायाम चढ़ाय रोकि दसहू इन्द्री तब ।
कछु दिन पीछें कह्यौ सुनो मेरे तुम जन अब ॥
नभ ते उतरत मुकुट सबै विश्वास दृढ़ावन ।
सप्तताल विस्तरित जगमगत अति नग वर गन ॥
सबको दरसन भयौ मुकुट जब भूपर आयो ।
धूप-दीप नैवेद्य सबन लै ताहि चढ़ायो ॥
सबरे भूपन प्रस्न कियौ ताही छिन प्रभु सौं ।
किहि कारण आगमन भयो सो कहो किन हमसौं ॥
रास क्रीड़ा करौ कही यह बात जतावन ।
नहिं यामें कछु दोस यही है हमरी कामन ॥
ताम्र पत्र में मुहर करा सबरे तुमहूँ किन ।
कै कछु शङ्का होय करौ मेटूं याहि छिन ॥
अपनी-अपनी मुहर सबी कर गये देस कूं ।
मानत रैहैं सदा मोक्षदाता है हमकूं ॥
सबही देखत गुप्त मुकुट भौ ताही अरसा ।
जै-जै नभ धुनि भई सुरन करी पुष्पन बरसा ॥

तब स्वामी हरिदास कही अब देर करत कित ।
छिन पल हमकों कोटि-कल्प सम बीतत है इत ॥
माथुर भक्ति परायण तिनकौं निकट बुलाये ।
परम मतो हम देऊ अष्ट बालक मन भाये ॥
ताही छिन ते गये धाये बालक लै आये ।
को कहैं तिनकी महिमा जो श्रीप्रभु ने बुलाये ॥
श्रीस्वामी हरिदास कियौ सिंगार प्रिया को ।
श्रीआचारज देव कियो मोहन रसिया को ॥
पुनि वृन्दावन आय रास मण्डल निरमान्यौ ।
वेद पुराण शास्त्र तंत्रन जा रीत बखान्यौ ॥
ता मधि जुगल किसोर थापि पुनि सखि पधराई ।
आपुन कियो समाज कृष्ण लीला तब गाई ॥
महारास तब कियो लाल भये अंतरध्याना ।
बन-बन ढूंढ़त फिरै सखी कर-कर गुन गाना ॥
सुखिया सखी जु संग ताहि पिय छोड़ गये जब ।
जो-जो जहँ की तहाँ रही पाई नांही तब ॥
रसिक जनन के हृदय भयो अति ही दुख दावन ।
प्रथम ग्रास में भयो मक्षिका को यह पातन ॥
माथुर अपने पुत्रन कों मांगन जब आये ।
तब उनसों यह कह्यौ नहीं हमकूं कहूँ पाये ॥
अति झगरौ तिन कियो तबै यह करी वारता ।
तुम्हरे पुत्रन को जू भई है तदाकारता ॥
हमको निश्चैं होय करो सोई कृत्य गुसाँई ।
तब उनके सब पुत्र लाल ढिंग दिये दिखाई ॥
अपने-अपने घरन माथुरन किये पलायन ।
"घमंड देव" सो कह्यौ सुनों गुरुभक्ति परायन ॥
तुम ब्रज के बासीन मौहि कीजै शिष शाखा ।
तिनसों यह मारग जु चलाओ सुनि मम भाखा ॥
ऐसें आज्ञा दई गये अपने-अपने थल ।
घमंड देव पुनि गये ग्राम ललिता जहँ करहल ॥
उदयकरण अरु खेमकरण द्वै भ्राता द्विजवर ।
तिनही सों यह रास प्रथा चली सुनौ रसिकवर ॥

पीसई ग्राम (पिपासा वन)

'गाय चराव हरि कह्यौ, भयो पियासौ ठाँउ ।
ता दिन तें सुखरासि यह भयौ पिसायौ गाँउ ॥'

(जगतनन्द)

गोचारण, श्रीकृष्ण की नित्यचर्याओं में विशेष है । भोर में ही उठ चाव में भरे कन्हैया गोचारण की तैयारी में जुट जाते हैं । हाँ ! तो मैया ने कन्हैया को कलेऊ कराया, कन्हैया वन में आ पहुँचे । दोपहर की छाक साथ ले ली । गैया घेरते-घेरते दोपहर होने पर भूख लगी, छाक आरोगने लगे । आस पास पानी नहीं था । दाऊ भैया भागे-भागे जल लेकर आये और कन्हैया को पिलाया । अतः यह स्थल 'पियासो' 'पिसई' अथवा 'पिसायौ' ग्राम कहा जाने लगा ।

यहाँ 'किशोरी कुण्ड', 'श्याम तलाई' तथा 'स्वामिनीजी का गुप्त झूलन-स्थल' है ।

साहार (सारिका वन)

सारिकाह्लादसौख्याय नानाश्रुतसुखप्रद ।
युगलाय नमस्तुभ्यं रमारमणनामतः ॥[1]

(भविष्योत्तरे)

श्रीनन्दरायजी के लाड़ले सुकुमार श्रीकृष्ण तथा श्रीवृषभानु बाबा की लाड़ली किशोरी श्रीराधा, अपनी अत्यन्त प्रिय सखियों सहित सदा, सदा रसमग्न रहते हैं । उनकी मग्नता प्रेम की पराकाष्ठा ही है । इसमें सहयोगी हैं ब्रज के लता, वृक्ष, पशु-पक्षी तथा ब्रज की प्रत्येक स्थली ! यहाँ तक कि प्रकृति भी ब्रज लीलाओं में सहायक है । ये सब सहायक ही हों ऐसा नहीं । यह प्रकृति जड़ नहीं है, प्रिया-प्रियतम की सरस केलि में सहायिका यह प्रकृति स्वयं लीला का उपकरण भी है ।

शुक तथा सारिका प्रिया-प्रियतम के संदेश वाहक हैं । इन्हीं संकेतों, संदेशों को एक दूसरे के पास पहुँचाने में बड़े चतुर हैं । ब्रज भूमि संकेतों और संदेशों की ही स्थली है । इन शुक-सारिका से कभी प्रिया-प्रियतम खेलते हैं, कभी उन पर अपना लाड़ उंड़ेलते हैं । वास्तव में यह सखीवृन्द ही शुक, सारिका का स्वरूप धारण कर युगल रस विहार देखने को, इनकी रसमय केलि का पान करने को प्रकट हो जाती हैं ।

एक बार एक सारिका को अपने कर में ले, प्यार से पुचकारते दुलारते हुए प्रियतम ने कहा, कहो 'श्रीराधा', वह सारिका 'श्रीराधा' 'श्रीराधा' कहने लगी ।

---

1. हे रमा रमण ! आप सारिका के आह्लाद के विषय हैं उनको नाना प्रकार सुख प्रदान करने वाले हैं ।

उसी समय प्रियाजी ने उसी 'सारिका' से 'श्रीकृष्ण' 'श्रीकृष्ण' कहने का आग्रह किया । वह सारिका 'श्रीकृष्ण' 'श्रीकृष्ण' कहने लगी । बीच में श्रीकृष्ण बोले, "श्रीराधा कहो ।" उसी समय किशोरीजी बोलीं, 'श्रीकृष्ण कहो ।' वह सारिका अभी कुछ स्पष्ट कह भी नहीं पाई थी कि सामने के कदम्ब वृक्ष की डाल पर बैठा सारिका युग्म, उच्च स्वर से 'श्रीराधा-कृष्ण श्रीराधा-कृष्ण' उच्चारण करने लगा । प्रिया-प्रियतम ने चौंककर सामने की ओर देखा । दोनों ने ही प्रिया-प्रियतम का दुलार पा 'श्रीराधा-कृष्ण श्रीराधा-कृष्ण' की मधुर ध्वनि से इस वन्य स्थली को गुंजित कर दिया । प्रकृति के सम्पूर्ण वातावरण में यह मधुर ध्वनि समा गई । पक्षियों पर अपना अमित लाड़ प्यार उंड़ेलते युगल स्वयं भी रसमग्न हो गये ।

यही स्थली (सारिका वन) साहार के नाम से विख्यात हुई आज भी उसी सुरसता से प्रभावित कर रही है ।

यहाँ मानसरोवर है ।

'श्रीउपनन्दजी' का निवास स्थान है । इनके समुद्र नाम के पुत्र हुए, जिनका विवाह 'श्रीकुन्दलताजी' से हुआ । 'श्रीकुन्दलताजी', श्री राधा की अनन्या सखी हैं ।

आंजनौक (अंजन-वन)

देवगन्धर्वलोकानां रम्यवैहार-रूपिणे।
वैचित्रमूर्त्तये तुभ्यमंजनपु:वनाहव्य ॥[1]

(कौर्म्ये व्र० भ० वि०)

रसिक रिझवार, श्यामसुन्दर की रीझ भी अनोखी है । नित्य-विहार में रत श्यामसुन्दर सदा, सदा ही रस की कामना में रत रहते हैं । इनके रस-दान-पान के ढंग भी, निराले ही हैं । प्रीति की रीति ही निराली है, किसी सिद्धान्त की इयत्ता में बाँधा नहीं जा सकता इसे ।

एक दिन नित्य किशोरी श्रीराधा, अपने कक्ष में बैठी श्रृङ्गार कर रही थीं । विचक्षण नामक कीर ने प्रियाजी की सम्पूर्ण वार्ता प्रियतम से जाकर कह दी । मनहर प्रियतम को, आज जाने क्या सूझी कि, अपनी फेंट से, मुरलिका निकाल, उसमें स्वर भरने लगे । किशोरी श्रीराधा तथा उनकी सखियों ने यह आह्वान-ध्वनि सुनी । उस मधुर स्वर का अनुसरण करतीं अपनी सखियों सहित किशोरी श्रीराधा, इसी वन में चली आईं । प्रियतम ने, अपने सामने वाली शिला पर प्रियाजी को बिठा दिया तथा रूप-मधुरिमा का पान करने लगे । प्रियाजी

1. हे देवता, गन्धर्व तथा मनुष्यों के सुन्दर विहार स्थल ! विचित्र मूर्ति रूप अंजन वन ! आप को नमस्कार ।

के नेत्रों में अञ्जन न लगा देख, प्रियतम ने अञ्जन लगाया। जान-बूझ कर अञ्जन को कपोलों तक फैला दिया। मुकुर हाथ में ले प्रियाजी के सम्मुख किया। प्रियाजी के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही अपनी भूल सुधारने के लिए अञ्जन पौंछने लगे। प्रियतम श्यामसुन्दर ने प्रियाजी का कर अपने कर में थाम, स्वकर से सारा अञ्जन पौंछ दिया। पुनः लगाने लगे, तथा पुनः अपनी भूल सुधारने लगे, बार-बार के इन्हीं क्रमों में विहार की नई ही रसायोजना बन गई और अब वह कज्जल रेख..... ।

प्रिय पौंछत पट पीत सौं प्रिया कपोलन पीक।
प्यारी पौंछत प्रिय के अधरन अञ्जन लीक॥

सखियों ने इन प्रणयी मत्त बावरों को पुष्पों से श्रृङ्गार मण्डित करने की भूमिका बना पुष्प चयन हेतु प्रस्थान किया। यह बालाऐं पुष्प चयन कर लौटीं तथा दोनों की रसमयी दशा देखी।

इस रसीली स्थिति का अवलोकन कर, दिव्य सुख में मग्न हो गईं। रस-विहार की यह केलि आज जल्दी ही विश्राम पा गई। इधर सखियों ने प्रिया-प्रियतम का पुष्पों से श्रृङ्गार किया तथा वह महाभागा सखियाँ, उमंग में भरी रसमग्न हो गईं।

वही स्थली 'आंजनौक', अञ्जन-वन नाम से विख्यात हुई उन्हीं रसीली चेष्टाओं का ब्यौरा दे रही है।

किशोरी कुण्ड

किशोरीस्नानरम्याय पीतरक्तजलाप्लुतः ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं कृष्णक्रीड़ाविधायिने ॥[1]

(कूर्म पुराण व्र० भ० वि०)

श्रीराधा कृष्ण की अनेक सरस लीलाओं का स्रष्टा तथा द्रष्टा है यह किशोरी कुण्ड। स्थलकेलि में रसमग्न प्रिया-प्रियतम के, जल में अवगाहन करने से ही जल लाल पीला हो गया है। अत्यन्त निगूढ़ रस-विहार विलास का साक्षी यह प्रिया कुण्ड अत्यन्त ही समादरणीय है। श्रीकृष्ण का प्रेम प्रदान करने वाला है।

श्रीकिशोरी दर्शन

यशोदानन्दकृष्णाय प्रियायै सततं नमः ।
किशोररूपिणे तुभ्यं वल्लभायै नमोस्तुते ॥

(कूर्म पु० व्र० भ० वि०)

1. हे रक्तिम तथा पीत वर्ण से परिपूर्ण तथा किशोरी के स्नान से मनहर किशोरी कुण्ड! श्रीकृष्ण के क्रीड़ा विधायक तीर्थराज! आपको नमस्कार है।

श्री कृष्ण के साथ प्रियाजी विराजमान हैं। हे श्री यशोदा जी को आनंद प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण ! हे श्रीकिशोरी प्रियाजी ! किशोर स्वरूप आप दोनों को नमस्कार है।

प्रेम सरोवर

ललिताप्रेमसंभूते प्रेमाख्य सरसे नमः ।
प्रेमप्रदाय तीर्थाय कौटिल्यपद नाशक ! ॥[1]

('ब्रह्मयामल' ब्र० भ० वि०)

प्रेम सरोवर प्रेम की भरी रहे दिन रैन ।
जहँ जहँ प्यारी पग धरत श्याम धरत तहँ नैन ॥

ओह ! प्रेम की पराकाष्ठा है इन प्रेमियों के राज्य में। 'प्रेम' शब्द वास्तव में इन्हीं युगल प्रणयी ब्रजराज कुँवर तथा उनकी आराध्या किशोरी श्रीराधा ही के राज्य की बात है। यही नहीं प्रियतम जो भी करते हैं, प्रियाजी को भाता है और जो प्रियाजी की रुचि है वही प्रियतम करते हैं यह कहकर श्रीमन्महाप्रभु हितहरिवंशजी महाराज ने प्रेम की उत्कृष्टता की बात कही है। प्रेमास्पद के सुख की मर्यादा में बँधा 'प्रेम' ही 'प्रेम' कहलाने योग्य है। वास्तव में इसी निर्मल सम्बन्ध को 'प्रेम' कहना होगा। यह वही 'प्रेम' सरोवर है जहाँ प्रिया-प्रियतम तथा उनकी कायव्यूह स्वरूपा इन ब्रजाङ्गनाओं ने 'प्रेम' के अनेक सरस कौतुक सजीव किये हैं।

यहाँ कदम्ब वृक्षों की सौरभ में मत्त, कभी विभिन्न रस वार्ताओं में संलग्न हो जाते हैं, यह प्रणयी रिझवार। परस्पर प्रेम जल से एक दूसरे को अभिसिञ्चित करते हैं, कभी वर्षा काल में हिंडोले की धूम से यह स्थली मुखरित हो जाती है, कभी नूपुर झङ्कार से यह स्थली गुञ्जायमान हो जाती है।

कहना ही होगा कि इन्हीं प्रणयोन्मादिनी बालाओं के रस विहार के कणांश यहाँ बिखरे पड़े हैं। उन्हीं कणांशों को समेटे, अपनी हृदयस्थली में संजोए यह स्थली पुलकित हो, 'प्रेम-सरसि' अथवा 'प्रेम-सरोवर' के नाम से विख्यात है।

श्रीललितामोहन स्थल

प्रेमप्लुताय कृष्णाय ललितामोहनाय ते ।
सदा प्रेमस्वरूपाय नमस्ते मोक्षदायिने ॥

('ब्रह्मयामल' ब्र० भ० वि०)

1. हे ललिता के प्रेम से उत्पन्न सरोवर ! प्रेम प्रदान करने वाले तीर्थराज ! आपको नमस्कार। आप कुटिलता को नाश करने वाले हैं।

हे प्रेम से परिप्लुत श्रीकृष्ण ! हे ललिता मोहन ! सर्वदा प्रेम प्रदान करने वाले ! आपको नमस्कार है ।

रासमण्डल

रासक्रीडोत्सवायैव ललितायुगलोत्सव !
नमस्ते रासगोष्ठाय मण्डलाय वरप्रद !

('ब्रह्मयामल' ब्र० भ० वि०)

हे रास गोष्ठी ! हे रासमण्डल ! हे श्रीललिता मोहन दोनों के ही उत्सव स्वरूप ! आपको नमस्कार । आप रास -क्रीड़ा उत्सव के लिये हैं ।

नित्य रसमयी इस ब्रज भूमि के सौभाग्य का लेखा भला कौन देने में समर्थ है ! जिसकी प्रत्येक स्थली श्रीकृष्ण चरण रज से स्पृष्ट है, उनकी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा तथा उन्हीं की सखी वृन्द के चरणों का संस्पर्श पा देवताओं तथा मुनियों के लिये भी वन्दनीय है । इन एकान्तिक रास स्थलियों का अपना ही महत्त्व है ।

उन्हीं एकान्तिक रसमयी लीलाओं का संयोजन जुटा यह महाभागा रासस्थली, रासमण्डल नाम से विख्यात हो गई ।

हिण्डोला स्थल

कृष्णवैमल्यदोलाय हिण्डोलसुखवर्धन !।
नमः कलामयतुभ्यं श्रावणोत्सवसंभवः ॥

('ब्रह्मयामल' ब्र० भ० वि०)

हे हिण्डोला स्थल ! आप श्रीकृष्ण के मनोहर झूलने के लिए हैं; आपको नमस्कार । आप सुख को बढ़ाने वाले हैं तथा कल्याणमय हैं, श्रावण के उत्सव से उत्पन्न हैं ।

श्रावण में झूलनोत्सव ब्रज की शोभा है । चारों ओर उमंग, झूमकर तरुवरों से लिपटी लताऐं, मयूर समूह का हर्षोल्लास, कोकिला की मत्त कुहू ध्वनि, दूर तक दृष्टिगोचर हरियाली तथा उसके चरणों में विलुण्ठित, जल प्रपूरित सरोवरों में उठती रस हिलोरें । कदम्ब वृक्षों की सौरभ और कहीं वृक्षों के आस-पास लगी सुरस भीड़ में गुञ्जायमान गान लहरी, सभी इन प्रिया-प्रियतम की रस-चेष्टाओं का आस्वादन करते, सुख में मग्न रहते हैं । यह ब्रज-बालाऐं तथा इनके प्रणयी रस रिझवार युग्म की तरङ्गों से यावत प्रकृति मत्त रहती है ।

भक्तिमती ऊषा बहनजी की झूलन की एक अनुभूति उन्हीं के शब्दों में हम उद्धृत कर रहे हैं-

झूलन में फूलन की वर्षा कर सखियां हरषाई ।
सहज सरस अखियां दोउन की और और सरसाई ॥
दुहुँ जन हँसि निरख्यो सखियन तन चितवन अति सुखदाई ।
तन पुलकित उत्फुल्ल वदन मन दृगन छई अरुणाई ॥
हँसत करत परिहास परस्पर नेह मेह झर लाई ।
प्रीतम हँसि बोले कछु अटपट सुनि श्यामा मुस्काई ॥
निरखि प्रिया तन निरखींसखिजन सहज उठे कछु गाई ।
झौंटे की रमकन के सँग सँग हीय उठे लहराई ॥

एक बार प्रियाजी झूलने के लिए प्रेम सरोवर पर पधारीं । सखियाँ भी साथ ही आईं । वहाँ पहले से ही सांवरे रङ्ग की एक सखी विराजमान थी । परस्पर वार्ता चलती रही, प्रियाजी को देख उल्लास में भर गई वह सांवरी सखी । झूलन का क्रम भी चलता रहा । हिंडोले की झूम तथा अन्तस की उमंगें, लगता था होड़ ही ले रही हैं । प्रियाजी कुछ-कुछ शंकित तो हुईं, परन्तु वाक्पटु इस सांवरी सखी से चर्चा करके भी वह कुछ अता-पता पा न सकीं ।

इस नवीना सखी को झुलाने का आग्रह कर, प्रियाजी स्वयं भी इस सखी के आग्रह पर, झूलने लगीं । वे कुछ-कुछ शंकित तो होती जातीं, परन्तु फिर भी अनजान का सा अभिनय करती रहीं । सखियाँ झुलाने लगीं । सहसा झूले की रमकन में उस नवीना, सांवरी सखी का आँचल, सरक गया । प्रियाजी उस सखी की अंगश्री निहार स्तब्ध रह गईं । 'दियो छद्म दिखाई री', बस वह छद्म वेषधारी सखी और कोई न थी, प्रियतम श्यामसुन्दर स्वयं ही थे । हास ध्वनि से गूँज उठी व स्थली ।

सभी गा उठीं -

झूलन लडैती राधा प्रेम सर आई री ।
सांवरी सहेली इक बैठी तहाँ पाई री ॥

वह झूलनोत्सव, श्रावणोत्सव तथा प्रणयोत्सव से भूषित हो, रस केलि में परिणत हो गया । कब तक यह हिंडोल उत्सव गतिमान रहा, कौन कहता ? प्रेम के साम्राज्य में इति नहीं है ।

उन्हीं रसीली स्मृतियों को अपने वातावरण में संजोये यह स्थली, प्रेम में सराबोर हुई, उसी से स्नान कर रही है ।

विह्वल वन

कदम्बलतिकाकीर्णवरविह्वलदायिने ।
विह्वलाख्यायरम्यायवनायचनमोनमः॥[1]

(देवी पुराण ब्र० भ० वि०)

यहाँ विह्वल कुण्ड है ।

विह्वल कुण्ड

अनेकानेक रस कौतुकों की स्थली है, ब्रज धाम । यह अत्यन्त रमणीय है । भावमयी लीलाओं के अनेक स्थल आज भी अपने वातावरण से आप्लावित कर, रस में सराबोर कर देते हैं ।

प्रेम का स्वभाव बड़ा विचित्र है । कभी-कभी तन्मयता की प्रगाढ़ता, सामीप्य में भी वियोग का भान कराती है, रस शास्त्र में इसे ही 'प्रेम वैचित्र्य' कहा है । एक बार इसी कुण्ड के पास के उद्यान में प्रियतम बैठे, प्रियाजी की बाट जोह रहे थे । एक सारिका प्रियाजी का गुण-गान करने लगी । यह सुन प्रियतम और और आकुल-व्याकुल हो गये । अधिक धैर्य धारण न कर सके । प्रियाजी के सामीप्य हेतु उनका मन अकुला उठा । अनेक संकल्प-विकल्पों के आवर्त्तों में डूबने-उतरने लगे । प्रिय नर्म सखा सुबल को जब सारी घटना का पता चला, तो उन्होंने प्रियाजी से मिलवाने का उपाय सोचा ।

हाँ तो, यह लो, सामने के लता द्वार को हटा अपनी सखियों सहित, प्रियाजी वहीं चली आईं । प्रियतम आनन्द में भर, प्रियाजी को अपने समीप पा, रस में निमग्न हो गये । अतृप्ति की सीमा न थी । अत्यन्त समीप होकर भी विचारों की प्रगाढ़ता के कारण उन्हें सामीप्य का भान नहीं हो रहा था । वे आत्म-विह्वल हुए जा रहे थे । इसी विह्वल स्थिति की रस गाथा का अता-पता देती यह स्थली 'विह्वल कुण्ड' नाम से विख्यात हो गई ।

पास ही 'विह्वल विहारी' के दर्शन हैं। संकेत ग्राम के अग्निकोण में विद्यमान है।

संकेत

युगलागमवेषाय राधायै नन्दसूनवे ।
संकेतवनरम्याय नमस्तुभ्यं प्रसीद मे॥[2]

(कूर्म पुराण)

---

1. हे कदम्ब लताओं से व्याप्त एवं विह्वल करने वाले मनोहर वन ! आपको नमस्कार ।
2. श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा का मिलन स्थल है । इसे ही संकेत स्थल कहते हैं । परस्पर मिलन का, संकेत देने का स्थल संकेत वट के नाम से विख्यात है ।

अनेकानेक संकेतों में छविमान श्यामसुन्दर की रस चातुरी, गोप्य रस रहस्यों की भूमिका निभाती यह स्थली, संकेत वट नाम से विख्यात है।

ब्रज का सरसीला वातावरण समस्त स्थली को ही सरस, स्निग्ध तथा मनोहारी बना रहा है। ऐसे में ये प्रेम रस बावरे अपनी पूर्व योजना वश घर से बाहर निकले। प्रियतम अपनी चिर संगिनी मुरलिका को हाथ में ले अधरों से लगा, प्रणय संदेश प्रवाहित करने लगे। उसी के वशीभूत, प्रेम बावरी यह ब्रजाङ्गनाएँ वहीं आ पहुँचीं। प्रियतम ने मुस्कान युत चितवन से संकेत दिया, अपनी केशावली को किञ्चित् सम्हालने का अभिनय करते हुए जाने क्या संकेत दे इन्हें गुदगुदा दिया, क्षण भर को अपनी कोमल भुजा उठा पुनः नीचे कर किसी रसीले संकेत से इन बालाओं को और, और उकसा दिया। अपनी वनमाल सँवारने के मिस, हाथ में ले उसे सहला, किसी मादक रसीले संकेत में सराबोर कर दिया, प्रणयिनी इन बालाओं को। यह लो ! त्रिविध समीरण ने पीत पट को एक बार झकझोर-सा दिया, पीत-पट फहरा, प्रियतम के स्कन्ध से तनिक खिसक गया। कौन जाने यह भी कोई मादक प्रणय संकेत ही था ? यह संकेत था अथवा संदेश ? परन्तु यह संकेत ही संदेश बना इनकी हृद्गत भावनाओं को एक से दूसरे के पास ले जा रसास्वादन कराने में सफल हुआ। वास्तव में संकेतों और संदेशों की स्थली का नाम ही वृन्दावन अथवा ब्रज है। यहाँ के रसीले संकेतों में प्रियतम, स्वयं ही छविमान रहते हैं।

स्मर-समर क्षेत्र ही संकेत नाम से विख्यात है। यहाँ उसी की भूमिका तथा चरितार्थता है।

एक बार भोर में ही कन्हैया उठ गये। मैया ने पूछा, "लाला आज इतनी भोर में कैसे उठ गया तू", आप बोले, "मैया ! कुछ नहीं।" मैया ने झारी में से जल दे, मुख प्रक्षालन कराया। उधर किशोरी श्रीराधा भी भोर में ही जाग गईं और-

ग्रीवा सों मोती लर तोरी।
आँचर बाँध मात की चोरी॥

कीर्तिदा मैया ने, किशोरी श्रीराधा से पूछी, जल्दी उठने की बात। श्रीराधा ने कहा, "मैया ! कल मैं श्रीललितादि को साथ ले जब श्रीयमुना स्नान करने गई थी, तो मेरी मोती की माला तट पर रखी रह गई।" 'मैया तेरे डर से मैंने यह बात नहीं बतलाई।' मैया को माला के खो जाने का दुःख हुआ। वे और अधिक जानकारी लेने लगीं तथा बोलीं, "जा, लाली ! तू जल्दी जा और अपनी माला ढूँढ़कर शीघ्र अईयो।" किशोरी श्रीराधा चल दीं-

निधरक चली सदन ते प्यारी ।
मन अटक्यो वन कुंजविहारी ॥

किशोरी श्रीराधा जा पहुँचीं पूर्व की संकेत स्थली पर ।

इधर नन्द-नन्दन उतावले हो उठे । 'मैया से भूख की बात कही ।' मैया ने सारी सामग्री जुटा दी । सखाओं सहित कन्हैया आरोगने लगे । परन्तु सहसा ही-

बिन जेंये मोहन उठे, कर ते कौर गिराय ।
जेंवत ही छाँड़े सखा, चले बनहिं अकुलाय ॥

सबने इसका कारण पूछा तो कन्हैया बोले, "मुझे ग्वारिया कह गया था कि आज मेरी प्यारी गाय ब्याऐगी । अभी-अभी मुझे उसकी स्मृति हुई है, अतः मैं जा रहा हूँ ।" यह कह श्यामसुन्दर पूर्व सुनिश्चित स्थली के लिये चल दिये ।

पहले से ही किशोरी श्रीराधा वहाँ विराजमान थीं ।

मिले धाय गहि अंकम माला ।
कनक बेलि जनु लगी तमाला ॥

और फिर यह संकेत-स्थली, अब अपने संकेतों की चरितार्थता में, किसी दिव्य रस में सिक्त हो गई ।

नवल कुञ्ज नव नागरी नव नागर नवचन्द ।
प्रेमसिन्धु मर्याद तजि मिले उमगि आनन्द ॥

इस दिव्य रस गाथा की बात, कौन कहती ? जिसने देखी वह भी छकी-सी इन्हीं रसीली सुरसताओं में खो गई ।

श्रीनन्दगाँव तथा बरसाने के मध्य में यह स्थली आज भी अपनी मिलन गाथा का इतिहास कह रही है । यहाँ 'संकेत देवी', 'संकेत विहारी' के दर्शन हैं ।

'श्रीगोसांई विट्ठलनाथजी' तथा 'श्रीगोपालभट्टजी' की बैठक है । इन्हीं श्री गोपाल भट्ट जी को श्री राधारमण जी के प्राकट्य का श्रेय प्राप्त है ।

श्रीश्रीवल्लभाचार्यजी की बैठक

श्रीमदाचार्य ने यहाँ श्रीमद्भागवत सप्ताह पारायण किया । श्री महाप्रभु जी की कृपा से वैष्णवों ने साक्षात संकेतदेवी के दर्शन किये ।

ब्रज भूमि मोहिनी

श्रीनन्दगाँव

(नन्दगाँव नित आनन्द धाम)

षष्ठम खण्ड

नन्दग्रामसुसंस्थाता यशोदानन्दवर्धनः ।
कीर्तिवृषभानुवपुः दर्शी सुसूक्ष्मदृष्टिकृत् ॥

नैमिषखण्ड में वर्णित-'सहस्रनामावली'

आस-पास की अन्य स्थलियाँ

1. महराना (मोहिनी वन)
2. जाववट (जाव ग्राम)
3. कोकिलावन
4. बिजवारी
5. सांखी
6. छाता (छत्र वन)
7. उमराव
8. कोसी (कुश स्थली)
9. नरीसेमरी
10. रनबाड़ी
11. खायरो (खिदिर वन)
12. बकथरा
13. भदावर (भाण्डागोर)
14. बठैन (छोटी, बड़ी)
15. भड़ोखर
16. हारोयाल-ग्राम
17. पाईग्राम
18. कामर
19. विछोर (विस्मरण-वन)
20. श्रृङ्गारवट
21. वासोली
22. पय-ग्राम
23. कोटवन
24. चमेली वन
25. रासौली
26. दधिग्राम
27. शेषशायी
28. खामी तथा बनचारी ग्राम
29. खरोट
30. ऊजानी ग्राम
31. फालेन

संमुष्णन्नवनीतमन्तिकमणि स्तम्भे स्वबिम्बोद्भवम् ।
दृष्ट्वा मुग्धतया कुमारमपरं सञ्चिन्तयन् शङ्कया ॥
मन्मित्रं हि भवान् मयात्र भवतो भागः समः कल्पितो ।
मा मां सूचय सूचयेत्यनुनयन् बालो हरिः पातुवः ॥[1]

(केषांचित्)

सखी ! यह धन्य नन्दजी को गाँव-
जहाँ नित मिलिहैं सांवरिया ।

(भक्तिमती ऊषाजी)

'नन्दग्राम', श्रीनन्दजी का ग्राम, उनका निवास स्थल 'नन्दग्राम' सभी वैष्णव मात्र के लिए वन्दनीय है, सेवनीय है । यहाँ श्यामसुन्दर की रूप माधुरी का जादू बरबस ही मन का अपहरण कर लेता है । वह जादू रूप की माधुरी से झर, मधुर मुस्कान से झर, मधुर बतरान से झर, स्निग्ध अलकावलि से झर, बंक विलोकन से झर, यहाँ के कण-कण में भरा है । कहाँ तक कहें नन्दनन्दन 'मधुरातिपतेरखिलं मधुरं' तो हैं ही, श्रीबिल्वमंगलजी महाराज ने कहा -

मधुरं मधुरं वपुरस्य विभो-
र्मधुरं मधुरं वदनं मधुरं ।
मधुगन्धि मृदुस्मित मेतद्हो-
मधुरं मधुरं मधुरं मधुरं ॥

(श्रीकृष्णकर्णामृत)

उनका सुकोमल गात मधुर है, उनका चारु मुखकमल मधुर है, उनके अङ्ग-प्रत्यङ्ग से सुगन्धि के स्रोत ही निःसृत हो रहे हैं,उनकी मुस्कान मधुर है, और क्या कोई कहे? वे मधुर हैं, मधुर हैं, मधुर हैं , मधुर हैं । उनकी रूप मधुरिमा का आस्वादन कर, अभिव्यक्त करने के लिए शब्द कहाँ से लावे कोई ?

हाँ ! तो यह नन्दग्राम, श्रीनन्दरायजी की निवास स्थली रही है । पहले श्रीनन्दरायजी के पूर्वज, यहीं नन्द ग्राम के ही निवासी रहे हैं-किसी कारणवश वे बाद में गोकुल (महावन) जाकर बस गये । श्रीकृष्ण प्राकट्य के समय, वे गोकुल में ही विराजमान थे । श्रीनन्दजी गोकुल में राक्षसों के उत्पातों से

1. श्रीकृष्ण माखन-चोरी करते-करते, निकटवर्ती मणि स्तम्भ में अपना प्रतिबिम्ब देखकर, बाल सुलभ मुग्धता के कारण शंकित हो प्रतिबिम्ब को ही दूसरा बालक समझकर बोले, अरे भइया ! तू तो मेरा पुराना मित्र है, मैंने तो तेरा आधा भाग पहले से ही निकालकर रख दिया है, ले, चुपचाप खाले यार ! मैया से मेरी शिकायत न करना, नहीं तो मोय बहुत मारेगी । इस प्रकार बारम्बार अनुनय विनय करने वाले बाल भगवान, तुम्हारी रक्षा करें ।

भयभीत होकर अपने लाला कन्हैया, अन्य गोप समूह तथा अपने गोधन सहित, श्रीयमुनाजी के रमणीय तटवर्ती स्थल, वृन्दावन चले आये, जो गौऔं के लिए सुन्दर गोचारण स्थली थी। यहाँ गोपों के लिए फलों वाले अनेक वृक्ष थे। यहाँ रहने पर भी, कंस द्वारा प्रेरित राक्षसों का आवागमन निरन्तर बना रहा-अतः कुछ समय बीतने पर, किसी भी सुरक्षित स्थली पर चले जाने की सोचना, बहुत स्वभाविक था।

राक्षसों के उत्पातों से भीत होकर, सभी बड़े गोपों को बुला, मैया यशोदा परामर्श करने लगीं। लाला के कुशल क्षेम की चिन्ता उसे निरन्तर बनी रहती। श्रीनन्दरायजी ने, यशोदा मैया की शङ्का का निवारण कर, श्रीगर्गाचार्यजी महाराज के वचन याद करा आश्वासन बँधाया, किन्तु वात्सल्याभिभूत हृदय, इस सबसे कैसे सहमत होता। आशंका बनी रहना अत्यधिक प्रेम का परिचायक है।

'श्रीनन्दग्राम', 'ब्रज', 'गोकुल' तथा 'गोष्ठ' वेदों तथा पुराणों में थोड़े बहुत अन्तर सहित लगभग एक ही स्थली, श्रीनन्द गाँव के लिए प्रयुक्त हुए हैं। जहाँ श्री नन्दराय जी का निवास रहा है, वही नन्दगाँव कहा गया है। वेदों में 'ब्रज' शब्द का प्रयोग, गोचर भूमि के लिए हुआ है। ऋगवेद में भी इसी आशय को स्पष्ट करते हुए गउओं के चारागाह आदि के लिए व्रज शब्द का उल्लेख हुआ है -

ते ते धामान्युश्मसि गमध्ये गावो यत्र भूरि श्रृंगा अयासः।
अत्राह तदुरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभांति भूरेः॥

(तैत्तरीय संहिता 1/3/6)

भगवान के धाम को, जहाँ गाय अथवा पशु रहते हैं, परम पद 'गोकुल' की संज्ञा दी गई है। गउओं के रहने का स्थान ही गोकुल है।

गोधन श्री नन्दराय जी आदि गोपों की आजीविका का मुख्य साधन रहा है। 'कृषि' और 'गोपालन' दोनों ही कार्य गोपों को प्रिय रहे हैं-अतः अपने मुख्य तथा प्रिय धर्म के नाम को लेकर ही श्रीनन्दरायजी ने गोकुल शब्द से, अपनी निवास स्थली को गौरवान्वित किया है। श्रीनन्दराय जी सभी गोपों के अग्रणी रहे हैं, उन्हीं के नाम से उनकी निवास स्थली को नन्दग्राम कहा गया है।

श्रीमद्भागवत में 'गोकुल' तथा 'ब्रज' शब्द एक ही स्थली श्रीनन्दरायजी की निवास स्थली अर्थात् श्रीनन्द-गाँव के अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं -

इति सञ्चिन्तयन् कृष्णं श्वफल्क तनयोऽध्वनि।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/38/24)

1. श्रीशुकदेवजी कहते हैं - राजा परीक्षित! श्वफल्क नन्दन अक्रूरजी मार्ग में इसी प्रकार विचार करते हुए रथ द्वारा गोकुल पहुँच गये और सूर्य अस्ताचल को चले गये।

ददर्श कृष्णं रामं च ब्रजे गोदोहनं गतौ।
पीतनीलाम्बरधरौ शरदम्बुरुहेक्षणौ ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/38/28)

इसके अतिरिक्त 'गोकुल' तथा 'गोष्ठ' शब्द भी नन्द-ग्राम के लिए कहीं-कहीं प्रयुक्त हुए हैं।

हरिवंश पुराण में श्रीनन्दरायजी के गोष्ठ को 'ब्रज' शब्द की संज्ञा दी गई है।

अतः 'ब्रज', 'गोकुल', 'गोष्ठ', 'नन्दग्राम' आदि शब्द, श्रीनन्दरायजी की निवास स्थली के लिए जहाँ-तहाँ प्रयुक्त हुए हैं।

श्रीमद्भागवत में ही ब्रज का मुख्यतया दो प्रमुख भागों में विभाजन दीखता है। एक है 'वृहद्वन' तथा दूसरा 'वृन्दावन'। वृहद्वन की परिसीमा में भद्रवन, मधुवन, तालवन, कमोदवन आदि को सम्मिलित किया गया है तथा श्री गिरिराज, वृषभानुपुर, श्री नन्दग्राम आदि दूर-दूर तक की स्थलियाँ वृन्दावन के अन्तर्गत ही मानी गईं हैं। अतः नन्दग्राम भी वृन्दावन के अन्तर्गत माना गया है।

नन्दग्राम श्रीनन्दरायजी का निवास स्थल रहा है। यहाँ की रमणीय स्थलियाँ, सघन वृक्षावलि, मनोरम कुण्ड तथा गोचर भूमि सभी के मन को सहज लुभा रही हैं।

यत्र नन्दोपनन्दास्ते प्रति नन्दाधिनन्दनाः।
चक्रुर्वासं सुखस्थानं यतोनन्दाभिधानकम् ॥[2]

(आदि पुराण)

"सुदूर चमक रही अट्टालिकाएँ, चारों ओर बस्ती, बीच में गिरि शिखर पर श्रीनन्दरायजी का भवन, नीचे चारों ओर वन्य शोभा, पुष्पित उद्यान, निर्मल स्वच्छ सरोवर, जिन्हें इन कदम्ब पुष्प मण्डित वृक्षों, श्याम तमालों से लिपटी मृदु वल्लरियों तथा तटीय सघन निकुञ्जों ने आच्छादित कर एकान्तिक विहार स्थली ही बना दिया है। इन्हीं, हाँ, हाँ, इन्हीं, वृक्ष समूहों में मुखरित केकी समूह, पी कहाँ की मधुर झंकार, कोकिला की कुहू ध्वनि, छोटे-छोटे रङ्ग-बिरंगे पक्षियों की चहक....अहा ! इस सब मतवाले वातावरण से स्पृष्ट हो, किसका मन मयूर नृत्य न कर उठेगा ? मृग समूहों की टोलियाँ, शशकों की चञ्चलता-चपलता, हरित दूर्वा सी शस्य-श्यामल भूमि, कितनी लुभावनी, मनोहारिणी लगती है।

गो समूह, चारों ओर आहार की खोज में रत, परन्तु अपने प्राणधन नन्दनन्दन की रूप माधुरी के पान हेतु, उनकी स्वर लहरी सुनने को, सर्वथा

---

1. ब्रज में पहुँच कर अक्रूरजी ने श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों भाइयों को गाय दुहने के स्थान में विराजमान देखा। श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण पीताम्बर धारण किये हुए थे तथा गौर सुन्दर बलराम नीलाम्बर। उनके नेत्र शरत्कालीन कमल के समान खिले हुए थे।

2. यहाँ श्रीनन्दराय जी, उपनन्द, प्रतिनन्द, अभिनन्द तथा सुनन्दजी ने वास किया है, इसलिये यह नन्दग्राम नामक सुख स्थान है।

सजगता से, यत्र-तत्र विचर रहे हैं। इधर गो वत्सों के झुण्ड, कूदते-फुदकते अपने प्रिय कन्हैया से लाड़, प्यार-दुलार पाने को आकुल-व्याकुल किसे न आकर्षित कर लेंगे।

हाँ-हाँ, यहीं नन्द-भवन है। श्री कृष्ण की बाल-लीलाओं की माधुरी से भूषित, यह नन्दग्राम है। उनका मनभावन ग्राम, अपना गाँव, हाँ-हाँ यही है वह नन्दग्राम। यहाँ कन्हैया की सुरस केलि प्रवहमान है-उसीमें भीजे इन भक्त महानुभावों के, ब्रजवासियों के तथा ब्रजाङ्गनाओं के उर-अन्तर सरसता में भरे मग्न हैं, मत्त हैं तथा प्रफुल्लित हो रहे हैं। नन्द बाबा का लाड़ला लाल जहाँ एक ओर बाल सुलभ केलि द्वारा बाबा तथा मैया को अमित सुख में सराबोर कर रहा है, वहीं दूसरी ओर ब्रजाङ्गनाओं में नव किशोर रूप में उनकी प्रणय पगी भावनाओं, राग-पूर्ण अभिलाषाओं को सत्कृत तथा पुरस्कृत करता रहा है।

श्रुतिमपरे स्मृतिमितरे भारतमन्ये भजन्तु भवभीताः।
अहमिह नन्दं वन्दे यस्यालिन्दे परं ब्रह्म क्रीडति॥[1]

(श्रीरघुपति उपाध्याय)

बड़े-बड़े अनेक राक्षसों का वध कर, देवराज इन्द्र को परास्त कर, कन्हैया अब श्रीनन्दरायजी के भवन में अनेकानेक मधुर लीलाओं द्वारा बाबा, मैया तथा गोपों और गोपिकाओं के लिए आनन्द वर्द्धन कर रहे हैं। वे गोचारण हेतु वन में जाते हैं, सखाओं को आनन्द प्रदान करते हैं। गोचारण में अपनी अत्यन्त प्रिय गउओं को सुख प्रदान करते हैं। अपने सखाओं को छल कर, कभी अपनी इन अनन्या प्रियाओं को अमित सुख में बोर देते हैं। वन से गोधन सहित ब्रज को लौटते हुए, प्रतीक्षा-रत, प्रणय-विह्वला, अपनी प्रियाओं को, रस संकेत दे, अनेक सरस लीलाओं का आयोजन करते हैं। यह बाल रूपधारी कन्हैया केवल बाल वेष-धारी ही नहीं है, गोपिकाओं ने पहले दिन से ही इन्हें नव किशोर रूप में देखा है।

एक भक्त कह रहे हैं -

ब्रूमस्त्वच्चरितं तवामि जननीं छद्मातिबालाकृते।
त्वम् यादृग्गिरिकन्दरेषु नयनानन्दः कुरङ्गीदृशाम्॥
इत्युक्तः परिलेहनच्छलतया न्यस्तांगुलिः स्वानने।
गोपीभिः पुरतः पुनातु जगतीमुत्तानसुप्तो हरिः॥

(श्रीवनमालिनः पद्यावलि 136)

---

1. इस संसार में जन्म-मरण के भय से भीत कोई जनश्रुतियों का आश्रय लेते हैं, तो कोई स्मृतियों का और कोई महाभारत का ही सेवन करते हैं, तो वे करें, परन्तु मैं तो उन श्रीनन्दरायजी की वन्दना करता हूँ, जिसके अलिन्द में परब्रह्म, बालक बनकर खेल रहा है।

हे श्रीकृष्ण ! बाहर से तो आप छद्म वेष से बालक की सी आकृति बनाये बैठे हो, परन्तु श्रीगोवर्धन पर्वत की गुफा में तो मृगनयनी गोपियों को, आनन्द प्रदान करते रहते हो, इन कपट छल की सारी बातों को हम तुम्हारी मैया के सामने खोलकर सुना देंगी तो तुम सब भूल जाओगे। गोपिकाओं के ऐसा कहने पर उनके सामने ही चूसने के मिस अपने मुख में, उंगली धरकर, ऊपर को चरण फैलाकर, पलने में चित्त सो गये, वे ही श्रीहरि जगत् को पवित्र कर दें।

एक ही समय में विभिन्न धर्मों के आश्रय हैं, ब्रजराज श्यामसुन्दर।

कन्हैया अब और बड़े हो गये। वयसन्धि में प्रविष्ट हो गये। श्री बिल्वमङ्गलजी महाराज ने उस वयश्री को, "तारुण्य संवलित शीत किशोर वेषम" कहा। जहाँ शैशव का भोलापन, तारुण्य का विस्मय तथा कैशोर्य की सजगता का संगम ही हो गया है।

श्रीकुम्भनदासजी ने 'कछुक उठत मुख रेखे' कहकर उस वयश्री का किञ्चित् संकेत दिया है।

अब कन्हैया आस-पास के घरों में माखन चोरी हेतु जाने लगे। कहीं से माखन चुरा रहे हैं, तो कहीं वन पथ में, दधि दान हेतु रार मचा रहे हैं।

सुदूर किसी ब्रजबाला को सिर पर मटुकी लिए एकान्त वीथि से जाते देखा। आप दूसरे मग से शीघ्रता से बढ़ उसके रास्ते में जा खड़े हुए। बोले, "ग्वारिन ! नेक माखन दही तो खवाय दे।" ग्वालिनी भी जरा ऐंठ-उमैंठ में भरी बचकर पग बढ़ाने का प्रयास करने लगी। आपने उसकी बाँह पकड़ रोकते हुए, उसके कण्ठ का हार ही तोड़ दिया। अब भला बिना हार लिए कैसे जाती वह बाला।

हार तोरि बिथुराय दयौ।
मैया पे तुम कहन चली कत दधि माखन सब छीन लयौ॥
रिस करी धाय कंचुकी फारी अब तो मेरो नाम भयौ।
कालि नहीं यह मारग ऐहौं ऐसे मोसौं बैरु ठयौ॥
भली बात घर जाउ आजु तुम माँगत जोवन दान नयौ।
सूरदास मुख ही रिस युवतिन उर उर अंतर काम जयौ॥

पहले तो माला ही तोड़ी। लो ! अब कन्हैया की ढिठाई-देखो ! वस्त्राभरण भी फाड़ दिये। अब तो इस मार्ग से आना ही न होगा ? यह झगड़ा, झगड़ा नहीं है। 'प्रेम' के किसी रसीले उच्छलन की कोई सरस तरङ्ग है, तभी तो इतने पर भी वह ग्वालिनी 'सूरदास मुख ही रिस युवतिन उर-उर अन्तर काम जयो।' अन्तर में किसी सरस काम का संचार हो गया।

वन में, अपने प्यारे सखाओं सहित कन्हैया, अनेक खेलों का आयोजन कर, सखाओं को परम आनन्द प्रदान कर रहे हैं; कभी अपनी गउओं को नाम ले, लेकर

पुकार रहे हैं और वह गैया अपने प्रिय कन्हैया से लगी-लिपटी-सटी, उनके पास भागी चली आ रही हैं, तो उन पर सम्पूर्ण प्यार से सिञ्चित् कर फिरा रहे हैं।

हाँ ! तो लो ! अब वन से लौटने का समय हो गया। वे गोधन सहित लौट रहे हैं। साँवरे अङ्गों पर गोरज लगी है। अपनी गउओं की रज को, अपने मस्तक पर धारण कर कन्हैया प्रेम में भीजे आ रहे हैं। सखाओं सहित विनोद करके खिलखिला देते हैं, कभी मत्त गजेन्द्र की सी चाल से नटवर वेष धरे नन्दनन्दन , डगमगाते चले आ रहे हैं। हाँ, तो वे बस्ती के समीप आ गये। अपनी-अपनी अटारियों पर बैठी, प्रतीक्षारता, इन बालाओं के घूंघट चञ्चल हो गये। नयन पथ पर बिछाये प्यारे कन्हैया की अगवानी को यह बालाएँ आतुर हो गईं और कन्हैया किसी को नेत्रों से संकेत दे गुदगुदा रहे हैं, किसी की ओर निहार, मृदु मुस्कान से उसकी सम्पूर्ण राग भरी भावनाओं का सत्कार कर रहे हैं, तो किसी पर पुष्प गुच्छ उछाल, रस में सराबोर कर रहे हैं। ऐसे में भी, कभी किसी बाला के समीप जा, उसे गुदगुदा, रस में सराबोर कर, कब पथ में नीचे आ गये, कोई जान ही न सका। अब आगे बढ़े, पुष्प हाथ में ले, प्यार उँड़ेल, मधुर रस से सिञ्चित कर, किसी के ऊपर इस तरह से उछाला कि उसके आतुर हृदय को छू, अंक में जा गिरा- ओह ! यह 'चातुर्यैक निदान सीम', माधुर्यरससारसिन्धु, प्रणयी रिझवार अपनी प्रियाओं को भाँति-भाँति से रससिक्त कर रहे हैं और यह बालाएँ, "नयनन सों भरि अँकवार", प्रिय सामीप्य पा, अपनी उन्मद रस भावनाओं में खो जाती हैं।

इधर मैया, आरती सजाये प्रतीक्षारत हैं। अपने लाला का श्रम निवारण कर ब्यारू के लिये आग्रह कर रही हैं। ऐसे ही अपने जनों के आनन्द का वर्धन करते नन्दनन्दन श्यामसुन्दर, कभी दूध दुहने के लिये खिरक में जा रहे हैं और कभी कोई बहाना बना, मैया के वात्सल्य रस को सत्कार, अपनी प्राण-प्रिया किशोरी श्रीराधा, ललिता-विशाखादि को साथ ले, सुरस केलि विहार में रत हो जाते हैं।

मुनिजन दुर्लभ, योगियों के लिये अगोचर, अखिल बह्माण्ड नायक, ब्रज राजकुमार श्रीनन्दरायजी के आँगन में विचरण करते एक ही समय में सभी को सम्पूर्ण आनन्द में सराबोर कर रहे हैं। इसी रसानन्द का आस्वादन कर इस श्यामलोज्ज्वल छवि को निहार, किन्हीं भक्त ने कहा-

श्रृणु सखि ! कौतुकमेकम्, नन्दनिकेतनाङ्गने मयादृष्टम्।
गोधूलिधूसरिताङ्गो नृत्यति, वेदान्त सिद्धान्तः ॥[1]

1. अहा ! अहा ! क्या ही कौतुक की बात है, मैंने श्रीनन्दराय जी के आंगन में समस्त वेदान्तों के सिद्धान्त नन्दनन्दन को धूलधूसरित अंग से नृत्य में संलग्न देखा है।

स्थलियाँ

ग्रामस्य पश्चिम भागे मधुसूदन कुण्डं। तत्रैव मधुसूदन मूर्त्तिः। श्रीयशोदा कुण्डं। पाषाणस्वरूपका कृष्णदर्शकाः हावकानां मूर्तयः। ललिता कुण्डं। तत्पार्श्वे मोहन कुण्डं। दोहिनीकुण्डं। दुग्ध कुण्डं। कृष्ण दधिभाण्ड-भञ्जनात् प्रपूरितं दधिकुण्डं। ग्रामादग्रतः पावनाख्य सरोवरम्। तन्मध्ये यशोदा कूपम्। तत्पार्श्वे कदम्ब-खण्डाख्य वनम् ग्रामाभ्यन्तरेयशोदा दधि-मन्थनस्थानम्। तत्पार्श्वे नन्दीश्वराख्य महारुद्र मूर्तिः। रुद्र पर्वतो-परि नन्दराय-मन्दिरम्। तत्र नन्दरायशोदाकृष्णबलभद्रदर्शनम्। तत्पार्श्वेयशोदा-नन्दनयुगलमूर्तिः।

(वाराह पुराण)

अर्थात् ग्राम के पृष्ठ भाग में मधुसूदन कुण्ड है। वहाँ श्रीमधुसूदन मूर्ति है, श्रीयशोदा कुण्ड के समीप ही श्याम वर्ण की पाषाण रूपा हावकों की मूर्ति और श्रीललिता कुण्ड है। उसके समीप ही मोहन कुण्ड, दोहनी कुण्ड, दुग्ध कुण्ड तथा दधि कुण्ड हैं। ग्राम के अग्र भाग में पावन सरोवर है। उसके मध्य में श्रीयशोदा कूप है। उसके पास ही कदम्ब खण्डी नामक वन है। ग्राम के मध्य भाग में श्रीयशोदा दधि मन्थन स्थान है। उसके पास श्रीनन्दीश्वर नामक महारुद्र मूर्ति है। श्रीरुद्र पर्वत के ऊपर ही श्रीनन्दराय जी का मन्दिर तथा भवन है। वहाँ श्रीनन्दराय जी, श्रीयशोदाजी, श्रीकृष्ण तथा बलभद्र के दर्शन हैं। उसके पास ही श्रीयशोदानन्दन युगल मूर्ति है।

सच पूछो तो ब्रज भूमि ही परम पवित्र और धन्य है, क्योंकि यहाँ पुरुषोत्तम, मनुष्य के वेष में छिपकर रहते हैं। स्वयं भगवान शङ्कर तथा लक्ष्मीजी जिनके श्रीचरणों का पूजन करती हैं, वे ही प्रभु यहाँ रङ्ग-बिरङ्गे वन्य पुष्पों की माला धारण कर श्रीबलरामजी के साथ बाँसुरी बजाते, गौएँ चराते, भाँति-भाँति के खेल-खेलते हुए आनन्द से विचरते हैं।

श्रीनन्द, यशोदा, बलराम तथा श्रीराधाकृष्ण दर्शन

नन्दधातृ नमस्तुभ्यं यशोदायै नमो नमः।
नमः कृष्णाय बालाय बलभद्राय नमो नमः॥

(ब्रह्मवैवर्त पुराण)

हे नन्द धातृ ! आपको नमस्कार। हे यशोदे ! आपको नमस्कार। हे बालक श्रीकृष्ण तथा बलदेव ! आप दोनों को नमस्कार है।

श्रीनन्दीश्वर गिरि रूप में श्रीकृष्ण दर्शन तथा लीलास्वादन हेतु नन्दग्राम में विराजते हैं। उन्हीं नन्दीश्वर पर्वत पर श्रीनन्दरायजी, मैया यशोदा तथा दोनों भैया श्रीकृष्ण एवं बलदेवजी विराजते हैं। (अभी कुछ वर्ष पहले प्रियाजी के

स्वरूप भी विराजमान हो गये हैं ।) श्रीनन्दराय जी का महल है यह तथा उसी की स्मृति को प्रत्यक्ष करते दोनों भैया, मैया और बाबा के साथ आज भी वैष्णव जगत के लिये वन्दनीय हैं । सखाओं को अनेक खेलों द्वारा आनन्द प्रदान करते हैं और इधर ब्रज रमणी वृन्द की भीर में कन्हैया सदा-सदा से ही किशोर रूप में विराजमान होकर अनेकानेक मधुर लीलाओं में संलग्न रहते हैं, एक ही समय में सभी को अलग-अलग रसास्वादन करा रहे हैं ।

श्रीकृष्ण-बलदेव स्वरूपों के प्राकट्य सम्बन्धी एक सरस इतिहास प्रसिद्ध है, जिसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

आजके सेवायत गोस्वामीगण के पूर्वज खारोट ग्राम के निवासी थे । वे गैया चराते और खेती का कार्य देखते थे । एकबार श्रीआनन्दघन जी (गोस्वामीगण के पूर्वज) के बाबा यहाँ पास ही गैया चरा रहे थे । एक गैया पर्वत पर गई और एक गिरि कन्दरा में अपना दूध स्वतः अर्पित (स्रवित) कर चली आई । इस बात का जब उन्हें पता चला तो उन्होंने पास की हींस की झाड़ी को खोदना शुरू किया । कहते हैं कि श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों स्वरूप इसी स्थली से प्रकट हुए । वे स्वयं प्रकट स्वरूप ही मन्दिर में विराजमान हैं ।

अपने शिष्यों सहित श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्य जी जब यहाँ पधारे तो दर्शन कर विभोर हो गये ।

"अपने शिष्यों सहित श्रीमदाचार्य नन्दगाँव पधारे, जहाँ नन्दीश्वर शिव लिङ्ग रूप में विराजमान हैं ।"

(वल्लभ दिग्विजय)

श्रीश्रीचैतन्यमहाप्रभु जब नन्दग्राम पधारे तो वे प्रेम में विह्वल हो गये । उनकी प्रेम दशा का सजीव चित्र भक्तिरत्नाकर ग्रन्थकार ने अंकित किया है, जिसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

अहे श्रीनिवास ! एथा श्रीचैतन्यराय ।
करिते दर्शन गिया प्रवेशे गोफाय ॥
श्रीनन्द यशोदा दुई दिके दुई जन ।
मध्ये कृष्णचन्द्र देखि प्रफुल्ल नयन ॥
प्रेमेर आवेशे नृत्य गीत आरम्भिल ।
देखिया सकल लोक विस्मय हईल ॥

(भ० रत्नाकर)

हे श्रीनिवास ! श्रीचैतन्यमहाप्रभुजी गुफा में जाकर श्रीनन्दराय तथा यशोदाजी के मध्य में विराजमान श्रीकृष्ण-बलराम को देख प्रेमावेश में भर गान तथा नृत्य करने लगे । उन्हें देख सभी लोग विस्मय-विमुग्ध हो गये ।

अपूर्व शोभा लिए यह स्थली श्रीनन्द भवन नाम से विख्यात है।

पावन सरोवर

पावने सरसि स्नात्वा कृष्ण नन्दीश्वरे गिरौ।
दृष्ट्वा नन्द यशोदां च सर्वाभीष्टमवाप्नुयात्॥[1]

(मथुरा माहात्म्य)

नन्दग्राम में भोले-भाले ब्रजवासी एक दोहा गाकर पावन सरोवर के महत्त्व का वर्णन प्रायः करते हैं -

सिंह पौर को बैठनो, पावन को अस्नान।
झांकी बाबा नन्द की, सहज मिलें भगवान॥

पावन सरोवर, यथा नाम तथा गुण से परिपूर्ण सरोवर, श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। सखा मण्डली सहित वे यहाँ आते हैं। नित्य ही स्नान कर विविध क्रीड़ाओं द्वारा, घण्टों अपने जनों को आनन्द प्रदान करते हैं। तट पर सखाओं सहित कभी चकडोरी, कभी चकरी परेता और कभी कुश्तियों के आयोजन होते हैं और फिर यह सखा मण्डली पावन सरोवर में अपनी सुखद धूम से ब्रजवासियों को आनन्द प्रदान करने लगती है। सखागण कभी जल में तैरते हैं, कभी एक-दूसरे को छूने का खेल खेलते हैं, कभी गेंद को दूर फेंक, उसे सर्वप्रथम उठाने के प्रयास में संलग्न हो जाते हैं और यह ब्रजवासी गण उनकी इन मनोरम क्रीड़ाओं का आस्वादन कर मग्न हो जाते हैं। ऐसे में कभी यह ब्रज-बालाऐं भी अपने प्राणधन श्यामसुन्दर की मनोरम छवि को निरख, अपनी अन्तर्पिपासा का शमन करने यहाँ चली आती हैं और दूर से ही इन छलिया के रस संकेतों को समझ आनन्द में मग्न हो जाती हैं।

धन्य हैं ब्रजवासी गण जिनके प्रेम के वशीभूत हुए 'नन्दनन्दन' उनके आनन्द का वर्धन करते रहते हैं।

श्रीकृष्ण की सखाओं सहित बाल-क्रीड़ाओं का दृष्टा यह पावन सरोवर आज भी सभी के लिए अत्यन्त श्रद्धा का तीर्थ है।

नमः पावन रूपायदेवानां कल्मषापहम्।
नन्दादिपावनायैव तीर्थराज नमोऽस्तु ते॥[2]

(ब्र० भ० वि०)

---

1. श्रीनन्दग्राम में पावन सरोवर में स्नान करके श्रीकृष्ण, श्रीनन्दराय जी तथा श्रीयशोदाजी का दर्शन करने से सर्वाभीष्ट फल की प्राप्ति होती है।
2. हे पावन रूप ! हे देवताओं के कल्मशों का नाश करने वाले ! आपको नमस्कार है। हे तीर्थराज ! आपको नमस्कार है। आप नन्दराय जी आदि को भी पावन करने वाले हैं।

श्रीसनातनजी की भजन स्थली

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी के अनुयायियों में श्रीसनातनजी का नाम सभी वैष्णव जानते हैं। वे यहीं पावन सरोवर पर निवास करते थे। श्रीकृष्ण नाम जप तथा लीला चिन्तन के अतिरिक्त उन्हें आहार आदि की भी चिन्ता न थी। एक बार श्रीकृष्ण स्वयं उन्हें एक पात्र में दूध देकर चले गये। उस बालक की रूप माधुरी का जादू ही कुछ ऐसा हुआ कि बालक के चले जाने के बाद श्रीसनातनजी को भान हुआ। वे अत्यन्त हर्षित हुए और श्रीकृष्ण की अकारण करुणा ममता की स्मृति कर आत्म-विभोर हो गये। प्रेम के कारण अधीर हो गये। नेत्रों से अश्रुबिन्दु छलक पड़े।

अलक्षित प्रभु सनातने प्रबोधिला।
ब्रजवासी द्वारे एक कुटीर कराईला॥

(भ० र०)

अलक्षित रूप से श्रीकृष्ण ने श्रीसनातनजी को बोध कराया तथा ब्रजवासियों द्वारा उनके लिए एक कुटिया का निर्माण करवा दिया।

सनातनजी का चरित्र बहुत ही विलक्षण है। उनका जीवन प्रिया-प्रियतम की लीला माधुरी में इतना रत था कि उन्हें बाह्य सुधि बहुत ही कम रहती थी।

इस सरोवर के मध्य यशोदा कूप है। इस कुऐं का जल, पान करने वाले को श्रीकृष्ण तुल्य पुत्र की प्राप्ति होती है।

पास ही कदम्ब खण्डी है।

कदम्ब–खण्डी

कदम्बानां ब्रातैर्मधुपकुलझङ्कारललितैः।
परीते यत्रैव प्रिय सलिललीलाहृतिमिषैः॥
मुहुर्गोपेन्द्रस्यात्मजमभिसरन्त्यम्बुजदृशो।
विनोदेन प्रीत्या तदिदमवतात् पावनसरः॥[1]

(स्तवावलि ब्रज विलास)

पावन सरोवर तटवर्ती कदम्ब वृक्ष समूह की शोभा अद्वितीय है। पावन सरोवर श्रीकृष्ण की सखाओं सहित केलि से अभिषिञ्चित तो है ही, साथ-साथ श्रीकृष्ण की इन अभिन्न हृदया, प्राण-प्रियाओं की अनेक सुरस स्मृतियों की गाथा भी पावन सरोवर के तटीय वातावरण में विक्रीड़ित हो रही है।

---

1. भ्रमर कुल झंकार से मनोरम कदम्ब वृक्ष समूह द्वारा आवृत्त जिस पावन सरोवर पर कमलाक्षी गोपीवृन्द अपनी अत्यन्त प्रिय जल-केलि, चौर्य लीला तथा जल उलीचने की अनेक क्रियाओं द्वारा श्रीकृष्ण को आनन्द प्रदान करने हेतु प्रेम में उतावली हो पुनः–पुनः अभिसार करती हैं, वही पावन सरोवर मेरी रक्षा करें।

यह कदम्ब पुष्प सौरभ अवश्य ही इन बालाओं के हृदयों को छू-छेड़ गुदगुदा रही है। अपने प्राणधन नन्दनन्दन के किसी सुरस संकेत द्वारा आमन्त्रित यह बालाऐं अपनी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा सहित इस उद्यान में आ गईं। कन्हैया ने अपनी प्राण-प्रियाओं को देखा। सखाओं से मधुर-मधुर बतरा, उन्हें अपनी वाक् चातुरी से आनन्द प्रदान कर, कन्हैया कब इस कदम्ब कानन में अपनी प्रियाओं के मध्य आकर सुशोभित हो गये, किसी को भी पता न चला। सखा अपने प्यारे कन्हैया को खोजते-खोजते नन्द-भवन चले गये।

कदम्ब पुष्प के सौभाग्य की बात ही निराली है। प्रियतम के मुकुट का श्रृङ्गार बन, यह इठलाता है ही, उनके कर्णों में कुण्डल बन कपोलों का संस्पर्श पा, रस मग्न हो जाता है। कभी माला में गुम्फित हो प्रियतम के कण्ठ को आवृत्त कर उनके वक्षस्थल का श्रृंगार बन इठलाता है। कण्ठमाल में सुशोभित रस कणों से सिञ्चित जब प्रियाजी के कण्ठ का हार बन जाता है यह कदम्ब पुष्प, तो इसकी ओर इंगित कर प्रियतम सुरस भाव में भरे, प्रियाजी को 'इस पुष्प से ईर्ष्या है मुझे' कहकर विवश-परवश कर देते हैं, और वह विवशता किन्हीं सबल-सम्बल युग तटों का आश्रय पा, आनन्द में भर जाती है। उस समय यह कदम्ब पुष्प उभयांगों से ही दुलार पाकर, सखियों को युगल रस-विलास की गाथा का भान कराता है। जब यह ब्रज रमणी-वृन्द शल्थ मालावलि, विगलित कदम्ब पुष्पों को निहार इन दोनों को छेड़ती हुई पूछती हैं, तो रसमय युगल अपनी इस बेसुधि से किञ्चित् स्वस्थ हो, इन बालाओं सहित, पावन सरोवर में, जल केलि में, मग्न हो जाते हैं। ऐसे में यह कदम्ब पुष्प अपनी मधुर, भीनी सुगन्ध से इस जल केलि को और, और सरस बना देते हैं।

यह पावन सरोवर तटवर्ती कदम्बखण्डी, रसिकों के अनेकानेक सुरस अनुभवों की स्थली, वैष्णव जगत के लिए प्रणम्य है।

तड़ाग तीर्थ

पर्जन्येन पितामहेन नितरामाराध्य नारायणं-
त्यक्त्वाहारमभूतपुत्रक इह स्वीयात्मजे गोष्ठपे।
यत्रावापि सुरारिहा गिरिवरः पौत्रौ गुनैकाकरः
क्षुण्णहारतया प्रसिद्धमवनौ तन्मे तड़ागं गतिः॥

(स्तवावलि)

देवमीढ़ नाम के एक मुनि थे, उनके दो पत्नियाँ थीं। पहली क्षत्रीय पत्नी से शूर तथा दूसरी वैश्य पत्नी से श्रीपर्जन्य गोप ने जन्म लिया। श्रीवसुदेवजी आदि क्षत्रीय पुत्र हुए तथा श्रीपर्जन्य कृषि, गोरक्षादि का कार्य करते थे। श्रीपर्जन्य के

यहाँ कोई सन्तान न थी । एक बार भ्रमण करते-करते श्रीनारदजी नन्दीश्वर में पधारे तथा श्रीपर्जन्य गोप के प्रार्थना करने पर श्रीलक्ष्मीनारायण मन्त्र देकर उन्होंने पुत्र प्राप्ति का उपाय बतलाया । श्रीपर्जन्य गोप तड़ागतीर्थ नामक स्थली पर पवित्र स्थान बनाकर गुरु प्रदत्त मन्त्र का जप करने लगे । कुछ ही समय में वह मन्त्र सिद्ध हो गया । आकाशवाणी हुई, 'हे पर्जन्य ! तुम परम भाग्यवान हो । तुमने अत्यन्त शुद्ध मन से तपस्या की है । तुम्हारे यहाँ सर्वगुण सम्पन्न पाँच पुत्र होंगे । उनमें मध्यम पुत्र का नाम श्रीनन्दराय होगा । उन्हीं के घर में समस्त ब्रजवासियों को सुख प्रदान करने के लिए श्रीहरि स्वयं पुत्र रूप में अवतार लेंगे ।'

श्रीपर्जन्य गोप अत्यन्त हर्षोल्लास में भर गये । वे नन्दीश्वर में ही निवास करते रहे । बाद में किसी कारणवश गोकुल, महावन चले गये, जहाँ श्रीनन्दरायजी के यहाँ अपनी माधुर्य शक्ति का प्रसार करते हुए नन्दनन्दन रूप में भगवान प्रकट हुए ।

यह स्थली आज भी अपने उसी गौरव से गौरवान्वित 'तड़ाग तीर्थ' नाम से विख्यात है तथा सभी के लिये अभीष्ट फल प्रदान करने वाली है ।

पास ही 'क्षुण्णाहार सरोवर' है ।

नन्दीश्वर महादेव

नन्दीश्वराय देवायाभीरोत्पत्तिहिताय च ।
यशोदा सुखदायैव महादेवाय ते नमः ॥

(स्कन्द पुराण)

हे नन्दीश्वर ! हे देव ! हे आभीर गणों को सुख प्रदान करने वाले तथा उन्हीं के लिये प्रकट देव ! हे यशोदा को सुख प्रदान करने वाले ! हे देवाधिदेव महादेव ! आपको नमस्कार है ।

श्रीयशोदाजी द्वारा निवेदन करने पर श्रीनन्दीश्वर लिङ्ग रूप में ब्रज में विराजमान रहने लगे । श्रीरुद्र ने श्रीयशोदाजी को प्रसन्नता पूर्वक वरदान देकर अपनी कृतार्थता हेतु निवेदन किया कि 'मैं पर्वत रूप से यहाँ विराजित हूँ, आप श्रीनन्दरायजी तथा पुत्र श्रीकृष्ण एवं बलदेव सहित मेरी पृष्ठ पर विराजें तथा अपने चरण स्पर्श सुख से मुझे अङ्गीकार करें ।' ऐसा ही हुआ श्रीकृष्ण-बलदेव सहित मैया यशोदा तथा बाबा नन्दरायजी यहाँ विराजमान हैं । पहले (मुख्य मन्दिर) श्रीकृष्ण स्नान आदि का जल नन्दीश्वर (विराजमान महादेव) के ऊपर से होकर ही जाया करता था-अब कुछ नई व्यवस्था से परिवर्तन हो गया है ।

धोयनि कुण्ड

धोयनि कुण्ड एई नन्दीश्वरेर ईशाने।
दधिपात्र द्यौत जल रहे एई खाने ॥

(भक्ति रत्नाकर)

दधि पात्र साफ कर जल को इस ओर डाल देने से एकत्रित जल का कुण्ड 'धोयनि कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया।

यह नन्दग्राम के ईशान कोण में स्थित है।

श्रीकृष्ण कुण्ड (कदम्ब खण्डी)

एई कृष्ण कुण्डे देख कदम्बेर वन।
एथा विहरये रंगे ब्रजेन्द्रनन्दन ॥

(भक्ति रत्नाकर)

कदम्ब वृक्ष श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। जाने इस कदम्ब जाति ने, ऐसी कौन-सी तपस्या की है, जो प्रियतम श्यामसुन्दर के श्रृंगार में शोभायमान हो उनकी प्रत्येक रहसि केलि का सर्वाङ्गीण सुख, सहज प्राप्त कर लेता है। ब्रज की प्रकृति जड़ नहीं है-यह श्रीकृष्ण की लीला में सहयोगी तो है ही, प्रत्युत लीला का उपकरण भी है। उन्हीं कदम्ब वृक्षों की सौरभ से उन्मादित यह ब्रज बावरियाँ अपने प्राण सर्वस्व का अता-पता पूछतीं, सहसा यहाँ चली आया करती हैं।

"यह लो ! कदम्ब पुष्पों की माला धारण किये, कर्णों में कदम्ब पुष्पों के कुण्डल धारण कर, केशावलि में यत्र-तत्र कदम्ब पुष्प गुम्फित हैं जिनके, मत्त गजेन्द्र की चाल से सामने की कदम्ब-वन वीथि से, श्यामसुन्दर ही तो आ रहे हैं", कहते-कहते यह सखीवृन्द, कदम्ब वृक्षों की सघन श्यामलता में प्रविष्ट हो अमित एवं अगाध रसास्वादन में मग्न हो गईं।

यही 'श्रीकृष्ण', श्यामसुन्दर का अत्यन्त प्रिय कुण्ड है। उनकी लीला माधुरी के रसाङ्कों से अभिषिक्त है।

कदम्ब टेर

टेर कदम्ब के नीचे खड़े होकर श्रीकृष्ण अपनी गउओं को बुलाया करते थे, इसी से यह स्थली 'कदम्ब टेर' नाम से विख्यात है। आज भी गोपाष्टमी के दिन नन्दग्राम के गोस्वामीगण परम्परागत इस उत्सव को मनाते चले आ रहे हैं।

श्रीरूप गोस्वामी की भजन स्थली

श्रीसनातनजी के छोटे भाई थे श्रीरूप गोस्वामी। श्रीचैतन्य महाप्रभु जी

की आज्ञा से आप ब्रज में पधारे तथा नन्दीश्वर ग्राम के पास टेर कदम्ब के निकट भजन करने लगे। अहर्निश नाम तथा लीला चिन्तन में रत रहते। एक दिन वे अपने बड़े भाई श्रीसनातनजी के दर्शन करने पावन सरोवर पर पधारे। उनके मन में सङ्कल्प उठा कि श्रीसनातनजी को चावल घी में भूनकर, खीर बनाकर खिलाते। उसी क्षण अपने सङ्कल्प के कारण, उन्हें संकोच भी हुआ। कहते हैं एक अनिन्द्य सुन्दरी बाला चावल तथा घी लेकर चली आई तथा श्रीरूपजी से बोली, 'यह लो खीर बनाकर भोग लगाओ तथा सनातनजी को खिलाओ।' श्रीरूपजी ने ऐसा ही किया, जब सनातनजी ने प्रसाद पाया, तो उन्हें अति आनन्द हुआ। श्रीरूपजी से बोले, "भैया ! आजका प्रसाद तो अपूर्व है। यह सामग्री तुमने कैसे और कहाँ से प्राप्त की है ?" श्रीरूपजी ने सारी घटना कह सुनाई। बाद में किशोरी श्रीराधारानी ने स्वप्न में श्रीरूपजी को अपना भान कराया। प्रियाजी द्वारा इस प्रकार सामग्री पाकर श्रीरूपजी को बहुत ही कष्ट हुआ तथा उनकी कृपालुता से विमुग्ध भी हो गये।

एकबार श्रीराधा-कृष्ण का वियोग प्रसंग स्मरण करके श्रीरूपजी को अत्यन्त कष्ट हुआ। जब उनके श्वास का किन्हीं व्यक्ति को अनायास स्पर्श हुआ तो उसके शरीर पर फफोले पड़ गये। श्रीरूपजी की विरह के कारण उत्तप्त मनःस्थिति का वर्णन नहीं किया जा सकता।

श्रीललिता कुण्ड

यतस्तु ललिताकुण्डमभिधानमनोहरं ।
महातीर्थ समाख्यातं देवानामपि दुर्लभम् ॥

(आदि पुराण)

हे श्रीललिताकर्तृक स्थापित मनोहर कुण्ड ! देवताओं के लिये भी महान दुर्लभ महातीर्थ ! आपको नमस्कार है।

श्रीललिता, श्रीकृष्ण की अभिन्न प्राणा सखी हैं। ये अष्टसखियों में प्रधाना हैं। यों तो सभी सखियाँ प्रिया-प्रियतम के सुख सन्निधान हेतु सावधान रहती हैं, परन्तु श्रीललिता अत्यन्त कोमलाङ्गी और सुचतुरा हैं। प्रिया-प्रियतम की प्रत्येक केलि में श्रीललिताजी का प्रवेश है। प्रियतम के प्रत्येक संकेत को समझ उसे क्रियान्वित करने में सजग रहती हैं। प्रियतम से इङ्गित पा प्रियाजी को मिलवाने में श्रीललिताजी अति प्रवीण हैं। श्रीललिताजी, इसी कुण्ड पर वृक्षावलि की मनोरमता देख, विराजमान प्रियतम के मन की जान, प्रियाजी को उनके पास ले आईं। उनकी मिलन-कामना पूर्ण हुई। दोनों ही रस बावरे अपनी सखी, श्रीललिता को मधुर रस का पान करा आनन्द में मग्न हो गये।

वहीं चली आई सखीवृन्द की भीर। वह एकान्तिक रस, अब अपनी उसी गम्भीरता से ओत-प्रोत, सामूहिक रूप से थिरकने लगा। सभी धन्यातिधन्य हो गईं।

उसी रसविहार को अवलोक यह स्थली कृतकृत्य हो गई, उपकृत्य हो गई। उन्हीं रस कणों से आज भी यह स्थली सिक्त, सिञ्चित है। यहाँ की रमणीयता आस्वादनीय ही है।

यह कुण्ड नन्दग्राम के पूर्व में स्थित है। पास ही 'सूर्य कुण्ड' है, जहाँ सूर्य भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन कर आनन्द मग्न हो गये।

श्रीविशाखा कुण्ड

एई जे विशाखा कुण्ड करई दर्शन।
राधा महारंगे राई-कानूर मिलन॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण की अष्ट प्रधाना सखियों में श्रीविशाखाजी परम विदुषी हैं। विविध केलि संयोजनों का परामर्श देने में अति चतुरा हैं। इनका परामर्श सर्वदा सफल रहता है, इसी से श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं। श्रीकृष्ण का संकेत पा प्रियाजी को अत्यन्त चतुराई से, कहीं ले जाने में विज्ञा हैं।

युगल रस बावरों का रसमय विहार ही इन सखीवृन्द का उपहार है।

ऐसे ही रस रहस्यों की सुरस गाथा से यह स्थली अलंकृत है तथा 'श्रीविशाखा कुण्ड' के नाम से विख्यात है।

'श्रीललिता कुण्ड' के अग्नि कोण में थोड़ी दूर पर स्थित है।

पूर्णमासी कुण्ड

गूढ़ तत् सुविदग्धतार्चित सखिद्वारोन्नयन्ती तयोः
प्रेम्ना सुष्ठु विदग्धयोरनुदिनं मानाभिसारोत्सवम्।
राधामाधवयोः सुखामृतरसं यैवोपभुंकते मुहु-
र्गोष्ठै भव्यविधायिनीं भगवतीं तां पौर्णमासीं भजे॥[1]

ब्रज में सभी की पूज्या हैं पूर्णमासी। सभी ब्रजवासी इनसे समय-समय पर परामर्श करते हैं। भगवती लीला शक्ति योगमाया का अवतार हैं। श्रीनारदजी ने आपको दीक्षा देकर अनुग्रहीत किया है। तपस्विनी वेष में रहती हैं। श्रीकृष्ण

---

1. जो पूर्णमासी श्रीराधाकृष्ण अभिसारादि का संयोजन जुटाने में निपुण होने के कारण सभी की वन्दनीया हैं। सखियों द्वारा प्रेम, गोपनीयता तथा निपुणतापूर्वक रसमय राधामाधव के मान, अभिसार उत्सव को करा, श्रीराधा-कृष्ण के आनन्दामृत का पुनः-पुनः पान करती रहती हैं। मंगल विधान कराने वाली भगवती उन्हीं श्रीपूर्णमासी का मैं भजन करता हूँ।

प्राकट्य काल से ही ब्रज में निवास करती हैं। नित्य ही नन्दालय में जाकर श्रीकृष्ण दर्शन कर भाँति-भाँति के आशीर्वाद देती हैं। प्रिया-प्रियतम की रसमयी केलि की सहायिका हैं।

नान्दीमुखी स्थल

अवन्तीतः कीर्तेः श्रवणभरतो मुग्धहृदया,
प्रगाढ़ोत्कण्ठाभिर्व्रजभुवमुरीकृत्य किल या।
मुदा राधाकृष्णोज्ज्वलरससुखं वर्द्धयति तां,
मुखीं नान्दीपूर्वां सततमभिवन्दे प्रणयतः॥

(स्तवावली)

जो नान्दीमुखी श्री राधामाधव की यशोगाथा श्रवणकर अन्तर में मुग्ध हो कर अत्यन्त उत्कण्ठा वश अवन्तीपुरी का परित्याग करके ब्रजभूमि में वासकर आनन्द-मग्न होकर श्रीराधा-कृष्ण के मधुर रसानन्द का वर्धन करती हैं, उन्हीं श्रीनान्दीमुखी की मैं प्रेमपूर्वक सर्वदा, सर्व भावों से वन्दना करता हूँ।

श्रीयशोदा कुण्ड

यशोदाकुरुते स्नानं नित्यमेव दिनं प्रति।
यतो संजायते कुण्डं यशोदा संज्ञकं शुभम्॥[1]

(आदि पुराण ब्र० भ० वि०)

मैया स्नान करने यहाँ पधारती हैं। दोनों भैया भी सखाओं सहित यहाँ आ जाते हैं। कभी कदम्ब वृक्षों की भीनी सुगन्ध का आस्वादन कर आनन्द मग्न हो जाते हैं, कभी उन पुष्पों को तोड़, अपने श्रृङ्गार में यत्र-तत्र सज्जित कर मैया को दिखलाते हैं। अन्य सखाओं की यह अनोखी भीर, कभी-कभी वृक्षों पर चढ़ एक-दूसरे को पकड़ने के खेल में मग्न हो जाती है। इस प्रकार विविध खेलों से मैया के वात्सल्य पूरित हृदय में और सरसता भर देते हैं। मैया जब, स्नान आदि करके चलती हैं तो दोनों भैया उनके साथ ही 'नन्द-भवन' को चल देते हैं।

ऐसी ही अनेक सरस लीला स्मृतियों से आलोड़ित यह यशोदा कुण्ड आज भी अपने सरस वातावरण का प्रसार कर रहा है।

यहाँ स्नान करने वाला धन-धान्य से परिपूर्ण होकर वैकुण्ठ पद की प्राप्ति करता है।

---

1. श्रीयशोदाजी नित्य ही यहाँ स्नान करती हैं, इसीसे यह कुण्ड श्रीयशोदा कुण्ड नाम से उन्हीं के समान शुभ करने वाला है।

हाऊ-विलाऊ

नमः कृष्णेक्षकास्तुभ्यं धर्मकामार्थ मोक्षिणः।
पाषाणरूपिणो देवाः यशोदाशीषसंस्थिताः ॥[1]

(आदि पुराण ब्र० भ० वि०)

समस्त प्रकृति जिनसे उत्पन्न हुई है, जिनकी एक त्रुटि मात्र से संसार का सृजन तथा संहार होता है, बह्मा भी जिन भगवान श्रीकृष्ण का गुणगान करने में अपने आपको असमर्थ पाते हैं, उन्हीं श्रीकृष्ण की भगवत्ता को मैया का वात्सल्य से ओत-प्रोत हृदय कैसे स्वीकार कर सकता है ? भगवान होंगे देवताओं के लिए, बह्मा के लिए, योगियों तथा मुनियों के लिए, मैया के लिए तो वे वही छोटे से कन्हैया हैं, जिनकी बलैया लेती, मैया कभी नहीं अघातीं । वे कभी उन्हें 'शोभित कर नवनीत लिए' हाथ में माखन लिए देख प्रसन्नता से भर जाती हैं और कभी 'सिखवति चलन यशोदा मैया' और लो अब 'कान्ह चलत पग द्वै-द्वै धरनी' मैया का हर्ष हृदय में समा नहीं रहा और वह 'सूर श्याम के बाल चरित, नित-नित ही देखत भावत' में मग्न हैं ।

कन्हैया अब थोड़ी दूर खेलने चले जाते हैं, तो मैया का हृदय अनेक आशङ्काओं, कुशङ्काओं वश भयभीत हो जाता है । मैया को स्मृति है, गोकुल तथा वृन्दावन में राक्षसों के उत्पातों से, नारायण ने किस प्रकार लाला की रक्षा की है । कन्हैया पुनः-पुनः बाहर जाने के लिए अनुरोध कर रहे हैं । मैया ने कन्हैया को डराने के मिस कहा, लाला 'दूर खेलन मत जाईयो, वन में हाऊ आये हैं ।' कन्हैया, मैया की बात सुन डर गये और मैया के आँचल में मुख छिपा मैया से चिपट गये । मैया का वात्सल्य सभी बन्धन तोड़ उमड़ पड़ा ।

'अंचरा तर लै ढाँकि 'सूर' के प्रभु को दूध पियावति ।'

यह स्थली श्रीयशोदा कुण्ड के निकट ही है । पास ही 'कारहरो' वन है । 'कारहरो' कुण्ड है । यहाँ से श्रीकृष्ण वन्य शोभा देखते थे । पास ही पर्वतखण्ड पर श्रीकृष्ण के अति प्राचीन चरण चिन्ह हैं ।

यशोदा कुण्ड के पास गुफा

कुण्ड के पास ही एक अति प्राचीन गुफा है । यहाँ अनेक सन्त महानुभावों ने साधना कर भगवत्प्राप्ति की है ।

कुछ समय पहले यहाँ एक उच्चकोटि के महात्मा विराजमान थे । वे दिन

---

1. हे श्रीकृष्ण दर्शन करने वाले ! धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष देने वाले ! हे पाषाण रूपधारी ! हे श्रीयशोदाजी के आशीर्वाद से वर्द्धित आपको नमस्कार है ।

भर लीला चिन्तन में रत रहते तथा संध्या में ही मधुकरी हेतु जाते। एक काला कुत्ता संध्या में प्रतिदिन उनके पास आया करता। उसे वे बची हुई मधुकरी दे दिया करते।

एक बार सहसा, उन महात्मा को श्रीराधा-कुण्ड जाना पड़ा । जब वे तीन-चार दिन बाद लौटे तो, वही काला कुत्ता उनके पास आकर मनुष्य के स्वर में कुछ कहने लगा ।

उस कुत्ते को इस प्रकार बोलते देख उन महात्मा ने कुत्ते से उसका सारा वृत्तान्त जानना चाहा । वह कुत्ता बोला, "मैं भूत हूँ । आपकी कृपा के भरोसे यहाँ पड़ा रहता हूँ । जो आप देते हैं उसी को ग्रहण कर सन्तुष्ट रहता हूँ ।" उन महात्मा ने पूछा, "भाई ! तुम्हारी सर्वत्र गति होने पर भी तुम इस प्रकार वञ्चित क्यों हो ?" उस भूत ने कुत्ते के शरीर से ही पुनः कहा, "हम लोग यह सब जानते तो हैं, देखते भी हैं, परन्तु आस्वादन नहीं कर पाते ।" महात्मा ने पूछा, "तो क्या मुझे श्रीकृष्ण का पता बतला सकते हो ।" कुत्ते ने उन महात्मा को सारी बात कह दी । उन महात्मा ने अपनी मधुकरी, उस कुत्ते के सामने रख दी तथा उसी क्षण बतलाई गई स्थली पर, श्रीकृष्ण दर्शन लालसा में मग्न हुए, जाकर प्रतीक्षा में बैठ गये । उनकी व्याकुलता देखते ही बनती थी । रात्रि बीत गई, दिवस भी बीत चला, उनके नेत्र टकटकी लगाये, वन से लौटती गउओं की प्रतीक्षा में लगे रहे । हाँ ! तो यह लो गउओं के लौटने का समय आ गया । ग्वारिया भी पीछे-पीछे लौट आये । अन्त में एक मैले-कुचैले वस्त्र पहने, विचित्र वेष में ग्वारिया को पकड़, महात्मा पूछने लगे । भाँति-भाँति से उस ग्वारिया ने अपने को छिपाने की चेष्टा की, परन्तु भक्त से भगवान कभी छूटते नहीं और न वे छूटना चाहते ही हैं। भक्तों की प्रेम रज्जु में वे अनायास ही, उनकी व्याकुलता से खिंच बँध जाया करते हैं ।

आना-कानी करते-करते अर्ध रात्रि बीत चली । परन्तु वे महात्मा किसी प्रकार सन्तुष्ट न हुए । अन्ततः भगवान को प्रकट होना पड़ा । उन महात्मा के सामने एक दिव्य प्रकाश फैल गया । श्यामसुन्दर अपनी भुवन मोहिनी छटा का प्रसार करते हुए वहाँ प्रकट हो गये । वे महात्मा धन्य हो गये ।

अभी लगभग पचास वर्ष पहले की बात है कि एक अन्य महात्मा नन्दग्राम में वास करने की इच्छा से पधारे । पावन सरोवर पर बैठे भजन के लिए किसी उपयुक्त स्थली का विचार कर ही रहे थे कि उनके सामने एक सिद्ध महात्मा, जो बड़े लम्बे-चौड़े शरीर के थे, उनकी श्वेत श्मश्रु थी तथा सिर के बाल भी श्वेत थे, प्रकट होकर संकेत करने लगे । वे महात्मा उस संकेत का अनुगमन करते उठकर चल दिये ।

यशोदा कुण्ड के पास गुफा के समीप आकर उनके चरण स्वतः रुक गये ।

उन महात्मा ने चारों ओर देखा, इस गुफा के प्रति उनका आकर्षण हो गया। उन्हें लगा कि वे महात्मा इसी गुफा का निर्देश कर रहे थे।

वे महात्मा यहीं भजन करने लगे तथा श्रीकृष्ण दर्शन पा धन्य हो गये। प्रकट हुए वे वयोवृद्ध महात्मा पूर्व में इसी गुफा में भजन कर चुके थे।

अनेक सिद्ध महात्माओं की भजन स्थली, अद्यावधि साधक वर्ग को आलोड़ित कर रही है।

पास ही रास मण्डल है तथा एक कुँआ है। यहाँ का वातावरण अनुभव गम्य ही है।

दधि भाजन स्थल (माट बिलो)

श्रीयशोदाजी के दही बिलोने के दो बड़े-बड़े माट यहाँ आज भी दर्शनीय हैं। कहते हैं यह दोनों मिट्टी के पात्र नन्द-भवन के सम्मुख रखे जाते थे।

श्रीनन्द-बैठक

यशोदा कुण्ड के पास ही 'नन्दबैठक' है। ऐसी मान्यता है कि श्रीकृष्ण-बलराम जब गैया चराने हेतु वन में चले आते हैं, उन्हीं की यह बैठने की स्थली 'श्रीनन्दबैठक' नाम से विख्यात है।

अत्यन्त रमणीय स्थली है। अनेक महात्माओं की सुरस स्मृतियों से जुड़ी यह स्थली आज भी अपने वातावरण से आप्लावित कर रही है।

कारहरो

श्रीयशोदा कुण्ड के पास ही कारहरो वन हैं। यहाँ हाल ही के सुप्रसिद्ध महात्मा श्रीनित्यानन्ददसजी की समाधि है। श्रीनित्यानन्ददासजी महाराज बड़े ही रसिक थे। ये प्रिया-प्रियतम की लीला में तन्मय रहते। ब्रजवासियों के प्रति इनकी अगाध श्रद्धा थी। मधुकरी वृत्ति में इनकी अनन्य निष्ठा थी।

ये प्रायः ब्रजवासियों से कहा करते, "मेरा अन्तिम संस्कार मुझे गालियाँ देते हुए करना।" अनायास ऐसा ही योग बना कि जब वे नित्य लीला में पधारे, इतनी भीड़ हो गई कि ब्रजवासी कण्डा ले, लेकर उनके पास तक पहुँच भी न सके। दूर-दूर से उन्होंने मीठी-मीठी गालियाँ देते हुए चितागिन में कण्डा समर्पित किये।

मधुसूदन कुण्ड

एइ मधुसूदन कुण्ड पुष्प वनान्तरे।
कृष्ण महाहर्ष एथा भ्रमर गुञ्जरे॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण के ही मधुसूदन नाम से विख्यात यह मधुसूदन कुण्ड, पुष्पित उद्यान अपनी भीनी गन्ध से, स्थली को सौरभान्वित कर रहा है। चारों ओर भ्रमर, गुञ्जार कर आज भी इस सौरभ के गीत गा रहे हैं। इन्हीं पुष्पों में अपनी रस सौरभ का सञ्चार करते यह युगल, रसीली चेष्टाओं में संलग्न हो जाते हैं।

उन्हीं रस रहस्यों की गुञ्जार से यह स्थली आज भी झंकृत हो रही है।

पनिहारि कुण्ड

देख पनिहारि कुन्ड परम निर्मल।
भोजनेर काले कृष्ण पिए एई जल॥

(भक्ति रत्नाकर)

श्रीकृष्ण नित्य ही गोचारण के लिए जाते हैं। छाक सामग्री साथ ले सभी सखा यहाँ आकर छाक आरोगते हैं। मैया यशोदा भाँति-भाँति की सामग्री बनाकर देती हैं। प्रसादादि ग्रहणकर यहाँ का जल उन्हें भाता है।

उधर श्रीवृन्दादेवी प्रियाजी को प्रियतम से मिलवाने के कौतुक रच, किसी न किसी बहाने से यहाँ ले आती हैं। अपनी प्राणाराध्या श्रीराधा को साथ ले प्रियतम पास ही किसी सघन निकुञ्ज में आ विराजते हैं। युगल रूप रस-पान हेतु उत्सुक, यह सखी मण्डली, अनायास ही उसी निकुञ्ज पार्श्व में आ, दोनों के रस विहार की, रस विलास की, अनुपम शोभा को निहार, आनन्द में भर जाती हैं। दोपहरी की यह विश्राम स्थली किन्हीं रसीले श्रम-विश्राम के आवर्त्तों से धन्या होती है।

यहाँ की रमणीय शोभा, वृक्षावलि से आवृत्त कुण्ड की मनोरमता देखते ही बनती है।

पास ही वृन्दादेवी का कुण्ड है।

वृन्दादेवी

प्रति नव-नव कुंजं प्रेमपूरेण पूर्णा।
प्रचुर सुरभि पुष्पैः भूषयित्वा क्रमेण॥
प्रणयति वत वृन्दा तत्र लीलोत्सवं या।
प्रियगणवृतराधाकृष्णयोस्तां प्रपद्ये॥

(स्तवावलि ब्रज विलास)

अहो ! जो प्रेम रस में निमग्न होकर क्रमे-क्रमे प्रत्येक नव-नव कुञ्जों को सुगन्धित पुष्पों से भूषित कर, सखी समूह द्वारा परिवेष्टित युगल की लीला का विस्तार करती हैं, मैं उन्हीं श्रीवृन्दादेवी की वन्दना करता हूँ।

यहाँ श्रीवृन्दादेवी का कुण्ड है।

गोचारण गमन वीथि

लो ! अब गोचारण का समय हो गया और नटवर-वेष धरे नन्दनन्दन चल दिये नन्दगाँव से वन की ओर-यमुना तटवर्ती किसी वन्य एकान्तिक स्थली पर जहाँ हरियाली घास, विशुद्ध जल सघन वृक्षावली मध्य पक्षियों का रस-निनाद गतिमान है । देखा पू० बहनजी ने और तन्मय हो गईं -

सिर मोर पखा कर लकुट लिये
नन्द लाल चले गोचारण को ।
आगे गउऐं, ग्वाले पाछे,
आवत हैं संग सम्हारन को ।
हँसि हँसि इत उत अवलोकत हैं
नव केलि कला विस्तारन को ।
सखि सरबस हार चुकी पहले
अब और शेष का हारन को ।

(भक्तिमती ऊषा जी)

इसी वीथि से होकर दोनों भैया, श्रीकृष्ण तथा बलराम ग्वाल बालकों की मण्डली से घिरे नित्य ही गोचारण हेतु जाते हैं । मैया भाँति-भाँति के वस्त्राभूषण धारण कराती हैं, साथ में छाक की सामग्री बाँध देती हैं । दिन भर के बिछोह की बात सोच मैया का हृदय अकुला उठता है । सभी ब्रजवासी कन्हैया को नयन भर देखने, उनकी माधुरी का आस्वादन करने यहाँ आ जाते हैं । मैया भी कभी-कभी उनके साथ चली आती हैं । ग्वाल वेष धारण कर कन्हैया मत्त गजेन्द्र की सी चाल से, एक कर में वंशी तथा दूसरे में लकुटिया धारण किये चल देते हैं । समीरण की मुक्त झकोरों से कभी-कभी अलकावलि मुख पर घिर आती हैं तो अपने सुनील कर-कमलों द्वारा उसे सम्हालते भले लगते हैं । गौएँ भी अपने प्यारे कन्हैया की रूप मधुरिमा निहारने को आतुर हुईं, मुड़-घूमकर पीछे को देखती हैं । यह सब छवि देखते ही बनती है ।

कभी-कभी यह नटखट अपने नयन कोरों से इधर-उधर देखते ; कभी अपने पटके को सम्हालने के मिस कुछ संकेत दे चल देते हैं । इस प्रकार विभिन्न संकेतों द्वारा सभी ब्रजवासियों को आनन्द में सराबोर करते कन्हैया, गोचारण हेतु प्रस्थान करते हैं । आज भी यह स्थली अपने कन्हैया की वन गमन की लीलाओं का दिग्दर्शन करा रही हैं ।

पास ही 'दधि मन्थन स्थल' है तथा 'साहसि कुण्ड' है, जहाँ श्री कृष्ण सखियों सहित झूला झूलते हैं ।

कदम्ब वन

एई देख कदम्ब कानन शोभामय।
एथा बलराम नाना रंगे विलसय॥

(भ० र०)

श्रीनन्दरायजी के भवन में जहाँ यह श्यामलोज्ज्वल मूर्ति प्रकट हुई विचर रही है, वैभव की कमी नहीं है। उनका सुयश चारों ओर सुविख्यात है। दोनों भाइयों के अलग-अलग उद्यान हैं, एक-दूसरे के उद्यान में भी वे प्रायः जाते रहते हैं। आज बड़े भैया बलरामजी के उद्यान में कन्हैया, अपने सखाओं सहित पधारे हैं। असीम चातुरी में भर, कन्हैया ने सखाओं के साथ मिलकर बलरामजी को खूब छकाया। बलरामजी किञ्चित् रोष प्रकट करने लगे; किन्तु कन्हैया की मुस्कान मधुरिमा का आस्वादन कर सारा रोष भूल गये। बलरामजी विश्राम करने का विचार कर लेट गये। कन्हैया भागे-भागे आये और बड़े भैया के दोनों चरण अपनी गोद में ले दबाने लगे। निद्रा देवी ने थपकियाँ दे बलरामजी को सुला दिया। इधर कन्हैया की बन आई।

बड़े भाई को निद्रा की अङ्क में छोड़ कन्हैया अपनी प्राणाराध्या किशोरी श्री राधा के पास जा पहुँचे तथा सखियों को विविध हास-परिहास युत वचनावलि द्वारा आनन्दित करने लगे।

मुक्ता कुण्ड

एई मुक्ता कुण्ड एथा नन्देर कुमार।
मुक्ता क्षेत्र कैला हैल कौतुक अपार॥

(भक्ति रत्नाकर)

सरस विनोदों की, कौतुकों की स्थली है ब्रजधाम। यहाँ विनोद भी लीला के हेतु ही हैं। लीला के अङ्ग ही हैं। परस्पर चर्चा है तो उन्हीं नन्द-नन्दन की रूप माधुरी की, उनकी रसीली वार्ताओं की, उनके साथ हुए केलि कौतुकों की। सखी समुदाय अपनी किशोरी के आश्रय में, प्रियतम श्यामसुन्दर के साथ सदा-सदा आनन्द में मग्न रहती हैं।

एकबार भोले-भाले ग्वाल-बाल, अपने कन्हैया के पराक्रमों का वर्णन कर गर्वित हो रहे थे। दूसरी ओर सखियाँ भी अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधा की ऐश्वर्य भावना से अभिभूत हुई प्रफुल्लित हो रही थीं। ऐसे ही परस्पर वार्तालाप हो रहा था। सखाओं ने आग्रह कर कन्हैया से मुक्ता रोपण करने को कहा। सखाओं को समादर देते कन्हैया ने सबके देखते-देखते मुक्ता रोपित कर दिये। सभी के सामने ढेरों मुक्ता इकट्ठे हो गये। चाहतीं तो सखियाँ भी किशोरी श्रीराधा से

मुक्तारोपण करवा सकती थीं, परन्तु प्रेम का पथ ही कुछ भिन्न है, प्रेमास्पद का समादर ही यहाँ स्वाभाविकता है । सखा बेचारे तो मुक्ता बटोरने में व्यस्त हो गये, कन्हैया अपनी प्रेयसी-वृन्द सहित नवीन रस की भूमिका के आयोजन वश दूसरी ओर चले आये । वहाँ रस की उद्दाम केलि प्रवहमान हुई ।

उन सुरस रस चेष्टाओं द्वारा सभी को आनन्द मग्न करते कन्हैया ने, कहाँ से कितने मुक्ता बटोरे ? बटोरने के क्या-क्या ढङ्ग रहे ! यह सब तो वे ही जानें ।

अपनी उन्हीं सुरस चेष्टाओं का लेखा देती यह स्थली, आज भी 'मुक्ता कुण्ड' नाम से विख्यात है ।

श्रीकृष्ण पद चिन्ह स्थान

इति सञ्चिन्तयन्कृष्णं श्वफल्कतनयोऽध्वनि ।
रथेन गोकुलं प्राप्तः सूर्यश्चास्तगिरिं नृप ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/38/24)

पदानि तस्याखिललोकपाल-
किरीटजुष्टामलपादरेणोः ।
ददर्श गोष्ठे क्षिति कौतुकानि
विलक्षितान्यब्जयवांकुशाद्यैः ॥[2]

(श्रीमद्भागवत 10/38/25)

समस्त ब्रज, ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण के चरण चिन्हों का चुम्बन कर धन्यातिधन्य है । नन्दनन्दन श्रीकृष्ण, ग्वाल बालकों सहित यहाँ अनेक खेल खेलते रहे हैं । गोचारण हेतु, गउओं के पीछे-पीछे समस्त वनों में विचरण कर वहाँ की शोभा बढ़ाते रहे हैं । इन ब्रज रमणी वृन्द सहित वन निकुञ्जों में अनेक सरस लीलाओं का आयोजन करते रस लुटाते, विहरते रहे हैं । श्रीनन्दरायजी का ग्राम अति धन्य है, यह ग्वाल बालक धन्य हैं, यहाँ की वृक्ष वल्लरियाँ धन्यातिधन्य हैं, जो श्रीकृष्ण हेतु ही पुष्पों के उपहार प्रदान करती हैं । यहाँ के सरोवरों के तटवर्ती पार्श्व, जहाँ पनघट पर रार मची रहती है तथा श्रीकृष्ण, रसमयी क्रीड़ाएँ करते हैं, वे धन्य हैं । प्रत्येक स्थली, वन-उपवन, घाट-बाट, कुञ्ज-निकुञ्ज, गली-गिरारे सभी तो श्रीकृष्ण के श्रीचरणों की छाप

---

1. हे राजन् ! श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हुए श्वफल्क नन्दन अक्रूरजी, रथ पर चढ़कर नन्दगाँव (गोकुल) पहुँचे तथा इधर सूर्य अस्ताचल की ओर चलायमान हुए ।
2. वहाँ अक्रूरजी ने, जिनकी निर्मल पद रज को समस्त लोकपाल अपने सिर पर धारण करते हैं, उन श्रीकृष्ण के पुनीत चरण चिन्ह देखे जो पृथ्वी की शोभा को बढ़ाने वाले तथा कमल, यव और अंकुशादि चिन्हों से युक्त थे ।

से अंकित हुए उनकी सुरस स्मृति से आलोड़ित कर रहे हैं । आज भी अनेक महानुभाव श्यामसुन्दर की सुरस लीलाओं का आस्वादन कर हमारा पथ प्रदर्शन कर रहे हैं। श्रीकृष्ण का प्रण है कि 'ब्रज की समस्त रसमयी भूमि को अपने चरणों का स्पर्श सदा सर्वदा प्रदान करता रहूँगा ।' गिरि शिलाओं पर, वन पथ में, नन्द-भवन में जहाँ-तहाँ श्रीकृष्ण के चरण चिन्ह दृष्टिगोचर हैं । श्रीकृष्ण यहाँ अवश्य ही विचरण कर अपने पदाङ्क छोड़ गये हैं, यह भी कौन कह सकता है कि इस स्थली विशेष के अन्तस् की पिपासा का शमन करने को प्रियतम यहाँ पधारे हैं। रसोद्रेक में भरी इस स्थली ने चरण-स्पर्श पा, अपनी अन्तर्पिपासा का शमन किया है उस द्रवण में ही यह चिन्ह अङ्कित हो गये हैं। यह भी नहीं कहा जा सकता कि रसोद्रेक में भर एक विशेष उमगन से विवश हो यह श्रीचरण जहाँ-जहाँ पड़े वही स्थली प्रणय रस के अजस्र रस प्रवाह को समेटने में पूर्णतः सक्षम न हुई और यह रसाङ्क उन्हीं रसोद्रेकों की स्मृति को, आज भी प्रत्यक्ष दीखते दोहरा रहे हैं ।

इन्हीं श्रीचरण चिन्हों को देख अक्रूरजी आत्म-विभोर हो उठे। कभी उस धूलि को मस्तक पर धारण करने लगे और कभी इन चरण चिन्हों पर सर्वस्व समर्पण करने को आकुल-व्याकुल हुए विभ्रम में पड़ गये ।

ग्राम की पूर्व दिशा में यह स्थली आज भी अपनी स्मृति से गौरवान्वित कर रही है ।

गिड़ीय (गेंदुखर)

नित्य नवीनता प्रिय श्यामसुन्दर सदा ही नई-नई क्रीड़ाओं में मग्न रहते हैं। सखाओं सहित वे विविध खेल खेलते हैं तथा उनकी सख्यपूर्ण भावनाओं को सत्कारते हैं ।

आज गेंद खेल, वे सखाओं का आनन्द वर्धन कर रहे हैं। कन्दुक क्रीड़ा में हुए हर्षोल्लास तथा प्रेम भरे उपालम्भों से यह स्थली सर्वदा भिज्ञ है ।

श्रीकृष्ण तथा सखाओं की गेंद खेलने की यह स्थली 'गिड़ीय' नाम से विख्यात है। नन्दग्राम के वायु कोण में स्थित है। इसके पश्चिम में 'गुप्त कुण्ड' तथा ईशान कोण में 'गेंद कुण्ड' है ।

दो मिल वन

पूर्णमासी गुफा के समीप ही एक सघन वनस्थली 'दो मिल वन' के नाम से प्रसिद्ध है। यहाँ की लताएँ अपने समीपस्थ वृक्षों के आश्रय में वर्द्धित, उन्हीं

से लिपटी यत्र-तत्र दर्शनीय हैं। लता और वृक्षों के इस स्वरूप में दीखती यह स्थली, सखियों तथा श्यामसुन्दर के पारस्परिक प्रेम की द्योतक, दोनों के मिलन का संकेत देती है। आज भी भावुक भक्तों की स्मृति प्रगाढ़ता, लीला दर्शन की भूमिका बन, अनेक वैष्णवों के अनुभव में आई है।

यह स्थली चमत्कारी स्थली है। आज तक इस स्थान पर सरकार की ओर से विकासार्थ कई प्रयास हुए, परन्तु किसी न किसी कारण से उन्हें स्थगित करना पड़ा। यह गोचारण स्थली रही है, अब सरकार की ओर से भी इसे गोचर भूमि के रूप में छोड़ दिया गया है।

श्रीकृष्णदास सिद्ध बाबा, गोविन्ददेवजी को समर्पित प्रसाद पाकर विक्षिप्त मनोवृत्ति के कारण का समाधान श्रीजयकृष्णदास बाबा से पा, यही 'दो मिल वन' में निवास करने लगे। श्री राधारानी की कृपा का अनुभव इन्हें सर्वप्रथम यहीं हुआ। बाद में आप चकलेश्वर चले गये।

अत्यन्त रमणीय स्थली है यह।

योगिया स्थान

प्राप्तो नन्दव्रजं श्रीमान् निम्लोचति विभावसो।
छन्नयानः प्रविशतां पशूनां खुररेणुभिः ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/46/8)

अनेक राक्षसों का उद्धारकर श्रीकृष्ण मथुरा का राज्य करने लगे। ब्रज की सुधि उन्हें निरन्तर बनी रही। अपनी प्यारी-प्यारी गउओं की, अपने माता-पिता की, अपने सखाओं की और अपनी इन प्राण-प्रिया ब्रज-बालाओं की स्मृति उन्हें अहर्निश रहने लगी। मधुरा भक्ति से बँधे वे सदा-सदा अपने जनों के पास ही विराजमान रहते हैं, अतः किसी प्रकार के अभाव का प्रश्न ही फिर कैसा ? परन्तु प्रेम का स्वभाव और, और का है। पाकर भी लगता है, जैसे मिले ही नहीं-अतः प्रेम और और की कामना में ही उसका रसोत्कर्ष है।

एक दिन अपने प्रिय सखा उद्धवजी को सन्देश देकर श्रीकृष्ण ने श्रीनन्दरायजी के ग्राम में भेजा। श्रीउद्धवजी नन्दग्राम आये। श्रीनन्दरायजी ने उनका स्वागत, सत्कार किया। श्रीकृष्ण सम्बन्धी चर्चा, ब्रजवासियों का जीवन ही है, उनकी मधुर लीलाएँ उनके प्राण हैं, अपने प्राण सर्वस्व की लीला, गुण, माधुरी की चर्चा में तन्मय होकर श्रीकृष्ण के सभी स्वजन आत्म विस्मृत से हो गये। ब्रज की माधुरी, उद्यानों

1. सूर्यास्त के समय उद्धवजी श्रीनन्दबाबा के ब्रज अर्थात् नन्दग्राम में पहुँचे। उस समय वन से गौएँ लौट रही थीं। उनके खुरों के आघात से इतनी धूल उड़ रही थी कि उनका रथ ढक गया।

की सरसता, श्रीयमुना जी का शान्त, गम्भीर प्रवाह, तटवर्ती रमणीय-स्थलियों का आनन्द लेते, श्रीउद्धवजी भी मग्न हो, कुछ समय वहाँ निवास करने लगे।

श्रीनन्दरायजी के पूछने पर, श्रीउद्धवजी ने, श्रीकृष्ण का अगाध स्नेह समादर तथा ब्रजवासियों की सरस स्मृति का समाचार सुनाया, उद्धवजी ने सर्व प्रकार के आश्वासन दे, श्रीकृष्ण के भाव को सभी ब्रजवासियों के सम्मुख प्रकट किया। ब्रजवासी तो पहले से ही गोचारण, वंशीवादन, श्रीगिरिराज धारण आदि अनेक सरस लीलाओं का चिन्तन कर, श्रीकृष्ण सामीप्य में मग्न रहते थे।

ऐसी ही श्रीकृष्ण चर्चा में मग्न श्रीउद्धवजी की ज्ञान चर्चा से युत परन्तु सर्वथा अप्रभावित यह स्थली 'योगिया' स्थान नाम से विख्यात हो गई।

उद्धव क्यारी

तं प्रश्रयेणावनताः सुसत्कृतं सव्रीडहासेक्षणसूनृतादिभिः।
रहस्यपृच्छन्नुपविष्टमासने विज्ञाय सन्देशहरं रमापतेः॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/47/3)

अपने जनों को आश्वासन देने के लिए श्रीकृष्ण ने, अपने मन्त्री श्रीउद्धवजी को ब्रज में भेजा। उन्होंने श्रीनन्दबाबा तथा अन्य गोपों से प्रेम भरी वार्ता कर उन्हें आश्वासन तथा श्रीकृष्ण का सन्देश दे दिया।

प्रियतम श्यामसुन्दर के मथुरा गमन उपरान्त गोपिकाऐं अत्यन्त व्याकुल थीं। यद्यपि श्रीकृष्ण लीला चर्चा में मग्न, मत्त हुई गोपिकाऐं सदैव प्रिय की सन्निधि का अनुभव करती रहीं, तथापि श्रीउद्धवजी के आने पर उन्होंने श्रीकृष्ण के अभाव में अपनी मनःस्थिति वश, अनेक प्रेम भरे उपालम्भ दे, अपनी बात कह, किञ्चित् मन हल्का किया। गोपिकाऐं तो प्रेम की आदर्श ही हैं। प्रियतम के सुख की मर्यादा में उन्होंने प्रेम भरी चर्चा मात्र की।

उद्धवजी से योग सम्बन्धी आश्वासन प्राप्त कर वे अपने को सम्हाल न सकीं। उन्हें किसी अभाव की प्रतीति ही नहीं थी। श्रीकृष्ण की सन्निधि उन्हें नित्य ही तथा प्रतिक्षण बनी रहती। इसी भाव से भावित हो उन्होंने कहा -

'योग कहाँ राखें यहाँ रोम-रोम श्याम हैं।'

जहाँ श्यामसुन्दर की माधुरी छवि रोम-रोम में समाई हो, वहाँ योग के लिए स्थान ही कहाँ हैं। 'ऊधो मन न भये दस बीस' अतः जो एक मन है, वहाँ तो श्यामसुन्दर विराजमान हैं। उनके अतिरिक्त और कुछ वे देखना ही नहीं चाहतीं।

---

1. जब उन्हें मालुम हुआ कि ये तो रमा-रमण भगवान श्रीकृष्ण का सन्देश लेकर आये हैं, तब उन्होंने विनय से झुककर, सलज्ज हास, चितवन और मधुर वाणी से उद्धवजी का सत्कार किया तथा एकान्त में आसन पर बैठाकर वे उनसे इस प्रकार कहने लगीं।

इस प्रकार अभी चर्चा चल रही थी कि वे उद्धवजी से बोलीं -

कौन ब्रह्म की जोति ज्ञान कासों कहै ऊधौ ।
हमरे सुन्दर स्याम प्रेम को मारग सूधौ ॥
नैन, बैन श्रुति नासिका मोहन रूप लखाइ ।
सुधि बुधि सब मुरली हरी प्रेम ठगौरी लाइ ॥
सखा सुन स्याम के ।

ब्रह्म की ज्योति, ज्ञान आदि से उन्हें कुछ प्रयोजन न था । उनके तो केवल श्यामसुन्दर अपने हैं, यही पर्याप्त है, उनकी जीवन लता के आधार स्वरूप । मुरली की तान के वशीभूत हुई वे प्रेम में सराबोर हो रही हैं ।

पुनः श्रीकृष्णके प्रति उपालम्भ देती हुई कहने लगीं -

अहो ! नाथ रमानाथ और जदुनाथ गुसाँई ।
नन्दनंदन विडराति फिरत तुम बिनु, बन गाई ॥
काहे न फिरे कृपालु ह्वै गौ, ग्वालन सुधि लेहु ।
दुख जलनिधि हम बूड़हीं कर अवलम्ब न देहु ॥
निठुर ह्वै कहां रहे ।

हे प्राणधन ! अब अपनी गौ, ग्वाल, सखाओं तथा हम अबलाओं की सुधि लेकर हमें अवलम्ब क्यों नहीं देते ? तुम्हारे बिना सभी जगत सूना लगता है ।

ब्रज-बालाओं की स्थिति देख उद्धवजी अपने योग उपदेश की बातें भूल गये । गोपिकाओं के रोम-रोम में श्यामसुन्दर की प्रीति, उनका सान्निध्य सुख, उनका अहर्निश चिन्तन, उनकी श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम-प्रगाढ़ता सभी को देख उद्धवजी बौरा गये । उसी प्रेम के रस कणों की कामना करते हुए कहने लगे -

जे ऐसी मरजाद मेटि मोहन को ध्यावें ।
काहे न परमानन्द प्रेम पदवी को पावें ॥
ज्ञान जोग सब कर्म तें परे प्रेम की सांच ।
हौं या पटतर देत हौं हीरा आगे कांच ॥
विषमता बुद्धि की ।

श्रीउद्धवजी योग का प्रतिपादन करते-करते गोपिकाओं की प्रेम मर्यादा का बखान करने लगे । उनके प्रेम का उत्कर्ष कह श्रीकृष्ण सन्निधि का विश्वास कर, ज्ञान योग तथा कर्म से परे प्रेम है, इस सिद्धान्त का प्रतिपादन करने लगे । प्रेम हीरा के सामने योग तथा ज्ञान तो गौण हैं, तथा काँच के समान हैं । केवल बुद्धि की विषमता भर ही तो है यह ।

श्रीउद्धवजी प्रेम का पाठ पढ़, गोपिकाओं का प्रेम दर्शन कर, श्रीकृष्ण के समीप लौट, गोपिकाओं के प्रेम का वर्णन करने लगे, स्वयं भी उन गोपिकाओं के चरणों की रज की लालसा वश ब्रज में वास के इच्छुक हो गये। जब उन्होंने सम्पूर्ण वर्णन श्रीकृष्ण के सामने किया, श्रीकृष्ण ने कहा -

ह्वै सुचेत कहि भले सखा पठये सुधि लावन।
औगुन हमरे आनि तहाँ ते लगे दिखावन॥
उनमें मो में हे सखा छिनभरि अंतर नाहिं।
ज्यों देख्यौ मो माँहि वे,हौं हूँ उनहीं माहिं॥
तरङ्गिनी वारि ज्यौं।

हे उद्धवजी, मैंने तुम्हें ब्रज की खोज खबर के लिए भेजा था। वहाँ से इतने प्रभावित हो आये हो। वास्तव में गोपिकाओं तथा मुझमें कोई अन्तर नहीं है। हम नित्य ही तरङ्ग तथा जल की भाँति एक हैं।

श्रीउद्धवजी की ज्ञान वार्ता, गोपिकाओं के प्रेम भरे उपालम्भ, श्रीउद्धव जी द्वारा प्रेम की श्रेष्ठता को स्वीकार कर गोपिकाओं के प्रति आभार प्रदर्शन की यह स्थली उद्धव क्यारी नाम से विख्यात हुई-उसी रसमय वातावरण से आज भी ओत-प्रोत है।

कई सन्तों को यहाँ श्रीकृष्ण दर्शन लाभ हुआ है। लगभग पचास वर्ष की बात है, उद्धवजी की बैठक के समीप रास-स्थली के पास ही पूर्व की ओर एक कदम्ब वृक्ष के नीचे अपने अत्यन्त प्रियजन को श्यामसुन्दर ने दर्शन दे अपनी अहैतुकी कृपा की अनुभूति करवाई थी।

अभी हम नन्दग्राम की लीला स्थलियों के विषय में पढ़ चुके हैं, आईये अब आस-पास की स्थलियों में विचरण कर लीलास्वादन करें।

महराना (मोहिनी वन)

मोहिनीवेषधृक् विष्णूद्भव नैमित्तिहेतवे।
त्रैलोक्य मोहरूपाय नमस्ते मोहिनी वन॥

(सम्मोहन तन्त्र, ब्र० भ० वि०)

हे मोहिनी वेषधारी श्रीविष्णु भगवान के द्वारा उत्पन्न! त्रैलोक्य मोह रूप मोहिनी वन! आपको नमस्कार है।

श्री अभिनन्द गोप की गौशाला स्थली है यह। श्रीकृष्ण की ननसाल है।

गृह कार्य से निवृत्त हो, कन्हैया को शयन कराने के लिए मैया लेट गई। सभी आवश्यक वस्तुएं, कन्हैया के पास ही रखी हैं। कन्हैया को नींद कहाँ ?

मैया से लग, लिपट उनके वात्सल्य रस को सत्कारते हुए, अपनी मीठी-मीठी तोतली वाणी में कन्हैया ने कहा, "मैया ! ओ मैया ! मुझे कहानी सुना ।" मैया कुछ-कुछ तन्द्रा सी में थी, परन्तु कन्हैया सजग हुए मैया से कहानी सुनने का आग्रह करने लगे । अन्ततः मैया ने लाला को चिपटाते हुए कहा, 'तू कहानी सुनेगा' । लाला ने कहा, हाँ ! मैया बोली -

त्रेता में एक बड़े ही वीर, धर्मज्ञ तथा सत्यनिष्ठ राजा थे, जिनकी सर्वत्र ख्याति थी । उनका नाम था महाराजा दशरथ । श्रीअयोध्या उनकी राजधानी थी । उनके सबसे बड़े पुत्र का नाम श्रीराम था । अपनी माता कैकई तथा पिता महाराजा दशरथजी की आज्ञा से उन्होंने बनवास स्वीकार कर, वन के लिए प्रस्थान किया । उनकी सती साध्वी पत्नी श्रीसीताजी भी उन्हीं के साथ वन में गईं ।"

कन्हैया बड़े ही मनोयोग से यह सब सुनते रहे, मैया मौन हो गईं । कन्हैया ने बड़ी उत्सुकता पूर्वक पूछा, "मैया ! आगे क्या हुआ ।" मैया ने कुछ क्षण चुप रहकर कहा, "सती सीता को छल से राक्षस रावण अपहरण कर ले गया ।" यह सुन कन्हैया खड़े हो बोले-

"लक्ष्मण ! लक्ष्मण ! मेरा धनुष लाओ, मैं अभी दुष्ट रावण का वध कर दूंगा ।" मैया डर गईं, उसने भीति वश कन्हैया को और चिपटा लिया । थोड़ी देर में कन्हैया ने अपनी पूर्व की स्मृति से भीत मैया को धैर्य बँधाया । भक्त प्रवर श्रीसूरदास जी ने इस लीला का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है -

पहली कथा पुरातन सुन-सुन जननी के मुख वाणी ।
लक्ष्मण, धनुष-धनुष कहि टेरत यशुमत सूर डरानी ॥

कन्हैया यहाँ श्रीराम रूप में मैया यशोदा सहित विराजमान हैं ।

ग्राम के दक्षिण में नृसिंह भगवान का मन्दिर है । उसके पूर्व में गौ के खुर का चिन्ह है । ईशान कोण में मयूर कुटी है । पूर्व में श्रीकृष्ण के खेलने के चिन्ह विद्यमान हैं ।

होली तथा श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव विशेष दर्शनीय है ।

जावट (याव ग्राम)

श्रीश्रीराधा, श्रीकृष्ण की आह्लादिनी शक्ति हैं । वे नित्य ही प्रियतम की सङ्गिनी हैं और प्रियतम भी सदा सर्वदा उनके साथ विराजमान रहते हैं । क्षणमात्र का वियोग, उन्हें सह्य नहीं होता । वे सदा ही एक-दूसरे से मिले

रहते हैं । नित्य लीला की तो बात ही कोई क्या कहे ? प्रियतम की क्षण-प्रतिक्षण, नव-नवायमान रूप मधुरिमा ने, माधुर्याम्बुधि की रस हिलोरों ने, मधुर मुस्कान रश्मियों ने, रसीले नयनों से झरती रस निर्झरिणी ने, यावत प्रकृति में ही माधुर्य भर, रस-धूम मचा दी, फिर इन भोली-भाली ब्रजाङ्गनाओं की तो बात ही कौन कहे ? इनकी बात अपनी ही बात है ।

हाँ ! तो वे हर क्षण प्रियतम की रसीली चर्चा में संलग्न हैं, रस-मय संकेतों में मग्न हैं, हास विनोदों में सर्वदा खोई रहती हैं । उन्हीं की अधिष्ठात्रीदेवी, उन्हीं गोप-बालाओं की सखी, सहचरी श्रीराधा सदा-सदा श्रीकृष्ण भाव-भाविता रहती हैं । शत-शत चन्द्रमाओं की ज्योत्सना को भी तिरस्कृत करती प्रियतम श्यामसुन्दर की मुस्कान मधुरिमा से सिक्त सिञ्चित तथा पोषित श्रीराधा उन्हीं की सन्निधि में विराजती हैं और प्रियाजी की भ्रू कटाक्ष में आबद्ध प्रियतम भी, प्रियाजी के समीप विराजते हैं । अहा ! प्रणय के यह दो मूर्त विग्रह हैं, प्रणयिनी श्रीराधा तथा प्रणयी रिझवार श्रीकृष्ण 'दोऊ चकोर दोऊ चन्द्रमा', प्रेम की पराकाष्ठा ही इस उक्ति में भरी है ।

रस के यह द्वय साकार चन्द्र अपनी अनगिन तारिकाओं सहित सदा सर्वदा साथ-साथ विराजते हैं । रसोत्कर्ष हेतु, रसवर्धन हेतु, किसी लीला विशेष के समायोजन हेतु ही एक-दूसरे से अलग भासते हैं, ठीक इसी हेतु से जुड़ी है 'जावट ग्राम' की सरस गाथा ।

ततो याव वटम् । रास मण्डलम् । तदुपरिस्थानि द्वादशाब्दावस्थं ।
राधादि दशसखी नामा रक्तानि पादक्षेपनेषु पादचिह्नानि...।

(स्कन्द पुराण)

उसके पश्चात् याव वट है । रास मण्डल है । उसके ऊपर द्वादश वर्षीया श्रीराधादि दस सखियों के पद चिन्ह हैं ।

उत्पत्ति प्रसङ्ग

राधापादतलाद्यत्र जावकः स्खलतोऽभवत् ।
यस्माज्जाव वटं नाम विख्यातं पृथ्वीतले ॥

(वृहद् गौतमीय तन्त्र)

'रूप को सार सिंगार बखान्यो-
सिंगार को सार किशोर किशोरी ।'

श्रृङ्गार की साक्षात मूर्त्ति हैं नन्दनन्दन श्रीकृष्ण तथा उनकी प्रिया श्रीराधा । श्रृङ्गार सार, नित्य नवीन माधुरी सम्पन्न प्रिया श्रीराधा नित्य नवीन

श्रृङ्गार से सज्जित हो अपने प्राण प्रेष्ठ के प्रेम में पगी रहती हैं या यों कहें समस्त श्रृङ्गार ही इनके श्रीअङ्गों का सान्निध्य पा धन्य हो जाता है । वे केश विन्यास करती हैं, पुष्पों से अलंकृत होती हैं, सरसीले नयनों में काजल धारण करती हैं, चन्दन तथा कुंकम से भाँति-भाँति की चित्रकारी करती हैं। श्रीचरणों में महावर लगाती हैं । श्रृङ्गार से मण्डिता प्रियाजी की रूप माधुरी....ओह ! सौन्दर्य तथा माधुर्य पुञ्जीभूत हो जाता है यहाँ । इनकी श्री को निहार काम और रति लज्जावनत हो जाते हैं ।

श्रृंगार के वास्तविक उपभोक्ता यह प्रणयी किशोर श्रीनन्द-नन्दन ही हैं । रसमयी केलि का समायोजन देख रससिन्धु की तरल लहरियों में डूबते, उतरते प्रियतम श्रृंगार को धन्य करते हैं । ऐसे ही किन्हीं सुरस क्षणों में श्रृंगार से सज्जित हो प्रियाजी अपनी सखियों सहित रस विहार हेतु निकुञ्ज में प्रविष्ट हुईं । अपनी प्रिया श्रीराधा की खोज में प्रियतम भी इसी निकुञ्ज में अनायास आ गये । युगल प्रणयी बावरों को पुष्पों से सज्जित करने के मिस सखियाँ पुष्प चयन हेतु समीप के उद्यान में चली गईं। प्रिया-प्रियतम परस्पर श्रृंगार को सराहते रहे, प्रियाजी की संकोच मधुरिमा कभी-कभी मृदु मुस्कान के मिस, 'हाँ' अथवा 'ना' के मिस, रस केलि का वर्धन करती रही । प्रणय रस के उच्छलन में दोनों ही, किसी रस गाम्भीर्य में मत्त हो गये । ओह ! प्रणय केलि के अङ्क में समाश्रित युगल; इस गाथा का चित्रण कौन करे ? प्रियाजी के अङ्गों का संस्पर्श पा इस रस चतुरा स्थली ने ही सावधानी से प्रियाजी के श्रीचरणों में लगा जावक (महावर) अपने हृदय पर उतार लिया । यह भी कौन कह सकता है कि अत्यन्त उदार शिरोमणि किशोरी श्रीराधा ने इस रस स्थली की मनोकामना पूर्ण की हो । तभी से यह स्थली जाव-वट नाम से प्रसिद्ध हो गई । जाव (जावक) आया है, बट में जिसके वह है जाव-वट । आज भी इसी नाम से विख्यात है ।

श्रीअभिमन्यु गोप का स्थान है । कल्प भेद से इन्हीं से श्रीराधा के विवाह की बात मानी गई है । कुटिला अभिमन्यु की बहिन थी तथा जटिला उनकी माँ । श्रीवृषभानु बाबा ने पूर्णमासी पुरोहितानी की सलाह से इस विवाह का संयोजन किया था । योगमाया के प्रभाव से अभिमन्यु गोप श्रीराधा की छाया का भी संस्पर्श नहीं करते थे । सर्वदा संकोचवश गौशाला तथा अपने समवयस्क गोपों में मग्न रहते थे । जटिला तथा कुटिला गृह कारज में संलग्न रहतीं । इधर सखियाँ चतुराई से श्रीकृष्ण का, श्रीराधा से मिलन करवातीं । रसोत्कर्ष हेतु ही रसिकों ने परकीया भाव की स्थिति मानी है, अन्यथा श्रीराधा तो श्रीकृष्ण की अनन्या प्रिया हैं-उन्हीं की आह्लादिनी शक्ति हैं, उन्हीं की नित्य प्रेयसी हैं।

लीला-स्थलियाँ (राधा कुण्ड)

राधायै सततं तुभ्यं ललितायै नमो नमः ।
कृष्णेन सह क्रीडायै राधाकुण्डाय ते नमः ॥

(वृहद् गौतमीय तन्त्र)

हे श्रीराधिका स्वरूप ! हे श्रीललिता स्वरूप ! श्रीकृष्ण क्रीड़ा हेतु, हे श्रीराधा कुण्ड आपको नमस्कार है ।

रस के इन द्वय बावरों की रीति ही निराली है । प्रेम का स्वरूप ही विचित्र है, प्रतिक्षण नवीन है तथा प्रतिक्षण वर्धमान है । रूप सिन्धु में उठती प्रतिक्षण की नव-नवायमान तरङ्गों का पारावार ही कौन पा सकता है भला ? नित्यकेलि प्रिय यह रस बावरे, निरन्तर नव-नव केलि मे निमग्न रहते हैं । सखियों के साथ हास-परिहास में रस उच्छलित होता है और कभी दान-मान की अनुनय विनय में रस छलकता रहता है । रसीली छेड़-छाड़ में, सखियो के साथ रस-वीथियों में लहराते प्रियतम बीच-बीच में एकान्त का सुअवसर भी खोज ही लेते हैं। एकान्त की यह उमगन, रसोच्छलन की सुरस कामनाएँ, कभी जलकेलि के संयोजन में समा जाती हैं और कभी किसी सघन निकुञ्ज की लताओं का अवलम्ब ले यह रसिक रिझवार रस में मग्न हो जाते हैं। यह रस केलि, जलकेलि की भूमिका बनती है और सखियों को अमित रस-पान कराने को प्रियतम श्यामसुन्दर श्रीराधा-कुण्ड, तटवर्ती निकुञ्जों में रसमग्न हो, जल में प्रविष्ट हो जाते हैं । इन सखीवृन्द के श्रीअङ्गों में लगी कुंकुम, केशर तथा अन्य श्रृङ्गार सज्जाओं से मण्डिता, इन महाभागाओं के अङ्ग राग से यह कुण्ड सिञ्चित हो जाता है ।

यह रसमय कुण्ड ऐसी ही अनेक जलकेलि रहस्यों का परिचायक, आज भी अपनी लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन कराने को आतुर हो रहा है ।

रास मण्डल

यत्र राधाकरोद्रासं कृष्णेन सह विह्वला ।
सप्तवर्षस्वरूपेण सखिभिर्बहुधा सुखम्॥

(ब्र० भ० वि०)

यहाँ सखियों सहित श्रीराधाजी ने सप्त वर्ष वय प्राप्त श्रीकृष्ण सहित अत्यन्त मग्न होकर विविध रास लीलाएँ की हैं ।

प्रकट लीलाभिनय करते सात वर्ष के बालक वेषधारी कन्हैया अपनी समवयस्का गोपिकाओं सहित लीला में नित्य किशोर हैं । कैशोर्य की रस चेष्टाओं में मग्न कन्हैया ने यहाँ अनेक लीलाएँ की हैं, इन्हीं लीलाओं में

रसादान प्रदान के रहस्यों से धन्या यह स्थली आज भी भावुक भक्तों को रस से आप्लावित कर रही है ।

पद्मावती विवाह स्थल

पद्मावत्सास्तु सख्यास्तु विवाहं सा समाचरेत् ।
गानं वैवाहिकोत्साहं सर्वमाङ्गल्यपूरितम् ॥
(ब्र० भ० वि०)

रससुधा धारा की निरन्तर वर्षा करते यह रस विग्रह नित्य ही रस मग्न रहते हैं । यह प्रणयी नन्दनन्दन, श्रीराधा को तो एकान्तिक सुख देते ही हैं, इनकी कायव्यूह स्वरूपा यह ब्रज-बालाएँ भी उसी रस की वर्षा से सिक्त सिञ्चित होती रहती हैं । इनकी रूप माधुरी का जादू यावत् प्रकृति को ही आकर्षित किये हुए है । पशु-पक्षी तक उस रूपासव का पान कर बौरा जाते हैं, तो फिर इन ब्रजाङ्गनाओं के सौभाग्य की तो बात ही कौन कह सकता है । नित्यकिशोर नन्दनन्दन परम उदार हैं और उनकी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा अत्यन्त उदारमना हैं । जिस रस को पा, वे स्वयं धन्या होती हैं, उसी रस को निज स्वरूपभूता इन ब्रज-बालाओं के लिये वितरण करने की प्रेरणा देती हैं । नित्य ही 'तत्सुखे सुखित्वं' की मर्यादा में पगी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करती सखियों की कामनाएँ, परम उदारमना किशोरी श्रीराधा से छिपी नहीं हैं, अतः वे स्वयं प्रेरणा देकर अपनी सखियों को उसी रसास्वादन के लिये सुअवसर प्रदान करती हैं, जो उनके लिये नित्य तथा निरन्तर का है । प्रियाजी का नित्य तथा निरन्तर का सुख प्रियाजी की इच्छा से, सखियों को भी प्राप्त होता है । रास में यह रसमयी सखियों को एक ही साथ प्राप्त हुआ, क्योंकि वे अभिन्न हृदया हैं, उनके अनेक तन परन्तु मन से वे सब एक ही हैं । सखियाँ प्रिय सामीप्य पा उन्हीं की सरस चर्चा में मग्न हो गईं । पद्मावती सखी की चिर-अभिलाषा को पुरस्कृत करते यह रसमय किशोर, रस मग्न हो गये । सखियों ने सम्पूर्ण सज्जा सजाई । सखी के हृदय की धड़कनें तीव्र हो गईं, संकोच वश नत-नयन हो गई वह ! कुछ देर बाद वह बाला अपनी स्वामिनी श्रीराधा का सामीप्य पाकर सजग हुई । श्रीराधा ने हाथ पकड़ धीरे-धीरे, कुछ सरस वार्ता करते-करते, इस बाला को पूर्व निर्दिष्ट सज्जित स्थली पर आसीन करा दिया । प्रियतम पहले से ही वहाँ विराजमान थे । श्रीकृष्ण के पीताम्बर छोर से इस बाला की साड़ी का छोर बाँध, उसका मुख निहारने लगीं । ओह ! अबकी मनःस्थिति कौन कहे ? कैसे कहे ....? सङ्कोच मण्डिता यह बाला .... ।

सखियों ने मङ्गल गीत गाये और यह बाला सङ्कोच में भरी...किसी अपूर्व

रस में मग्न हो गई तथा यह महाभागा स्थली, उस सुरस रसमय वातावरण से आप्लावित हो गई ।

इन्हीं सुखमयी स्मृतियों को अपने गर्भ में छिपाये यह स्थली आज भी उसी रस का प्रसार कर रही है ।

समस्त मंगलकारिणी यह स्थली, श्रीकृष्ण प्रेम प्रदान करने वाली है ।

श्रीराधिका गमना-गमन वीथिका

प्राणी मात्र के आराध्य, अखिल ब्रह्माण्ड नायक, पूर्ण पुरुषोत्तम सच्चिदानन्द घन श्रीकृष्ण, अवतार काल में मानव सुलभ सभी लीलाऐं करते हैं । उनकी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा भी, सूर्य देवता को समादर देती हैं, उनकी पूजा करती हैं । इसी पथ से होकर सूर्य पूजा हेतु जाती हैं ।

कदम्ब कानन की सौरभ से मत्त कन्हैया, पहले से ही इन सभी आयोजनों से भिज्ञ हैं, अतः यहीं कदम्ब वृक्षों की ओट में लुके छिपे अपनी प्राण-प्रिया के हाव-भाव, निरख-निरखकर और और मत्त होते जा रहे हैं । कभी उनकी पुष्प चयन मुद्रा को निहार रहे हैं; तो कभी किसी वृक्ष की डाली में उलझे वस्त्राभरणों को सुलझाते हुए देखकर रस में मग्न हो रहे हैं । अपना आँचल सम्हाल कर, प्रियाजी ने अपने वाम कर से अपनी बिथुरी केशावलि को सम्हाला, पुष्प डाल झुका, पुष्प तोड़ना चाहा परन्तु पुष्पलता हाथ से छूट गई । लता पकड़ने के लिए प्रियाजी, अपने चरणों के अग्रभाग के सहारे उचक-उचक कर डाली पकड़ने की चेष्टा करने लगीं, परन्तु हाथ पहुँच नहीं पाया । प्रियाजी ने किसी प्रकार से एक लता को पकड़, झुका पुष्प गुच्छ तोड़ अपने आँचल में रखा ही था, कि कर से लता पुनः छूट गई । यह दृश्य देख प्रेम के वशीभूत हुए प्रियतम श्यामसुन्दर को हँसी आ गई तथा हास्य ध्वनि सुनकर प्रियाजी चौंक गईं उन्होंने अपने नेत्र उठाए, इसी बीच आस-पास की सखियाँ भी खिलखिला दीं ।

सङ्कोच में भरी प्रियाजी बोलीं, "हे प्रियतम मुझे निराश्रय जानकर तंग न करो । हे चपल ! मेरी साड़ी का छोर छोड़ दो ! मुझे अभी सूर्य पूजन हेतु जाना है । हे गोकुल वीर ! विलम्ब न करो । चन्द्र वदन ! तुम्हारे चञ्चल नेत्रों को देख, मैं भयभीत हो रही हूँ ।" इस प्रकार वर्जन करती हुई प्रियाजी अनुनय, विनय करने लगीं ।

रस की उन अदम्य हिलोरों में भरे, मन-भाये संकेतो से उमंगित, तरंगित प्रियतम, उसी स्थान में और, और रस में भर चपल हो गये ।

आज भी उन्हीं रस कणों से सिक्त यह स्थली भावुक भक्तों को रसास्वादन करा रही है।

श्रीकृष्ण कुण्ड

एई कृष्ण कुण्ड वट वृक्षादि वेष्टित।
एथा श्रीकृष्णेर अति सुललित ॥

(भ० र०)

सघन वृक्षों से घिरा यह स्थल श्रीकृष्ण कुण्ड के नाम से विख्यात है तथा अनेक लीलाओं का स्रष्टा है। प्रिया-प्रियतम की प्रायः सभी लीलाओं का साक्षी है यह कृष्ण कुण्ड।

एक बार इन्हीं वट वृक्षों के मध्य प्रियतम, प्रियाजी सहित झूला झूलने पधारे। सखी वृन्द कुछ देर से पहुँचीं। रस विज्ञ प्रियतम को नवीन कौतुक सूझा, बोले-"आज ! हिंडोले की तैयारी मैं अपने हाथों करुँगा।" बिना कुछ प्रतीक्षा किये, वे कार्य में जुट गये। अत्यन्त सुन्दर झूला डाल, प्रियाजी से बोले, "स्वामिनी जू ! पधारो।" प्रियाजी बैठने का प्रयास करने लगीं, परन्तु कुछ ऊँचा झूला होने के कारण बैठ न सकीं। प्रियतम श्यामसुन्दर ने अपनी दोनों भुजाओं से प्रियाजी को ऊपर उठा, झूले में आसीन कराने के मिस अङ्क में भर लिया, हिंडोलोत्सव से पहले ही प्रिया-प्रियतम रस हिलोरों में लहराने लगे।

पीछे के प्रकोष्ठ से हँसती-खिलखिलाती, सखियों ने कुञ्ज में पदार्पण किया। वह एकान्तिक रसमय हिंडोला, अब सामूहिक हिंडोलोत्सव में परिणत हो, रस वर्षा से सिक्त हो गया। अन्य सभी सखियाँ भी विशेष रस में सराबोर हो गईं।

ऐसी ही सुरस लीलाओं से सिक्त, सिञ्चित यह स्थली आज भी अपने वातावरण से आलोड़ित कर रही है।

ग्राम के दक्षिण में यह कुण्ड स्थित है। पास ही 'मुक्ता कुण्ड' है, जहाँ प्रिया-प्रियतम का सखियों ने, मुक्ताओं से श्रृङ्गार किया था।

पास ही 'पावन कुण्ड' है। ग्राम के वायु कोण में कदम्ब वृक्षों के मध्य स्थित है।

लाड़िली कुण्ड

श्री ललिताजी, इस स्थली पर प्रिया-प्रियतम का सम्मिलन कराती हैं, अतः यह स्थल 'लाड़िली कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया।

यह 'पावन कुण्ड' के पश्चिम में स्थित है।

वर-प्राप्ति स्थल

एकबार श्रीराधा सहसा इधर आ निकलीं। देवर्षि नारद से अनायास भेंट हो गई। उनका पूर्ण समादर कर श्रीराधा ने देवर्षि को प्रणाम किया। देवर्षि ने प्रसन्न हो 'अमृत हस्ता'[1] होने का आशीर्वाद प्रदान किया।

प्रियाजी सम्पूर्ण कलाओं में परिपूर्ण हैं, फिर भी अपने जनों को पूर्ण आदर देती हैं।

ग्राम के पश्चिम की ओर, श्रीराधाकान्त मन्दिर है। ईशान कोण में 'किशोर कुण्ड' तथा अग्निकोण में 'सिद्ध कुण्ड' है। ग्राम के दक्षिण में 'कुन्तल कुण्ड' नामान्तर 'नीप कुण्ड' हैं। 'डहर वन', 'विह्वल कुण्ड', 'पनिहारि कुण्ड', 'पारल गंगा' आदि स्थलियाँ भी आस-पास दर्शनीय हैं।

यहाँ पर एक वृक्ष, पारिजात वृक्ष नाम से विख्यात है। यह वृक्ष वैशाख मास में फूलता है। ऐसी मान्यता है कि इसे श्रीराधा ने स्वहस्त से रोपित किया था, जो शाखा-प्रशाखा तभी से चला आ रहा है।

कोकिला वन

देवर्षिकिन्नराकीर्ण कोकिला निर्मिताय च।
वनायाह्लाद पूर्णाय नमस्ते सुस्वरप्रद !॥

(नारद पाञ्चरात्र)

हे देवर्षि किन्नर गणों से युक्त ! हे कोकिला द्वारा निर्मित आह्लाद से परिपूर्ण कोकिला वन ! सुन्दर स्वर को देने वाले, आपको नमस्कार है।

भाद्र शुक्ल ऋषि पञ्चमी को स्वाति नक्षत्र में यहाँ की यात्रा का विशेष महत्त्व माना गया है।

प्राकट्य

प्रियतम श्यामसुन्दर नित्य ही गोचारण हेतु जाते हैं। सभी सखाओं को आनन्द प्रदान कर, कभी गउओं को वन में तृण चरते तथा सखाओं को उन की देख-रेख हेतु छोड़, अपनी प्रतीक्षा में बाट जोहती, प्राण-वल्लभाओं की अभिलाषा पूर्ण करने चले जाते हैं। आज भोर में ही अपनी प्रिया श्रीराधा से मिलन की कामना लिए वे इसी वन में आ गये। इनकी नित्य नई सूझ तथा नित्य नये ढंग, सर्वत्र ही विख्यात हैं। कोकिला के स्वर में आपने ध्वनि मिला

---

1. अमृत हस्ता द्वारा बने पदार्थ, किये हुए कृत्य सभी के लिये सुस्वादु तथा सुख प्रदान करते हैं। उनका सेवन करने वाला दीर्घायु तथा सभी की प्रसन्नता का पात्र बन जाता है।

कुहू ध्वनि से सर्वत्र वन को गूञ्जा दिया। अपने प्राण सर्वस्व की वाणी सुन, श्रीराधा पहचान गईं। परन्तु अकेली इतनी दूर वे कैसे आतीं। श्रीविशाखाजी को एक युक्ति सूझी। घर में सभी से स्वीकृति ले, प्रियाजी सहित इसी वन में चली आईं। इधर सखियाँ भी अपने प्राणधन की खोज में अनजाने में ही यहाँ आ पहुँचीं। प्रेम में पगी इन बालाओं के पग कभी पथ से विचलित नहीं होते, प्रत्युत अनायास ही मिलन मन्दिर में पहुँच जाते हैं। रस की यह एकान्तिक स्थली दिव्य केलि विलास से धन्या हो गई।

कोकिलेर शब्द कृष्ण मिले राधिकारे।
ए हेतु कोकिला वन कहये इहारे॥

(भ० र०)

श्रीराधा कृष्ण के मिलन की भूमिका कोयल शब्द से परिपूर्ण होने के कारण ही यह 'कोकिला वन' नाम से विख्यात है।

रत्नाकर कुण्ड

सख्याः क्षीरसमुद्रभूत रत्नाकर सरोवरे।
नाना प्रकाररत्नानामुद्भवे वरदे नमः॥

(नारद पाञ्चरात्र)

सखियों द्वारा लाये हुए दूध से उत्पन्न हे रत्नाकर सरोवर! नाना प्रकार के रत्नों के उद्भव स्थल! हे वरदायी! आपको नमस्कार है।

समस्त पापों को क्षय करने वाला तथा धन-धान्य प्रदान करने में सर्वथा सक्षम यह सरोवर भक्तों को श्रीप्रिया-प्रियतम की अहैतुकी भक्ति प्रदान करने वाला है।

रास मण्डल

रासक्रीडाप्रदीप्ताय गोपी रमण सुन्दर!
नमः सुखमनोरम्यस्थलाय सिद्धिरूपिणे॥

(नारद पाञ्चरात्र)

हे रास क्रीड़ा से प्रदीप्त मनोहर रासस्थल! हे गोपियों के रमण से सुन्दर, सिद्धि रूप! आपको नमस्कार है।

श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की बैठक

श्रीकृष्ण कुण्ड तट स्थित शमी वृक्ष के नीचे श्रीमन्महाप्रभुजी की बैठक है। यहाँ उन्होंने श्रीमद्भागवत पारायण किया तथा वैष्णवों को ब्रह्म सम्बन्ध कराया।

बिजवारि

बिजुरिर पुञ्ज ज्ञान हईल सवार ।
एई हेतु 'विजुआरि' नाम से इहार ॥

(भ० र०)

कंस द्वारा प्रेरित श्रीअक्रूरजी नन्दनन्दन तथा बलरामजी को मथुरा ले जाने के लिए ब्रज में पधारे। दोनों भैया रथ में सवार हो चलने लगे। अपने लाला के अभाव को सहन करने का धैर्य ब्रजवासियों में न रहा। वे सभी रथ के सम्मुख खड़े हो गये। गोपाङ्गनाओं के लिए यह समय अत्यन्त दारुण था। सभी ब्रजवासियों के हृदय कमल अपने जीवन सर्वस्व के विषय में सोच कुम्हला से गये।

श्रीकृष्ण यद्यपि अपने जनों के साथ सर्वदा विराजमान रहते हैं, तथापि प्रकट लीलाभिनय में मथुरा गमन सभी के लिए कष्टप्रद था।[1] सभी पर मानों गाज ही गिर पड़ी हो।

गोपियाँ रुदन करने लगीं। एक-एक करके रथ के सामने खड़ी हो गईं। सतत अश्रु प्रवाह से पृथ्वी सिक्त हो गई। ओह ! वे विधाता को कोसने लगीं। प्रिय वियोग में कैसे शरीर धारण कर सकेंगी, इस प्रकार क्रन्दन करती हुई मूर्छावस्था को प्राप्त होने लगीं।

उसी समय श्रीकृष्ण की इच्छा जान योगमाया के प्रभाव से आकाश से एक स्थिर विद्युत पुञ्ज पृथ्वी पर गिरा, ऐसा सभी को प्रतीत होने लगा। सभी ब्रजवासी भयवश इधर-उधर चले गये। विद्युत पुञ्ज गिरने की इस स्थली को 'बिजुआरि' अथवा 'बिजवारि' नाम की संज्ञा दी गई है।

नन्दग्राम से डेढ़ मील की दूरी पर स्थित है।

---

1. ब्रज के रसिकों ने श्रीकृष्ण-प्राकट्य के सम्बन्ध में एक तो वसुदेवजी के पुत्र (ऐश्वर्य स्वरूप) तथा दूसरे यशोदा जी के यहाँ कन्या के साथ-साथ एक पुत्र जो नन्दनन्दन रूप में (माधुर्य स्वरूप) प्रकट हुए ऐसा माना है। वसुदेवजी जिस समय अपने पुत्र को लेकर नन्दराय जी के यहाँ गोकुल पहुँचे तो वह ऐश्वर्यमय स्वरूप, उन माधुर्य स्वरूप नन्दनन्दन में लय हो गये। उन्होंने ब्रज में रहकर अपने जनों को ग्यारह वर्ष तथा बावन दिन तक सुख प्रदान किया। अक्रूर जी जिस समय श्रीकृष्ण तथा बलराम को लेकर मथुरा के लिये प्रस्थान करने लगे, तो अक्रूर घाट पर उन्हें जिन चतुर्भुज स्वरूप के दर्शन हुए, वह नन्दनन्दन के ऐश्वर्यमय स्वरूप थे - उसी ऐश्वर्यमय स्वरूप से अपनी आगे की लीला पूरी करने के लिये देवकीनन्दन भगवान मथुरा चले गये तथा नन्दनन्दन रूप में मधुर भाव से अपने जनों को सुख प्रदान करने के लिये ब्रज में ही विराजमान रहे। उनका प्रण है -

'वृन्दावनं परित्यज्य नैव गच्छाम्यहं क्वचित्।'(पद्म पुराण)

सांखि

एई सांखि नामे ग्राम देख एई खाने ।
दुष्ट शंखचूड़े कृष्ण बधिला आपने ॥[1]

(भ० र०)

एक बार दोनों भैया श्रीकृष्ण तथा बलरामजी रात्रि में अपने-अपने मण्डल की सखियों सहित विहार कर रहे थे । शुभ्र ज्योत्सना से मण्डित रात्रि थी । चारों ओर सुगन्धित समीरण प्रवहमान थी, पुष्प खिले थे । ऐसी मनोहर रात्रि में श्रीकृष्ण तथा बलराम जी अपने-अपने यूथों की गोपिकाओं सहित नृत्य गान में मग्न थे । दिव्यानन्द में मत्त ब्रजांगनाओं को वसन की भी सुधि न थी । ऐसे में शङ्खचूड़ नामक कुबेर का सेवक आया तथा कुछ गोपिकाओं का हरण करके भागने लगा । श्रीकृष्ण तथा बलरामजी को जब पता चला तो वे उसके पीछे भागे । अपना काल सामने आते देख उसने गोपिकाओं को वहीं छोड़ दिया तथा स्वयं अपने प्राण बचाने को भागा । ब्रजांगनाओं के पास, बलरामजी को छोड़ श्रीकृष्ण शङ्खचूड़ के पीछे भागे । उन्होंने शीघ्र ही उसे पकड़ लिया तथा एक ही घूंसे से चूड़ामणि सहित उसक सिर धड़ से अलग कर दिया । उसकी मणि लेकर श्रीकृष्ण लौट आये । यह मणि अपने बड़े भैया श्रीबलरामजी को प्रसन्नतापूर्वक समर्पित कर दी । बलदेवजी उस समय वहाँ थे इसलिए इसे 'रामतला' भी कहते हैं ।

साहार से दो मील की दूरी पर स्थित है ।

छत्रवन (छाता)

गोपिकान्वितकृष्णाय नमस्ते छत्र धारिणे ।
इन्द्रादिदेवताभ्यस्तु वरदाय नमो नमः ॥[2]

(कूर्म पुराण)

कन्दर्पराज श्रीकृष्ण की रसमयी क्रीड़ाओं का लेखा-जोखा कौन दे सकता है !

श्रीकृष्ण तो 'मनोज गर्व मोचन हैं' उसके मद का सदा-सदा के लिए मर्दन करने वाले हैं ।

कन्दर्प जहाँ पराजित हो धराशायी हो जाता है, वहाँ से श्रीकृष्ण की विशुद्ध रसमयी लीलाओं का प्रारम्भ होता है । समस्त लौकिक कामनाओं का त्यागी ही श्रीकृष्ण काम भोगी हो सकता है ! श्रीकृष्ण का काम, प्रेम ही है । यह विशुद्ध

---

1. यह सांखि नामक ग्राम है, जहाँ श्रीकृष्ण ने अपने ही हाथों दुष्ट शंखचूड़ का वध किया था ।
2. हे गोपिकामय श्रीकृष्ण ! छत्रधारी आपको नमस्कार है । आप इन्द्रादि देवताओं को भी वर देने वाले हैं ।

प्रेम है जो गोपाङ्गनाओं के तत्सुखे सुखित्वं के भाव में निहित है, ओत प्रोत है ।

दिव्य रस विलास में मग्न हैं, यह कन्दर्प रसराज श्रीकृष्ण, तथा उनकी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा एवं उन्हीं की कायव्यूह स्वरूपा यह ब्रजाङ्गनाऐं । यह सखीवृन्द रसमयी लीलाओं के समायोजन जुटाने में परम प्रवीण है ।

एक बार अपने सखाओं को रस पोषित करते हुए कन्हैया ने, मधु-मंगलादि सखाओं से कहा जाओ, यह घोषणा कर दो कि 'यह कौन हैं जो नित ही हमारी पुष्प-वाटिका से पुष्प चुराकर ले जाती हैं और वृक्षादि को भी क्षति पहुँचाती हैं।' रस केलि का अभिनव ढंग था यह, प्रेम की रसमयी रीझ थी यह । इन सब रस चेष्टाओं की शोभा, इन ब्रजराज नन्दनन्दन तथा उनकी अभिन्न हृदया इन ब्रज- बालाओं में ही है । जहाँ एक ओर उनका मधुराति-मधुर स्वरूप हमारे सामने प्रकट होता है, वहीं उनके ऐश्वर्य प्रधान चरित्र हमारे लिए आदर्श बने हैं । अपने जनों को सुख प्रदान करने के हेतु से ही, श्रीकृष्ण लीला करते हैं । मधुमंगलादि सखाओं ने आज से नया भार सम्हाला और यह घोषणा कर दी ।

'महाराज छत्रपति नन्देर कुमार ।'

(भ० र०)

तभी से यह स्थली 'छत्र वन' नाम से प्रसिद्ध हो गई । नामान्तर छाता है। ईशान कोण में 'सूर्य-कुण्ड' तथ नैॠत में 'चन्द्रकुण्ड' है। पास ही 'उमराव' ग्राम है ।

उमराव

उमरा-उ योग्य सिंहासने बसि राई ।
सखीगन प्रति कहे चतुर्दिके चाई ॥

(भ० र०)

नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के छत्रपति होने का समाचार सम्पूर्ण ब्रज मण्डल में सखाओं ने पहुँचा दिया। सखीवृन्द तक भी यह समाचार पहुँचा। श्रीललितादि सखियों ने विस्मय सहित यह सब सुना और बोलीं, नहीं, नहीं, ऐसा नहीं है, यह उद्यान तो हमारी स्वामिनी अनन्त सौन्दर्यमयी वृषभानु-नन्दिनी के ही आधिपत्य में है । कन्दर्प जगत में सभी के धैर्य का अपहरण करने में वे सर्वथा समर्थ हैं । कन्दर्प की तो बात ही क्या कन्दर्प-दर्पहारी श्यामसुन्दर भी, प्रिया जी की एक ही भ्रूकटाक्ष से बिद्ध हुए उनके प्रणय पाश में आबद्ध हो उनके शरणागत हो जाते हैं-अतः इस कन्दर्प वाटिका की अधिपति किशोरी श्रीराधा ही हैं, फिर आज उनकी इस 'वैभवश्री' का दूसरा हिस्सेदार और कौन है, जिसकी उद्घोषणा की जा रही है । "जाओ सखियों उसे पकड़ लाओ और

कन्दर्प वाटिका की एकमात्र अधिष्ठात्री देवी हमारी किशोरी स्वामिनी श्रीराधा के सम्मुख प्रस्तुत करो ।"

ऐसा ही हुआ । सखियाँ मधुमंगल को पुष्प दाम से बाँध वहाँ ले आईं । उन्हें दण्ड विधान सुनाया गया । मधुमंगल ने विनोद करते हुए कहा-यह तो ठीक है कि मुझे दण्ड दो परन्तु पहले भर पेट लड्डु तो खिला दो । किशोरी श्रीराधा ने कहा-यह कोई ब्राह्मण बालक है, अतः इसे छोड़ दो ।

यह समाचार मधुमंगल ने अपने सखा कन्हैया को जा सुनाया । सुनते ही श्यामसुन्दर अधीर हो गये तथा त्वरित गति से निकुञ्ज की ओर चल दिये । मधुमंगल सहित अपने प्राणवल्लभ श्यामसुन्दर को देख किशोरी श्रीराधा संकोच में पड़ गईं, तभी मधुमंगल ने सिंहासन पर आसीन किशोरी श्रीराधा के दक्षिणांग में श्रीकृष्ण को आसीन करा दिया । दोनों की अनन्त शोभा माधुरी का सभी पान करने लगे । इस पर मधुमंगल ने श्रीराधिका को सम्बोधन करते हुए कहा -

राधिकार प्रति मधु कहे बार बार ।
अबे कृष्ण, लह राज्य कर अधिकार ॥
कृष्ण जे दिबेन एक आलिंगन रत्न ।
'से तोमार भेंट-ता' लइबे करि यत्न ॥

(भ० र०)

'हे श्री राधे अब श्रीकृष्ण को अपने पास कर, इन पर अपना आधिपत्य कर लो । यदि श्रीकृष्ण एक बार भी तुम्हें सामीप्य सुख प्रदान करेंगे तो इसे अपनी सम्पत्ति समझकर यत्नपूर्वक ग्रहण करना ।'

यह सब सुन किशोरी श्रीराधा, भाव विह्वल हो गईं । उनके कपोलों पर रक्तिमाभा छा गई, नेत्र निमीलित हो गये, ग्रीवा तनिक झुक गई । प्रेम, मूर्त हो उनके श्रीअङ्गों में समा गया । सखी वृन्द ने देखी प्रेम की यह अलबेली दशा, मन ही मन प्रसन्न होतीं, रस मग्न हो गईं । मधुमंगल भी अपना अभीष्ट पा वहाँ से चले गये । कन्दर्प वाटिका में दोनों ही राजकुमार अपने-अपने आधिपत्य का निर्णय करते कराते रहे । कौन जानता है यह निर्णय स्मर-समर युद्ध की विजय-पराजय के उपरान्त हुआ अथवा इन प्रणयी प्रवीरों ने सहज अपनी हार-जीत का निर्णय कर लिया । छत्रपति नन्दकुमार की वाटिका से अपहृत पुष्प रत्नों की खोज में जाने उन्होंने कैसे-कैसे और कहाँ-कहाँ ढूँढ़ने के निर्णय लिए और अपनी अपहृत पुष्प सौरभ को कहाँ-कहाँ से प्राप्त किया-कराया तथा सन्धि कर एक हो गये- यह तो वे ही जानें । 'विविध कौतुके सखि श्रम दूर कैला' सखियों ने विविध आयोजनों द्वारा दोनों का श्रम निवारण किया ।

इन्हीं रसायोजनाओं की भूमिका स्वरूप उमराव अर्थात् राजकुमार बनी श्रीराधा के कारण ही यह ग्राम उमराव नाम से विख्यात हो गया ।

यहाँ 'किशोरी कुण्ड' है । लोकनाथ गोस्वामी की भजन कुटी है । 'श्रीराधाविनोद ठाकुर' जो आजकल जयपुर में विराजमान हैं, यहीं से प्रकट हुए थे । इसी कुण्ड पर एक वृक्ष के नीचे श्रीलोकनाथ गोस्वामी का त्याग, तथा भक्ति से प्रपूरित जीवन व्यतीत हुआ ।

पास ही धनिष्ठा सखी का 'धनशिंगा' ग्राम है ।

कोसी (कुश-स्थली)

पुण्याय पुण्यरूपाय पावनाय नमो नमः
अक्षयफलदायैव नमः कुशवनायते ॥

(ब्र० पु०)

हे पुण्य रूप ! हे पवित्र स्वरूप ! हे अक्षय फलदाता कुशवन ! आपको नमस्कार है ।

वर्तमान नाम कोसी है । श्रीकृष्ण ने नन्दबाबा को यहाँ वैकुण्ठ के दर्शन कराये थे । श्रीनन्दरायजी की कोश-स्थली है । ब्रज-मण्डल की द्वारकापुरी मानी जाती है । 'रत्नाकर-सागर', 'मायाकुण्ड', 'विशाखा कुण्ड' तथा ग्राम के पश्चिम में 'गोमति कुण्ड' है ।

नरी-सेमरी

नारायणसुखावास परमात्मस्वरूपिणे ।
नमो नारायणाख्याय वनाय सुखदायिने ॥

(आदित्य पु०)

हे नारायण के सुखावास ! हे परमात्म स्वरूप ! नारायण नामक सुखदायी वन ! आपको नमस्कार ।

नरी-नारायण का प्रतीक मानकर इसे नारायण वन से संबोधित किया गया है ।

प्रेम की रसमयी क्रीड़ाओं में मान का अपना ही स्थान है । विरह के पश्चात् मिलन का अपना ही सुख है और इसका महत्त्व प्रेमी ही जानते हैं । प्रियतम के सुख वर्धन हेतु प्रियाजी कभी-कभी मान भी करती हैं ।

एक बार श्रीराधा किञ्चित् मान मना हो गईं, प्रियाजी को मनाने में परम प्रवीण प्रियतम के मनाने के सभी प्रयत्न आज विफल हो गये । वे सखियों के पास गये । श्रीललिता ने सुझाया कि सखी वेष धारण कर प्रियाजी के पास

जाकर संगीत सुनाना । श्यामसुन्दर ने ऐसा ही किया । वीणा हाथ में ले, श्यामला सखी का वेष धारण कर, वे प्रियाजी के पास पहुँचे, तथा राग व अलाप लेने लगे । वीणा में मधुर स्वर श्रवण कर प्रियाजी चौंक गई । सखी को पास बुलाया और उसका परिचय जानना चाहा । उन्होंने सखी से पूछा, सखी ! तूने संगीत कहाँ सीखा है ? बहुत ही सुखद गाती है तू । सखी वेषधारी श्यामसुन्दर ने कहा, "मैं स्वर्ग की किन्नरी हूँ । मेरी गुरु मुझ से भी सुन्दर गाती हैं । मुझ से सुन्दर स्वर है उनका ।" परस्पर मैत्री, घनिष्ठता में परिणत हो गई और प्रियाजी ने रीझ कर अपनी रत्न माला उतार, उस श्यामला सखी को देनी चाही । सखी ने बहुत ही संकोच का अभिनय-सा करते हुए कहा, स्वामिनी जू आप रत्न माला के स्थान पर मान रत्न मुझे दे दो । श्रीराधा तो पहले से ही कुछ शंकित-सी थीं, अब पूर्ण रूप से समझ गईं तथा मान जाता रहा । इस मधुर-मिलन का प्रारम्भ और परिसमाप्ति कैसे-कैसे हुई यह कहना कठिन है ।

ब्रज देवी के रूप में इन दोनों सखियों की पूजा होती है । यहाँ 'सङ्कर्षण कुण्ड' है, 'किशोरी कुण्ड' है तथा 'बलदेवजी' के दर्शन हैं ।

रनबाड़ी

मदन बावरों की बात ही निराली है । जो प्रेम के साकार विग्रह हैं, माधुर्य के स्रोत हैं, सौन्दर्य की पराकाष्ठा हैं और 'साक्षात् मन्मथ मन्मथः' हैं, मदन मद हरण हेतु स्मर समर की भूमिका बना, उसे चुनौती दे, ललकारते हैं । उसे जीवन दान देते हैं और स्मर युद्ध में उसे पराजित कर सदा-सदा के लिए अपने चरणों का दास्य प्रदान करते हैं, वही पूर्ण काम श्रीकृष्ण अपनी प्रिया श्रीराधा सहित विविध केलि द्वारा रस मग्न हो रहे हैं ।

उसी स्मर समर की यह स्थली 'रनबाड़ी' नाम से विख्यात है ।

आज से लगभग सवा सौ वर्ष पूर्व बंगाल से श्रीकृष्णप्रसाद चट्टोपाध्याय नाम के एक व्यक्ति आये, वे ही बाद में बाबा श्रीकृष्णदास नाम से प्रसिद्ध हुए ।

आप रनबाड़ी ग्राम में निवास करते थे । घर से बाल्यावस्था में ही चले आये तथा ब्रज में वास करने लगे । अपने साधन भजन में वे पूर्ण थे । एक बार मन में, भ्रमण कर तीर्थ दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा जगी और श्रीद्वारिका जाने का विचार सहसा ही बन गया । रात्रि में प्रियाजी ने दर्शन दिये तथा द्वारिका जाने के लिए मना कर दिया । अपने सङ्कल्प के कारण वे इतने आतुर हो रहे थे कि उन्होंने प्रियाजी की आज्ञा को अपना भ्रम ही समझा तथा द्वारिका चले ही गये । वहाँ जाकर इनका मन द्वारिका के प्रति आकर्षित हो

गया । इन्होंने तप्त मुद्रा भी धारण कर ली ।[1] भ्रमण की इच्छा अब प्रायः दब सी गई थी, अतः बीच में से ही ये लौट आये ।

जिस दिन बाबा ब्रज में लौटे, उसी रात्रि में श्रीराधारानी ने पुनः स्वप्न में कहा, "द्वारिका में जाकर तुमने तप्त मुद्रा धारण कर सत्यभामाजी का आनुगत्य स्वीकार कर लिया है । अब तुम ब्रज- धाम के उपयुक्त नहीं रहे-तुम्हें द्वारिका में ही जाकर रहना चाहिए तथा उसी भाव से उपासना कर श्रीकृष्ण प्राप्ति करनी चाहिए ।"

इस बार का स्वप्न जाने क्यों, इन्हें प्रत्यक्ष सा लगा जिससे इन्हें अत्यन्त कष्ट हुआ । उसके बाद ये गोवर्द्धन के सिद्ध बाबा श्रीकृष्णदासजी के पास गये और सारी घटना उनके सामने स्पष्ट की । वे भी स्तब्ध रह गये और इनके स्पर्श तक से पीछे हट गये ।[2]

ब्रज में अनेक महात्माओं से परामर्श किया तो सभी ने प्रियाजी की आज्ञा पालन करने की सलाह दी । हताश होकर ये रनबाड़ी लौट गये ।

प्रियाजी की विरहाग्नि से तथा अपने सङ्कल्प के कारण इन्हें बहुत कष्ट हुआ । इनके शरीर में दाह होने लगा । लगभग तीन माह तक वे ऐसे ही विरहाकुल रहे । इनके भीतर की अग्नि फूट पड़ी और सिद्धासन में बैठे श्रीकृष्णदास बाबा के चरण अंगुष्ठ से प्रारम्भ हो मस्तक तक पहुँची । तीन दिन में उनकी यह पार्थिव देह भस्मीभूत हो गई । कहते हैं इनकी भस्म शान्त होने पर इनके गुरु भाई श्रीप्रेमदासजी ने एक लकड़ी श्रद्धा पूर्वक इन्हें समर्पित की तो वह भी जलने लगी ।

आज भी बाबा का तिरोभाव दिवस पौष मास की अमावस्या के दिन प्रतिवर्ष यहाँ के ब्रजवासी सोत्साह मनाते चले आ रहे हैं ।

योगाग्नि से प्रज्वलित उनके शरीर दाह के समय श्रीजगन्नाथदास, श्रीबिहारीदास बाबा प्रभृति तथा अनेक ब्रजवासी उपस्थित थे ।

---

1. द्वारिका में जाकर सभी सम्प्रदाय के लोग तप्त मुद्राएँ अपने शरीर पर धारण करते हैं, परन्तु रागानुरागी भक्तों के लिये ऐसा विधान नहीं है । इसीलिये ब्रज भाव के भक्तों के लिये श्रीकिशोरीजी के आनुगत्य की ही प्रधानता स्वीकार की जाती है तथा ऐश्वर्य प्रधान साधक द्वारिका भाव से उपासना करते हैं ।

2. ब्रज भाव के भक्तों के लिये ब्रज में निवास आवश्यक है । उसके साथ-साथ, भाव ब्रज ही का बना रहना चाहिये । ऐसा लगता है कि श्रीकृष्णदास बाबा ने मुद्रा तो ली ही, उसके साथ-साथ कदाचित् उनके भाव में भी परिवर्तन आया होगा । अन्यथा परम कोमलांगी किशोरी श्रीराधाजी में इस प्रकार की कठोरता की कल्पना भारी भूल होगी । जो स्वभावतः ही लाड़- प्यार की मूर्ति हैं - वे अपने जनों के भावों की पुष्टि तो अवश्य कर सकती हैं, उन पर किसी प्रकार की दुःसह परिस्थिति के आरोपण की कल्पना करना उनके स्वभाव के सर्वथा विपरीत है ।

खायरो (खदिर वन)

नमः खद्रवनायैव नाना रम्य विभूतये ।
देव गन्धर्व लोकानां वरदाय नमोऽस्तु ते ॥[1]

(आदि वा०)

सप्तमन्तु वनं भूमौ खदिरं लोक विश्रुतम् ।
तत्र गत्वा नरो भद्रे मम लोकं सगच्छति ॥

(आ० वा०)

लोक प्रसिद्ध खदिरवन जगत में प्रसिद्ध सातवाँ वन है। हे भद्रे ! जहाँ गमन करने मात्र से मनुष्य मेरे धाम को प्राप्त करता है ।

यह गोचारण स्थली है। श्रीकृष्ण गोचारण हेतु यहाँ आते हैं। कभी वृक्षों पर चढ़ते-उतरते सखाओं को सुख प्रदान करते हैं, तो कभी जल में स्नान करते हुए सखाओं का आनन्द वर्धन करते हैं। सखाओं के साथ वन में भोजन करते हैं। मैया यशोदा अपने पुत्रों के लिए भोजन भेजती हैं, तो आपस में बाँटकर वे सब ग्रहण करते हैं। उनके भोजन आरोगने का यह स्थल 'नेओ छाक' नाम से भी प्रसिद्ध है।

'खायरे ते आवेगो, कुर्त्ता टोपी लावेगो' वृद्धावस्था की सन्तान होने के कारण श्रीकृष्ण के लिए कपड़े माँगकर पहनाये गये थे। आज भी नन्द गाँव की समाज में यह पद गाया जाता है ।

सङ्गम कुण्ड

पास ही कदम्ब वृक्षों का सघन उद्यान है, वहीं 'सङ्गम कुण्ड' है । अपने जीवन सर्वस्व को देखने की इन ब्रजवासियों को उतावली लगी रहती है । ग्वाल मण्डली तो गोचारण के समय कन्हैया के साथ ही रहती है, परन्तु यह ब्रजाङ्गनाऐं कभी गोरस बेचने के मिस तथा कभी जल भरने के मिस यहाँ चली आती हैं । सहसा कन्हैया से भेंट हो जाती है और कन्हैया भाँति-भाँति से इन सखियों की मनोकामना पूर्ण करते हैं ।

परस्पर की यह मिलन स्थली अनेक सरस लीलाओं की गाथा अपने अङ्क में छिपाये, 'संगम कुण्ड' नाम से विख्यात है ।

बकथरा

बकथरा ग्राम ए जावट सन्निधाने ।
बकासुरे कृष्ण बधिलेन एई खाने ॥[2]

(भ० र०)

---

1. हे नाना प्रकार की विभूति स्वरूप ! हे देवता, गन्धर्व अथवा मनुष्यों को वर देने वाले खदिरवन ! आपको नमस्कार है ।
2. जाववट के पास ही बकथरा ग्राम है,जहाँ श्रीकृष्ण ने बकासुर का वध किया था ।

श्रीकृष्ण अपने बड़े भैया बलरामजी तथा संग के ग्वाल-बालकों के साथ बछड़े चरा रहे थे। बछड़ों को प्यासा देख उन्होंने जल पिलाया। स्वयं भी जल-पान किया। सभी ने पास ही बगुले के आकार का एक बहुत बड़ा पक्षी देखा, सभी भयभीत हो गये। कंस का वह मित्र बकासुर जो बगुले का वेष बना करके श्रीकृष्ण को हानि पहुँचाने आया था, देखते ही देखते श्रीकृष्ण की ओर लपका तथा उन्हें अपनी चोंच में भर निगल गया। यह सब देख बलरामजी, सभी बालकों के सहित मूर्छित हो गये। श्रीकृष्ण परमब्रह्म हैं, सर्व शक्तिमान हैं, कर्त्तुं, अकर्त्तुं, अन्यथा कर्त्तुं सर्व समर्थ हैं, अतः उनकी यह लीला मात्र ही थी। बकासुर को प्रचण्ड दाह होने लगा। उसका श्वास अवरुद्ध हो गया। श्रीकृष्ण को उसने तुरन्त ही अपने पेट से बाहर निकाल दिया तथा उन पर अपनी तीक्ष्ण चोंच से प्रहार करने लगा। सभी के देखते-देखते, क्षणभर में ही श्रीकृष्ण ने, उस बकासुर को चोंच से पकड़कर बीचो-बीच चीर दिया। सभी ग्वाल-बाल हर्ष में भर गये तथा चैन की सांस ले, कन्हैया से जा लिपटे और बोले कन्हैया, "तूने तो इतने बड़े बगुले का वध कर दिया। सांची है ! बाबा कह्यो करते। तोमे नारायण को आवेश ह्वै जाय है।" बकासुर का वध हो जाने पर देवता पुष्पों की वर्षा करने लगे।

गोचारण से, सखा मण्डली जब घर लौटी, तो कन्हैया के पराक्रम की गाथा ग्वाल-बालकों ने बड़े गोपों से कह सुनाई। उसे सुन सभी गोप श्रीगर्गाचार्यजी की वाणी स्मरण कर उनके प्रति आभार प्रदर्शन करने लगे।

बकासुर के वध का यह स्थान 'बकथरा' नाम से विख्यात है।

भदावली (भाण्डागोर)

भाण्डागोरमितिख्यातं गुह्यमस्ति ततो ममम्।
लभन्ते मनुजा भूमिसिद्धिं तत्र न संशयः॥

(आ० वा०)

भाण्डागोर नामक मेरा गुह्य स्थान है। वहाँ जाने मात्र से मनुष्य निश्चय ही सिद्धि लाभ कर लेता है।

यहाँ लता, गुल्मों से आच्छादित एक कुण्ड है। जो व्यक्ति रात्रि में उपवास, जपादि करके भोर होने पर इस कुण्ड में स्नान करता है, वह विद्याधर लोक में जाकर समस्त सुखों का उपभोग करता है, यह ध्रुव सत्य है। वर्ष की चौबीसवीं एकादशी का विशेष महत्त्व है।

बठैन छोटी तथा बड़ी

गोप गन वैसे - एई हेतु ए बैठान ।
अवे लोक कहे 'छोट' 'बड़' दुई नाम ॥

(भ० र०)

गोपों की पारस्परिक चर्चा तथा विचार विमर्श की स्थली बठैन नाम से विख्यात हो गई। यहाँ बैठकर ग्वाल-बाल गोचारण के विषय में विचार किया करते थे। ग्वाल बालकों तथा गोपों की बैठने की स्थलियाँ 'छोटी तथा बड़ी' बठैन नाम से प्रसिद्ध हैं।

श्रीसनातन गोस्वामी ने यहाँ निवास किया। उनका त्याग तथा भक्तिमय जीवन चरित्र वैष्णव जगत में विख्यात है।

भक्त प्रवर परमानन्ददासजी ने 'बठैन' स्थली के विषय में अपनी भाव भीनी श्रद्धाञ्जली अर्पित कर कहा है -

बसत बठैन सबै सुख माईं।
एक कठिन दुख दूर कन्हाई॥

यहाँ रहने पर सम्पूर्ण सुख उपलब्ध होने पर भी सबसे कठिन दुःख, जो सर्वथा असह्य है कि कन्हैया की सन्निधि सहज नहीं मिल रही है। कन्हैया के बिना उन्हें कहीं भी रहना सह्य ही नहीं है-अतः उनकी अभिलाषा को पूर्ण करते कन्हैया ने कब उनके जीवन को सरसा दिया-इसे कौन कह सकता है भला ?

कृष्ण कुण्ड

बठैन के अग्निकोण में 'कृष्ण-कुण्ड' है। नीप-वन अत्यन्त मनोहर स्थली है। इसकी सुगन्धि चारों ओर के वातावरण को और, और सरसीला बना देती है। इसके मध्य में श्रीकृष्ण का अत्यन्त प्रिय, 'कृष्ण कुण्ड' शोभायमान है। चारों ओर से झुकी वृक्षावलि, लता-वितानों से परिवेष्टित विटपों की डालियों पर पक्षियों के मधुर कलरव से यह स्थली सदैव गुञ्जायमान रहती है। इसी स्थली पर छलिया नागर (श्रीकृष्ण) की चातुरी प्रकट हुई है। ऐसी ही एकान्त स्थलियों पर दान-मान की अनेक रसायोजनाऐं बनती हैं। उन्हीं रसमय केलियों और रस रहस्यों की विज्ञा यह स्थली, अपनी मनोरमता से सभी को आकर्षित कर रही है।

कुन्तल कुण्ड

श्रीकृष्ण की रूप माधुरी का पान कर ब्रज-रमणी वृन्द आकुल-व्याकुल हो जाती हैं। श्रीकृष्ण नन्द-भवन से श्रृङ्गार करके निकलते हैं। गोचारण में परिश्रम

से केशावलि अस्त-व्यस्त हो जाती है। यहाँ श्रीकृष्ण ने अपने केश संवारे हैं तथा सखियों ने प्रियाजी से पुष्प ले प्रियतम श्याम सुन्दर की केशावलि में धारण कराये हैं-अतः यह स्थली 'कुन्तल कुण्ड' नाम से विख्यात हो गई।

चरन पहाड़ी

श्रीकृष्णेर पाद पद्मचिह्न ए रहिल।
एई हेतु चरन पहाड़ि नाम हईल॥[1]

एक बार श्रीकृष्ण सखा मण्डली सहित गोचारण हेतु यहाँ चले आये। गाय तथा बछड़े दूर घास चर रहे थे। श्रीकृष्ण को कौतुक सूझा, वे चरन पहाड़ी पर त्रिभंग मुद्रा में खड़े हो वंशी में 'बर्बरी राग' का अलाप लेने लगे। उस वंशी ध्वनि को सुनकर यावत् प्रकृति में सभी को मोहाकर्षण हो गया। यहाँ तक कि पर्वत भी पिघल गया। सभी ग्वाल-बाल तथा गउऐं श्रीकृष्ण की ओर भागे चले आये। उसी समय उन्होंने वंशी ध्वनि बन्द कर दी। पर्वत पर चढ़ने के चिन्ह बन गये। वही चरण चिन्ह आज भी इसी पहाड़ी पर अङ्कित हैं तथा ध्यान से देखने पर दृष्टिगोचर होते हैं।

यहाँ एक प्रश्न बहुत सहज और स्वाभाविक है, जो चरण चिन्ह देखकर उठ सकता है। यह चरण चिन्ह एक ओर के, केवल आने के ही हैं-जाने के नहीं। इसका निराकरण रसिकों ने ही किया है-जिस समय श्रीकृष्ण वंशी वादन कर रहे थे तो पर्वत शिला पिघल गई, उस समय जो-जो सखा, गौ आदि पर्वत पर चले आये उनके चिन्ह अंकित हो गये, और तभी श्रीकृष्ण ने वंशीनाद बन्द कर दिया अतः पर्वत शिला पूर्ववत् हो गई। जब ग्वाल-बाल तथा गौऐं, गोवत्स आदि लौटे तो उनके चरण चिन्ह अंकित नहीं हुए।

भड़ोखर

एई बेड़ौ खोर कुञ्ज भवन मझार।
विलसये दोहे बद्ध करि कुञ्ज द्वार॥

(भ० र०)

बठैन के पास ही यह विलास स्थली है, कुञ्ज भवन में रसमयी झूम से सखियों को सुख प्रदान कर प्रियतम प्रेम में मग्न हो गये। और, और की रस त्वरा वश अलसश्री ने उनके रसमय गात में आश्रय लेना चाहा। इधर प्रियतम की रसमयी दशा देख किशोरी श्रीराधा भी रस मग्न हो गईं थीं। आज विचित्र

1. श्रीकृष्ण के चरण चिन्ह यहाँ अंकित हैं, इसीलिये इसे चरण पहाड़ी कहते हैं।

बात यह हुई कि प्रियतम के रस गाम्भीर्य तथा प्रियाजी की रसाधीरता, दोनों में ही होड़ लग गई। किसी विशेष उमगन में भरे प्रियतम किञ्चित् सजग से हुए। दोनों की मत्त दशा देख सखियाँ भी रस में मग्न हो गईं। युगल रस माधुरी का पान कर वे तन्मय हो गईं। अहा! पुष्पों से सुसज्जित यह निकुञ्ज प्रिया-प्रियतम की रस चेष्टाओं का सत्कार करती रही। यह एकान्तिक रस-विलास अपनी उत्तुङ्ग हिलोरों से रस सिन्धु को झकझोरने लगा। प्रणय की सरसीली झकोरों में उन्मत्त प्रणयी युगल, रस सिन्धु की धीर लोल लहरियों में डूबते-उतरते प्रणय रस बावरे इस स्थली को धन्य करने लगे। रस का यह प्रवाह कब तक गतिमान रहा-कौन कहता ?

उन्हीं रस रहस्यों की भिज्ञा यह स्थली 'भड़ोखर' नाम से विख्यात हो गई।

हारोयाल ग्राम

ललिता कहे-राई ! पाशाक क्रीड़ाते ।
अनायासे तुमि हाराईला प्राननाथे ॥

(भ० र०)

अनङ्ग रङ्ग केलि के सहायक सभी रसमय कौतुक, इन रसिक युगल को प्रिय हैं। कुञ्ज निकुञ्जों में विहार रत प्रिया-प्रियतम कभी सखियों को साथ ले कन्दुक क्रीड़ा में मग्न हो आनन्द लेते हैं तो कभी गोरस बेचने जाती ब्रज-बालाओं से गोरस की याचना करते हैं। विविध केलि- कौतुकों में रस मग्न हो अपने जनों को सुख प्रदान करते हैं।

आज की अनोखी रसधारा का प्रारम्भ पासा खेलने से हुआ। दोनों ही रस बावरे पासा खेलने में चतुर हैं। आज प्रियतम की एक नहीं चल पा रही। प्रियतम ने अपना पटका, वंशी, लकुटि बारी-बारी से सभी दाव पर लगा दिये और हारते चले गये। दाव पर लगाने को जब कुछ भी न रहा तो इधर-उधर देखने लगे। श्रीललिताजी से बोले, "सभी वस्तुएँ तो मैं हार ही चुका हूँ, अब मैं अपने आपको ही दाव पर लगा रहा हूँ। अबकी बार तो मेरी जीत अवश्यम्भावी है।"

कहा भयो बाजी एक हारी अब के जीत हमारी हो।
हँसि पासे डारे सुकुमारी पुनि चौपर विस्तारी हो॥

प्रियतम, प्रियाजी की रूप माधुरी का पान कर पासे डालने लगे। परन्तु !

दाईन चलति करत कोलाहल लाल रचत छल भारी हो।

अनेक छल-कपट करने पर भी प्रियतम हारते दीख रहे हैं। ललिता जी ने कहा, अब तो अनेक बार रौंटि कर चुके, इस बार भी दीख रहा है, हे प्रियतम !

तुम्हारी हार निश्चित ही है, तुम देख रहे हो न ! हमारी स्वामिनी सीधी-सादी, अत्यन्त भोरी हैं और तुम अति प्रवीण होने पर भी इस बार पुनः हार गये और जीत प्रियाजी की ही हुई ।

ललिता कहति रौंटि करि बाजी दीखत अबहु हारी हो ।
अति भोरी स्वामिनी जु हमारी तुम कोविद जु बिहारी हो ॥

इधर हारकर भी श्यामसुन्दर प्रियाजी के साथ-साथ चल दिये । जीतकर भी जीत दोनों ही की हुई और हारकर भी आप हारे नहीं । इस रसायोजना में भी प्रियतम की ही जीत हुई और प्रियाजी किसी रस गाम्भीर्य में भर प्रियतम का सामीप्य पा रस में मग्न हो गईं ।

विजय-पराजय की रसमयी-वार्ता का लेखा इस स्थली पर आज भी अङ्कित है और यह स्थली 'हारोयाल' ग्राम नाम से विख्यात है ।

पाई ग्राम

देख पाई-ग्राम, राई सखी गन सने ।
कृष्णेर अन्वेषण करि पाई एखाने ॥

(भ० र०)

'ब्रज' भूमि मोहिनी मैं जानी' । नित्य नवीन कौतुकों की स्थली यह ब्रज भूमि सदैव ही नवीन कौतुकों से परिपूर्ण है । ब्रज के उत्सव स्वरूप यह रसिक नागर तथा उनकी प्राणाराध्या श्रीराधा एवं उनकी कायव्यूह स्वरूपा यह ब्रज-बालाएँ नये-नये उत्सवों की रसायोजना में संलग्न रहती हैं ।

आज भी प्रियतम ब्रज-बालाओं को एक नवीन स्थली का संकेत दे, सखाओं सहित गोचारण के लिए चल दिये । सखाओं को एक पहेली सुलझाने में उलझा परम चतुर कन्हैया स्वयं पूर्व निश्चित उसी पुष्प सुसज्जित, सघन वृक्षावलि मध्य नवीन निकुञ्ज में आ विराजे । सखियाँ अभी आईं न थीं । पास ही की निकुञ्ज से कोयल की मधुर ध्वनि सुन कौतुक वश प्रियतम उस निकुञ्ज में छिप गये ।

छम-छम ध्वनि से सम्पुर्ण वनस्थली गूँज गई । किशोरी श्रीराधा अपनी सखियों सहित वहाँ पहुँची । सज्जा आदि देख वे समझ तो गईं कि प्रियतम आ चुके हैं, परन्तु उन्हें वहाँ न देख स्तब्ध सी रह गईं, सखियाँ इधर-उधर प्रियतम को खोजने लगीं । पास की लता झुरमुट में एक डाली पर बैठी सारिका ने कहा, "हे स्वामिनी, श्यामसुन्दर पास ही की निकुञ्ज में विराजमान हैं ।" स्नेह तथा प्यार भरी दृष्टि से सारिका की ओर निहार कर प्रियाजी, पूर्व सुनिश्चित निकुञ्ज में चली गईं । एक वृक्ष की ओट में कोमल दूर्वा पर प्रियतम को बैठे

देख धीरे-धीरे प्रियाजी पास पहुँची, एवं प्रियतम के स्कन्ध पर हाथ रख बोलीं, "तुम ! तुमने ..." प्रियाजी को अपने पास बिठाते हुए प्रियतम जोर से खिलखिला दिये। सखी वृन्द भी दोनों को खोजती हुई वहाँ आ पहुँचीं। सभी की हास ध्वनि से यह स्थली एक बार पुनः गूँज उठी। सखियों ने प्रियतम से कहा, आज की रसायोजना से धन्य होने को यह पुष्प शैय्या तुम्हारी बाट जोह रही है। बस फिर क्या था ? प्रियाजी ने प्रियतम को खोजा ही था और प्रियतम श्यामसुन्दर किसी सरस खोज में मग्न हो गये। उस निकुञ्ज में बरसते रसीले संकेतों, सन्देशों की सुधाधारा का आस्वादन कर सखियाँ भी सुख-सिन्धु में मग्न हो गईं।

प्रियाजी द्वारा प्रियतम को ढूँढ़ने की यह सुरस स्थली 'पाई ग्राम' नाम से विख्यात हो गई। जिस शिला को पुष्पों द्वारा मण्डित कर दोनों विराजे वह 'चलन शिला' भी धन्य हो गई।

कामर

देखइ कामरि ग्राम कृष्ण एई खाने ।
कामे व्यस्त हैया चाहे राई पथ पाने ॥

(भ० र०)

एक बार श्यामसुन्दर यहाँ प्रियाजी से मिलने को अत्यन्त विह्वल हो गये। उन्हीं की प्रतीक्षा में रत बाट जोहने लगे। प्रेम का स्वभाव विचित्र है। यही बेतार का तार प्रियाजी को झकझोरने लगा। यह लो प्रियतम ने वंशी हाथ में धारण कर प्रियाजी का नाम ले पुकार मचा दी। बेसुधि में पगी, प्रिय सुधि वश अनजाने में ही ललिता तथा विशाखा को साथ ले प्रियाजी वहाँ चली आईं। प्रियतम रस मग्न हुए वहाँ बैठे चौंक से गये। सखियों सहित प्रिया-प्रियतम आनन्द मग्न हो गये। अनेक प्रकार की रस वार्ताओं में मग्न, यह रसिक रिझवार, अनन्त सुख में मत्त हो गये। सखियों को एक कौतुक सूझा, उन्होंने, प्रियतम की कारी कामर जो उन्हें बरसाने से मिली थी, चुपके से उठा, छिपा दी। श्रीकृष्ण अपनी कामर खोजने लगे। भक्त प्रवर सूरदासजी ने इस झाँकी का बहुत ही सरस चित्रण किया है। कन्हैया मैया से कह रहे हैं-

मैया मेरी कामर चोर लई।
मैं बन जात चरावन गैया सूनी देख लई ॥
एक कहे कान्हा तेरी कामर जमुना जात बही।
एक कहे कान्हा तेरी कामर सुरभी खाय गई ॥
एक कहे नाचो मेरे आगे लै देहुँ जु नई ।
सूरदास जसुमति के आगे अंसुवन धार बही ॥

मैया ! मैं गाय घेरने वन में गया था । गैया बहुत दूर निकल गई, मैं भी उनके पीछे-पीछे चला गया । तू देख ले मैया ? किसी सखी ने मेरी कामर चुपके से एकान्त में चुरा ली है । पूछने पर कोई कहती है, "कन्हैया, तेरी कामर, तो जमुना में बहती जा रही थी, मैंने सचमुच ही देखा है ।" दूसरी बोली, "कन्हैया ! तेरी कामर तो सुरभी गैया खा गई है ।" बता भला मैया ! गैया मेरी कामर कैसे खाय सकै है ? एक बोली, "मेरे सामने नाच तो तुझे दूसरी मँगा दूंगी ।" तू बता मैया मैं उसके आगे, नाचता भला लगता हूँ क्या ? 'तू मेरी कामर लै के दे मैया । देख ! गाँव की ग्वालिनियाँ मुझे कह-कहकर खिजा रही हैं । तू जानती है न मैया ! यह कामर मुझे अत्यन्त प्रिय है ।' यह कहते-कहते कन्हैया के नेत्र सजल हो गये । मैया ने लाला को उठा अपने हृदय से लगा लिया ।

'कामर-कामर' पुकारने पर ही यह ग्राम 'कामर' नाम से विख्यात हो गया ।

यहाँ 'मोहन कुण्ड', 'दुर्वासा कुण्ड', 'कामरी कुण्ड' तथा 'कदम्ब चौक' है । 'स्वामिनीजी की बैठक', 'गोपी कुण्ड' आदि दर्शनीय स्थलियाँ हैं ।

विश्वेश्वर कुण्ड

विश्वेश्वरहरिस्नान तीर्थ संज्ञाय ते नमः ।
त्रैलोक्यवरदायैवाखण्ड सौख्य प्रदायिने ॥

(कूर्म पु० ब्र० भ० वि०)

हे विश्वेश्वर ! श्रीहरि के स्नान से उत्पन्न विश्वेश्वर नामक कुण्ड ! आपको नमस्कार है। आप तीनों लोकों के वरदाता तथा अखण्ड सुख प्रदान करने वाले हैं।

विछोर (विस्मरण वन)

गोपिकादर्शनान्वेषवनाय च नमोऽस्तु ते ।
केशवाह्लाद संजात धूम्र वर्णाय ते नमः ॥

(मत्स्य पु०)

हे गोपिका अन्वेष्ण वन ! हे केशव के आह्लाद से श्याम वर्ण स्वरूप ! आपको नमस्कार है ।

मिलन-बिछुड़न की आँख-मिचौनी इन रसिक बावरों का एक कौतुक ही है । यह बिछुड़न कठिन विरह के अन्तर्गत नहीं है, अपितु मिलन की त्वरा को, उसके आनन्द को वर्द्धित करने के लिए ही है। परस्पर का बिछोह एक औपचारिकता मात्र है । 'मिले रहत मानों कबहूँ मिले ना' कहकर भक्तों ने अपने मन की उमड़न को यत्र-तत्र व्यक्त किया है । उन्हें मिलने पर भी यही भासता रहता

है कि अभी मिले ही नहीं। यह है प्रेम का स्वरूप जहाँ अतृप्ति ही भूषण है, नित्य वर्द्धमान ही जिसकी गति है।

यह रस बावरे विछोह की कल्पना भी भला कहाँ कर सकते हैं, परन्तु कभी-कभी लीला में रस वर्द्धन हेतु अलग होने का अभिनय-सा करते हैं। उसमें भी इतनी तन्मयता रहती है, एकग्रता बनी रहती है, एकता रहती है, वहाँ विछोह भासता ही नहीं। नित्य लीला में तो यह प्रेमी बावरे उसी अखण्ड रसधारा में मत्त रहते ही हैं, प्रकट लीला में भी यह संयोग सदा-सदा के लिए नित्य एवं शाश्वत बना रहता है। प्रेम की सरिता नित्य ही प्रवहमान रहती है और यह रस बावरे उसी में मग्न रहते हैं। रस की उस अखण्ड धारा में और, और नवीनता लाने के लिए दोनों एक-दूसरे से अलग हो रहे हैं। पास रहने की लालसा अलग होने नहीं दे रही है। साथ-साथ एक ही वीथी में चल रहे हैं। परस्पर ग्रीवा में बाँह डाले, प्रियतम का एक कर-कमल प्रियाजी की कटि को आवृत्त किये है तथा प्रियतम को प्रियाजी ने अपनी बाँई भुजा से परिवेष्टित कर रखा है। लो ! यह दोनों क्षण भर को अलग हुए, पुनः पुनः समीप आ गये। रसमय यह डगमग स्थिति किसी रात्रि विहार की परिचायक सी दीखती है।

रात्रि का मौन भङ्ग हुआ, प्रकृति मुखरित हो गई। पक्षी चहचहाने लगे। दिनकर की प्रथम किरण ने इन दोनों का अभिषेक किया, वे अलग हो चल दिये, किन्हीं सुरस स्मृतियों में खोए से-भूले, भूले से। दोनों ही दिन भर के लिए, एक-दूसरे की स्मृतियों से आलोड़ित से अपने-अपने घर को चले गये। परस्पर के बिछोह का यह स्थल 'बिछोर' नाम से इस सरस गाथा का इतिहास दोहराने लगा।

क्रीड़ावसानेते दोंहे चले निजालय ।
विच्छेद-प्रयुक्त ए 'विछोर' नाम हय ॥

(भ० र०)

कोसी से लगभग दस मील दूर पश्चिम-दक्षिण कोण में है।

श्रृङ्गार वट

ततः श्रृङ्गार वटम्। द्वौ मन्दिरौ। दक्षिण भागे श्रृङ्गार मन्दिरं।
वाम भागे शय्या मन्दिरं ॥

(स्क० पु०)

उसके पश्चात् श्रृङ्गार वट है। वहाँ दो मन्दिर हैं। दक्षिण की ओर श्रृङ्गार मन्दिर है तथा वाम भाग में शैय्या मन्दिर है।

एई जे श्रृङ्गार वट कृष्ण एई खाने ।
राधिकार वेष कैल विविध विधाने ॥

रस की नवीन योजना सँजो, प्रियतम श्यामसुन्दर ने आज पहले से ही प्रियाजी का पुष्पों से श्रृङ्गार कर उन्हें सज्जित करने का विचार किया। नन्हे-नन्हे, कोमल चमेली, बेला, मालती, मल्लिका तथा जुही आदि के पुष्पों की व्यवस्था कर ली। प्रियाजी को यह संकेत पहले से ही दे चुके थे, फिर भी वे श्रृङ्गार करके आईं। सखियों सहित रस की धूम बहुत देर तक प्रवहमान रही। प्रियतम सहसा उठे, प्रियाजी का कर अपने कर में ले बोले, "प्रिये ! तुम्हारी सुन्दरता अनुपम है। मुझे सखियों के सौभाग्य से ईर्ष्या है। तुम्हारा श्रृङ्गार सदा-सदा वे ही कर अपने सौभाग्य मद पर गर्वित रहती हैं। श्रृङ्गार का उपभोग भर किया है मैंने। तुम्हारे अनन्त सौन्दर्य, माधुर्य में किञ्चित् योग दे, मैं भी सौभाग्यशालियों में अपनी गणना करना चाहता हूँ।" इतना कह प्रियतम ने श्रृङ्गार धारण कराना प्रारम्भ कर दिया। पुष्पमाला पहनाई, किञ्चित् ठिठक गये। प्रारम्भ ही ऐसा है तो .... । हाथों में गजरे धारण कराये। केशों में यत्र-तत्र पुष्प गुच्छ सजा, देखने लगे तथा देखते ही रह गये। पुष्प मेखला धारण कराई। पुष्पों की बनी पायल धारण कराई। कर्णों में पुष्पों के बने कुण्डल धारण कराये। एक पुष्प गुच्छ कर में ले सोचने लगे, सोचते रहे। प्रियाजी की सम्पूर्ण शोभा श्री को पुनः पुनः निहार, सोचते से खड़े रह गये। उसे धीरे-धीरे प्रियाजी की हल्की आसमानी कञ्चुकी में धारण करा बोले, "रस की अथाह निधि में प्रवेश पा इस पुष्प का सौभाग्य अनन्त गुना हो गया है।" सहसा उसे पुनः हाथ में ले अपना सम्पूर्ण प्यार उँड़ेल पुनः शोभायमान करा दिया।

कुंकुम, चन्दन, पुष्प पराग से रञ्जित करते-करते प्रियतम रस रंग में भर, कब स्वयं श्रृङ्गार हो गये, यह कौन कहता ? सखियों ने दोनों को ही निकटस्थ निकुञ्ज में ले जाकर सुकोमल शैय्या पर आसीन करा दिया। ओह ! रूप के यह द्वय रस चन्द्र, श्रृङ्गार रस के द्वय रस विग्रह, सभी दिव्य था सभी रस मग्न हो गये।

उन्हीं सब रस गाथाओं को अपने हृदय पटल पर अङ्कित किये यह स्थली हम सबके आनन्द का वर्धन कर रही है।

कोसी से लगभग छः मील दूर है।

वासोली (वासोसी)

एई जे वासोली ग्राम कृष्णांग सुवासे।
भ्रमर मातिव कि जगत धैर्य नाशे॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण के श्रीअङ्गों से झरती अमिय रससुधा, मधुर सौरभ, माधुर्य तथा लावण्य की अथाह रूप राशि, उनकी मधुर वाक्यावलि, किसे न उन्मत्त कर देगी। श्रीअङ्गों से निरन्तर झरती माधुर्य सुधा धारा, अहा ! मानो रस ही बरस रहा है। सुअङ्ग सौरभ से मतवाले मृग चकित भ्रमित से हो गये, भ्रमर पंक्ति मधुर सौरभ का अनुगमन करती बौरा गई, इसी रस सौरभ का अनुगमन करती यह ब्रजरमणी वृन्द की भीर वन वीथियों में, घाट-बाट पर, वंशीवट पर, यमुना तट पर, सघन कुञ्ज में, वन निकुञ्ज में, ओह ! रङ्गबिरंगी भीर ; मानों रसाकुल हृदयों में बाढ़ ही आ गई हो।

श्रीअङ्ग स्वयं तो सुवासित हैं ही, तिस पर चन्दन चर्चित हैं। इत्र, फुलेल की सुगन्धि से मण्डित श्रीअङ्ग, उनमें धरोहर स्वरूप रञ्जित कुंकुम, पराग की चित्रकारी।

फाग में उड़ा अबीर गुलाल, चन्दन, चोबा अङ्ग-प्रत्यङ्ग से छूकर लग-लिपटकर, सुवासित हो जाता है। उसी मधुर सौरभ ने इस स्थली को सिञ्चित एवं पोषित किया है, या यों कहो, गुलाल की किसी झीनी सी बदली में श्रीअङ्गों ने अपनी इन ब्रजरमणी वृन्द के श्रृङ्गार नैवेद्य को धारण कर लिया है तथा इस स्थली ने उन्हीं रसकणों को अपने आञ्चल में छिपाये रखा, सुअवसर पा, बिखेर दिया। उसी सुअङ्ग सौरभ से मत्त हुई यह स्थली 'वासोली' नाम से विख्यात है।

पय ग्राम

उहे देख पय ग्राम श्रीकृष्ण ए खाने।
पय पान केला सर्व सखागन सने ॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण अपने सखाओं को साथ ले नित्य ही गोचारण हेतु यहाँ पधारते हैं। मैया दिन भर के लिए छाक की सामग्री साथ बाँध देती हैं। उसे सब प्रीति पूर्वक आरोगते हैं। आज असमय में ही पुनः भूख लग गई, सखाओं ने कन्हैया से दुग्ध पान कराने की बात कही। उन्होंने बहुत सी गाय दुह कर अपने अभिन्न सखाओं के लिए दूध की व्यवस्था कर उन्हें आनन्द प्रदान किया।

यहाँ इसी का प्रतीक पय सरोवर दर्शनीय है।

श्रीनागाजी (चतुर चिन्तामणी)

'पय गाँव' के एक गौड़ ब्राह्मण परिवार में आपका जन्म हुआ। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' विरक्ति के प्रति इनका झुकाव था। गाँव में ही घर से अलग एक कदम्ब वृक्ष की सघन स्थली में निवास करने लगे।

ब्रज यात्रा तथा ब्रज भ्रमण में इनकी रुचि थी। नियमित रूप से आप ब्रज की परिक्रमा करते थे।

ब्रज के उच्चकोटि के महात्माओं में इनकी गणना की जाती है। प्रिया-प्रियतम की इन पर पूर्ण कृपा थी।

कहते हैं कि श्रीकृष्ण ने एक बार इनसे स्वयं कहा था, 'ब्रज में रहो तो दूध-दही की कमी नहीं है, दूध ही पिया करो।' नागाजी इतने निःस्पृह थे कि 'ब्रजवासियों को दूध अत्यन्त प्रिय है, इसलिए स्वयं दूध पान ही न करते थे।' श्रीकृष्ण ने अपने भक्त को आग्रहपूर्वक दूध पीने का आदेश दिया था।

भरतपुर के किले में श्रीनागाजी के उपास्य श्रीठाकुर स्वरूप विराजमान हैं। उस मन्दिर का निर्माण भरतपुर के राजा ने करवाया था। वहीं आपकी गूदड़ी तथा माला अद्यावधि सुरक्षित रखी हैं।

अपने अन्तिम दिनों में आप विहार घाट पर श्रीवृन्दावन में ही विराजमान रहे।

कोटवन (कोटर वन)

ए 'कोटर वन' कोटवन सबे कय।
एथा सखा सह कृष्ण सुखे विलसय॥

(भ० र०)

सखाओं सहित गोचरण को आये कन्हैया ने यहाँ अनेक लीलाएँ कर सखाओं को रिझाया है। लता-पताओं की सघनता में छिपे सखाओं सहित लुक-छिप, आँख-मिचौनी लीला कर उन्हें सुख देते कन्हैया, इस स्थली पर गोचरण में विचरण करते रहे हैं।

यहाँ 'गुसांई श्रीविट्ठलनाथजी की बैठक' है, तथा 'शीतल कुण्ड' विशेष दर्शनीय स्थल है।

चमेली वन

अहा ! अहा ! सुदूर दीख रही ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की सघनता, कदम्ब वृक्षों की उन्मादनकारी सौरभ, रसमयी प्रकृति का अलबेलापन, हरित दूर्वा से सज्जित यह कक्ष, लगता है कुञ्ज, निकुञ्जों ने प्रिया-प्रियतम के आगमन की प्रतीक्षा में कोमल सज्जा का निर्माण ही कर दिया है। नाम के अनुरूप ही सभी को अपनी भीनी सुगन्धि से, रस विशेष से आलोड़ित करता यह सघन वन, 'चमेली वन' नाम से विख्यात है।

एक बार प्रकृति के रसीले झोंको से आलोड़ित प्रियतम चौंक गये। इधर प्रियाजी भी एक विशेष उमगन लिए भवन से बाहर निकलीं। ललिता

तथा विशाखा दोनों ही बाहर मिल गईं, लगा जैसे वे पहले से ही प्रतीक्षा रत थीं। प्रियाजी को मध्य में ले, प्रियतम के चमेली वन पहुँचने की सुरस चर्चा में तन्मय-सी, साथ-साथ चलने लगीं। अपनी बिथुरी केशावलि को सम्हाल प्रियतम पहले ही वहाँ पहुँच चुके थे।

हाँ ! तो अपनी अन्य सखियों को वहाँ देख, सुरस रसायोजन की बात वे जानती थीं। प्रिया-प्रियतम को मध्य में ले सखियों के सुरस हास-विनोदों से वह स्थली गूंज उठी। सभी सखियाँ सुख में सराबोर-सी दोनों का श्रृङ्गार करने हेतु सुन्दर पुष्प चयन कर लाईं। श्यामसुन्दर उन्हीं पुष्पों से प्रियाजी का श्रृङ्गार करने लगे। उन्होंने सुकोमल पुष्पों में से सुगन्धित छोटे-छोटे पुष्प ले प्रियाजी की केशावलि में अटका दिये। नेत्रों में अंजन लगाया, पुष्पों के गजरे बना प्रियाजी के करों में धारण कराये, केश-बन्ध पर एक माला धारण कराई, यही नहीं उनके कण्ठ में सुगन्धित पुष्पों की मालाऐं धारण करा अपने सौभाग्य मद से गर्वित हो गये श्यामसुन्दर।

सखियों ने पहले ही पुष्पों के कुछ आभूषण तैयार कर लिए थे, उन्हें ले प्रियाजी ने भी प्रियतम का विविध भाँति से श्रृङ्गार किया। पुष्पों का बना सुन्दर मुकुट धारण करा उसमें यत्र-तत्र सुकोमल दलों को अटका दिया। कर्णों में सुकोमल पल्लवों तथा पुष्पों से बने कुण्डल धारण कराये। सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की माला, कंगन तथा अन्य श्रृंगार धारण करा, रूप-माधुरी में अटकी-सी रस-मग्न हो गईं। इतने में सखियाँ पास आ गईं तथा दोनों को ही एक निकुञ्ज कक्ष में सुकोमल दूर्वा के बिछौने पर आसीन करा रूप-माधुरी पान करने लगीं।

रूप रस की अनवरत प्रवहमान सरिणी की तरंगों ने सभी को सिञ्चित कर दिया और यह स्थली 'चमेली-वन' नाम से विख्यात हो गई।

वनचारी से थोड़ा पहले ही यह निर्जन-स्थली आज भी अपनी मधुर सौरभ लुटा रही है। वर्षा ऋतु में यहाँ का सौन्दर्य और भी अधिक निखर आता है।

रासौली

'अबहुँ ते ढोटा चित चोरत आगे-आगे कहा जु करैगो।'

कन्हैया की नित्य नई शरारतों के उलाहने सुन-सुनकर मैया को कई बार झूँझल भी आ जाती है, अभी तक दूध-दही लूटने की बात ही जगत विख्यात थी, परन्तु आजका उलाहना सुन मैया चकित विस्मित रह गई। नन्हे से कन्हैया को लेकर गाँव में कुछ और ही चर्चा चलने लगी। कोई कहती ब्रज-कुमारियों से रार मचाता है कन्हैया, किसी को छेड़ता है तो किसी ब्रज बाला से हँसी ठट्ठा करता है और किसी को छू-छेड़ उससे अटपटी बातें करता है। मैया का

भोला मन इस सबको सुन कुछ विचार नहीं कर पाता। उसका वात्सल्याभिभूत हृदय अपने नन्हे लाला के अतिरिक्त उसे और कुछ मानने को तैयार नहीं होता। कभी गोद में जा मैया से चिपट जाते हैं कन्हैया, उससे माखन मिश्री के लिये आग्रह करते हैं और मैया उनकी इन्हीं बाल-लीलाओं का आस्वादन कर मग्न हो जाती हैं। वह ब्रह्म होगा, ज्ञानियों के लिए। उसने बड़े-बड़े असुरों का वध किया है, वह पूर्ण कैशोर्य संयुत है, इन सबसे मैया को न तो कोई सरोकार ही है और न विश्वास ही, कभी-कभी उसे गर्गाचार्यजी महाराज के वाक्य स्मरण अवश्य हो आते हैं।

एक बार मैया ने लाला से रास देखने का आग्रह किया। कन्हैया ने मैया की बात सहज में ही स्वीकार कर ली और इसी स्थल पर ले आये। कदम्ब वृक्ष पर चढ़ वंशी फेंट से निकाल गोपिकाओं का आह्वान किया। वे सब बालाएँ वहाँ चली आईं। उनके साथ रास में मग्न हो गये कन्हैया। मैया यह सब निरख कर, मग्न हो गईं।

जिस वंशी-निनाद को सुन, पशु-पक्षी मौन हो जाते हैं, हरिनियाँ अपने पति मृगसारों सहित नन्दनन्दन के पास चली आती हैं, स्वर्ग की देवियाँ, श्रीकृष्ण द्वारा निनादित वेणु स्वर को सुन, संगीत में मग्न हो जाती हैं, विमानों में बैठी वे इतनी तन्मय हो जाती हैं कि उनकी चोटियों से कब पुष्प गिर जाते हैं, भान ही नहीं रहता, फिर इन ब्रजाङ्गनाओं की तो बात ही और है। उनकी भावनाएँ, कामनाएँ सदा-सदा श्रीकृष्ण की माधुरी में पगी हैं-

कृष्णं निरीक्ष्य वनितोत्सवरूपशीलं
श्रुत्वा च तत्क्वणितवेणुविचित्रगीतम्।
देव्यो विमानगतयः स्मरनुन्नसारा
भ्रश्यत्प्रसूनकबरा मुमुहुर्विनीव्यः ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/21/12)

दधि ग्राम

एई दधि ग्रामे कृष्ण दधि लूट कैल
गोपाङ्गना सह महा कौतुक बाढ़िल ॥

(भ० र०)

1. अरी सखी ! हरिनियों की तो बात ही क्या है - स्वर्ग की देवियाँ भी जब युवतियों को आनन्द प्रदान करने वाले श्रीकृष्ण को देखती हैं तथा बाँसुरी पर उनका संगीत सुनती हैं, तब उनके चित्र-विचित्र वेणुनाद को सुनकर वे सुधि भूल जाती हैं - मूर्छित हो जाती हैं। जब उनके हृदय में श्यामसुन्दर से मिलने की तीव्र आकांक्षा जग जाती है, तब वे अपना धैर्य ही खो देती हैं, सुध भूल जाती हैं, उन्हें इस बात का पता भी नहीं चलता कि उनकी चोटियों में गूँथे फूल कब गिर गये। उनकी साड़ी भी कब उनकी कमर से खिसक कर गिर जाती है, उन्हें यह भी भान नहीं रहता।

यह वही स्थली है जहाँ श्रीकृष्ण ने दधि - दूध की लूट मचा दी थी। इस लूट खसोट वश आकुलमना यह ब्रज बावरियाँ सदैव उत्सुक बनी रहती हैं। कभी भोर में ही नन्दमहल पहुँचती हैं तथा मैया के पूछने पर कहती हैं, "अरी मैया ! कल लाला का मुख देखकर दही बेचने गई, तो तुरन्त ही सारा दही बिक गया, अपेक्षाकृत लाभ भी अधिक हुआ।" भोली मैया सच मान गई। शैय्या पर लेटे श्यामसुन्दर के किसी बंक कटाक्ष से संकेत पा वह बाला धन्या हुई चल दी। इधर कन्हैया जल्दी से उठे ; मैया से जैसे-तैसे छुट्टी ले, वन में उसी मार्ग में जा पहुँचे। उस बाला ने देखी मनहर प्रियतम की वह जादू भरी मुस्कान, बस अब 'गोविन्द लेहु-लेहु कोऊ गोविन्द' की ही रट लगा दी, उस बाला ने। यह प्रेम की विचित्र दशा ही है। श्यामसुन्दर की रूप माधुरी में पगा मन और क्या कहे ? यह रसिक लुटेरे, दधि लूट वश अकुला गये। "दधि दान मिस अङ्ग-अङ्ग को परसिबो" की भूमिका संजोते रस मग्न हो गये। वह बाला दधि-दूध की ही किसी रसमय लूट में पगी रस पान दान में मग्न हो गई।

दधि दान तथा लूट की ऐसी ही अनेकानेक स्मृतियाँ इस स्थली से जुड़ी हैं। अतः यह स्थली 'दधि ग्राम' नाम से विख्यात है।

यहाँ 'दधि कुण्ड', 'दधिहारी देवी', 'ब्रज भूषण मन्दिर', वृक्ष में 'मुकुट का चिन्ह' दर्शनीय है।

शेषशायी

कमलासुखरम्याय शेषशयनहेतवे।
नमः कमलकिञ्जल्कवाससे हरये नमः॥

(कूर्म पुराण)

हे कमला के सुख से रम्य ! हे शेष भगवान के शयन के लिए शेष नामक वन ! आपको नमस्कार।

श्रीवल्लभाचार्यजी महाराज शेषशायी तीर्थ में पधारे, जहाँ ब्रज भक्तों की प्रार्थना से श्रीकृष्ण ने शेषशायी लीला की थी। क्षीरसागर में श्रीबलदेव जी शेष भगवान बने तथा श्रीकृष्ण नारायण रूपसे उन पर बिराजे। वहाँ उन्होंने नाभि से कमल तथा उसमें श्रीब्रह्माजी का दर्शन कराया।

श्री श्रीचैतन्य महाप्रभुजी यहाँ पधारे और उन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। नेत्रों से अजस्र अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उनकी प्रेमावेश की स्थिति का भक्ति रत्नाकर ग्रन्थकार ने बहुत ही सजीव चित्र उतारा है।

करिया दर्शन महाकौतुक बाढ़िल।
से प्रेम आवेशे प्रभु अधैर्य हईल॥

प्रभु तेज देखि भाग्यवन्त लोक गन।
आनन्द उन्मत्ते नेत्र धारा अनुक्षण ॥[1]

(भ० र०)

पौढ़े लक्ष्मीनारायणजी का दर्शन

शयनस्थाय देवाय लक्ष्मीसेवापराय च।
नमो प्रौढ़ स्वरूपाय लक्ष्मीनारायणाय ते॥[2]

(कूर्म पुराण)

यस्य श्रीमच्चरणकमलेकोमले कोमलापि ।
श्रीराधोच्चैर्निजसुखकृते सन्नयन्ति कुचाग्रे ॥
भीतापराधादथ नहि दधात्यस्य कार्कश्यदोशात्।
स श्रीगोष्ठे प्रथयतु सदा शेषशायी स्थितिं नः ॥[3]

(स्तवावली)

एक बार कौतुकवश श्रीकृष्ण विष्णु स्वरूप धाराण कर शेष शैय्या पर विराजमान हो गये। श्रीबलरामजी शेष रूपमें सहस्र फण धारण कर यहाँ क्षीरसागर में विराजमान थे।

श्रीराधा जैसे ही यहाँ पधारीं तो वह चतुर्भुज स्वरूप तुरन्त लुप्त हो गये तथा श्रीकृष्ण, द्विभुज रूप में ही उन्हें दिखलाई दिये।

प्रेम की इन महाभावमयी किशोरी श्रीराधा के सामने श्रीकृष्ण का ऐश्वर्यमय स्वरूप टिक ही नहीं सकता।

श्रीकृष्ण ने ब्रज में सभी तीर्थों का आह्वान किया, उसी में यह शेषशायी तीर्थ भी यहाँ प्रकट होकर ब्रज का गौरव बढ़ाने लगे।

महोदधि कुण्ड

पञ्चामृतसमुत्पन्न पञ्चामृतमयाय ते ।
लक्ष्मीकृताय तीर्थाय नमो मुक्ति महोदधे॥

(कूर्म पुराण)

हे पञ्चामृत से समुत्पन्न पञ्चामृत मुक्ति महोदधि कुण्ड! आपको नमस्कार। आप श्रीलक्ष्मीजी हेतु ही तीर्थ रूप में प्रकट हैं।

---

1. शेषशायी भगवान का दर्शन करके श्रीचैतन्य महाप्रभुजी को महाकौतुक हुआ। उसी प्रेमावेश में अधीर होकर वे आनन्द में भर उन्मत्त हो गये। नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे। भाग्यशाली लोगों ने उनके प्रेम स्वरूप के दर्शन किए।
2. हे शयन स्थिति में श्रीनारायणदेव! हे श्रीलक्ष्मीजी द्वारा सेवित! हे प्रौढ़ स्वरूप लक्ष्मीनारायण आपको नमस्कार है।
3. श्रीकृष्ण के कोमल एवं सुमनोहर जिन श्रीचरणों को श्रीराधा अपने सुख हेतु अपने हृदय की कठोरता का विचार कर धारण नहीं करतीं, अर्थात् बहुत ही सावधानी पूर्वक धारण करती हैं, वे शेषशायी श्रीकृष्ण इस मनोरम अवस्था में मुझ पर अनुग्रह करें।

यहाँ स्नान करने वाले जन मुक्ति को तथा वैष्णव भक्ति को प्राप्त करते हैं।

खामी तथा बनचारी ग्राम

एई ब्रज सीमा खम्बहरे खामी ग्राम।
ऐथा गोचारये रङ्गे कृष्ण बलराम॥
बनचारी आदि ग्रामे अद्भुते विलास।
ए सब ब्रजेर सीमा अहे श्रीनिवास॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण तथा बलराम जी खामी ग्राम में गोचरण हेतु नित्य ही पधारते। बनचारी ग्राम भी पास ही है। यहाँ दोनों भैया, श्रीकृष्ण तथा श्रीबलरामजी ने अनेक रसमय चरित्रों द्वारा अपने सखाओं को सुख प्रदान किया है।

ऐसी अनुश्रुति है कि खामी ग्राम में ब्रज सीमान्त के चिन्ह स्वरूप खम्भों को श्रीवज्रनाभजी ने यहाँ लगवाया था। ये खम्बे अद्यावधि दृष्टि- गोचर हैं।

खारौट

यमुना निकट ग्राम खरेरो-एखाने।
बलराम मङ्गल जिज्ञासे सखा गने॥

(भ० र०)

श्री यमुनाजी के निकट खारौट ग्राम है। यहाँ श्रीबलरामजी ने सखाओं से कुशल मङ्गल पूछा तथा उन्हें अपने स्नेहाभिवादन से प्रसन्न किया। यह गोचारण स्थली है।

'श्रीनन्दगाँव' में बड़े मन्दिर में सेवाइत गोस्वामी गण मूलतः यहीं के निवासी हैं। उनके पूर्वज श्रीघनआनन्दजी महाराज श्रीनन्दगाँव में सेवा करने लगे थे। बाद में उनके वंशज श्रीनन्दग्राम में ही निवास करने लगे।

ऊजानी ग्राम

देखई ऊजानि स्थान यमुना ए खाने।
बहये उजान श्रीकृष्णेर वंशी गाने॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण की बाँसुरी की मधुर तान ने ब्रज चपलाओं को बौरा-सा दिया। वे घर के सभी कृत्य करती हुई भी अपने मन से प्रतिक्षण श्रीकृष्ण की सन्निधि में ही रहने लगीं। वे नित्य निरन्तर श्रीकृष्ण की रूपमाधुरी तथा मधुर लीलाओं के आस्वादन में पगी रहतीं। यावत् प्रकृति, वन्य पशु, मृग प्रभृति सभी जड़

अथवा चेतन इस वंशी ध्वनि को सुन द्रवित हो बौराये से हो गये । वृक्ष, फूलों की वर्षा करते रहे । पशु-पक्षी इस मधुर गान को सुन चकित भ्रमित हो गये । श्रीयमुनाजी जो श्रीकृष्ण की अन्तरङ्गा सखी तो हैं ही, दूसरी ओर नदी रूप में सर्वांग सुख प्राप्तकर मग्न रहती हैं, वंशी ध्वनि सुनकर भंवरों के मिस रुक-रुककर बहने लगीं । लगता था श्रीयमुना की लोल लहरियाँ वंशी ध्वनि सुनकर स्तब्ध सी स्थिर होती जा रही हैं ।

प्रेम भरा सन्देश इस मुरली द्वारा प्रवाहित हुआ, श्रीयमुनाजी इस स्थली पर अजान सी बहने लगीं । अतः यह स्थली 'ऊजानी ग्राम' नाम से विख्यात हो गई ।

पय ग्राम से चार मील दूर ईशान कोण में स्थित है ।

फालेन (फारेन)

यह ग्राम होलिकोत्सव के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है । यहाँ एक परिवार विशेष का एक सदस्य ब्रह्मचर्य पूर्ण जीवन यापन करता है । होलिका दहन के समय जब अग्नि पूर्णतः प्रज्वलित हो जाती है तो वह पंडा कुण्ड में स्नान कर उस प्रज्ज्वलित अग्नि में से धीरे-धीरे पग धर एक छोर से दूसरे छोर तक चला जाता है । उस पर अग्नि का प्रभाव नहीं होता । ऐसा कहते हैं कि श्रीप्रह्लादजीको प्रणाम कर उन्हीं के भाव में भावित वह पंडा अग्नि में से हजारों दर्शकों के सामने से निकलता है ।

ब्रज भूमि मोहिनी

श्रीनन्दगाँव

(जहाँ नित मिलि है सांवरिया)

उप खण्ड

मणिनूपुरवाचालं वन्दे तच्चरणं विभोः ।
ललितानि यदीयानि लक्ष्माणि ब्रजवीथिषु ॥

आस-पास की अन्य स्थलियाँ

1. शेरगढ़
2. खेलनवन
3. श्रीरामघाट
4. भूषण-वन
5. गुञ्जावन
6. ब्रह्मघाट
7. विहारवन
8. भाण्डीरवट
9. मुञ्जाटवी
10. गोपीघाट तथा तपोवन
11. चीरघाट
12. श्रीनन्दघाट
13. भय-गाँव
14. बसई-गाँव
15. परखम
16. चौमुहा
17. पसौली-साँपोली, अघवन सर्प-स्थली
18. जैंत
19. तमालकानन
20. आटस
21. वराहर
22. भद्रवन
23. भाण्डीरवन
24. छाँहरी (बिजौली)

शेरगढ़

"आगे शेखर गोप का गाँव है; जिसे शेरगढ़ कहते है। यहाँ गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण की वेणी गूंथी थी।"

(श्रीवल्लभदिग्विजय)

मधुर रस भाव सम्पन्ना, प्रणयिनी इन ब्रजाङ्गनाओं तथा उनकी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा की प्रणय पूर्ण भावनाऐं केवल इनके अपने अत्यन्त अपने प्रणयी प्रियतम श्यामसुन्दर में ही सन्निहित हैं, श्यामसुन्दर भी इनके चिर ऋणी हो गये हैं। इन ब्रजाङ्गनाओं की आशा विश्वास के पुञ्जीभूत यह प्रणयी रिझवार उन्हीं के अत्यन्त अपने हैं -

"वे तो हैं हमारे ही, हमारे ही, हमारे ही ।
हम उन ही की, उन ही की, उन ही की हैं ॥"

प्रेम का विशुद्धतम स्वरूप यदि कहीं पुञ्जीभूत हुआ है तो मात्र इन ब्रज बालाओं में ही। यह अखिल ब्रह्माण्डनायक सर्वव्यापक भगवान श्रीकृष्ण, इन गोपिकाओं के सामने, 'छछिया भरि छाछ' के लिए नृत्य करते हैं, कभी उन्हें प्रेम उपालम्भ दे सुरस छेड़-छाड़ द्वारा सुख प्रदान करते हैं, कभी यह ब्रजाङ्गनाऐं विभिन्न केलि क्रीड़ाओं द्वारा नन्दनन्दन श्यामसुन्दर के सुख का हेतु बनी उनकी सन्निधि में रहती हैं।

आज सभी सखियों ने प्रियतम श्यामसुन्दर को नारी वेष धारण कराने की ठान ली। वे पूर्व से ही तैयारी करके आई थीं। इधर ब्रज-गोपियों की चहल-पहल देख उनके मन की आशाओं-अभिलाषाओं को सत्कारने, उन्हें सुख प्रदान करने, कन्हैया हर्षोल्लास में भरे सखियों के मध्य आ विराजे। किसी ने 'रसिया को नार बनाओ री' पद गाया तो अन्य गोप सुन्दरियाँ उन्हें श्रृङ्गार धारण कराने लगीं। एक ने वेणी गुंथन किया, एक ने काजल लगाया, भाल पर बिन्दी लगा सौन्दर्य माधुरी में डूब गईं। नारी वेश धारण करा श्यामसुन्दर को एक ओर बिठा दिया। ललिता तथा विशाखा सहित जब प्रियाजी वहाँ पधारीं तो पहचान न सकीं, इस वेषधारी नवीना सखी के पास ही प्रियाजी बैठ गईं। यह वेष अधिक समय तक न बना रह सका। थोड़ी देर में हास्य तथा विनोदों की उन्मुक्त स्वर लहरी से यह स्थली गूँज गई।

प्रेम मन्दाकिनी के रसमय स्रोतों की उच्छलन यत्र, तत्र, सर्वत्र ही बिखरी पड़ी है।

खेलन वन

इसके आगे खेलन वन है, जहाँ श्रीकृष्ण ने द्यूत-क्रीड़ा की है तथा गोपिकाओं को जीता है।

(श्रीवल्लभ दिग्विजय)

'हार और जीत', प्रेम की अनोखी रीति है। दोनों ही प्रेम के अभिन्न अङ्ग हैं। प्रेमी की जीत में हार है तथा हार में उनकी जीत है। हार-जीत का यह क्रम नियम के किसी बन्धन में नहीं बँधा। जहाँ भी रसायोजन की भूमिका बनी है, वहीं हार तथा जीत जल में बुद्-बुद्वत विद्यमान हैं। यह सब प्रेम के अभिन्न अङ्ग हैं, रसमय अङ्ग हैं, सुखप्रद अङ्ग हैं।

श्रीकृष्ण की अनेक लीलाएँ यहाँ इन्हीं सब भावनाओं को लेकर क्रियान्वित हुई हैं जिसमें प्रियतम हार गये हैं और प्रणयिनी श्रीराधा विजयिनी हुई हैं और कभी विजय इन प्रणयी किशोर के चरणों में विलुण्ठित हुई है। इन्हीं सब लीलाओं में मग्न प्रिया-प्रियतम तथा उनकी कायव्यूह स्वरूपा यह ब्रज-बालाएँ अनेक रसकेलियों में मग्न रही हैं।

कुछ रसिकों ने खेलन वन और शेरगढ़ को एक ही माना है। वास्तव में दोनों ही स्थलियाँ पास-पास हैं।

श्रीराम घाट

द्वौ मासौ तत्र चावात्सीन्मधुं माधवमेव च।
रामः क्षपासु भगवान् गोपीनां रतिमावहन्॥

(श्रीमद्भागवत 10/65/17)

भगवान बलरामजी रात्रि मे गोपिकाओं का प्रेम वर्द्धन करते हुए ऐसे ही चैत्र तथा वैशाख दो मास यहीं रहे।

श्रीद्वारिका में रहते-रहते श्रीकृष्ण और बलराम को बहुत दिन बीत गये। वे ब्रज की स्मृति आने से ही उत्कण्ठित हो जाते। उन्हें मैया यशोदा की, श्रीनन्दबाबा की तथा अपनी अभिन्न हृदया गोपाङ्गनाओं की स्मृति अधीर कर देती।

एकबार श्रीबलरामजी से, श्रीकृष्ण ने कहा, आप ब्रज में जाओ, मैया तथा बाबा की कुशल पूछना तथा मेरी परम प्रिय प्रेयसीगणों का भी कुशल समाचार लाना। श्रीबलरामजी नन्दग्राम पहुँचें। सभी सखाओं ने उनका आलिङ्गन किया। मैया, बाबा तथा अन्य गोपों ने लाड़ प्यार किया। वे गोपिकाओं को श्रीकृष्ण के समाचार देने लगे। इन आभीर कुमारियों ने अनेकानेक प्रश्न किये, बलरामजी यथावत उत्तर देते रहे। श्रीकृष्ण विरहाग्नि से दग्ध-चित्ता बालाओं की सन्तुष्टि

इन प्रश्नोत्तरों से कहाँ, वे अपनी स्मृतियों की प्रगाढ़ता में प्रियतम का सान्निध्य पा विभोर हो गईं।

बलरामजी ने यमुना तट पर आकर चन्द्रिका स्नात रमणीय स्थली देखी। अपने यूथ की रसमग्ना ब्रज-बालाओं की उत्कण्ठा देखी। चारों ओर कुमुद पुष्प खिले हुए थे। मन्द, सुगन्ध लिए समीरण प्रवहमान थी। उसी समय वरुण देवता की भेजी हुई वारुणी देवी ने वृक्ष कोटर से मधुधारा के रूप में बहकर सम्पूर्ण वन को अपनी सुगन्धि से परिपूर्ण कर दिया। श्रीबलरामजी ने अपने यूथ की गोपिकाओं को साथ ले वहाँ वारुणी का पान किया।

ततश्च पश्यात्र वसन्तवेषौ श्रीरामकृष्णौ ब्रजसुन्दरीभिः ।
चिक्रीडतुः स्व स्व यूथेश्वरीभिः समं रसज्ञौ कल धौति मण्डितौ ॥
नृत्यन्तौ गोपिभिः सार्द्ध गायन्तौ रसभावितौ ।
गायन्तीभिश्च रामाभिर्नृत्यन्तीभिश्च शोभितौ ॥[1]

(श्रीमुरारि गुप्त कृत 'श्रीकृष्ण चैतन्यचरित')

श्रीबलरामजी के नेत्र मदमत्त हो गये। उन्होंने गले में माला तथा एक ही कर्ण में कुण्डल धारण कर रखा था, वे स्वभाव से ही मत्त हो रहे थे, जानु पर्यन्त वैजयन्ती माला धारण किये हुए थे, उनका हासपूर्ण मुखारविन्द स्वेद कणों से विभूषित था, वे आनन्दोन्मत्त होकर ब्रज नारियों के साथ अपना सुयश गान सुनते हुए वन में विहार करने लगे।

इसी समय सर्व समर्थ बलभद्रजी ने श्रीयमुनाजी को पुकारा, परन्तु श्रीकृष्ण प्रिया श्रीयमुनाजी न आईं। श्रीबलरामजी ने कुपित होकर अपने हल की नोक से खींच कर श्रीयमुनाजी को अपनी विहार स्थली के निकट कर लिया। आज भी श्रीयमुना, श्रीराम घाट पर अपना स्वाभाविक प्रवाह छोड़कर बहती हैं।

श्रीबलरामजी की रासस्थली होने के कारण ही यह स्थली 'श्रीराम घाट' नाम से विख्यात है।

श्रीमन्नित्यानन्दजी का भावावेश

ब्रज भ्रमण करते-करते श्रीमन्नित्यानन्दजी महाराज जब राम घाट पहुँचे तो भावावेश में भर प्रेम विह्वल हो गये तथा नृत्य करने लगे। उनके नेत्रों से अनवरत अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी। उन्होंने श्रीयमुनाजी की भी स्तुति की।

---

1. इसी स्थान पर वसन्तोपयोगी वेषधारी रसिक स्वर्ण भूषित श्रीरामकृष्ण अपने-अपने यूथ की ब्रज सुन्दरियों सहित केलि निमग्न हुए। उसी रस में निमज्जित होकर गान तथा नृत्य में प्रवीणा अपनी इन प्रियाओं को भाँति-भाँति से सुख प्रदान करने लगे।

भूषण वन

श्रीकृष्ण को सखाओं ने पुष्पों के अनेक प्रकार के आभूषण बनाकर सजाया और प्रेम में भरकर आनन्द मग्न हो गये। इसी से यह स्थल 'भूषण वन' नाम से प्रसिद्ध हो गया।

सखाओं द्वारा धराया श्रृंगार उतारने के कारण यह स्थली 'निवारण वन' नाम से विख्यात है।

गुञ्जावन

'गुञ्जा वन' श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है। वहाँ की हर वस्तु के प्रति उनका लगाव है। यह वन उनकी आजीविका तथा आमोद-प्रमोद का साधन तो है ही, उनकी गायों के लिए यहाँ घास उपलब्ध होती है। वृक्षावलि की छाया में वे विश्राम करते हैं। नन्दनन्दन यहाँ भ्रमण करते हैं। यहाँ से प्राप्त पुष्पों से वे अपना श्रृंगार करते हैं। गुञ्जा फल भी इन्हें अत्यन्त प्रिय हैं। वे गुञ्जा की माला बना अपने हृदय पर धारण करते हैं।

यह स्थली गुञ्जा झाड़ियों की अधिकता होने के कारण ही श्रीकृष्ण को अत्यन्त प्रिय है तथा 'गुञ्जावन' नाम से विख्यात है।

ब्रह्म घाट

वन में गउओं के पीछे हीओ, हीओ कहकर डोलने वाले श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं क्या ? ब्रह्माजी को मोह हो गया। जब मोह दूर हुआ तो ब्रह्माजी को अपने कृत्य पर पश्चाताप हुआ। फलस्वरूप इस घाट पर उन्होंने तपस्या की और दोष के निवारण हेतु प्रार्थना की।

यह स्थली 'ब्रह्म घाट' नाम से प्रसिद्ध हो गई।

विहार वन

गोपिकानिर्मितायैव नन्दसूनुविहारिणे ।
देवर्षिदुर्लभ श्रेष्ठ वनराज नमोऽस्तु ते ॥[1]

(ब्रह्माण्ड पुराण)

श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं, पूर्ण पुरुषोत्तम अखिल ब्रह्माण्ड नायक हैं। वे कर्त्तुं, अकर्त्तुं, अन्यथा कर्त्तुं हैं। जो करने योग्य है वह करते हैं, जो करने योग्य नहीं है वह भी करते हैं और इन दोनों के अतिरिक्त जो अन्यथा कर्तु हैं वह भी कर सकते हैं।

1. हे गोपिका निर्मित नन्दनन्दन के विहार के लिये वनराज ! आपको नमस्कार। आप देवर्षि के लिये भी दुर्लभ हैं।

श्रीकृष्ण की एकान्तिक रास विलासमयी लीलाएँ, अति पवित्र हैं, कोटि-कोटि काम का शमन करने वाली हैं। वह एकान्तिक रसमय विलास एकान्तिक होते हुए भी सामूहिक ही हैं। अनेक तन एक मन होकर जब रमण करते हैं, वह एकान्त रमण ही कहा गया है। एक ही भाव वाली अनेक गोपिकाओं के साथ श्रीकृष्ण का रसमय विहार, जिसमें नृत्य, गान आदि की हिलोरें उठ रही थीं इसी स्थली पर गतिमान रहा।

यह स्थली 'विहार वन' नाम से विख्यात हो गई।

शत कोटि गोपिका रास मण्डल

गोपिभ्यो शतकोटीभ्यो स कृष्णाभ्यो नमोस्तु ते।
देवादिपरमोत्साह रासगोष्ठि नमोस्तु ते ॥

(ब्रह्माण्ड पुराण)

हे श्रीकृष्ण के साथ शतकोटि गोपियों ! आपको नमस्कार ! हे देवतादि को भी परम आनन्द देने वाले रास गोष्ठी स्थल आपको नमस्कार।

भाण्डीर वट (अक्षय वट)

वहन्तो वाह्यमानाश्च चारयन्तश्च गोधनम्।
भाण्डीरकं नाम वटं जग्मुः कृष्ण पुरोगमाः ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/18/22)

श्रीकृष्ण तथा बलराम अपने सखाओं सहित नित्य ही गोचारण हेतु यहाँ चले आते हैं। विभिन्न खेलों द्वारा आमोद-प्रमोद में मस्त हो जाते हैं, गौऐं इधर चरती रहती हैं। आज घूमते-घूमते वे यमुना तटीय गोचर भूमि भाण्डीर वट पर आ गये।

यहाँ गाय चरती रहीं। सखाओं के साथ खेल में मग्न रहे श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों भैया। ऐसे समय में प्रलम्बासुर नाम के एक दैत्य ने इस ग्वाल मण्डली में प्रवेश किया। श्रीकृष्ण तथा बलरामजी दोनों अलग-अलग दलों के नेता हो गये। खेल के नियमानुसार विजेता दल के सखाओं को पराजित होने वाले दल के सखा अपनी पीठ पर चढ़ाकर निर्दिष्ट स्थल तक छोड़ते थे। कभी कोई हारता और दूसरा जीतता तो वह सब हारने वाले दल के सखा जीतने वाले दल के सखाओं को अपनी पीठ पर बिठा निर्दिष्ट स्थली तक लेकर जाते। प्रलम्बासुर भी सखा वेष धारण कर सखाओं में प्रवेश कर ढोने वाले दल में सम्मिलित हो गया। श्रीबलरामजी को प्रलम्बासुर अपनी पीठ पर चढ़ाकर उतारने के लिए जो

1. इस प्रकार एक दूसरे की पीठ पर चढ़ते-चढ़ाते श्रीकृष्ण आदि ग्वाल-बाल गौएँ चराते हुए भाण्डीर नामक वट के पास पहुँच गये।

नियत स्थान था उससे भी आगे ले जाने लगा, परन्तु बलरामजी को वह अधिक दूर न ले जा पाया । उसने अपना वास्तविक रूप प्रकट किया, उस भयङ्कर रूप को देख पहले तो बलरामजी भयभीत हो गये, परन्तु दूसरे ही क्षण अपना बल याद आने पर उन्होंने प्रलम्बासुर का वध कर दिया ।

सभी ग्वाल बाल 'वाह' 'वाह' करने लगे । देवताओं ने सुखी होकर पुष्पों की वर्षा की ।

वही स्थली 'भाण्डीर वट' (अक्षय वट) नाम से विख्यात हो गई ।

मुञ्जाटवी (आरा, ईषिकाटवी अथवा भाण्डीरवन)

मुञ्जाटव्यां भ्रष्टमार्गं क्रन्दमानं स्वगोधनम् ।
सम्प्राप्य तृषिताः श्रान्तास्ततस्ते संन्यवर्तयन् ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/19/5)

ग्वाल बालकों के साथ श्रीकृष्ण तथा बलराम खेल में मग्न हो गये । तृण चरते-चरते गौऐं बहुत दूर निकल गई । जब सखा मण्डली खेल में श्रमित हो कुछ विश्राम करने लगी तो उन्हें अपनी गउओं की सुधि हुई । गौओं को न देख वे अत्यन्त कातर हो गये । अन्त में गौओं के खुर, दाँतो द्वारा खाई घास की पहचान कर वे घोर जंगल में पहुँच गये । वहाँ उन्होंने डकराती रास्ता भूली गउओं की आवाज सुनी । श्रीकृष्ण एक-एक गाय का नाम ले-लेकर पुकारने लगे, प्यास से व्याकुल गउऐं भाग-भाग कर पास आने लगीं ।

इतने में ही उन्होंने देखा कि चारों ओर उस सरकंडे के वन में अग्नि लग गई है । इस दावाग्नि को देख सभी ग्वाल-बाल अत्यन्त भयभीत हो गये । वे अपने प्यारे कन्हैया को पुकारने लगे, प्यारे कृष्ण ! बलराम ! हम तुम्हारी शरणागत हैं । हमारी रक्षा करो । इस दावाग्नि से हम तथा हमारा गोधन नष्ट होने जा रहा है, तुम हमें इससे बचाओ । अपने ग्वाल-बालकों की दीनता भरी पुकार सुनकर श्रीकृष्ण बोले, भैयाओ ! तुम लोग कुछ चिन्ता न करो । अपनी-अपनी आँखे बन्द कर लो । उसी समय योगेश्वर भगवान श्रीकृष्ण ने सम्पूर्ण दावाग्नि का पान कर लिया । सखाओं ने जब नेत्र खोले तो अपने को भाण्डीर वट नामक स्थल के पास पाया । श्रीकृष्ण की इस योगसिद्धि तथा योग-माया के प्रभाव से सभी सखाओं को लगा कि उनका सखा कोई देवता है ।

दावाग्नि पान करने के कारण ही यह स्थली मुञ्जाटवी नाम से विख्यात है । श्रीकृष्ण की गोचारण स्थली है ।

---

1. अन्त में उन्होंने देखा कि उनकी गउएँ मुञ्जाटवी में रास्ता भूलकर डकरा रही हैं । उन्हें पाकर वे (सखा) उन्हें लौटाने की चेष्टा करने लगे । उस समय वे थक गये थे और उन्हें प्यास भी बड़े जोर की लगी हुई थी । इससे वे व्याकुल हो रहे थे ।

गोपी घाट तथा तपोवन

तद् ब्रजस्त्रिय आश्रुत्य वेणुगीतं स्मरोदयम् ।
काश्चित्परोक्षं कृष्णस्य स्वसखीभ्योऽन्ववर्णयन् ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/21/3)

ब्रज का वर्णन कौन कर सकता है ? यहाँ निकुञ्जों में भ्रमर गुञ्जार करते हैं, वन्य पशु आनन्द मग्न हुए नृत्य निमग्न रहते हैं, पक्षियों का कलरव अपनी मधुर ध्वनि से स्थली को सुमनोहर बनाता रहता है । वहीं श्रीकृष्ण ने अपनी वंशी में मधुर स्वर भर प्रकृति में सरस काम का सञ्चार कर दिया ।

कामदेव को उद्दीप्त करने वाले उस वंशी निनाद को सुनकर गोपियाँ अपने प्राण प्रिय के पास जाने को अकुला उठीं । उनको प्राण प्रेष्ठ, किस प्रकार प्राप्त हों इसका उपाय सोचने लगीं ।

पुष्पों से मण्डित श्यामसुन्दर की मुख मधुरिमा, चञ्चल चितवन, बंक कटाक्ष, सुमनोहर चाल, पीत पट की फहरान सभी तो चित्त को आकर्षित कर लेते हैं, तिस पर भी यह सुरमणीय वातावरण श्रीकृष्ण के सामीप्य की कामना को वर्धित करने वाला है । कभी वे उस वातावरण की सुरमणीयता में खो जाती हैं, कभी पशुओं के सौभाग्य मद से स्पृहा करती हैं, कभी हरिदास वर्य श्रीगिरिराज की इन शिलाओं के सौभाग्य मद से स्पर्धा करती हैं, कभी भीलनियों की, सुकोमल भावनाओं की सराहना करती हैं । श्रीकृष्ण की प्रियता और और बढ़े और वे वर रूप में प्राप्त हों-ऐसा उपाय विचारती हैं । अन्ततः -

हेमन्त ऋतु के प्रथम मास में नन्दरायजी के ब्रज की बालिकाओं ने हविष्यान्न भोजन करते हुए कात्यायनी देवी के पूजन का व्रत लिया ।

वे इसी स्थली पर आकर नित्य ही अरुणोदय के समय श्रीयमुनाजी में स्नान करतीं, बालुका की मूर्त्ति बनाकर पूजन करतीं, सुगन्धित धूप, नैवेद्य समर्पित करतीं तथा कात्यायनी देवी से प्रार्थना करतीं -

कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरि ।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरुते नमः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/22/4)

हे कात्यायनी ! हे महामाये ! हे महायोगिनी ! हे अधीश्वरी ! श्रीनन्दरायजी के पुत्र हमें पति रूप में प्राप्त हों ऐसा आशीर्वाद दें । हम आपको प्रणाम करती हैं ।

इस मन्त्र का जप करतीं और उपासना करतीं । उन बालाओं ने इस प्रकार यम-नियम पूर्वक एक मास पर्यन्त उपवास, जपादि किया ।

---

1. श्रीकृष्ण की वह वंशी ध्वनि, भगवान के प्रति प्रेम भाव को, उनके मिलन की आकांक्षा को जगाने वाली थी । (उसे सुनकर गोपियों का हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो गया ।) वे एकान्त में अपनी सखियों से उनके रूप, गुण और वंशी ध्वनि के प्रभाव का वर्णन करने लगीं ।

वही स्थलियाँ जहाँ गोपिकाओं ने जप, उपवासादि किया, 'तपोवन' नाम से तथा यमुना स्नान की स्थली 'गोपीघाट' के नाम से विख्यात हो गई ।[1]

चीर घाट

एवं मासं ब्रतं चेरुः कुमार्यः कृष्णचेतसः ।
भद्रकालीं समानर्चुर्भूयान्नन्द सुतः पतिः ॥[2]

(श्रीमद्भागवत 10/22/5)

यहाँ ब्रजाङ्गनाओं ने 'श्रीकृष्ण पति रूप में प्राप्त हों', इस आशय से नियमित रूप से नियम व्रतादि का पालन करते हुए साधना की थी । इसी से श्रीकृष्ण के साथ रास की रात्रियों में विहार-विलास का आश्वासन पा यह कुमारिकाऐं मग्न हो गईं ।

श्रीकृष्ण के प्रति पूर्ण समर्पण कर इन बालाओं ने अपनी देह भावना को भी, सर्वव्यापक भगवान श्रीकृष्ण के समक्ष प्रधानता न दी ।

'चीरहरण' की यह स्थली 'चीर घाट' नाम से प्रसिद्ध हो गई ।*

श्रीनन्द घाट

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् ।
स्नातुं नन्दस्तु कालिन्द्या द्वादश्यां जलमाविशत् ॥[3]

(श्रीमद्भागवत 10/28/1)

श्रीकृष्ण के प्रति प्रगाढ़ प्रेम हो, इस हेतु को लेकर श्रीनन्दरायजी ने एक बार एकादशी का व्रत किया तथा द्वादशी लगने पर रात्रि की वेला में ही, वे श्रीयमुना स्नान के लिए चले गये । वह असुर वेला थी, श्रीनन्दरायजी को वरुण के दूत पकड़कर अपने स्वामी के पास ले गये ।

---

1. इस विषय में कुछ महानुभावों की अनुभूतियाँ श्रीवृन्दावन में चीरघाट तथा उसी की आस-पास की स्थली से सम्बद्ध है । कात्यायनी पीठ का वर्णन भी श्रीवृन्दावन में मिलता है । श्रीकृष्ण लीला नित्य है और रसिकों की अनुभूतियाँ समय-समय पर श्रीकृष्ण लीला के दर्शन कर वैष्णवजनों के लिये स्थली का महत्त्व प्रकट करने में सहायक रही हैं - यह लीला स्थली (गोपी घाट) यहाँ भी तथा वहाँ (श्रीवृन्दावन में) भी दोनों जगह कल्पान्त भेद से स्वीकार की जा सकती है ।
2. इस प्रकार उन कुमारियों ने जिनका मन श्रीकृष्ण के प्रति समर्पित हो चुका था, इस संकल्प के साथ एक माह तक भद्रकाली की भली-भाँति पूजा की, ' कि नन्दनन्दन हमारे पति हों ।'

* नोट - चीरघाट का वर्णन श्रीवृन्दावन में भी यमुना तट पर हुआ है । अनेक महात्माओं ने उस स्थली पर लीला की सरस अनुभूतियाँ की हैं । अतः कल्प भेद से वह स्थली भी चीरघाट की लीला से सम्बद्ध मानी जा सकती है ।

3. (परीक्षित) नन्द बाबा ने कार्तिक शुक्ल एकादशी का उपवास किया और भगवान की पूजा की तथा उसी दिन, रात में द्वादशी लगने पर स्नान हेतु यमुना जल में प्रवेश किया ।

श्रीनन्दरायजी के अदृश्य होने का समाचार जब ब्रजवासियों तक पहुँचा, तो वे बहुत ही दुखी हुए तथा श्रीकृष्ण और बलरामजी से उपाय करने का निवेदन करने लगे। ब्रजवासियों का क्रन्दन श्रीकृष्ण से देखा न गया। वे वरुण के पास गये तथा अपने पिता के लौटाने की बात कही।

वरुण देव ने श्रीकृष्ण की भाँति-भाँति से स्तुति की और अपने दूत के लिए क्षमा याचना की।

श्रीकृष्ण श्रीनन्दरायजी को लेकर ब्रज में आ गये तो गोपों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ।

यह स्थली 'नन्द घाट' नाम से विख्यात हो गई।

'श्रीजीव गोस्वामी' भी अपने साधन काल में यहाँ विराजे। उनका उत्कट वैराग तथा श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य प्रीति वैष्णव जगत में विख्यात है।

पास ही 'हाजरा' ग्राम है, जहाँ ब्रह्माजी ने अपहृत बछड़ों को श्रीकृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत किया। एक मील दूरी पर 'वरारा' ग्राम है, जहाँ ब्रह्माजी ने गोवत्सों का अपहरण किया था।

भय-गाँव

अहे श्रीनिवास ऐथा नन्द भय पाईला।
तेई 'भय' नामे ग्राम वज्र बसाईला॥

(भ० र०)

वहीं पास ही में 'भै' नामक ग्राम है। जब वरुणजी के दूत श्री नन्दरायजी को पकड़कर ले जाने लगे तब श्रीनन्दरायजी अत्यन्त भयभीत हो गये। समस्त ब्रजवासी भी व्याकुल हो गये तथा श्रीकृष्ण को पुकारने लगे।

यह स्थली 'भै' गाँव नाम से विख्यात हो गई। ऐसी जनश्रुति है कि श्रीवज्रनाभजी ने ही यह नामकरण किया था।

बसई ग्राम (बच्छवन)

एवमेतेषु भेदेषु चिरंयात्वा स आत्मभूः।
सत्याः के कतरे नेति ज्ञातुं नेष्टे कथंचन॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/13/43)

एक बार नन्दनन्दन श्यामसुन्दर अपने सङ्ग के ग्वाल बालकों सहित यमुना के सुरमणीय तट पर बछड़े चरा रहे थे। वे बछड़े चरते-चरते इस वन में

1. ब्रह्माजी ने दोनों स्थलों पर दोनों को देखा और बहुत देर तक ध्यान करके अपनी ज्ञान दृष्टि से उनका रहस्य खोलना चाहा, परन्तु इन दोनों में कौन से पहले के ग्वाल-बाल हैं और कौन से पीछे बना लिये गये हैं, इनमें से कौन सच्चे हैं और कौन बनावटी, यह बात वे किसी भी प्रकार न समझ सके।

जा पहुँचे। श्रीकृष्ण यमुना जी की कोमल बालुका में, अनेक खेल खेलते हुए सखाओं को आनन्द प्रदान करने लगे। खेल के उपरान्त प्रीति भोज हुआ। एक दूसरे की छाक छीन-छीनकर खाने लगे। कन्हैया अपने सखाओं का जूठा भी खाते, कभी उनके हाथों से छीन लेते और कभी सखा अपने प्यारे कन्हैया का उच्छिष्ट ग्रहण कर आनन्दातिरेक में सिहरते, पुलकते परस्पर आनन्द मग्न हो जाते।

इधर हरी दूब के लोभ में चरते-चरते बछड़े कुछ दूर निकल गये। बछड़ों को वहाँ न देख श्रीकृष्ण सखाओं को भोजन करते छोड़, बछड़ों की खोज में चले गये। चारों ओर खोजने पर भी बछड़े कहीं न मिले।

परब्रह्म श्रीकृष्ण भगवान के सखाओं सहित लीला चरित्र पर सशंकित ब्रह्माजी ने सभी बछड़ों का अपहरण कर दूर एक गुफा में छिपा दिया था। अखिल ब्रह्माण्ड नायक घट-घट में व्याप्त श्रीकृष्ण यह सब समझ गये और ब्रह्माजी के मोह की बात सोच लौट आये। इधर जब श्रीकृष्ण लौटे तो जिस स्थान पर सखा मण्डली को छोड़ गये थे, वहाँ सखाओं को भी न पाकर समझ गये कि ब्रह्माजी ने सखाओं को भी इसी प्रकार छिपा दिया है। ब्रह्मा जी ने सोचा, गोप बालकों सहित श्रीकृष्ण नित्य चोरी करते हैं, सखाओं के साथ खेल खेलते हैं, उनका जूठा भी खा लेते हैं, ये वास्तव में ब्रह्म ही हैं अथवा कोई साधारण मनुष्य ही तो नहीं हैं।

श्रीकृष्ण जब ब्रज को लौटने के लिए उद्यत हुए तो बछड़ों तथा ग्वाल बालकों के लिए विचार करने लगे। देखते ही देखते उन्होंने अपने आपको अनेक स्वरूपों में प्रकट कर लिया। वे बछड़े भी बन गये और ग्वाल बालक भी। जब वह सब बछड़े व ग्वाल बालक ब्रज को लौटे तो उनकी माताओं का कुछ विशेष ही स्नेह उमड़ने लगा क्योंकि इन स्वरूपों में श्रीकृष्ण ही जो थे। अपने पुत्रों को माताओं ने गोद में उठाया तथा गउओं ने विशेष स्निग्धता वश बछड़ों का पोषण किया।

यह क्रम एक वर्ष तक चलता रहा, परन्तु किसी को भी इस भेद का पता न चला। वर्ष पूरा होने पर ब्रह्माजी का केवल एक दिन ही बीता था। वे जब ब्रज में आये तो बछड़ों को पूर्ववत वहीं चरते देख और ग्वाल मण्डली को उसी प्रकार आनन्द मग्न देख भौंचक्के से रह गये।

इस सब घटना क्रम को जानकर ब्रह्माजी अत्यन्त लज्जित हो गये। परम पुरुषोत्तम भगवान द्वारा माया का पर्दा हटाने पर ब्रह्माजी मोह से जगे और उन्हें अपने समेत समस्त जगत श्रीकृष्णमय ही दीखने लगा। भगवान को उन्होंने साष्टांग प्रणाम किया तथा स्तुति की।

तोमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु
लक्ष्मश्रिये मृदुपदे पशुपाङ्गजाय ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/14/1)

ब्रह्माजी गोकुल में जन्म पाने को अकुला उठे तथा उस रज से अभिषिक्त होने को आतुर हो गये क्योंकि यहाँ नन्दकुमार के रूप में ब्रह्माण्ड नायक स्वयं विक्रीड़ित हो रहे हैं ।

ब्रह्माजी ने बछड़ों, ग्वाल बालकों को वहीं लाकर छोड़ दिया । यद्यपि ग्वाल बालकों को श्रीकृष्ण से बिछुड़े एक वर्ष हो गया था, तथापि उन्हें इस सबका ज्ञान ही न रहा । सोकर जागे से ग्वाल-बाल अपने सखा के साथ खिल-खिलाते ब्रज को लौट आये ।

यह स्थली 'बच्छ वन' नाम से विख्यात है । यहाँ 'वत्सविहारी मन्दिर', 'ग्वाल कुण्ड', 'ग्वाल मण्डली', 'हरि बोल तीर्थ' तथा 'श्रीश्रीवल्लभाचार्यजी' की बैठक है ।

परखम

ब्रह्माजी ने श्रीकृष्ण की परीक्षा ली कि क्या वे ही अघासुर को मोक्ष प्रदान करने वाले पूर्ण पुरुषोत्तम ब्रह्म हैं अथवा साधारण मनुष्य रूप में केवल नन्दनन्दन श्यामसुन्दर ही हैं । सखाओं का उच्छिष्ट लेते देख ब्रह्माजी को मोह हो गया था तथा परीक्षा लेने की जिज्ञासा हुई थी ।

अतः यह स्थली 'परखम' नाम से विख्यात हो गई । पास ही 'सेई' ग्राम है ।

चौमुहां

चौमुंहा ग्रामे ब्रह्मा असि कृष्ण पाशे ।
करिल कृष्णेर स्तुति अशेष विशेषे ॥

(भ० र०)

ब्रह्माजी ने यहाँ आकर श्रीकृष्ण की स्तुति की थी ।

---

1. प्रभो ! एकमात्र आप ही स्तुति करने योग्य हैं । मैं आपके चरणों में नमस्कार करता हूँ । आपका यह शरीर वर्षाकालीन मेघ के समान श्यामल है, इस पर स्थिर बिजली के समान झिलमिल-झिलमिल करता हुआ पीताम्बर शोभा पाता है । आपके गले में घुंघची की माला, कानों में मकराकृत कुण्डल तथा सिर पर मोर मुकुट है । इन सबसे आपके मुख पर अनोखी छटा छिटक रही है । वक्षस्थल पर लटकती हुई माला तथा हाथों में दही-भात का कौर, बगल में बेंत और सींग तथा फेंट में आपकी परिचायक बाँसुरी शोभायमान है । आपके कमल से कोमल सुकुमार चरण और यह गोप बालक का मधुर वेष । (मैं इन्हीं चरणों पर निछावर हूँ) ऐसे गोपाल नन्दन को मैं नमस्कार करता हूँ ।

अद्यैव त्वदृतेऽस्य किं मम न ते मायात्वमादर्शित-
मेकोऽसि प्रथमं ततो ब्रजसुहृद् वत्साः समस्ता अपि।

(श्रीमद्भागवत 10/14/18)

इस समय भी क्या आपने मुझे अपने सिवा और सम्पूर्ण विश्व की माया ममता ही नहीं दिखला दी। पहले आप अकेले थे, फिर सम्पूर्ण ग्वाल-बाल और बछड़े भी आप ही हो गये। तदुपरान्त मैंने देखा कि आपकी वे सब मूर्तियाँ चतुर्भुज स्वरूप हैं और मुझ सहित सम्पूर्ण तत्त्वों से सेवित हैं तथा आपने अलग से उतने ही ब्रह्माण्डों का रूप धारण कर लिया है और अब अन्त में फिर अपने अपरिमित अद्वितीय ब्रह्म स्वरूप से केवल आप ही शेष रह गये हैं।

इस प्रकार ब्रह्माजी ने भगवान की स्तुति की। वही स्थली 'चौमुहां' नाम से विख्यात हो गई।

पसौली-सपौली, अघवन-सर्पस्थली

एतत् कौमारजं कर्म हरेरात्माहिमोक्षणम् ।
मृत्योः पौगण्डके बाला दृष्ट्वोचुर्विस्मिता ब्रजे ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/12/37)

एक बार श्रीकृष्ण अपने सङ्ग के ग्वाल बालकों सहित बछड़े चराने के लिए शीघ्र ही चल दिये। वन में ही कलेऊ करने की इच्छा से, कलेऊ साथ ले लिया। रास्ते में सींग, वंशी आदि का मधुर स्वर करते भिन्न-भिन्न खेलों से प्रसन्न, उत्फुल्ल वदन, वन में जा पहुँचे। वे सब, कभी किसी का छींका छीन लेते, कभी किसी को छू, भागते आनन्द मग्न हो रहे थे। पूतना के भाई 'अघासुर' को यह बात सहन न हुई। वह अपने सम्बन्धियों के वध का बदला लेने के विचार से वहाँ रास्ते में ही अजगर का विशाल तथा विकृत वेष बनाकर लेट गया।

ग्वाल बालकों ने उसे देखा, विचार करने लगे कि यह कोई दैत्य है अथवा हमारे खेलने का ही कोई साधन बना है। उसका मस्तक आकाश को छू रहा था, जिह्वा सड़क के समान तथा मुख एक गुफा के समान दीख रहा था। विशालकाय अजगर के रूप में वह दैत्य वहाँ पड़ा था। खेल-खेल में ग्वाल बालक उसके मुख में घुस गये, परन्तु उस दैत्य ने अपना मुख बन्द न किया। श्रीकृष्ण से बदला लेने की भावना से वह दैत्य उन्हीं की प्रतीक्षा करने लगा। श्रीकृष्ण ने उसके हृदय की बात को भाँप लिया तथा अपने सखाओं की रक्षा का उपाय सोचने लगे।

1. भगवान ने अपने ग्वाल बालकों को मृत्यु से बचाया था और अघासुर को मोक्ष प्रदान किया था, वह लीला भगवान ने अपनी कुमार अवस्था में अर्थात् पाँच वर्ष में ही की थी। ग्वाल बालकों ने उसी समय देखा था, परन्तु पौगण्ड अवस्था अर्थात् छठे वर्ष में अत्यन्त आश्चर्यचकित हो कर ब्रज में उसका वर्णन किया।

श्रीकृष्ण ने उसी समय अघासुर के मुख में प्रवेश किया। उस महादैत्य ने अपन मुख बन्द करना चाहा तो श्रीकृष्ण ने अपना शरीर बढ़ाकर उसका कण्ठ अवरुद्ध कर दिया। उससे उसका श्वास रुक गया। उसके प्राण निकलने लगे। थोड़ी ही देर में उसका ब्रह्म-रन्ध्र भेद, उसके मस्तिष्क से एक श्यामलोज्ज्वल ज्योति निकली जो आकाश में स्थित हो गई।

मूर्छित बालकों को अपनी अमृतमयी दृष्टि से जीवन प्रदान कर जैसे ही श्रीकृष्ण बाहर निकले तो देवताओं के देखते-देखते वह नीलोज्ज्वल प्रकाश पुञ्ज श्रीकृष्ण में ही समा गया। देवताओं, अप्सराओं तथ गन्धर्व आदि ने श्रीकृष्ण की स्तुति की।

अघासुर को मोक्ष प्रदान कर श्रीकृष्ण ग्वाल बालकों सहित वृन्दावन में लौट आये। वह अजगर अनेक दिनों तक बालकों के खेल का साधन बना रहा।

वही स्थली 'सर्प स्थली', 'पसौली', 'सपौली' अथवा 'अघवन' के नाम से विख्यात है।

जैंत

ततोऽतिहृष्टाः स्वकृतार्हणं
पुष्पैः सुरा अप्सरसश्च नर्तनैः ।
गीतैः सुगा वाद्यधराश्च वाद्यकैः
स्तवैश्च विप्रा जयतिः स्वनैर्गणाः ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/12/34)

अघासुर का वध हो जाने के उपरान्त सभी देवताओं ने भगवान श्रीकृष्ण की 'जय हो', 'जय हो' की ध्वनि से समस्त ब्रज मण्डल को गुंजा दिया। सखाओं ने भी इसी ध्वनि में 'जय हो', 'जय हो' की ध्वनि मिला अपने हर्ष की अभिव्यक्ति की।

श्रीकृष्ण की अघासुर पर विजय का लीला गान करती यह स्थली 'जैंत' नाम से विख्यात हो गई।

यहाँ के तालाब में सर्प की मूर्ति है। उसे इस चतुराई से बनाया गया है कि कुण्ड में पानी चाहे जितना बढ़ जावे वह सर्प मूर्ति सदैव पानी के ऊपर ही दिखलाई देती थी। अब उस सर्प मूर्ति के भग्नावशेष ही रह गये हैं।

---

1. उस समय देवताओं ने फूल बरसाकर, अप्सराओं ने नाचकर, गन्धर्वों ने गाकर, विद्याधरों ने बाजे बजाकर, ब्राह्मणों ने स्तुति पाठ कर और पार्षदों ने जय-जयकार के नारे लगाकर बड़े आनन्द से भगवान श्रीकृष्ण का अभिनन्दन किया। क्योंकि भगवान श्रीकृष्ण ने अघासुर का वध किया था।

तमाल कानन तथा श्रीकृष्ण कुण्ड टीला

अहे देख तमाल कानन ए खाने ।
बाढ़े महारङ्ग राधा कृष्णेर मिलने ।

(भ० र०)

ब्रज अलबेली प्रकृति से परिव्याप्त है । चारों ओर प्रकृति देवी अपने यौवन में मत्त, उत्फुल्ल अपने इन प्राणधन युगल प्रिया-प्रियतम की अगवानी के लिए पांवड़े बिछा प्रतीक्षातुरी में मग्न रहती है । कहीं कदम्ब कानन की सघन छाया तथा उन्मादनकारी सौरभ प्रवहमान है, तो कहीं यह प्रकृति हरी दूर्वा की अत्यन्त कोमल शैय्या बिछा अपने जीवन सर्वस्व की बाट जोह रही है । यह प्रकृति जड़ नहीं है, अपितु चेतन है ; युगल केलि में सहायक है, रस केलि का आस्वादन कर अपनी उत्फुल्लता लुटा युगल को सर्व प्रकार से सुख प्रदान करती है । कहीं कञ्चन लतिकाऐं, श्याम तमाल के आश्रय में प्रफुल्लित हो जाती हैं । पवन की झकोरों से आलोड़ित सी यह वृक्ष-वल्लरियाँ कभी नव-नव अनुराग में भरी सिहर पुलक उठती हैं । प्रिया-प्रियतम इस प्रकृति के अलबेलेपन को देख रीझ उठते हैं ।

एक बार पास ही की निकुञ्ज के एक तमाल वृक्ष के समीप एक लता को दिखला-प्रियाजी को इंगित कर प्रियतम ने धीरे से पूछा, "यह लता इस तमाल विटप से क्या कह रही है ।" प्रियाजी मौन ही रहीं, कुछ सोचती सी धीरे से बोलीं, "लता की यह सिहरन और पुलकन ही अपनी अनुराग दशा व्यक्त कर रही है । इसका दोष नहीं है इसमें, पवन की झकोर के मिस किसी काम दूतिका ने इसे झकझोर दिया है । तिस पर भी विटप का धैर्य देखो ।" यह वार्ता चल ही रही थी कि यह सजीव श्याम तमाल कुछ-कुछ अधीर से हो गये । यह अधीरता किसी सबल सम्बल के धैर्य का समाश्रय पा अधीर ही रही अथवा धैर्य के वशीभूत हो गई-कैसे कहें ? किसी माधुर्य सिन्धु के तल-अतल में रस की तरङ्गों को कौन गिनता ?

इधर सखियों ने देखा-वे भी मग्न हो गईं । उस सुखास्वादन में पगी रस मग्न ही रहीं । सुरस मदाब्धि की झकोरों में कुछ-कुछ सजग से युगल अभी भी रसत्वरा में भरे मग्न थे । निज स्वरूपभूता सखियों के आगमन पर चौंके से और और सजग हो गये । वह एकान्तिक रसविहार सामूहिक रसकेलि में प्रवाहित हो सभी को रस मग्न करने लगा ।

'कृष्ण कुण्ड टीला' और 'तमाल कानन' अपनी इन्हीं रसीली स्मृतियों के कारण विख्यात हो गये ।

आटस

ए आटस ग्राम महाकौतुक हईल ।
अष्ट वक्रमुनि एथा तपस्या करिल ॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं को निरखने, परखने, आस्वादन करने के अधिकारी सभी ब्रजवासी-गण सहज ही हैं परन्तु एकान्तिक, माधुर्य रस से पूरित लीलाओं का आस्वादन केवल ब्रज की यह भोली-भाली गोपाङ्गनाऐं ही कर सकती हैं । देवर्षि नारद तथा शङ्कर भगवान भी इन्हीं ब्रज-बालाओं की अनुकम्पा से, श्रीकृष्ण लीला का आस्वादन कर सके, फिर अन्य देवताओं ऋषि-महर्षियों की तो बात ही क्या है ?

श्रीकृष्ण अवतार सुन श्रीअष्टावक्र मुनि उनके दर्शन की लालसा में भरे यहीं विराजे, तभी से यह स्थली 'आटस' नाम से विख्यात हो गई ।

वराहर

एई वराहर ग्रामे वराह रूपे ते ।
खेलाईला कृष्ण प्रिय सखार सहिते ॥

(भ० र०)

श्रीकृष्ण की अनेक ऐश्वर्य प्रधान लीलाओं को देख सखाओं में विचित्र चर्चा चलने लगी । कोई उनके शकटासुर, पूतना आदि वध की बात कहने लगा, किसी ने श्रीगिरिराज धरण की बात दोहरा सभी सखाओं का ध्यान आकर्षित किया । अन्य सखाओं ने भी अनेक महत्त्वपूर्ण लीलाओं का वर्णन किया । बात-बात में वाराह भगवान की बात चल गई, कहते हैं श्रीकृष्ण को भगवान वाराह रूप की स्मृति हो गई और वे तदनुकूल चेष्टाऐं करने लगे ।

सखा भयभीत हो, उच्च ध्वनि से कन्हैया-कन्हैया पुकारने लगे । तभी श्रीकृष्ण का भगवान वाराह का आवेश शान्त हो गया और वे अपने सखाओं के प्यार में भरे, उन्हें पुनः सुख प्रदान करने लगे ।

अतः यह स्थली 'वराहर' नाम से विख्यात हो गई ।

भद्रवन

भद्राय भद्ररूपाय सदा कल्याणवर्द्धने ।
अमङ्गलच्छिदे तस्मै नमो भद्रवनाय च ॥[1]

(भविष्योत्तरे)

1. हे भद्र स्वरूप भद्र वन ! आप सर्वथा कल्याण प्रदायी तथा अमंगल का नाश करने वाले हो, आपको नमस्कार है ।

गोचारण के लिए आये श्रीकृष्ण, सखाओं के साथ आमोद- प्रमोद में मग्न, सखाओं की अपने प्रति प्रेम भरी भावनाओं का सत्कार करते, गउओं के पीछे-पीछे बहुत दूर तक निकल जाते । कभी यमुना तटवर्ती गोचारण स्थली पर सुन्दर घास देख गउओं को ले जाते, तो कभी यमुना पार जाकर गाय चराते । सखाओं के साथ हास विनोदों की धूम में सुख बरसता रहता ।

गऊओं के पीछे-पीछे चलते श्रीकृष्ण चरण चिन्हों से अङ्कित यह स्थली 'भद्रवन' नाम से विख्यात है ।

भद्र सरोवर

यज्ञस्नानस्वरूपाय राज्याखण्डपदप्रद ।
तीर्थराज नमस्तुभ्यं भद्राख्य-सरसे नमः॥

(भविष्योत्तर)

हे भद्र नामक सरोवर ! हे तीर्थराज ! आपको नमस्कार , आप यज्ञ स्थान स्वरूप हैं व अखण्ड राज्य पद को देने वाले हैं ।

यहाँ स्नान करने वाला व्यक्ति अनन्त वैभव प्राप्त करता है तथा भक्तों की अभीप्सित सम्पत्ति भक्ति को प्राप्त करता है ।

भाण्डीर वन

भाण्डीरं समनुप्राप्य वनानां वनमुत्तमम् ।
वासुदेवं ततो दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते ॥[1]

(आदि वाराह)

श्रीराधा-कृष्णचन्द्र मिलन

एक बार श्रीनन्दरायजी अपने लाला कन्हैया को साथ ले, गोचारण हेतु भाण्डीर वन में पधारे । वहाँ एक स्वच्छ सरोवर था, जहाँ गउओं को पानी पिलाया । चारों ओर वृक्ष तथा लताओं से घिरा वह वन गोचारण हेतु कोमल दूर्वा का एक भण्डार सा ही था । सर्वत्र सुगन्धित समीरण प्रवहमान थी । पक्षियों का कलरव, मन का बरबस ही हरण कर रहा था । नन्दरायजी गउओं की निगरानी में मग्न थे । श्रीकृष्ण की शक्ति योगमाया ने सहसा अन्धकार कर दिया । प्रचण्ड वायु चलने लगी । सघन घन उमड़ आये, वर्षा का योग देख नन्दरायजी भीत हो गये । अपने बाबा की अङ्क में कन्हैया डर कर बाबा से और चिपट गये ।

1. (जीव) वनों में उत्तम भाण्डीर वन की यात्रा करने तथा वहाँ श्रीवासुदेवजी के दर्शन करने से जन्म-जन्मान्तर के आवागमन से मुक्त हो जाता है ।

इसी समय अपूर्व सुन्दरी नख शिख श्रृङ्गार धारण कर श्रीराधा मत्त गजेन्द्र की सी चाल से मधुर नूपुर शब्द करतीं, वहाँ आ पहुँचीं ।

उस निर्जन वन में करोड़ों चन्द्रमाओं की आभा को विलज्जित करतीं अनुपम सौन्दर्यमयी किशोरी श्रीराधा को देख नन्दरायजी को बहुत आश्चर्य हुआ । उन्होंने श्रीराधाजी को प्रणाम किया और बोले, "देवी ! श्रीगर्गाचार्य जी ने तुम्हारे विषय में मुझे सब कुछ बतला दिया था । तुम ही श्रीकृष्ण की अनन्या प्रेयसी हो । इसे तुम जहाँ चाहो ले जाओ । अपना अभीष्ट पूरा कर मुझे लौटा देना ।"

यों कह नन्दबाबा ने बालक श्रीकृष्ण को, श्रीराधा को सौंप दिया । वे उन्हें ले प्रसन्नता में भर गईं तथा श्रीनन्दरायजी से यह रहस्य किसी से भी प्रकट करने की मनाही करते हुए बोलीं, "ब्रजेश्वर ! तुम्हारे मन में जो हो मुझ से माँग लो ।" श्रीनन्दरायजी ने श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण के चरणों की भक्ति प्राप्ति की प्रार्थना की ।

श्रीकृष्ण को सानन्द अपने साथ ले श्री राधा वहाँ से दूर चली गईं । अपने हृदय से लगा युग-युग की तृषा का शमन करने लगीं । सहसा उनके मन में रास मण्डल का स्मरण हुआ । तत्क्षण उनके अङ्क से बालकृष्ण स्वरूप लुप्त हो गये ।

सहसा ही उन्होंने पास ही के निकुञ्ज प्रदेश में दिव्य सुगन्धित वातावरण में पुष्प शैय्या पर लेटे हुए किशोर श्रीकृष्ण को देखा । वे विस्मित सी हो गईं । प्रसन्नतापूर्वक उस श्यामलोज्ज्वल छवि की रूप मधुरिमा का पान करने लगीं ।

श्रीकृष्ण और श्रीराधा का अपूर्व मिलन हुआ । गोलोक की सभी स्मृतियाँ दोनों के स्मृति-पटल पर अंकित हो गईं । अपने प्राण प्यारे का सामीप्य पा, उस माधुर्य रस में निमज्जित हो गईं श्रीराधा । श्रीकृष्ण ने अपनी प्राण-प्रिया की सन्निधि में मधुरातिमधुर लीलाओं का रसास्वादन किया ।

वहीं ब्रह्माजी प्रकट हो गये । उन्होंने सभी आवश्यक सामग्री जुटा, सम्पूर्ण सज्जा की व्यवस्था कर दोनों का विवाह करवा दिया । श्रीराधा ने आजानुलम्बी माला श्रीकृष्ण के कण्ठ में धारण कराई और श्रीकृष्ण ने एक माला श्रीराधा के कण्ठ में धारण करा दी तथा दोनों प्रणय-सूत्र में पुनः बँध गये ।

यह सब देख देवताओं ने पुष्पों की वर्षा की । सम्पूर्ण स्थली वाद्यों की मोहक ध्वनि से गूँज उठी । यावत प्रकृति में प्रसन्नता की लहर दौड़ गई । प्रिया-प्रियतम ने परस्पर चर्वित पान ग्रहण किया । माधव ने श्रीराधा के हाथ से बलपूर्वक रत्नमय दर्पण ले लिया तथा श्रीराधा ने श्रीकृष्ण से मुरली छीन ली । दोनों ही इस प्रणय केलि से परम आनन्द में भर गये ।

श्रीराधा श्रीकृष्ण की वेष रचना करने को जैसे ही उद्यत हुईं, तो श्रीकृष्ण को शिशु रूप में देख विस्मित हो गईं। नव-तरुण श्रीकृष्ण की खोज में वे इधर-उधर देखने लगीं। बालकृष्ण क्षुधातुर से जान पड़े। उसी बीच आकाशवाणी हुई, "राधे ! तुम क्यों खिन्न हो। श्रीकृष्ण के चरण कमलों का चिन्तन करो। जब तक रास मण्डल का आयोजन नहीं होता, तब तक तुम नित्य ही यहाँ आती रहोगी। चिन्ता छोड़ बाल रूपधारी श्रीकृष्ण को लेकर जाओ।"

आकाशवाणी से आश्वासन पा, श्री राधा ने ब्रज में जाकर श्री यशोदारानी को बाल रूपधारी श्रीकृष्ण को सौंपते हुए कहा, "मैया ! ब्रज में बाबा ने मुझे बालक श्रीकृष्ण को घर पहुँचाने के लिए साग्रह सौंपा था। क्षुधा पीड़ित बालक को लो और पोषण करो।" श्रीराधा वाह्य रूप से गृह कार्यो में रत रहने पर भी रात्रि में नित्य ही श्रीवृन्दावन में जाकर श्रीहरि के साथ रसमयी क्रीड़ाऐं करती रहीं।

अतः प्रिया-प्रियतम की यह मिलन स्थली 'भाण्डीर वन' नाम से विख्यात हो गई।

यहाँ 'असिभाण्ड तीर्थ' जो मनोकामना पूर्ण करने वाला है, 'मत्स्य कूप, 'अशोक' समस्त शोकादि को नाश करने वाला, 'अशोक मालिनी लता' सर्व प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाली हैं।

छांहरी (बिजौली)

सखा सह श्रीकृष्ण भाण्डीरे खेलाईया।
भुञ्जे नाना सामग्री ए छायाये वसिया॥
ए हेतु 'छांहेरी' नाम ग्राम एई हय।
यमुना निकट ग्राम देख शोभा-मय॥

(भ० र०)

सखाओं के साथ नाना खेल, खेल कर उन्हें विविध चेष्टाओं से सुख प्रदान करते नन्दनन्दन कभी, मल्ल युद्धादि में संलग्न होते हैं, तो कभी एक-दूसरे को छूने की चेष्टा में संलग्न हो विविध आमोद-प्रमोदों में मग्न रहते हैं। यमुना तटीय यह एकान्तिक स्थली मधुर हास की गूँज से मुखरित हो उठती है।

कन्हैया अपने अभिन्न हृदय सखाओं को नाना प्रकार के सुस्वादु भोजन प्रदान कर भाँति-भाँति से रिझाते हैं। ग्वाल-गोष्ठी गोचारण के समय में यहाँ विश्राम करती है, इसी से यह स्थली देव तुल्य बन गई है।

छाया में बैठ, आनन्द मग्न हो इस स्थान को लीलामय बना दिया है, इन रसिकेन्द्र मौलि ने। यह स्थली 'छांहरी' अथवा 'बिजौली' नाम से विख्यात है।

ब्रज भूमि मोहिनी

(रे मन वृन्दा-विपिन निहार)

सप्तम खण्ड

राधाकरावचित पल्लव वल्लरीके
राधापदाङ्क विलसन्मधुरस्थलीके ।
राधायशो मुखरमत्तखगावलीके ।
राधा विहारविपिने रमतां मनो मे ॥

आस-पास की अन्य स्थलियाँ

1. मांट-ग्राम
2. बिल्ववन
3. मानसरोवर
4. पानी-गांव
5. अक्रूर-घाट
6. यज्ञ-स्थल
7. छटीकरा (गरुड गोबिन्द)

वृन्दावनकलानाथौ, हृदयानन्दवर्द्धनौ ।
सुखदौ राधिकाकृष्णौ, भजेऽहं कुञ्जगामिनौ ॥[1]

(महावाणी)

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं-
विभ्रद्वासः कनक कपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधर सुधया पूरयन् गोपवृन्द
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥ [2]

(श्रीमद्भागवत 10/21/5)

चकित विस्मित-सी एक बाला को त्वरित गति से जाते देखा । नूपुर की छम-छम ध्वनि, केशावलि की उन्मुक्त फहरान, वृक्षों की मत्त झूम, सरस समीर द्वारा गुद-गुदाए वस्त्राञ्चल, कहीं सुरमणीय यमुना तट पर लगी सखी वृन्द की भीर, घट भरने के मिस नेह घट प्रपूरित यह ब्रज-बालाएँ, रङ्ग-बिरङ्गी चहल-पहल, सघन निकुञ्जों में शत-शत वीणाओं को विनिन्दित करती मधुर ध्वनि; लगता है, मुस्कान तथा हास्य का समुद्र ही उमड़ा चला आ रहा है । सुहावना मौसम, सुरमणीय वातावरण वन्य मृगों का स्वच्छन्द विहार, वंशी की सुरीली ध्वनि सखि ! यह कहाँ से आ रही है ।

अहा ………… कौन कहता ? किसे सुनने का समय ? किसे पूछना था ? प्रियतम ने नाम लेकर पुकारा, प्रेम स्वरूपा यह बालाएँ सहज धावित हुईं । चरण बढ़े और उन्हीं वंशी रवकारी के पास जा पहुँची । पक्षियों ने चहक कर रसीली स्थली को और-और सरस बना दिया । कोकिला कूकी, मयूर नृत्य निरत हो गये । अपनी सुशीतल रश्मियों का प्रसार कर नभ चन्द्र धन्य हुआ । वृक्ष वल्लरियों ने उपहार स्वरूप मादक पुष्पों की भेंट दी । उन्हीं के स्पर्श से बौराई-सी समीरण इठलाने लगी । वृक्ष झूमे, वल्लरियाँ आकुल-व्याकुल हो गईं, सभी कुछ सरस था । किशोरी श्रीराधा तथा इनकी कायव्यूह स्वरूपा यह ब्रज-बालाएँ, साथ हो लीं ।

---

1. वृन्दावन की कुञ्ज में विचरणशील, सुखप्रदायी, हृदयानन्दवर्द्धनकारी युगल चन्द्र का मैं भजन करता हूँ ।
2. शीश पर मयूर पिच्छ, कर्णों में पीत कनेर के पुष्प, स्वर्णिम पीताम्बर, ग्रीवा में पंच पुष्पों की माला धारण कर वंशी को अपनी अधर सुधा द्वारा प्रपूरित करते तथा ग्वाल-बाल जिनकी कीर्ति का गान कर रहे हैं, ऐसे श्रीकृष्ण नटवर वेष धारण कर अपने चरण-चिन्हों द्वारा सुशोभित करते हुए श्रीवृन्दावन में प्रवेश कर रहे हैं ।

रसिकेन्द्र श्रीकृष्ण ने मृदु-मधुर मुस्कान में भर करांगुलियों से अपनी केशावलि सम्हालते हुए मधुर वाणी द्वारा इनकी अभ्यर्चना की । भगवान श्रीकृष्ण का एकान्तिक रस-विलास प्रवाहित हुआ...गतिमान रहा । आज भी वे अखिल ब्रह्माण्ड नायक अपनी भुवन मोहिनी छवि- छटा से श्रीकृष्ण रूप में अपनी उसी रस माधुरी से श्रीवृन्दावन में विराज रहे हैं ।

आज का वृन्दावन वही वृन्दावन है । आज की श्रीयमुना जी वही श्रीयमुना हैं और यह लीला स्थलियाँ वही-वही लीला स्थलियाँ हैं । यहाँ का स्थाई वातावरण वही वातावरण है-जिसे इन लीला-स्थलियों ने बहुत ही सम्हालकर धरोहर रूप में संजो रखा है । अपनी उसी निधि का दर्शन कराने को आज भी यह लीला स्थलियाँ उत्सुक रहती हैं, व्यग्र रहती हैं । वास्तव में इन्हीं की कृपावश अनेक साधकों ने भगवद्प्राप्ति की है । लीला स्थलियाँ-यहाँ के पशु-पक्षी तथा वृक्ष-वल्लरियाँ श्रीकृष्ण के निज परिकर हैं, लीला पात्र हैं ।

यह रसीली स्थली श्रीवृन्दावन प्रिया-प्रियतम के नित्य विहार श्री गोलोक धाम की यथावत छाया है । यह नित्य है-प्रकट है । अवतार काल में नित्य धाम इसी वृन्दावन में समाविष्ट हो जाता है । वास्तव में धाम जैसे ही प्रकट होता है-वहीं प्रिया-प्रियतम आ विराजते हैं-अपने दिव्य तथा रसीले वातावरण सहित, अपनी प्राण-प्रिया सखियों सहित ।

यामल ग्रन्थों में कहा है -

'वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति ।'

अपने भक्तों का अभीष्ट देख, उनकी रसीली भावनाओं का सत्कार करने, दुलारने हेतु गोलोक विहार रत श्रीकृष्ण ने जब भूलोक में अवतरण की बात प्रियाजी से कही तब प्रियाजी ने अत्यन्त कातर होकर कहा -

यत्र वृन्दावनं नाऽस्ति यत्र नो यमुना नदी ।
यत्र गोवर्द्धनो नास्ति तत्र मे न मनः सुखम् ॥

(गर्ग संहिता गो० सं० 3/32)

जहाँ श्रीवृन्दावन नहीं है, श्रीयमुना नहीं है तथा श्रीगोवर्द्धन नहीं है, वहाँ मेरे मन को सुख नहीं होगा ।

श्रीनारदजी कहते हैं, श्रीहरि भगवान ने गोलोक से चौरासी कोस भूमि, श्रीगोवर्द्धन तथा श्रीयमुनाजी को भूलोक में भेजा यथा -

वेदनाग क्रोश भूमिं स्वधाम्नः श्रीहरिः स्वयम् ।
गोवर्द्धनं च यमुनां प्रेषयामास भू परि ॥

(गर्ग संहिता गो० सं० 3/33)

श्रीवृन्दावन, वृन्दावन विहारी तथा वृन्दावन का विषय, भक्तों की प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ हैं, उनके जीवन की वास्तविक उपलब्धियाँ हैं, आने वाले साधक वर्ग के लिए पथ-प्रदर्शक हैं, मार्ग निर्देशक हैं। बिना महद् आश्रय के वस्तु का बोध-प्राप्ति सर्वथा असम्भव है।

गोष्ठ लीला में श्रीकृष्ण की अनेकानेक क्रीड़ाओं को अपने गर्भ में संजोये यह स्थली चिरकाल से हम बुद्धिजीवियों के लिए पथ-प्रदर्शित करती रही है।

पुराणों में, अनेक संस्कृत ग्रन्थों में तथा रसिकों ने एक मत से श्रीवृन्दावन के महत्त्व को स्वीकार किया है। मध्ययुग में तो मानों रसिकों की बाढ़ सी ही आ गई। रसखान, ताज जैसे मुसलमान भक्त ब्रज के दीवाने बन गये। मुसलमान होने पर भी सम्राट् अकबर के सौभाग्य की गाथा हमारा इतिहास आज भी दोहरा रहा है।

दिव्य तथा चिन्मय वृन्दावन का वर्णन अनुभव गम्य ही है। यहाँ प्रिया-प्रियतम अपनी सखियों सहित नित्य विहार करते हैं-लेखनी उस सबको कहाँ तक अभिव्यक्त कर सकती है।

महाज्ञानी श्रीउद्धवजी जहाँ के प्रेम कण की अभिलाषा में मतवाले होकर कहने लगे 'ओह ! मैं इन भगवत्प्रिया गोपियों की चरण रज के स्पर्श का सौभाग्य प्राप्त करने वाले वृन्दावन के तृण-गुल्म लता और औषधि में से कुछ बन सकता !'

आसामहो चरण रेणुजुषामहं स्यां-
वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम् ।

(श्रीमद्भागवत 10/47/61)

यही नहीं योगियों के योग छूट गये। ऋषि-महर्षि भी यहाँ की माधुरी का वर्णन सुन चकित, विस्मित हो गये, फिर प्रेमी भक्तों की तो बात ही निराली है।

निर्विशेष तत्त्व तथा अद्वैतमत का प्रतिपादन करने वाले श्रीशङ्कराचार्य जी महाराज भी अपने नेत्रों की पिपासा का शमन न कर सके। ब्रजेन्द्र नन्दन ने उनके हृदय का अपहरण कर लिया। नेत्रों को समझाते हुए कहने लगे -

कन्दर्पकोटिसुभगं वांछितफलदं दयार्णवम् ।
श्रीकृष्णं त्यक्त्वा कमन्यविषयं नेत्रयुग्मं दृष्टुमुत्सहे ॥

(प्रबोध रत्नाकर)

इन क्षणिक प्रलोभनों में क्यों लुभा रहे हो। यदि सुन्दर रूप देखे बिना तुमसे रहा ही नहीं जाता, तो श्रीकृष्ण को, तुम एक बार निहार तो लो। वे कोटि-कोटि कामदेवों से भी सुन्दर हैं, उदार हैं, दया की निधि हैं। ऐसे श्यामसुन्दर को छोड़ तुम अन्य क्या देखना चाहते हो ?

श्रीशङ्कराचार्यजी महाराज ने श्रीकृष्ण के अनेक लीलानुभवों का बड़ी सरसता से वर्णन किया है । भोजन लीला का वर्णन करते हुए कहते हैं, 'श्रीयमुना तट पर स्थित वृन्दावन के किसी उद्यान में कल्प-वृक्ष के नीचे जो चरण पर चरण धरे बैठे हैं, मेघ के समान नील वर्ण हैं, अपने तेज से समस्त विश्व को प्रकाशित कर रहे हैं; सुन्दर पीताम्बर धारण किये हैं तथा कर्पूर युत चन्दन का विलेपन किये हैं । जिनके आकर्ण विशाल नेत्र हैं । कर्णों में कुण्डल सुशोभित हैं, स्निग्ध केशावलि है, कुञ्ज के भीतर ग्वाल बालकों सहित भोजन करते हुए उन श्रीहरि का स्मरण करो ।'

यमुनातटनिकटस्थितवृन्दाकानने महारम्ये ।
कल्पद्रुमतलभूमौ चरणंचरणोपरिस्थाप्य ॥
तिष्ठन्तं घननीलं स्वतेजसा भासयन्तमिहविश्वम् ।
पीताम्बर परिधानं चन्दन कर्पूर लिप्त सर्वाङ्गम् ॥

(प्रबोध सुधाकर)

श्रीरामानुज सम्प्रदाय का क्षेत्र मुख्यतः दक्षिण रहा है । श्रीशठकोप मुनि यहाँ विशिष्ट ख्याति प्राप्त आचार्य हुए हैं । ब्रज बिहारी श्रीकृष्ण ने अनायास ही उनकी चित्त वृत्ति को चुरा लिया । श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान यद्यपि श्रीकृष्ण का ही दूसरा प्रकाश हैं, फिर भी श्रीकृष्ण के आकर्षण ने श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान की आराधना करने वाले शठकोप मुनि को लुभा लिया । श्रीकृष्ण तथा गोपिकाओं के प्रेम-बन्धन का वर्णन करते हुए वे कहने लगे -

माणिक्य सम अङ्ग कान्ति वाले गोपाल को गोपिकाओं ने बाँध लिया था, अज्ञानी जन भले ही उन्हें बँधा हुआ समझें, परन्तु उसी मायापति नटनागर की रूप माधुरी ने मेरे मोह बन्धन छिन्न-छिन्न कर दिये हैं ।

गोपाल बालमयि गोपवशं निबद्धम्
माणिक्यभासमिह मयिसुधारसं मे ।
आपीय सन्ततमहं हतवान् प्रमोहं
मायाभवं प्रकृतिजं ममदुःसहं तम् ।

(सहस्र गीतिसार 1/7/3)

श्रीकूरेश स्वामी एक स्थान पर लिखते हैं, 'चर-अचर, कीट-पतङ्ग, दूर्वा आदि किसी भी योनि से हम श्रीवृन्दावन में जन्म न ले सकें- यह हमारा मन्द भाग्य है या पाप समुच्चय; हाय हम सर्व प्रकार से वंचित हो गये । हम पापी जन श्रीवृन्दावन विहारी की चरण रज कैसे प्राप्त कर सकेंगे'-यथा-

वृन्दावने स्थिरचरात्मककीटदूर्वा-
पर्य्यन्तजन्तु निययेवत ये तदानीम् ।

नैवालभामहि जनिं हतकास्त येते
पापाःपदं तव कदा पुनराश्रयामः ॥

(पञ्चस्तवी)

श्रीरामानन्दाचार्यजी महाराज भगवान श्री राघवेन्द्र के उपासक रहे हैं। विभिन्न स्थानों में उन्होंने विचरण किया। श्रीवृन्दावन के प्रति उनकी गूढ़ निष्ठा रही।

श्रीराधा-कृष्ण की रसमय केलि, विलास माधुरी उनके निज धाम श्रीवृन्दावन में सदैव, अनवरत गतिमान रहती है, परन्तु इस रस-केलि का प्रचार-प्रसार, आचार्य श्रीश्रीमन्निम्बार्क ने कर, गौरव प्राप्त किया है। उन्होंने वृन्दावन में प्रियाजी की केलि की अनुभूति कर अनेक लीलाओं का वर्णन किया है। एक जगह वे कहते हैं- श्रीयुगल सरकार नन्दनन्दन तथा श्रीवृषभानु-नन्दिनी के प्रेम रस में जिसका अभिषेक होता रहता है, जो रमणीय है, जहाँ के वृक्ष भी मनोवाँछित फल देने वाले हैं, उदार हैं परम पावन जमुना के प्रवाह से जो आवृत्त है, जहाँ प्रत्येक जीव - जन्तु श्री ब्रजराज तथा किशोरी की चरण रेणु कणिका से पूजित एवं धन्य है, अपने अलौकिक गुणों को प्रकाशित करने वाले उसी वृन्दावन का मैं स्मरण करता हूँ।

प्रातः स्मरामि युगकेलि रसाभिषिक्तं
वृन्दावनं सुरमणीयमुदार वृक्षम् ।
सौरी प्रवाह वृतमात्म गुण प्रकाशं
युग्मांध्रिरेणु कणिकांचित सर्व सत्वम् ॥

'श्रीकृष्ण स्तवराज' में श्रीवृन्दावन के स्वरूप का वर्णन करे हुए कहते हैं-

पार शून्य परधाम तमद्भुतं
चिद्घनं जयति लोक मूर्द्धनि ।
व्यापकं च परिखा सरिद्वश-
ऽचिन्त्य शक्ति नव मंगल ध्वनि ॥

जो सब शून्य अथवा पर व्योमों-महावैकुण्ठादि से परे है, अद्भुत है, चिद्घन व्यापक तथा सब लोकों में मूर्द्धन्य विराजमान है। जो चारों ओर से श्रीयमुना से घिरा हुआ है, जिसकी शक्ति अचिन्त्य है-जहाँ मङ्गल ध्वनि हो रही है-उस श्रीवृन्दावन की जय हो।

महावाणी में भी वृन्दावन में श्रीयमुना के पावन पुलिन का वर्णन हुआ है। युगल केलि विहार की उमङ्ग तरङ्गें गतिमान हैं, जो पारस्परिक सुख प्रदान कर रही हैं।

वहति विमल कलकेलि रूपिनी श्रीयमुना कमना चहुँ कोद।
अति रस रंग-तरंग उमंगन अंग अंगनि प्रति बढ़वनि मोद॥
(महावाणी 4/6)

श्रीललितकिशोरीदेवजी ने गोलोक से वृन्दावन की उत्कृष्टता दर्शायी है-

नित श्रीराधा-कृष्ण हैं नित्य सुविपिन विलास।
कोटि-कोटि गोलोक लौं एक पत्र परकास॥

सारस, हंस, चकोर, मोर पिक अपनी-अपनी मधुरी वाणी से कुञ्ज-निकुञ्जों में सरसता बरसाते रहते हैं। जहाँ छहों ऋतुएँ सर्वदा विद्यमान रहती हैं-वही वृन्दावन प्रिया-प्रियतम की केलि-विहार स्थली है।

श्रीश्रीवल्लभाचार्यजी श्रीवृन्दावन के प्रति गूढ़ निष्ठावान रहे हैं-

उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान्यथा।
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित्।
(निरोध लक्षण 3)

उद्धवजी के ब्रज में आने पर महान उत्सव प्रकट हुआ था, वैसे ही गोकुल तथा वृन्दावन में मेरा चित्त उत्साहित रहे।

'वल्लभ सम्प्रदाय' के महानुभावों की ब्रज में प्रगाढ़ निष्ठा रही है। श्रीश्रीनाथजी उनके सेव्य ठाकुर रहे हैं। वे उनकी सेवा से प्रसन्न रहे हैं। वे श्रीगिरिराजजी में विराजते। इन भक्तों, महानुभावों ने ब्रज का, वृन्दावन का, अत्यन्त सरस वर्णन किया है। भक्तप्रवर श्रीसूरदासजी एक पद में वृन्दावन की महत्ता का वर्णन करते हुए कह रहे हैं-

ब्रह्मादिक सनकादि महामुनि कलपत दोऊ कर जोर।
वृन्दावन के तृन न भये हम लगत चरण के छोर॥

श्रीकृष्ण की गोचारण भूमि, सखाओं सहित नाना क्रीड़ाएँ तथा मधुरातिमधुर रस-केलि विलास की एकान्तिक विहार स्थली है यह वृन्दावन।

श्रीपाद जीव गोस्वामी ने अप्रकट श्रीवृन्दावन को प्रकट श्रीवृन्दावन का लीलानुगत प्रकाश कहा है।

' श्रीवृन्दावनस्य अप्रकट लीलानुगत प्रकाश एव गोलोक इति।'
(श्रीकृष्ण सन्दर्भ)

श्रीसनातन गोस्वामी भौम ब्रज में ही नित्यधाम वृन्दावन का समावेश मानते हैं-इन दोनों में कोई अन्तर नहीं हैं, परन्तु श्रीपाद जीव गोस्वामी ने गोलोक तथा वृन्दावन को भिन्न कहकर वृन्दावन को गोलोक से श्रेष्ठ माना है।

श्रीपाद प्रबोधानन्द सरस्वती ने प्रकट वृन्दावन में बैठकर ही दिव्य तथा चिन्मय वृन्दावन की अनुभूति की। यद्यपि यह वृन्दावन तथा दिव्य वृन्दावन का

एक ही स्वरूप है, तथापि दृष्टि भेद से तथा भौतिक चक्षु गोचर न होने से यह भेद दर्शाया है। प्रकट वृन्दावन दिव्य वृन्दावन का दर्शन कराने वाला है-अतः प्रकट वृन्दावन को श्रेष्ठ कहा है।

अनन्तैश्चिज्ज्योत्स्ना रस जलधिपूरैस्तत इतो
वहद्भिर्गोलोकावधि सकल संप्लावन करम्।
अहो सर्वस्यो पर्यति विमल विस्तीर्ण मधुर-
स्फुरच्चन्द्र प्रायं स्फुरतिमय वृन्दावनमिदम्॥

(वृन्दावन श० 4/83)

वृन्दावन की छवि प्रतिक्षण नवीन है। जहाँ माधुर्य की तरङ्गें उच्छलित हो रही हों, प्रेम की सरणी प्रवाहित हो रही हो, प्रिया-प्रियतम का प्रेम उछल-उछल पड़ रहा हो-बस उसी को वृन्दावन कहना होगा- वह वृन्दावन ही है। प्रेम का सहज स्वरूप वृन्दावन है।

यहाँ की भूमि चिन्मयी है। मोती के चूर्ण-सी रज चमक रही है। दिव्य निकुञ्जें हैं। उनमें रसमय पराग बिखर रहा है। 'काम और रति' कर में सोहनि लिये पराग को एकत्रित कर यथा स्थान रख शोभा को और-और बढ़ा रहे हैं। वहीं प्रिया-प्रियतम का रसमय विहार गतिमान है। श्री ध्रुवदास जी कहते हैं- 'नायक तहाँ न नायिका, रस करवावत केलि।' रस केलि ही प्रिया-प्रियतम को विवश कर रही है। यह वृन्दावन वही नित्य वृन्दावन है, जहाँ युगल की रसमय केलि नित्य एवं प्रतिक्षण गतिमान है।

कामदेव और रति प्रिया-प्रियतम की चरण रज की आकांक्षा वश कुञ्ज-निकुञ्जों में विलुण्ठित रहते हैं-

अति कमनीय विराजत मन्दिर नवल निकुञ्ज।
सेवत सगन प्रीति जुत दिन मीन ध्वज पुञ्ज॥

(हित चौरासी 57)

प्रेम दीवानी मीराजी भी वृन्दावन का आकर्षण न छोड़ सकीं। यद्यपि वे अधिकांश द्वारिका में रहीं तथापि वृन्दावन के सात्विक सरस तथा लीला पूर्ण वातावरण में आप्लावित होकर गा उठीं-

माई म्हाने लागे वृन्दावन नीको।

इधर वृन्दावन रस विभव से सम्पन्न होती भक्तिमती ऊषा बहन जी की रस लालसा पुनः पुनः इसी मधुर रस में सराबोर होती है और वे गा उठती हैं :

वृन्दावन के नाम सों, पुलकि उठत सब अंग।
जिहि थल श्यामा-श्याम नित करत रहत रस रंग॥

वृन्दावन को आसरो वृन्दावन की आस ।
छिन भरको छूटै नहीं, वृन्दावन को वास ॥

अतः वृन्दावन के प्रति सभी आचार्यों, रसिकों तथा भक्तों ने प्रिया-प्रियतम के एकान्तिक प्रेम का सरस अनुभव कर पदों में, श्लोकों में गाकर यत्किञ्चित कहने का प्रयास किया है । वही सब साधक वर्ग के मार्ग-दर्शन हेतु परमावश्यक है ।

नागरिया जो पै श्रीराधे जू प्रकट न होतीं तो,
स्याम पर काम ही के बिपती कहावते ।
छाय जाती जड़ता बिलाय जाते कवि सब
जरि जातौ रस तो रसिक कहा गावते ॥

नामकरण

श्रीवृन्दावन, वृन्दा-कानन अथवा श्रीवन यथा नाम तथा गुण-स्वरूप का परिचायक है । इस विषय में अनेक सरस इतिहास प्रसिद्ध हैं ।

एकबार श्रीनारदजी ने नारायण भगवान से श्रीवृन्दावन नाम से युक्त इतिहास जानने की जिज्ञासा प्रकट की । भगवान नारायण ने श्रीनारदजी से जैसा कहा है उसी को हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

श्रीनारायण भगवान ने कहा, "सतयुग में राजा केदार सातों द्वीपों के अधिपति थे, वे परम धार्मिक थे । उनकी कन्या का नाम वृन्दा था, जो श्रीलक्ष्मीजी के अंश से ही थीं । वे योगिनी थीं । उन्होंने वैवाहिक जीवन के प्रति अनास्था दर्शायी तथा श्रीदुर्वासा मुनि से श्रीहरि मन्त्र प्राप्त कर साठ हजार वर्षों तक घोर तपस्या की । भगवान श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये । अनन्त सौन्दर्य का प्रसार करते हुए प्रकट हो गये । कोटि-कोटि कामदेवों को लजाती वय श्री, कुटिल अलकावलि, बङ्क विलोकन, मृदु-मुस्कान और भी न जाने क्या क्या ? सभी से वृन्दा विमोहित हो गईं । प्रणय भार में भर उनके नयन नत हो गये । सकुचाती, लजाती-सी वृन्दा बोली, "मुझे आप अपने चरणों की दासी रूप में स्वीकार करें ।" श्रीकृष्ण मुस्करा दिये और वृन्दा को साथ ले गोलोक के लिये प्रस्थान किया । वहाँ वे श्रीराधा के समान ही सौभाग्यशालिनी गोपिका हुईं ।

दूसरा पुण्यदायक इतिहास है कि 'राजा कुशध्वज की दो कन्याएँ थीं । दोनों ही धर्मशास्त्र-ज्ञान में निपुण थीं । उनके नाम थे तुलसी और वेदवती । वे सांसारिक वृत्ति से उपराम थीं । वेदवती ने तपस्या करके परम पुरुष नारायण

को प्राप्त किया। वही राजा जनक की कन्या सीताजी के नाम से भी विख्यात हैं। तुलसी ने तपस्या करके श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने की इच्छा की, परन्तु दैववश दुर्वासा ऋषि के शाप से शंखचूड़ को प्राप्त हुईं। भगवान श्रीकृष्ण यह सब कैसे सहन कर सकते थे। उनके लिए जो प्रयत्न करते हैं-उन्हें वे ही स्वीकारते हैं। वही हुआ, भगवान श्रीशालिग्राम बने तथा तुलसी, वृक्ष के रूप में प्रकट होकर उनकी सन्निधि में रहने लगीं।

शालिग्राम जी की अनन्या प्रिया होने के कारण ही यह पावन तथा शाश्वत सम्बन्ध बना है। **'बिन तुलसी हरि एक न मानी।'**

तीसरा तथा सबसे उत्कृष्ट हेतु है कि श्रीराधा के प्रथम सोलह नामों में एक नाम 'वृन्दा' भी है, जो श्रुतियों में सुना गया है। उन्हीं वृन्दा नाम धारिणी श्रीराधा का यह क्रीड़ा कानन है, अति रमणीय है। तुलसी की भीनी गन्ध चारों ओर व्याप्त है। इसी से यह स्थली 'वृन्दावन' नाम से विख्यात है। सर्वप्रथम श्रीराधा की प्रीति हेतु ही श्रीकृष्ण ने गोलोक में श्री वृन्दावन का निर्माण किया था। भूतल पर उनकी प्रसन्नता तथा क्रीड़ा हेतु प्रकट हुआ यह वन उसी प्राचीन नाम के कारण ही वृन्दावन कहलाया।

अस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेन वृन्दावनी स्मृता।
वृन्दावनस्याधि देवी तेनेवायं प्रकीर्तिता॥

(ब्र० वै० पु०)

जहाँ श्रीकृष्ण भक्ति के द्वारा ही जीवन है, जहाँ लोग श्रीकृष्ण की स्मृति में, लीलाओं में निमग्न रहते हैं, पशु-पक्षी भी उन्हीं श्रीकृष्ण की वंशी का मधुर निनाद सुन विस्फारित नेत्रों से एक टक देखते खड़े रह जाते हैं, यावत प्रकृति किसी सरस उन्माद में भर चैतन्य हुई मुखरित हो जाती है-सभी कुछ उन्हीं प्रिया-प्रियतम को रिझाने के लिए है, उन्हीं युगल की रस लहरियों से सिक्त है, स्पृष्ट है, सिञ्चित है तथा आप्लावित है-हाँ..........हाँ, वही-वही..........वही वृन्दावन है।

स्वरूप वर्णन

सहस्रदल पद्मस्य वृन्दारण्यं वराटकम्।
यस्य स्मरण मात्रेण पृथ्वी धन्या जगत्त्रये॥

(पद्म पुराण)

सहस्र दल कमल का मध्य कोष श्रीवृन्दावन है। उसके स्पर्श मात्र से पृथ्वी तीनों लोकों में धन्या हुई है।

समस्त लोकों से ऊपर गोलोक धाम है-वही श्रीवृन्दावन नाम से विख्यात है । प्रेम की दिव्य क्रीड़ा यहाँ गतिमान है । यहाँ के पशु-पक्षी, यहाँ के वृक्ष - वल्लरियाँ यावत् प्रकृति चेतन हैं, मुखरित हैं-यही नहीं श्रीकृष्ण के निज लीला परिकर हैं । वृन्दा देवी यहाँ की अधिष्ठात्री देवी हैं तथा प्रिया-प्रियतम की केलि में सहज सहायक हैं ।

छहों ऋतुएँ, त्रिविध समीरण, प्रिया-प्रियतम की इच्छा का अनुसरण करती अपना प्रसारण करती रहती हैं ।

कैसी है, वृन्दावन की शोभा-

देख सखी शोभा श्री वन की !
कुंज कुंज प्रति सघन श्यामता
सुषमा वृक्ष लतन की ॥
पवन झकोरें, जमुन हिलोरें
झूम झुकनि तरु वन की ॥
हरित भूमि कलरव पंछिन्ह को
क्रीड़ा दामिनी घन की ॥
यमुना पुलिन ललित बन बीथिन्ह
पुष्पित कुंज सदन की ।
केलि विलास सुहास सुपूरित,
गौर सुनील वदन की ॥
प्रणय वीचि सी सहज तरंगित
मञ्जुल छवि सखियन की
पाई लाड़िले युगल विजन की,
मृदुता हिय उमगन की ॥
देख सखी शोभा श्रीवन की ... ।

(भक्तिमती ऊषा बहिनजी)

श्रीयमुना का सुन्दर पुलिन, चमकीली बालुका, सघन कुञ्ज-निकुञ्जें, विभिन्न पुष्पों की भीनी सौरभ से सौरभान्वित समीर तथा वृक्ष-वल्लरियों की उन्मत्त झूम-सभी वृन्दावन ही तो है । प्रिया-प्रियतम अपनी अनन्या सखियों सहित यहाँ क्रीड़ा करते हैं । औचित्य देख पक्षी भी अपनी मीठी बोली से वातावरण में सरसता भर देते हैं । प्रेम ही साकार हो पुञ्जीभूत सौन्दर्य में समा जाता है । सभी कुछ उन्हीं प्रेमी युगल की सेवा में संलग्न रहता है ।

'गोष्ठ वृन्दावन', गोपियों का क्रीड़ा-स्थल 'वृन्दावन', श्रीराधा का 'निकुञ्ज वृन्दावन' अलग-अलग नाम भर हैं, उसी नित्य वृन्दावन की छाया प्रति छाया से।

प्रत्येक निकुञ्ज मन्दिर किसी नवल रस योजना का उपक्रम संजोये है, कौन जाने कब प्रिया-प्रियतम उसे अपने स्पर्श से पुलकित कर दें। 'तत्सुखे सुखित्वं' भावापन्न सखियाँ निरन्तर श्रीकृष्ण अनुरागिनी यत्र-तत्र विचरती हैं।

यह वैकुण्ठ सार है, प्रकाशमय है। यहाँ नित्य सिद्ध ही वास करते हैं। नित्य लीला सदा गतिमान रहती हैं। मंदार, मौलश्री आदि के वृक्षों से भरा, कदम्ब पुष्पों की सौरभ से, उन्मद रस से ओत-प्रोत है, यह नित्य धाम श्रीवृन्दावन।

महिमा

श्रीवृन्दावन भगवान का निज धाम है, निज गृह है। इस सम्बन्ध में पुराणों में एक मधुर घटना का प्रकाश हुआ है, इसे हम यहाँ उद्धृत कर रहे हैं -

एक बार वीणा बजाते हरि गुण गाते श्रीनारदजी तीर्थराज प्रयागराज के पास पहुँचे। तीर्थराज ने उनका स्वागत सत्कार किया और अपने तीर्थ राज होने की सारी घटना कह सुनाई। श्री नारद जी ने पूछा, "क्या श्रीवृन्दावन भी सभी अन्य तीर्थों की भाँति उन्हें कर देने आते हैं।" तीर्थराज ने नकारात्मक उत्तर दिया। नारदजी ने पूछा, "भैया ! तुम फिर कैसे तीर्थराज हुए ?" बात तीर्थराज को लग गई। वे भगवान के पास पहुँचे।

तीर्थराज को आया देख अपने मणिमय सिंहासन पर विराजमान भगवान उठकर खड़े हो गये और प्रयागराज के आने का कारण पूछा, तीर्थराज ने समस्त वृत्तान्त कह सुनाया और निवेदन किया, "प्रभो ! आपने मुझे तीर्थराज तो बनाया है, परन्तु वृन्दावन तीर्थ तो मुझे कर देने आते नहीं। इसका कारण क्या है, मैं समझ नहीं सका। यदि कोई भी एक तीर्थ मेरी अधीनता स्वीकार न करता हो तो मेरा तीर्थराज होना सर्वथा अनुचित है।"

प्रयागराज की बात सुनकर भगवान मौन हो गये। उनके नेत्रों से अश्रुबिन्दु छलक पड़े। उन्हें ब्रज की स्मृति हो आई। अपनी प्राण-प्रिया किशोरी श्रीराधा, गोपाङ्गनाऐं, उनके साथ मची रार-तकरार, रसमय केलि, सखाओं के सहित विनोद वार्ता; ओह ! शनैः शनैः एक-एक कर अनेक चित्र उनके नेत्रों के आगे आ गये। वे इन सबसे अभिभूत हो गये। किञ्चित् स्वस्थ हो कहने लगे, तीर्थराज ! मैंने तुम्हें तीर्थों का राजा बनाया है, अपने निज गृह वृन्दावन का नहीं। श्रीवृन्दावन धाम तो मेरा अपना घर है। घर ही नहीं मेरी प्रिया, प्राण-प्रिया श्री राधारानी की परम प्रिय विहार- स्थली है। वहाँ की अधिपति तो वे

ही हैं। मैं भी सदा वहीं निवास करता हूँ। अतः वह धाम इस सबसे मुक्त है।

यही नहीं पद्म पुराण में श्रीश्रीमद्भागवत माहात्म्य में श्रीनारदजी ने भक्ति को श्रीवृन्दावन का माहात्म्य समझाते हुए कहा है-

वृन्दावनस्य संयोगात्पुनस्त्वं तरुणी नवा।
धन्यं वृन्दावनं तेन भक्तिर्नृत्यति यत्र च॥

(श्रीमद्भागवत माहात्म्य 1/61)

वृन्दावन के संयोग से तुम फिर नवीन तरुणी हो गई हो। अतः यह वृन्दावन धाम धन्य है, जहाँ भक्ति सर्वत्र नृत्य कर रही है।

वृन्दावन के विषय में अपने अपने भावोद्गार प्रकट कर सभी ने अनंत अनंत अभिव्यक्तियाँ की हैं। इसी सम्बन्ध में भक्तिमती ऊषा बहन जी कहती हैं-

मम प्रियतम के पद पंकज की सुरभित रज से,
प्रतिक्षण पावन-जय वृन्दावन।
मम प्रियतम के मधुरानन से है प्रतिबिम्बित तेरा आनन
जय वृन्दावन।
मम प्रियतम की मधु मुरली से, गुंजित तेरा वन वन उपवन।
जय वृन्दावन।
मम प्रियतम की मधु चितवन से विकसित तेरेतरुपात सुमन।
जय वृन्दावन।
मम प्रियतम की प्रिय रवि तनया करतीं शोभित तेरा आंगन।
जय वृन्दावन।

कैसा है यह रसमय वृन्दावन-

वृन्दावनं द्वादशकं वृन्दया परिरक्षितम्।
मम चैव प्रियं भूमे सर्वपातक नाशनम्॥
तत्राहं क्रीड़यिष्यामि गोपी गोपालकैः सह।
सुरम्यं सुप्रतीतंच देव दानव दुर्लभम्॥

(आ० वा० पु०)

हे पृथ्वी! वृन्दा देवी द्वारा परिरक्षित यह द्वादश वन, वृन्दावन सर्व पातक नाशक है तथा निश्चित रूप से मेरा प्रिय है। मैं गोप-गोपिकाओं सहित यहाँ लीला करता हूँ। यह अत्यन्त मनोरम है, देवताओं तथा दानव दोनों ही के लिए दुर्लभ है।

वृन्दावन शतक के रचयिता श्रीप्रबोधानन्दजी ने प्रिया-प्रियतम की रसमय केलि में श्रीवृन्दावन को सहायक माना है। यहाँ तक कि प्रिया-प्रियतम की

इच्छा जान उसी अनुरूप उनके लिए भावोद्दीपन का सरसीला वातावरण उपस्थित कर युगल को रस प्रेरित करने में भी श्रीवृन्दावन अति चतुर है ।

अहो पतितमुत्तरोत्तर विवर्धमानभ्रमौ,
महारस महोज्ज्वल प्रणयवाहिनी स्रोतसि ।
किशोर मिथुनं मिथोऽवश विचित्र कामेहितं,
करोत्यहह विस्मय स्थगितमेव वृन्दावनम् ।

(वृ० श० 2/88)

वृन्दावन नामक वन में अनेक बहुत हरे-भरे वन हैं । यहाँ बड़ा ही पवित्र पर्वत है, उस पर हरी-भरी लता वनस्पतियाँ हैं । हमारे पशुओं के लिए तो यह बहुत ही हितकारी है । गौ, गोप तथा गोपियों के लिए केवल सुविधा का ही नहीं बल्कि सेवन करने योग्य है ।

एक गोपी दूसरी गोपी को सम्बोधित करती हुई कह रही है-

वृन्दावनं सखि भुवोवितनोति कीर्तिं,
यद्देवकीसुत पदाम्बुज लब्ध लक्ष्मि ।
गोविन्दवेणुमनु मत्तमयूरनृत्यं,
प्रेक्ष्याद्रिसान्वपरतान्यसमस्तसत्वम् ॥

(भा० 10/21/10)

अरी सखी ! यह वृन्दावन वैकुण्ठ लोक तक पृथ्वी की कीर्ति का विस्तार कर रहा है । क्योंकि यशोदानन्दन श्रीकृष्ण के चरण कमल चिन्हों से चिन्हित हो रहा है । सखी ! जब श्रीकृष्ण अपनी मुनिजनमोहिनी मुरली बजाते हैं, तो मयूर उनकी ताल पर नृत्य करने लगते हैं । पर्वत शिखरों पर विचरण करने वाले पशु-पक्षी भी शान्त हो जाते हैं ।

किशोरी श्रीराधा की सेवा में तो यह पुष्प लताऐं आती ही हैं, वे स्वयं इन्हें अपने स्पर्श से पोषित करती हैं, इनकी सेवा करती हैं । श्रीवृन्दावन की प्रत्येक स्थली श्रीराधा चरण चिन्हों से स्पृष्ट है, चिन्हित है । इन निकुञ्जों में वृक्षों पर चहचहाते विहग, इसी वृन्दावन की शोभा बढ़ा रहे हैं । ऐसे वृन्दावन में किसका मन रमण करने को आतुर न होगा-

राधाकरावचित पल्लव वल्लरीके,
राधापदांक विलसन्मधुरस्थलीके ।
राधा यशो मुखरमत्तखगावलीके,
राधा विहारविपिने रमतां मनो मे ॥

(रा० सु० नि० 13)

अहो वेगवती महा-उज्ज्वल रस-सरिता के स्रोत में उत्तरोत्तर रस गाम्भीर्य में डूबते-उतरते युगल किशोर रस विवश होकर विचित्र रस चेष्टाओं में निमग्न हैं। अहा........श्रीवृन्दावन उन्हें विमुग्ध ही तो कर रहा है।

प्रिया-प्रियतम भी इसी श्रीवृन्दावन के आभारी हैं, एक जगह अपने प्रेम की उत्तरोत्तर वृद्धि रसखान वृन्दावन ही के कारण है, ऐसा कह रहे हैं-

श्रीराधाया मम च यदहो केलि चातुर्यधारा ।
यच्चात्युच्चैर्निरवधि वरो वृद्धचते कामतृष्णा ॥
गाढ़ं गाढ़ं यदति वलते कोऽपि नौ प्रेमबन्धः ।
सर्व वृन्दावन रसखनैः भक्ति विस्फूर्जितं ते ॥

(बृ० म० 11/30)

अहो मेरी और श्रीराधा की जो केलि चातुर्य धारा है, एवं हम दोनों की एक-दूसरे के लिए अत्युच्च रस ललक निरवधि बढ़ती रहती है तथा हम दोनों के प्रेम बन्धन में जो प्रगाढ़ता होती रहती है, हे रसखान वृन्दावन ! यह सब तुम्हारी शक्ति का ही योगदान है।

वृन्दावन तथा वृन्दावन बिहारी के प्रति प्रीति कर साधक की भावना सीमित नहीं रहती। प्रत्युत श्रीकृष्ण कृपा से परिपुष्ट हो उसकी वृत्ति व्यापक रूप धारण कर लेती है, सभी के लिए समभाव हो जाता है, फिर घर वालों का मोह विशेष भी, बन्धन का कारण नहीं रहता। ऐसे ही साधक को समझाते हुए श्रीरूप गोस्वामी पाद कह रहे हैं -

स्मेरां भङ्गित्रय परिचितां साचिविस्तीर्ण दृष्टिं
वंशीन्यस्ताधर किसलयामुज्ज्वलां चन्द्रकेन ।
गोविन्दाख्यां हरितनुमितः केशितीर्थोपकण्ठे ।
मा प्रेक्षिष्टास्तव यदि सखे वन्धुसङ्गेऽस्ति रङ्गः ॥

(भक्ति रसामृत सिन्धु)

हे सखे ! यदि अपने सम्बन्धियों के सङ्ग की किञ्चित् भी इच्छा होती हो तो केशी तीर्थ के समीप किञ्चित् हास्य युक्त त्रिभङ्ग मुद्रा में, बंक विलोकन, वंशी द्वारा शोभायमान, मयूर पिच्छधारी गोविन्द नाम से विख्यात श्रीकृष्ण का दर्शन कभी न करना।

यह वृन्दावन ही यदि कृपा कर दे तो हम मुक्ति का भी तिरस्कार कर सकते हैं; वैकुण्ठ के सुखों की तो बात ही क्या है ? इतना ही नहीं असीम माधुर्य रस (गोपी प्रेम) की भी प्राप्ति कर सकते हैं।

शोभा

वनं वृन्दावनं नाम पशव्यं नव काननम् ।
गोप गोपी गवां सेव्यं पुण्याद्रि तृणवीरुधम् ॥

(श्रीमद्भागवत 10/11/28)

अहो नित्य नवीन प्रेममयी, चञ्चल भ्रू कटाक्षों से ब्रज मणिलाल को मोहित करती कोटि-कोटि विद्युल्लताओं के समान दीप्तिमान कोई एक रमणी वृन्द की शिरोमणि श्रीवृन्दावन के निकुञ्ज प्रदेश में प्रकट हो रही हैं -

कृष्णचन्द्र दृक् चकोर पेय वक्त्र चन्द्रिका
राधिकानुराग मूर्तिरुन्मद स्मराधिका ।
दिव्यहेम चम्पकालि कम्पकालि मण्डली
चित्र-चित्र कान्तिरन्तराधि शान्तिरस्तु मे ॥

(वृ० म० 13/74)

श्रीकृष्ण के नयन चकोर जिसके मुखचन्द्र की चन्द्रिका का पान करते हैं, अनुराग की जो प्रकट मूर्ति हैं, एवं अतिशय रस से उन्मत्त हैं, जिनकी सखियाँ भी दिव्य हेम वर्ण चम्पकली के समान प्रतिभासित होती हैं, जिससे भ्रमर समूह उनके पीछे-पीछे उड़ता रहता है, इस प्रकार चित्र-विचित्र कान्तिधारिणी श्रीराधा शोभित हो रही हैं ।

संयोगावेशतोऽन्तर्निजदयिततमां सन्निवेश्यातिहर्षोत्,
कर्षोत्फुल्लखिलांगो विविधवरशुभैर्गुम्फिता मन्दकेशः।
काश्मीरालेप पत्रावलि वर तिलकादिन्य पूर्वानि कृत्वा,
देशे-देशे विमृग्यन् हरिरवतु वनस्यालि पुंजे निकुंजे ॥

(वृ० म० 15/70)

प्रणय मिलन के आवेश में अपनी प्रियतमा श्रीराधा को अन्दर ले जाकर अनेक प्रकार के श्रेष्ठ मङ्गलकारी चिन्हों को पुलकित करके सुन्दर केश विन्यास करते हुए सखियों ने कुंकुम लेपन, पत्रावली की अपूर्व भाव से रचना की । श्रीवृन्दावन में जहाँ-तहाँ सखियों से शोभित निकुञ्जों में उन (श्रीराधा) की खोज करने वाले श्रीहरि हमारी रक्षा करें ।

श्रीराधा सुधानिधि के रचयिता निकुञ्ज भावना के प्रवर्तक निकुञ्ज लीला में ही जिनका मुख्यतया मन रमण करता रहा, अपने एक श्लोक में कह रहे हैं-

किं वा नस्तैः सुशास्त्रैः किमथ त दुदितैर्वर्त्मभिः सद्गृहीते
यत्रास्ति प्रेम-मूर्तेर्नहि महिमसुधा नापि भावस्तदीयः ।
किं वा वैकुण्ठ लक्ष्याप्यहह परमया यत्र मे नाऽस्ति राधा
किंत्वाशाप्यस्तु वृन्दावनभुवि मधुरा कोटि जन्मान्तरेऽपि ॥

(रा० सु० नि० 216)

हमें उन सुशास्त्रों से अथवा उनके द्वारा प्रवर्तित तथा सज्जनों द्वारा गृहीत, उन मार्गों से क्या प्रयोजन; जिसमें न तो प्रेममूर्ति श्रीराधा की महिमा सुधा है और न उनका भाव है। इसी प्रकार उस परम वैकुण्ठ की लक्ष्मी को भी लेकर हम क्या करेंगे, जहाँ हमारी श्रीराधा नहीं है, हम तो यह चाहते हैं कि कोटि-कोटि जन्मान्तरों में भी हमारी मधुर आशा श्रीवृन्दावन भूमि पर ही लगी रहे। (जहाँ यह सुलभ है)।

अहा ... यह सुरमणीय वृन्दावन प्रिया-प्रियतम का विहार-स्थल, श्रीयमुना से अर्ध चन्द्राकार आवृत्त यह सरस स्थल, यहाँ की सघन निकुञ्जें, उनमें केलि विहार, उसमें हो रही रार-तकरार, ब्रज-बालाओं की प्रतिक्षण वर्धित उमंगें-ओह ! सभी कुछ दिव्य है, आनन्द में ओत-प्रोत है। आइये हम भी यहीं की लीला स्थलियों में उसी रस का आस्वादन कर खो जाएँ, उसी रस कणिका को ले विभोर हो जाएँ, कृत-कृत्य हो जाएँ। वह रस इन लीला स्थलियों में, रज कणिकाओं में वृक्ष-वल्लरियों में यावत प्रकृति में ही बिखरा हुआ है-परिव्याप्त है।

लीला स्थलियाँ

श्रीयमुनाजी

श्रीकृष्ण स्वरूपिणी, उन्हीं की केलि में सहायिका श्रीयमुना महारानी लीला में सदेह बिराजती हैं। अपने सुरम्य तट पर रमणीय निकुञ्जों का सृजन कर प्रियतम की हर केलि में योग देती हैं। जल भरने के लिए आई सखी वृन्द की भीर, उधर पास की सघन वीथिका से नन्दनन्दन का आगमन, तटवर्ती निकुञ्जों में गमन, घट भरने को झुकी किसी बाला का वंशी रव सुन चकित-विस्मित सा हो जाना, कभी दूर से ही छेड़-छाड़ भरी वार्ता में मग्न, तटवर्ती किसी शिला पर प्रियतम का आ बैठना, कभी वे जल में चरण लटकाये हाथ से जल उलीचते हैं, कभी वंशी से जल को उछालते हैं। हाँ-हाँ सखी ! यह कालिन्दी ही तो उस समय साक्षी रहती हैं, प्राणधन नन्दनन्दन के लीला कौतुकों की। वहाँ घट रीते होते हैं या भर जाते हैं- कहना कठिन है।

दिव्य मणिमय घाटों से सुसज्जित, पुष्प गुच्छों से मण्डित, यही नहीं एक सबसे बड़ा आश्चर्य है, प्रवाहित जल में कभी कमल नहीं देखे गये, परन्तु प्रियतम की लीला परिकर इन श्रीयमुना में कमलों के अनेक वन हैं, जहाँ प्रिया-प्रियतम अपनी सखियों सहित, अपनी प्राणाराध्या श्रीराधा को ले अवगाहन करते हैं, जल-केलि करते हैं, नौका विहार करते हैं, वास्तव में प्रियतम का सर्वांग सुख प्राप्तकर श्रीयमुनाजी परम धन्या हो गई हैं।

सखी ! यह कृष्ण वर्णा हैं न ! लगता है, जब प्रियतम कृष्णावगाहन (श्रीयमुनाजी का एक नाम कृष्णा भी है) हेतु पधारते हैं तो उन्हीं के वर्ण का यह अपहरण कर लेती हैं, या किसी एकान्तिक रस विलास में प्रियतम का सामीप्य पा यह कृष्ण वर्णा हो गई हैं । यह चतुरा हैं न ! प्रियतम से पुरस्कार पाने की लालसा में इस प्रेम सरिणी ने प्रिया जी को छकाने के लिए ही कौतुकवश प्रियतम को छिपा उन्हीं के वर्ण में अपना वर्ण मिला लिया है । श्रीकृष्ण प्रिया हैं न यह ! 'श्याम वर्ण होना कोई अस्वाभाविक नहीं हैं । एक समय सदा की भाँति गोपिकाएँ श्रीयमुना स्नान हेतु पधारीं । श्रीकृष्ण पहले से ही यहाँ विराजमान थे । खेल-खेल में श्रीकृष्ण जल में छिप गये । किशोरी श्रीराधा सहित सभी सखियाँ खोजने लगीं । श्रीयमुना महारानी ने श्रीकृष्ण वर्ण में अपना वर्ण परिवर्तित कर उन्हें छिपा लिया । प्रियतम श्यामसुन्दर को बहुत खोजने पर भी सखियाँ ढूँढ़ न सकीं- अन्त में श्यामसुन्दर स्वयं ही प्रकट हुए, तो सखियाँ प्रसन्न हो गईं । प्रियतम ने पुरस्कार स्वरूप अपना वर्ण सदा-सदा के लिए श्रीयमुना महारानी को प्रदान कर दिया, ऐसा लगता है ।' नहीं, नहीं, यह तो प्रिया-प्रियतम का महोज्ज्वल प्रेम ही, द्रवित हो सुधा सलिल बनकर प्रवहमान है अथवा युगल के रसीले गात में लगी चित्र-विचित्र कुंकुम, कस्तूरी विलेपन से धन्या यह कृष्णासक्तिनी श्रीयमुना हमारे जन्म-जन्मान्तर के मोह का भञ्जन कर प्रिया-प्रियतम का प्रेम प्रदान कर रही हैं ।

ब्रजेन्द्र सूनु राधिका हृदि प्रपूर्यमाणयो-
र्महा रसाब्धि पूरयोरिवारि तीब्र वेगतः ।
वहिः समुच्छ्वलन्नव प्रवाह रूपिणीमहं
भजे कलिन्दनन्दिनीं दुरन्त मोह भञ्जनीम् ॥

कलिन्द-नन्दिनी का यह प्रवाह क्या है ? मानो ब्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण और श्रीवृषभानु नन्दिनी श्रीराधिका का महारस (प्रेम) पूर्ण, महासागर रूप हृदय ही बाहर उछल-उछल नवीन प्रवाह रूप ले अति तीव्र वेग से बह चला है । अहो मैं रस प्रवाह रूपिणी कलिन्द नन्दिनी का भजन करता हूँ, जो सभी के कठिन मोह का भञ्जन करने वाली हैं ।

अपने जनों को प्रिया-प्रियतम का प्रेम प्रदान कराने वाली हैं श्रीयमुना जी, अतः वैष्णव मात्र की वन्दनीया हैं ।

कालीदह

तच्चित्र ताण्डव विरुग्ण फणातपत्रो
रक्तं मुखैरुरु वमन् नृप भग्नगात्रः ।

स्मृत्वा चराचरगुरुं पुरुषं पुराणं
नारायणं तमरणं मनसा जगाम ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/16/30)

भगवान श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं । ब्रज में जहाँ उनकी माधुरी यत्र-तत्र शोभायमान है, वहीं दूसरी ओर उनके ऐश्वर्य की पताका भी उन्मुक्त रूप से फहरा रही है । अनेक दैत्यों का वध करने में उनका मुख्य हेतु ब्रजवासियों का, अपने निज जनों का हित करना ही है । ब्रजवासी कई बार कहते हैं, 'उनके परम हितैषी सखा, वात्सल्य, सख्य तथा मधुर रस के आलम्बन श्रीकृष्ण में कभी-कभी नारायण का आवेश हो जाया करता है ।'

श्रीयमुनाजी में एक कुण्ड था । उसमें अत्यन्त विषैला नाग रहता था । उसके विष के ताप से यमुना का जल सदा खौलता रहता था । यदि कोई पशु-पक्षी भी इस विषैली हवा का स्पर्श पा जाता तो मर जाया करता था । पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने देखा कि 'मेरी रमण स्थली को यह दुष्ट दूषित कर रहा है ।'

गेंद खेलने के बहाने वे वहाँ आ पहुँचे । अपने सखाओं की गेंद लेने के मिस वे उस कुण्ड में कूद गये और अपने दोनों हाथों से जल को उछालने लगे । इस पर कालिय नाग अत्यन्त क्रोधित हो गया । अपने सामने ही उसने एक साँवले सलोने बालक को खड़ा देखा । वर्षाकालीन मेघ के समान अत्यन्त सुकुमार बालक की ओर देखता रह गया । उस बालक के वक्षस्थल पर सुनहरी रेखा थी । पीताम्बर धारण किये हुए वह बालक मन्द-मन्द हास द्वारा मोहित कर रहा था । जिस मधुर मुस्कान ने भक्तों का चित्त मोह लिया था, इन ब्रज बावरियों को बिना मोल की चेरी बना लिया, उसी मन्द मधुर मुस्कान को देख वह विषैला सर्प और भी क्रोधित हो गया तथा विचार करने लगा कि यह बालक निर्भीकता से यहाँ कैसे खड़ा है ? क्रोध में भर उस विषैले सर्प ने अपने शरीर से श्रीकृष्ण को बाँध लिया । वे किञ्चित् निश्चेष्ट से हो गये । यह सब, सखाओं तथा ब्रजवासियों को अत्यन्त कष्टदायक लगा ।

अपने सखाओं, श्रीनन्द-यशोदाजी तथा अपनी प्राण-प्रिया इन गोपिकाओं की कातर दशा श्रीकृष्ण से अधिक देर सहन न हुई । वे क्षण भर तो ऐसे ही बँधे रहे, फिर अपना शरीर फुलाया, जिससे उस विषैले सर्प के अङ्ग-अङ्ग ढीले पड़ गये । विष उगलते हुए वह सर्प निश्चेष्ट सा होने लगा । भगवान को छोड़ वह एक ओर खड़ा हो गया तथा दूर से ही आक्रमण करने लगा ।

कुछ देर तो श्रीकृष्ण उस सर्प के साथ खेलते रहे फिर अवसर पा उसके

---

1. भगवान के अद्भुत ताण्डव नृत्य से कालिय के फण रूप छत्ते छिन्न-भिन्न हो गये । उसका एक-एक अंग चूर-चूर हो गया तथा मुख से खून की उल्टी होने लगी । अब उसे जगत के आदि शिक्षक, पुराण पुरुष भगवान की स्मृति हुई । वह मन ही मन भगवान की शरण में गया ।

फणों पर सवार हो गये और नृत्य करने लगे। ब्रजवासियों के मानो प्राण ही लौट आये, वे आनन्द मग्न हो गये। श्रीकृष्ण की नृत्य करने की इच्छा देखकर देवता तथा गन्धर्वादि मृदङ्ग तथा नगाड़े, ढोल आदि बजाने लगे। श्रीकृष्ण के चरणों की चोट सह सकने में असमर्थ कालिय नाग के फणों से रक्त बहने लगा। श्रीकृष्ण के चरणों पर लगी रक्त की बूँदें देखकर लगता था जैसे लाल फूलों से किसी ने अभिषेक ही कर दिया है-

अपने पति की ऐसी दुर्दशा देख, नाग पत्नियों को बहुत कष्ट हुआ और वे श्रीकृष्ण की शरण में आईं तथा स्तुति करने लगीं-

'स्वामी ! यह नागराज तमोगुणी योनि में उत्पन्न हुआ है और अत्यन्त क्रोधी है, फिर भी इसे आपकी परम-पवित्र चरण रज प्राप्त हुई है, जो दूसरों के लिए सर्वथा दुर्लभ है तथा जिसको प्राप्त करने की इच्छा मात्र से ही संसार चक्र में पड़े हुए जीव को संसार के वैभव सम्पत्ति की तो बात ही क्या-मोक्ष की भी प्राप्ति हो जाती है।"[1]

इस स्थली पर कालिय नाग का उद्धार हुआ था। तभी से यह स्थली कालीदह नाम से विख्यात है।

यहाँ पर एक प्राचीन कदम्ब वृक्ष है जो आज भी 'केलि कदम्ब' नाम से विभूषित हुआ स्थली की शोभा बढ़ा रहा है। कुछ लोगों की मान्यता है कि यह वृक्ष निश्चय ही श्रीकृष्ण के समय से शाखा-प्रशाखा चला आ रहा है।

श्रीगरुड़ जिस समय अमृत कलश ले जा रहे थे तो इसी वृक्ष पर बैठकर विश्राम लिया था। उसी की सरसता से सिञ्चित यह कदम्ब वृक्ष अमर हो गया है।

कालीय मर्दन मन्दिर

कालीयदह के सामने ही ऊँचे टीले पर कालीयमर्दन का अत्यन्त प्राचीन तथा भव्य मन्दिर है।

द्वादशादित्य टीला

द्वादशादित्यतीर्थाख्यं तीर्थं तदनुपावनम्।
तस्य दर्शन मात्रेण नृणामघो विनश्यति॥[2]

(सौर पुराण)

---

1. तदेष नाथाय दुरापमन्यैस्तमोजनिः क्रोधवशोऽप्यहीशः।
संसार चक्रे भ्रमतः शरीरिणो यदिच्छतः स्याद् विभक समक्षः।।
(श्रीमद्भागवत 10/16/38)

2. इसके पश्चात् द्वादशादित्य नामक तीर्थ है। जिसके दर्शन मात्र से मानव के पाप क्षय हो जाते हैं।

भगवान श्रीकृष्ण की लीला अपार है । जहाँ उन्होंने अपनी ऐश्वर्य शक्ति का प्रसार कर एक ओर बड़े-बड़े दैत्यों का वध किया, वहीं दूसरी ओर मानव देह धारण कर सभी मानव सुलभ लीलाऐं भी करते रहे ।

उन्हें भूख भी लगती है, प्यास भी लगती है, गर्मी तथा सर्दी की अनुभूति भी होती है । वे प्रेमी हैं, आनन्दमय हैं ।

एक ही समय में विभिन्न धर्मों के आश्रय हैं । वह अखण्ड ब्रह्मानन्द ज्योति स्वरूप केवल निराकार स्वरूप में ही तृप्त नहीं होते, अपने जनों को सुख देने हेतु, उन्हीं जैसा रूप धारण कर अपने जनों को सुख प्रदान करते हैं ।

प्रेम के वशीभूत हुए नन्दनन्दन क्षुधातुर हो मैया से माखन-मिश्री तथा दूध माँगते हैं ।

कालिय नाग का उद्धार कर भगवान श्रम निवारण हेतु इस स्थल पर विराजे थे । बहुत देर जल में रहने के कारण भगवान पर शीत का प्रकोप हो गया, यह विचार कर सूर्य देवता सेवा में उपस्थित हुए और ताप पहुँचाकर भगवान की सेवा की । कौन जानता है, सूर्य देवता की श्रीकृष्ण दर्शन की इच्छा देख उन्हें कृतार्थ करने को ही उन्होंने यह अवसर उसे प्रदान किया हो ? यहाँ सूर्य मन्दिर है ।

पास ही वेणु कूप है । ऐसी जनश्रुति है कि भगवान ने वंशीवादन कर इस स्थली का निर्माण किया था, तथा गोपिकाओं को जल पिलाया था ।

श्रीसनातन गोस्वामी की भजन स्थली

श्रीश्रीमन्महाप्रभु चैतन्य देव के छः प्रमुख अनुयायियों में श्रीसनातन जी का नाम प्रसिद्ध है । महाप्रभुजी की आज्ञा से आप ब्रज में पधारे और द्वादशादित्य टीले के निकट, रमणीय यमुना तट पर एक झोंपड़ी बनाकर रहने लगे ।

वैराग्य की साक्षात मूर्ति तथा श्री कृष्णानुराग में पगे सनातन जी यहीं निवास करते थे । वे एक बार कुछ उद्विग्न हो गये । श्रीकृष्ण विरह अधिक सहन न हुआ । कहते हैं, महाप्रभुजी ने स्वप्न में उन पर विशेष कृपा की, जिससे वे प्रसन्न रहने लगे और श्रीराधा-कृष्ण के प्रति उनका अनुराग प्रगाढ़ होने लगा ।[1]

श्रीमदनमोहनजी

श्रीसनातनजी के सेव्य ठाकुर थे, श्रीमदनमोहनजी । श्रीसनातनजी के प्रति उनका स्नेह था । श्रीसनातनजी बहुत ही विरक्ति से रहते थे- किस प्रकार

1. सनातन उद्विग्न देखिया गौर हरि ।
स्वप्न छल एथा देखा दिला कृपा करि ॥

मदनमोहनजी ने अपनी करुणा से उन्हें आप्लावित कर दिया, इस प्रसङ्ग को हम संक्षेप में नीचे उद्धृत कर रहे हैं :-

'श्रीसनातनजी श्रीवृन्दावन में, यमुना तट पर मधुकरी वृत्ति से निवास करते थे। मधुकरी हेतु वे मथुरा जाया करते, क्योंकि श्रीवृन्दावन में उस समय अधिक बस्ती न थी।

एक बार श्रीसनातनजी भिक्षा हेतु श्रीपरशुराम चौबे के घर गये। श्रीचौबेजी के यहाँ सेवा में जो श्रीठाकुर विराजमान थे, वे प्रत्यक्ष रूप धारण कर सखाओं सहित खेला करते। अपनी भुवन मोहिनी छवि-छटा से उन्होंने श्रीसनातनजी पर जादू-सा कर दिया। उनकी कुटिल अलकावलि, मधुर बतरान, बंक विलोकन चञ्चल गति श्रीसनातनजी के मन में घर कर गई, वे श्रीवृन्दावन लौट आये। उधर प्रत्यक्ष खेल रहे श्रीठाकुरजी सेवा में श्रीविग्रह रूप मे जा विराजे।

किसी तरह रात हुई। भोर की उत्सुकता में श्रीसनातनजी जैसे तैसे निद्रारत हो गये।

इन छलिया नागर की चतुराई से कौन अनभिज्ञ है। रात्रि को शयन में भी वही श्रीचौबेजी के सेव्य श्रीविग्रह स्वरूप प्रत्यक्ष रूप धारण कर श्री सनातनजी से स्वप्न में कहने लगे, "बाबा मैं तुम्हारे साथ चलूंगा।"

दूसरे दिन श्रीसनातजनी भोर में ही उठ आये। मथुरा जाकर श्रीचौबेजी से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। अन्ततः श्रीसनातनजी पर रीझ, श्रीठाकुरजी उनकी सेवा स्वीकार कर श्रीवृन्दावन चले आये। श्रीसनातनजी मधुकरी में जो पाते वही श्रीठाकुरजी को भोग में समर्पित करते तथा प्रसादी स्वयं पा लेते। एक दिन एक विचित्र घटना घटी, श्रीसनातनजी ने जैसे ही मदनमोहनजी को भोग समर्पित किया, श्रीठाकुरजी बोले, "बाबा हमें थोड़ा नमक न देंगे ?" सनातजनी कुछ चुप से हो गये। प्रेम भरा उपालम्भ देते हुए कहने लगे, "देखो ! मैं तो विरक्ति से जैसे-तैसे जीवन-यापन करता हूँ। आज तुम नमक माँग रहे हो, कल घी माँगोगे तथा परसों कुछ और ही व्यवस्था के लिए आग्रह करोगे, यदि ऐसा ही है तो अपनी व्यवस्था स्वयं कर लो- भला मैं यह सब कैसे और कहाँ से करूँगा ?"

दैव वश एक घटना घटी; ठीक उसी समय एक व्यक्ति श्रीसनातन जी के पास आये और बोले, "हम व्यापारी हैं। कुछ दूर हमारी नाव घाट के पास फँस गई है। प्रयत्न करने पर भी हम नाव निकाल नहीं पा रहे हैं। जब हम नाव निकालने का प्रयास कर रहे थे-तो एक बालक ने आकर हमें उत्साह दिलाया कि इन बाबा से जाकर कहो तो नाव शीघ्र निकल सकती है। अतः हम

आपकी सेवा में आये हैं आप कृपा करके हमारी सहायता कीजिये। इस व्यापार में जितना भी लाभ होगा उसे हम श्रीठाकुरजी की सेवा में अर्पित कर देंगे।

नटखट गोपालजी का कौतुक जान, सनातनजी चुप रह गये। बोले, "भाई ! उसी बालक से जाकर कहो, वही तुम्हारी नाव पार लगा सकता है।"

खैर ..... कुछ ही देर में नाव निकल गई। इस व्यापार में उन श्रीकपूर व्यापारी को चार गुना अधिक लाभ हुआ। वह धन लेकर श्रीसनातनजी की सेवा में उपस्थित हुए और उनकी आज्ञा पा मन्दिर का निर्माण करवाया। आज भी अपनी उत्तुङ्गता की पताका फहराता यह मन्दिर श्रीसनातनजी के सेव्य ठाकुर श्रीमदनमोहनजी की वार्ता से जन-साधारण में प्रेरणा भर रहा है।

श्रीमदनमोहन जी का प्राकट्य सुन राजा प्रताप रुद्र ने श्रीजगन्नाथपुरी से दो विग्रह स्वरूप वृन्दावन भेजे। पुजारी को स्वप्न में आदेश देकर श्रीमदनमोहनजी ने कहा, "जो दो श्रीविग्रह स्वरूप जगन्नाथपुरी से आये हैं उनमें बड़ी श्रीललिताजी हैं और छोटी श्रीराधा हैं। तुम उन्हें शीघ्र ले आओ तथा छोटे श्रीविग्रह मेरे वाम पार्श्व में विराजें ऐसी व्यवस्था करना। तभी से यहाँ प्रिया-प्रियतम की सेवा चली आ रही है।

यवनों के आक्रमण के कारण सुरक्षा व्यवस्था वश श्रीमदनमोहन जी जयपुर चले गये थे। वहाँ से करौली गये, करौली में अद्यावधि विराजमान हैं।

पास ही नये मन्दिर में दूसरे स्वरूप मदनमोहनजी नाम से ही विराजते हैं।

सूरदास मदनमोहनजी की समाधि

'सन्तन की पनही को चाकर।'

जिन महानुभावों ने सूरदास मदनमोहनजी का नाम सुना है, वे उनकी साधुओं के प्रति निष्ठा, ब्रज के प्रति आस्था तथा दैन्य से अवश्य अवगत होंगे। एकबार 'संडीला' ग्राम में जहाँ के ये अमीन थे तथा कर वसूल कर राजा को दिया करते थे, साधुओं की जमात आ गई। इनके घर में इतनी व्यवस्था थी नहीं। राज्य कोष का धन जो भी था वह इन्होंने साधु-सेवा में खर्च कर दिया और चिट्ठी लिखकर राजा को भेज दी।

तेरह लाख संडीले उपजे, सब साधुन मिल गटके।
सूरदास मदनमोहन वृन्दावन को सटके ॥

मदनमोहन जी के दर्शन का इनका नियम था। एकबार इन्हीं से किसी ने पूछा कि आपका नाम क्या है ? इन्होंने कहा-'सन्तन की पनही को चाकर' अर्थात् सन्तों के जूतों की देख-रेख करने वाला नौकर। एक साधु इनकी इस

बात को सुन किञ्चित् द्वेष करने लगे। एकबार परीक्षा हेतु उस साधु ने अपने जूतों की रखवाली में इन्हें छोड़कर कहा, मैं अभी आता हूँ, जरा इनकी सम्हाल करना।' यह कहकर वे साधु चले गये और दूसरे दिन लौटे। वहाँ पहुँचे तो सूर दास मदनमोहनजी उसी प्रकार जूतों की रखवाली करते, बिना कुछ खाये-पिये खड़े थे। वे साधु आते तो ठाकुर श्रीमदनमोहनजी के दर्शन कर ये कुछ खाते। इन्हें भूखे-प्यासे देख वे साधु बहुत लज्जित हुए।

उन्हीं श्रीमदनमोहन ठाकुरजी के पास एक कोने में इनकी समाधि है।

प्रस्कन्द क्षेत्र तीर्थ

पुनरन्यत् प्रवक्ष्यामि तच्छ्रुणुत्वं वसुन्धरे।
क्षे प्रस्कन्दनं नाम सर्वपापहरं शुभम्॥

(आदि वाराह पुराण)

हे वसुन्धरे ! अब मैं अन्य तीर्थों की कथा कहता हूँ, तुम श्रवण करो। प्रस्कन्दन नाम का एक शुभ क्षेत्र है, जो सभी पापों से मुक्ति देने वाला है।

द्वादशादित्य टीले के समीप ही इस स्थली की मान्यता की जाती है। स्थली आजकल लुप्त प्रायः है।

अद्वैत वट

एई वट वृक्ष तले कृष्ण आराधय।
कि बूझिते पारे तार दुर्गम आशय॥

(भ० र०)

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु के निजी परिकर श्रीअद्वैताचार्यजी महाराज का नाम, ऐसा कौन वैष्णव है, जो नहीं जानता। तीर्थाटन के लिए निकले श्रीअद्वैताचार्य महाराज जब वृन्दावन में आये तो इसी वट वृक्ष के नीचे ठहरे थे। यहीं रहकर श्रीकृष्ण आराधन करते। उनके सेव्य ठाकुर थे श्रीमदनगोपालजी। जब श्रीअद्वैताचार्यजी बंगाल के लिये प्रस्थान करने लगे तो श्रीमदनगोपालजी को मथुरा में चौबेजी की सेवा में समर्पित कर गये।

कहते हैं वही ठाकुर श्रीगोपालजी नाम से श्रीसनातनजी की सेवा में आये।

अष्टसखी मन्दिर

श्रीमदनमोहनजी के मन्दिर से श्रीबाँकेबिहारीजी के मन्दिर की ओर जाते समय दाँई ओर अष्टसखी मन्दिर स्थित है। श्रीराधा रासविहारी यहाँ विराजमान हैं साथ में अष्टसखियाँ विराजती हैं।

सन् १८८९ में हेतमपुर महाराजा रामरञ्जन चक्रवर्ती ने इस मन्दिर की स्थापना की थी। सन् १९२८ में नये मन्दिर का निर्माण करा अष्टसखियों की स्थापना की गई।

श्री श्रीबाँकेबिहारी

'यथा नाम तथा गुण' उक्ति को सर्वथा चरितार्थ कर रहे श्रीबाँके बिहारी जी की अलबेली झाँकी ने लाखों नर-नारियों को अपनी भुवन मोहिनी छवि, कंटीले नयन तथा मनहर मुस्कान पाश में आबद्ध कर रखा है। इनके चमत्कारों से आज भी असंख्य दर्शनार्थी प्रभावित हैं। इन भौतिक चक्षुओं को भी प्रत्यक्ष से दीखते श्रीबिहारीजी, अत्यन्त सजीव आकर्षण लिए हैं।

आप हैं श्रीस्वामी हरिदासजी के आराध्य। उन्हीं को अपनी सेवा से कृत-कृत्य करने के लिए आपने उन पर कृपा की।

स्वामी श्रीहरिदासजी नित्य ही निधिवन में एक लता कुञ्ज में प्रणाम किया करते थे। इनके श्रद्धालु भक्तों ने एक बार श्रीस्वामी जी महाराज से इस रहस्य को जानना चाहा। विट्ठलविपुल जी ने पूछा, "गुरुदेव ! समस्त वृन्दावन ही प्रिया-प्रियतम की विहार स्थली होने के कारण प्रणम्य है, फिर आप इसी निश्चित स्थान पर नित्य ही प्रणाम क्यों करते हैं ?"

स्वामीजी ने अपने निज जनों को संकेत कर देखने के लिए कहा। उन सभी ने वहाँ अलौकिक ज्योति को देखा। साथ ही प्रिया-प्रियतम का रङ्ग-महल भी उन्हें दिखाई दिया। युगल की अलौकिक छवि का पान कर सभी मत्त-प्रमत्त हो गये। उसी स्थली से श्रीबिहारीजी सभी को आनन्द में सराबोर करते प्रकट हुए। मार्गशीर्ष शुक्ला पञ्चमी के शुभ दिन श्रीबिहारी जी महाराज का प्राकट्य हुआ, जो 'विहार पञ्चमी' नाम से विख्यात है।

श्रीबिहारीजी की रसिकता विश्व विख्यात है। एक बार इनके दर्शन के लिए एक भक्त महानुभाव आये, वे टकटकी लगाकर इन्हें देखते रहे। रसिक रिझवार बिहारीजी उन पर रीझ गये। जब वे प्रस्थान करने लगे तो बिहारीजी उनके पीछे-पीछे चल दिये। कहते हैं गुसाँईजी ने बड़ी अनुनय-विनय कर बिहारीजी महाराज को अपने निज मन्दिर में पधारने की प्रार्थना की। तभी से आशङ्का वश बिहारीजी के दर्शन करते समय बीच-बीच में पर्दा डालने की प्रथा प्रारम्भ हुई।

श्रीबिहारीजी महाराज की सेवा में सबसे विलक्षण बात यह है कि इनकी मङ्गला आरती नहीं होती। इसके पीछे गुसाँइयों की बड़ी कोमल भावना है। वे कहते हैं कि श्रीबिहारीजी नित्य रात्रि में रास कर भोर में शयन करते हैं-उसी

के दो घण्टे बाद उन्हें जगाना कहाँ तक ठीक है ? श्रीबिहारीजी महाराज अपने निज जनों को इस प्रकार की समय-समय पर अनुभूतियाँ करवाते रहते हैं।

पहले श्रीबिहारीजी महाराज निधिवन में ही विराजते थे। सन् १९२१ में इस मन्दिर का पुनर्निर्माण हुआ और श्रीबिहारीजी वर्तमान मन्दिर में विराजमान हो, अद्यावधि सभी के लिए आकर्षण बने हैं।

श्रीबाँकेबिहारी जी के साथ श्री किशोरीजी की भावना गादी रूप में है, जो बिहारीजी के वाम पार्श्व में विराजती हैं।

यह अत्युक्ति नहीं होगी कि आज भी श्रीवृन्दावन में सबसे अधिक मान्यता श्रीबिहारीजी की है।

वैशाख मास में अक्षय तृतीया के दिन श्रीबिहारीजी महाराज के वर्ष में केवल एक बार चरण दर्शन होते हैं।

स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज

संवत् १५३७ में वृन्दावन के निकट ही राजपुर ग्राम में आपक जन्म हुआ। चारों ओर प्रसन्नता छा गई।

किसी भी भौतिक पदार्थ के प्रति बचपन से ही इन्हें मोह न था। बालपन से ही विरक्ति के लक्षण दीखते थे।

इन्होंने निधिवन को अपना निवास स्थल बनाया।

श्रीस्वामी जी महाराज निकुञ्ज भावना के प्रवर्तक माने जाते हैं। नित्य विहार रत प्रिया-प्रियतम की एकान्तिक रस-केलि में प्रतिक्षण निमज्जित होकर जो आस्वादन उन्होंने किया उसी सबका यत्किञ्चित् वर्णन अपने पदों में किया है। वे पद आज 'केलि माल' ग्रन्थ के रूप में उपलब्ध हैं। 'सखि सम्प्रदाय' अथवा 'श्रीहरिदासी सम्प्रदाय' के नाम से कुछ नियमादि के बन्धन में आपने वैष्णवों को दीक्षा दी।

श्री स्वामीजी महाराज के बड़े अलौकिक चरित्र हैं। उनकी निष्ठा तथा अनन्यता प्रतिक्षण बनी रही। एक बार एक भक्त पं. श्रीजगन्नाथ ने श्रीबिहारीजी की सेवा हेतु एक इत्र की शीशी स्वामीजी को भेंट की। श्रीयमुना तट पर बैठे स्वामी जी ने वह इत्र की शीशी बालुका में ही उलटा दी। उन भक्त को बहुत कष्ट हुआ। स्वामीजी महाराज यह सब जान गये और उन भक्त से श्रीबिहारीजी महाराज के दर्शन कर आने के लिए आग्रह किया। जब पण्डित जगन्नाथ जी श्री बिहारी जी के दर्शन करने गये तो उन्होंने उसी इत्र की महक से सारा निजमन्दिर सुवासित पाया, वे स्तब्ध रह गये। ऐसी थी रसमयी विलक्षण सेवा श्रीस्वामीजी महाराज की।

सङ्गीत में तो स्वामीजी अग्रणी थे। प्रसिद्ध गायक तानसेन तथा बैजूबावरा आपही के कृपा पात्र थे। यही नहीं सम्राट् अकबर भी आपके गायन से प्रभावित होकर वेष बदल कर आपकी सेवा में उपस्थित हुआ। स्वामीजी के व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जब अकबर ने सेवा अवसर प्राप्त करने की बार-बार प्रार्थना की, तो स्वामीजी महाराज ने दिव्य तथा चिन्मय यमुना घाट का दर्शन कराकर अकबर से कहा, "हमारे घाट की सीढ़ी का एक कोना टूट गया है-आप उसकी मरम्मत करवा दें।"

यह दृश्य देखकर सम्राट् अकबर भी स्तम्भित रह गया तथा अपनी सारी सम्पत्ति को तुच्छ जान श्रीस्वामीजी महाराज के चरणों में नत-मस्तक हो गया।

श्री प्रकाशानन्द योगी ने हिमालय में वास कर अनेक सिद्धियाँ प्राप्त कर लीं थीं। स्वामीजी महाराज की ख्याति चारों ओर फैल ही चुकी थी। योगीजी वृन्दावन आये तथा स्वामीजी को मोरों को प्रसाद वितरण करते देख स्वयं भी मोर का शरीर धारण कर प्रसाद पाने लगे। स्वामीजी ने तुरन्त पहचान लिया और कहा, "प्रकाशानन्द तुम्हारा अहो भाग्य है जो श्रीवृन्दावन पहुँच गये। श्रीधाम की तुम पर कृपा है।" - वे स्तब्ध रह गये।

युगल की रस केलि का सरस चित्रण स्वामीजी की अनुभूतियों में उनके सरस पदों में ओत-प्रोत है-

प्यारी जैसो तेरो आंखिन में मैं हौं अपनपौं देखत।
तैसो तुम देखति हो किधौं नाहिं।
हौं तोसौं कहौं प्यारे, आंखि मूंदि रहौं,
लाल निकसि कहूँ जाहिं॥

(श्रीकेलिमाल)

श्रीकृष्ण नित्य केलि प्रिय हैं। किसी सरस केलि में रत प्रियतम ने प्रियाजी से विनोद में कहा, 'हे प्यारी ! मैं जैसे तुम्हारे नेत्रों में अपने रूप को देखता हूँ; वैसे तुम भी देखती हो या नहीं ?' इस उक्ति को सुन 'चौंसठ कला प्रवीण तदपि अति भोरी' किशोरी ने किसी रस गाम्भीर्य में भर उत्तर दिया, 'हे प्रियतम ! मैं तुमसे सच कहती हूँ कि मैं अपने नेत्र इसीलिए तो बन्द कर लेती हूँ कि कहीं तुम्हारी मनहर छवि मेरे नेत्रों से निकल न जाये।'

उपनिषदों[1] में उल्लेख है कि परब्रह्म रसास्वादन हेतु ही अपने को दो रूपों में प्रकट कर अपने में रमण कर आनन्द प्राप्त करता है। परात्पर तत्त्व के उस उभय रूप को श्रीकृष्णोपासक वैष्णव सम्प्रदायों ने श्रीराधा-कृष्ण रूप में भक्ति

1. वृहदारण्यकोपनिषद।

का आधार मान 'नित्य निकुञ्ज लीला' की संज्ञा दी है। यही नित्य-विहार भी कहा गया है। श्रीस्वामीजी महाराज ने इसी नित्य विहार को अपने जीवन का अभिन्न अङ्ग मान इसी मत की पुष्टि की है।

श्रीश्रीराधावल्लभजी तथा श्रीश्रीमन्महाप्रभु हित हरिवंशजी महाराज

'श्रीराधावल्लभ दर्शन दुर्लभ' यह उक्ति ही पर्याप्त है, 'श्रीराधावल्लभजी' की प्यार तथा लाड़ से भरी चोज-मयी सेवा की जानकारी के लिए। जिस भाव तथा कोमलता से इनकी सेवा-पूजा होती है, वह देखते ही बनता है।

बाँकी छवि, मद विघूर्णित नेत्र, साकूत मुस्कान, उन्मुक्त छवि दर्शन सभी कुछ बरबस मन को अपहृत किये लेते हैं।

श्रीमन्महाप्रभु हित-हरिवंशजी का जन्म बाद ग्राम में हुआ था। पश्चात् इनके माता-पिता देववन में निवास करने लगे। श्रीराधाजी की आज्ञा से आपने वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया।

पिता का शरीर छूट ही चुका था। जब ये चरथावल ग्राम में पहुँचे तो श्रीजी ने पुनः आज्ञा दी कि इस ग्राम में एक ब्राह्मण तुम्हें दो कन्याएँ देगा, तुम उनका विधिपूर्वक पाणिग्रहण करना एवं उसी ब्राह्मण के पास हमारे एक श्रीविग्रह स्वरूप हैं, उन्हें लेकर श्रीवृन्दावन चले जाना। श्रीठाकुरजी तथा उन दोनों कन्याओं सहित हरिवंशजी महाराज वृन्दावन पधारे।

श्रीयमुना तट पर एक ऊँचा स्थान देख मदन टेर पर आपने आसन लगा लिया। ब्रजवासियों ने वृन्दावन वास करने की इच्छा से आये श्रीहरिवंश जी को पूर्ण सहयोग दिया। वे इनके अलौकिक व्यक्तित्व से बहुत प्रभावित हुए। नरवाहन नाम के एक व्यक्ति ने इन्हें एक तीर फेंकने के लिए कहा। जहाँ तक तीर जावेगा वहाँ तक की भूमि हरिवंशजी को दे दी जावेगी ऐसा प्रण भी किया। कहते हैं वह तीर आज के समय में चीर घाट के पास आकर गिरा। श्रीहरिवंशजी ने वहीं रासमण्डल की अनुभूति की तथा उस स्थली पर रासमण्डल का प्रकाश किया।

श्रीहरिवंशजी महाराज जब छः मास के थे तो इनके मुख से श्रीराधा सुधानिधि श्लोकों का धारावत प्रादुर्भाव हुआ। कहते हैं श्रीनृसिंहाश्रमजी उस समय उपस्थित थे उन्होंने इसे ग्रन्थ के रूप में लिपिबद्ध किया।

श्रीश्रीराधा ही इनकी गुरु थीं, ऐसा प्रायः अधिकांश विद्वानों ने स्वीकार किया है।

कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को श्रीहरिवंशजी महाराज ने श्रीराधावल्लभजी का पाटोत्सव मनाया तथा पाँच आरती, सात भोग वाली सेवा प्रारम्भ की।

श्रीराधावल्लभ जी पहले मदन टेर पर विराजते थे। पश्चात् सेवाकुञ्ज में विराजे। बाद में किन्हीं श्रद्धालु भक्त द्वारा यह मन्दिर बन जाने पर तभी से वे इसी मन्दिर में विराजते हैं। इनके साथ ही सिंहासन पर गादी स्थापना कर श्रीजी की भावना की जाती हैं।

स्वामी श्रीहरिदास जी की भाँति आप भी निकुञ्जोपासना में मग्न रहे।

श्रीहरिवंशजी महाराज ने निकुञ्ज लीला का जितना सरस चित्रण किया है वह देखते ही बनता है। एकान्तिक रस विहार, उसमें अत्यन्त गोपनीय रहसि-केलि, उभय अङ्गों पर रसमसे चित्राङ्क, श्लथ मालावलि, प्रणय की उद्दाम हिलोरों के वशीभूत हुए युगल की रसमयी दशा, ओह ! यह सब हरिवंशजी के नेत्र गोचर हुए हैं।

आज प्रभात लता मन्दिर में,
सुख बरसत अति हरषि जुगलवर।
गौर स्याम अभिराम रङ्ग भरे,
लटकि-लटकि पग धरत अवनि पर॥

प्रेम में विरह तथा मिलन का समन्वयात्मक सरस वर्णन श्रीहित हरिवंशजी के ही सामर्थ्य की बात है।

एक स्थान पर एक सारस ने चातक को सम्बोधित करते हुए कहा-'तुम प्रेम का स्वरूप क्या जानते हो-तुम्हारा धैर्य धन्य है। प्रियतम के अभाव में प्राण धारण कर जीवित रहना-यह प्रेम भला कैसा ?' चातक ने उत्तर दिया, "विरह और मिलन प्रेम के दो अभिन्न अङ्ग हैं। तुम विरह का सुख जानते ही नहीं हो। अतः पूर्ण आस्वादन तुम कर ही नहीं पाते।"

श्रीहरिवंशजी महाराज ने दोनों को ही महत्त्व देते हुए-दोनों के प्रेम की प्रशंसा कर समन्वय दर्शाया है।

श्रीराधा आनन्द वल्लभ

भक्तिमती आनन्दीबाई के उपास्य लाड़-प्यार की साकार मूर्ति श्रीराधा आनन्दवल्लभजी ब्रज में लगभग सौ वर्ष से विराजते हैं। श्रीआनन्दी बाई के वात्सल्य से पुष्ट हैं यह ठाकुर। कहते हैं आनन्दी बाई के लिए ये बिल्कुल प्रत्यक्ष थे। एक घुटने पर श्रीकिशोरीजी विराजमान रहतीं और एक पर श्रीश्यामसुन्दर, उनके साथ खेलते, उनसे हठ करते तथा अन्य बाल-लीलाएँ करते। प्रकट हो कर नित्य ही नव-नव लीला और प्रणय कलह करते।

श्रीआनन्दीबाई की भोग तथा साधु-सेवा की वृत्ति अलौकिक थी।

सेवाकुञ्ज

सैन, बैन, नैन तथा रैन केलियों का संयोजन जुटाती यह स्थली शयन केलि के लिए प्रसिद्ध है। श्रीयुगल सरकार रात्रि विहारोपरान्त यहाँ विश्राम करते हैं। कौन जानता है शयन भी एक मिस ही है, इन ब्रज रसराज तथा उनकी प्रेयसी वृन्द के परस्पर मिलने का।

किसी ने अस्फुट-सी ध्वनि में कहा, "सखी ! शयन केलि।" पास ही की एक सघन लता पर बैठे शुक और सारिका बोले, "हम जानते हैं, शयन केलि की बात। यह बहाना तो है ही, प्रिया-प्रियतम यहाँ आ, विविध रास-विलास में मत्त हो, अनेक रसीली चेष्टाओं में मग्न हो जाया करते हैं।"

रात्रि को नित्य ही प्रिया-प्रियतम यहाँ पधारते हैं। हास-परिहास परायण युगल परिश्रान्त हो पास ही की निकुञ्ज में विश्राम करते हैं। युगल के अङ्गों में अलसान ने प्रवेश किया, नेत्र निमीलित से हो गये, बीच-बीच में जम्हाई भी आने लगी, सखियों ने देखी निद्रालसमण्डित मुखश्री, वे गा उठीं -

लड़ैती जु के नैनन नींद घुरी।
आलस बस, जोबन बस, मद बस, प्रिय के अंस ढुरी॥
पियकर चिबुक परसिबो चाहत बांकी भौंह भुरी।
बावरी सखी श्रीव्यास सुवन बस देखत लतन दुरी॥

सम्पूर्ण वयश्री मण्डित, अलसश्री शोभित प्रियाजी, प्रियतम के स्कन्ध का आश्रय पा निद्रा के अङ्क में विश्राम करने लगीं। यह रङ्गीली-रसीली विवशता किसी सबल आश्रय का सहारा ले निश्चिन्त हो गई। थोड़ी देर में प्रियतम ने नेत्र खोल देखा-उधर प्रियाजी के मन में भी यही ऊहा-पोह थी-उन्होंने नेत्र खोले, सहसा नेत्रों से नेत्र मिले। दोनों मुस्कराकर पुनः शयन के अङ्क में विश्राम करने लगे।

ऐसी ही रसमयी दशा का वर्णन करते हुए एक सखी कहने लगी-"आनन्द तथा उन्माद सम्पन्न प्रेमामृत की घनीभूत मूर्ति, कुञ्ज शैय्या पर निद्राधीन युगल के अत्यन्त कोमलता पूर्वक चरणों का सम्वाहन करती हुई, शैय्या के निकट ही क्या मैं निद्रा के वशीभूत हो जाऊँगी ?"[1]

यह कुञ्ज कुटीर, यह कुञ्ज शैय्या, श्रीवृन्दावन की सघन निकुञ्ज वीथियों

1. सान्द्रानन्दोमद रसधन प्रेम पीयूष मूर्तेः
श्रीराधाया अथ मधुपतेः सुप्तयोः कुञ्जतल्पे
कुर्वाणाहं मृदु-मृदु पदाम्भोज साम्वाहनानि,
शय्यान्ते किं किमपि पतिता प्राप्त तंद्रा भवेयम्॥

(रा० सु० नि० 212)

में स्थित है । सेवाकुञ्ज ऐसे ही केलि रहस्यों से परिपूर्ण है । यहाँ की सघन कुञ्ज बड़ी ही मनोरम हैं और रसमय केलि-

परिरंभण विपरित रति वितरित सरससुरत निजकेलि ।
इन्द्रनील मणिमय तरु मानौं लसत कनक की बेलि ॥

(हि० च०)

श्रीहरिवंश जी का सम्पूर्ण जीवन श्रीश्रीराधा-कृष्ण के साधारण असाधारण केलि रहस्यों में बीता । सेवाकुञ्ज की प्रतिष्ठा भी इन्होंने ही की । वहाँ श्रीराधिकाजी की स्थापना की । इसी योग पीठ पर युगल का एक चित्र विराजमान है, जिसमें श्रीलालजी, श्रीप्रियाजी के श्रीचरणों का सम्वाहन कर रहे हैं । नहीं कहा जा सकता भक्त रसखान का यह सवैया इसी रसीले चित्र की गाथा दोहरा रहा है-

देख्यो दुर्‌यो वह कुञ्ज कुटीर में,
बैठ्‌यो पलोटत राधिका पायन ।

सेवाकुञ्ज में श्रीराधावल्लभजी लगभग पचास वर्ष तक विराजमान रहे । पुनः मन्दिर बनने के बाद इस मन्दिर में विराजमान हैं ।

पास ही कलकत्ते वाला मन्दिर है ।

श्रीरसिकविहारीजी

श्रीरसिकदेवजी महाराज ब्रज में ख्याति प्राप्त महात्मा हुए हैं। वे राजस्थान में डूँगरपुर से सम्बन्धित थे । उन्हीं के पूर्वजों के सेव्य थे, श्रीरसिकविहारी जी महाराज ।

श्रीरसिकविहारीजी ने श्रीरसिकदेवजी को स्वप्न में दर्शन देकर कहा, "तुम्हारे पूर्वजों का सेव्य मैं डूँगरपुर में हूँ । अपने शिष्यों को भेजकर मुझे श्रीवृन्दावन बुलाकर सेवा की व्यवस्था करो ।" श्रीरसिकदेव जी ने अपने दो शिष्यों श्रीसुदामादास तथा श्रीनागरीदास जी को श्रीरसिकविहारी जी को वृन्दावन ले आने के लिए भेजा । वहाँ के तत्कालीन राजा को भी इसी प्रकार का स्वप्नादेश हुआ । राजा ने श्रीरसिकविहारी जी के वृन्दावन लाने की समुचित व्यवस्था कर दी ।

श्रीरसिकबिहारीजी बड़ी शान से श्रीवृन्दावन पधारे । पहले कालीदह पर कुछ समय विराजे, पीछे मन्दिर बन जाने पर आप वर्तमान श्रीरसिकविहारीजी के मन्दिर में विराजमान हुए ।

श्रीरसिकविहारी जी का विलक्षण चरित्र जगद्‌विख्यात है । वे श्रीरसिकदेवजी से प्रत्यक्ष बात-चीत किया करते ।

श्रीरसिकबिहारी ठाकुरजी के श्रृङ्गारी एक बार इनके लिए फूलों के गजरा बना रहे थे। दोपहर का समय था। श्रीठाकुरजी बालक रूप धारण कर उन श्रृङ्गारी से बोले, "बाबा मोय गजरा दै दै।" श्रृङ्गारी ने इनकी ओर बिना देखे ही मना करते हुए कहा, "गजरा अभी बने नहीं।" आप बोले, "बाबा झूठ काय कूं बोलै, तैने गजरा बनाय के राख्यो तो है।" सभी द्वार बन्द थे, श्रृङ्गारी बन्द द्वार में ऐसी मोहाकर्षक वाणी में गजरे माँगने की बात सोच, उस बालक को ढूँढ़ने को उठे। वह बालक कहीं नहीं मिला-बाद में उन श्रृङ्गारी को भान हुआ कि वह बालक रूप धारण कर रसिकबिहारी जी ही पधारे थे।

श्रीरसिकबिहारीजी का वृन्दावन पधारने का समय सम्वत् १७५८ के आस-पास का है।

श्रीरसिकदेवजी

आप श्रीनरहरिदेवजीके शिष्य थे। गुरुजी महाराज के प्रति आपकी अनन्य निष्ठा थी। प्रिया-प्रियतम की आप पर विशेष कृपा थी। अतः गुरुजी के भी आप स्नेह पात्र थे।

इन्हीं के एक गुरु भाई थे श्रीकेशवदास। श्रीगुरु महाराज का रसिक देवजी के प्रति प्रगाढ़ स्नेह उन्हें सहन नहीं होता था। वे गुरुजी से कुछ न कुछ लगाते ही रहते। इस झगड़े को शान्त करने के लिए श्रीनरहरिदेवजी ने रसिकदेवजी को श्रीवृन्दावन से बाहर जाने का आदेश दे दिया। वे इनकी सेवा का उत्कर्ष दिखलाना चाहते थे। आप मथुरा चले आये, वहाँ से भी गुरुजी के लिए भिक्षा कर सेवा करते रहे। पीछे यह बात फैलने पर श्रीनरहरिदेवजी ने यह सेवा भी बन्द करवा दी।

श्रीरसिकदेवजी के ही एक गुरु भाई थे श्रीछंगा सुनार। वे गुरुजी की गाती तथा लंगोटी धोने के लिए घर लाया करते। गुरु सेवा परायण श्रीरसिकदेवजी उनकी वस्त्र प्रक्षालन सेवा कर ही सन्तोष करने लगे।

एक दिन स्वामी नरहरिदेवजी के सिर में चोट लग गई तो श्रीरसिकदेव जी ने अपने स्थान में ही अपने हाथ से अपना सिर पकड़ लिया। लोगों के पूछने पर कहा, "श्रीमहाराजजी के सिर में चोट लग गई है।" बाद में जाकर जब पता लगाया तो यह बात सत्य निकली।

श्रीबिहारीजी महाराज ने स्वयं एक बार श्रीनरहरिजी से श्रीरसिकदेव जी को अङ्गीकार करने के लिए कहा था।

श्रीरसिकदेवजी वि.सं. १७४१ से १७५८ तक गुरु गद्दी पर विराजमान रहे। टटिया स्थान के प्रवर्तक श्रीललितकिशोरदेव जी के गुरु होने का गौरव आप ही को प्राप्त है।

किशोर वन

श्रीहरिरामजी व्यास

'कथनी करनी करि गयौ एक व्यास इहि काल ।'

(ध्रुवदासजी)

श्रीहरिरामजी व्यास, ओरछा के निवासी थे । ओरछा नरेश मधुकर शाह आपके अनुगत थे । बाल्यकाल में ही आपने पूर्ण विद्या प्राप्त कर ली थी । शास्त्रार्थ हेतु एक बार आप काशी पधारे । वहाँ विश्वनाथ भगवान ने इन्हें स्वप्न में आदेश दिया, उसके बाद आप वृन्दावन चले आये । श्रीप्रिया दासजी ने इस घटना का उल्लेख निम्न प्रकार से किया है-

आये गृह त्यागि वृन्दावन अनुराग करि,
गयो हिय पागि होय न्यारौ तासौं खीजिये ।
राजा लेन आयो ऐ पै जाईबो न भायो,
श्रीकिशोर उरझायो मन सेवामति भीजिये ॥

ओरछा महाराज ने श्रीव्यासजी महाराज को ओरछा लौटने के लिए प्रार्थना की, परन्तु श्रीव्यासजी महाराज का मन श्रीवृन्दावन के प्रति अनुरक्त हो चुका था ।

प्रसाद में इनकी प्रगाढ़ निष्ठा थी । एकबार ये श्रीगोविन्दजी के दर्शनार्थ जा रहे थे तो पता चला कि राजभोग हो चुका है । प्रसादी कढ़ी एक जमादारनी लिए आ रही थी । आपने उसी में से प्रसाद ग्रहण कर लिया । ऊँच-नीच बिना विचारे ही प्रसाद के प्रति यह महाभाव रखते थे । इस बात को लेकर काफी विवाद भी हुआ, परन्तु व्यासजी ने कहा-

व्यासहिं ब्राह्मण मति गनौं हरि भक्तन को दास ।
वृन्दावन के स्वपच की जूठनि खहिये माँगि ॥

वृन्दावन, ब्रजवासी, वक्ष-लताएँ, सरोवर, पशु-पक्षी यहाँ तक कि कूकर और शूकर के प्रति भी वे समादर रखते थे । दैन्य उनमें कूट-कूटकर भरा था, अपने को तुच्छाति-तुच्छ मानते थे ।

सभी आचार्यों के प्रति इनकी निष्ठा थी, उन्हें पूर्ण आदर देते थे । एकबार ओरछा नरेश ने इन्हें लिवाने के लिए अपना मन्त्री भेजा । ये माने नहीं । मन्त्री ने जाकर श्रीहित-हरिवंशजी से प्रार्थना की तो उन्होंने स्वीकार कर लिया कि वे इन्हें जाने के लिए कह देंगे । जब श्रीव्यासदासजी को पता चला तो वे तीन दिन तक महाप्रभु हित-हरिवंशजी से मिले ही नहीं । जब उनका पता लगवाया तो श्रीयमुना स्नान कर, मुख पर कालिमा पोतकर, गधे पर बैठकर आ रहे थे, लोगों ने इसका कारण पूछा तो आप बोले-"श्रीधाम में रहने योग्य होता तो

गुरु महाराज यहीं न रखते ।" कहते हैं श्री हरिवंश जी बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीव्यासजी को श्रीवृन्दावन छोड़ने को नहीं कहा ।

एक बार राजा के कर्मचारी इन्हें बलपूर्वक ले जाने को तैयार हो गये । श्रीव्यासजी महाराज ने उन कर्मचारियों से कहा, "मुझे अपने सगे-सम्बन्धियों से तो मिल लेने दो ।" ये पालकी से उतर गये और एक-एक वृक्ष से भुजा फैला -फैलाकर घण्टों चिपटे रहते तथा फूट- फूटकर रोते जाते । इससे राजा का मन द्रवित हो गया और वे इनके चरणों में गिरकर क्षमा-याचना करने लगे ।

श्रीव्यासजी की-सी श्रीवृन्दावन, यहाँ की वृक्षावलि, यहाँ की स्थलियों के प्रति निष्ठा दुर्लभ है ।

आप किशोरवन में ही निवास करते थे । श्रीयुगल किशोर ठाकुर आपके सेव्य थे, उनकी आप पर पूर्ण कृपा थी । एकबार श्रृङ्गार कर रहे थे, पाग बार-बार खिसक जाती थीं । प्रणयावेश में भर मीठी-सी झूंझल लिए, आप बाहर चले आये । श्रीठाकुरजी इनकी झुँझलाहट से सर्वथा परिचित थे । जब थोड़ी देर बाद पुनः यह श्रृङ्गार धारण कराने हेतु मन्दिर में गये तो श्रीठाकुरजी ने स्वयं वह पाग धारण कर रखी थी । आप प्रिया-प्रियतम के इतने कृपापात्र थे ।

एकबार रास में प्रिया-प्रियतम का नृत्य हो रहा था । दिव्य स्वरूप से श्रीव्यासजी महाराज वहीं विराजमान थे । प्रियाजी का चरण नूपुर टूट गया । श्रीव्यासजी महाराज ने तुरन्त अपना यज्ञोपवीत तोड़कर नूपुर ठीक से बाँध दिया । प्रिया-प्रियतम की इन पर पूर्ण कृपा थी ।

आपने अपनी सम्पत्ति के तीन भाग किये । पहले में सारा धन था, दूसरे में श्रीयुगलकिशोर ठाकुर तथा तीसरे भाग में कण्ठी तथा तिलक छाप इत्यादि । अपने तीनों पुत्रों से मनचाहा माँग लेने को कहा । श्रीकिशोरदास जी ने तिलक, कण्ठी आदि स्वीकार किये, जिससे इन्हें बहुत प्रसन्नता हुई । आपने श्रीकिशोरदासजी को ले जाकर स्वामी श्रीहरिदासजी से दीक्षा दिलवाई ।

सम्वत् १६५५ के लगभग श्रीवृन्दावन में ही आप प्रिया-प्रियतम की सेवा में सदा-सदा के लिए चले आये ।

इमलीतला

श्रीश्रीमन्महाप्रभु चैतन्य, जब ब्रज में पधारे तो उन्होंने अपना विश्राम स्थल अक्रूर घाट पर ही रखा । वहीं से श्रीवृन्दावन में आप नित्य पधारते ।

इमली वृक्ष के नीचे बैठकर इन्होंने विश्राम किया तथा नाम संकीर्तन किया

था । उनके ब्रजागमन का सरस चित्रण श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने बहुत ही मर्मस्पर्शी शब्दों में किया है-

प्राते वृन्दावन केला चीर घाटे स्नान ।
तैंतुली तला ते आसि करिल विश्राम ॥
कृष्ण लीला कालेर वृक्ष पुरातन ।
तार तले पिंडि बाँधा परम चिक्कण ॥
निकटे यमुना बहे शीतल समीर ।
वृन्दावन शोभा देखे यमुना तीर ॥
तैंतुल तले वसि करे नाम सङ्कीर्तन ।
मध्याह्न करि आसि करे अक्रूरे भोजन ॥

('चैतन्य चरितामृत' मध्य लीला)

दूसरे दिन प्रातःकाल उठकर श्रीमहाप्रभुजी, श्रीवृन्दावन में चले आये । चीर घाट पर स्नान किया तथा इमली वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम किया। वह इमली का वृक्ष श्रीकृष्ण लीला के समय का प्राचीन वृक्ष है । श्रीयमुना निकट ही तरंगित हो रही थीं। शीतल समीर बह रही थी। श्रीयमुना तथा श्रीवृन्दावन दर्शन कर महाप्रभुजी वहाँ बैठ संकीर्तन करने लगे। मध्यान्ह में अक्रूर घाट पर जाकर उन्होंने भोजन किया ।

इमली तला नाम से विख्यात यह स्थली आज भी अपनी उसी भावना से ओत-प्रोत है और यह इमली वृक्ष शाखा-प्रशाखा श्रीकृष्ण के समय से चला आ रहा है।

श्रृंगार वट

अत्रावरोपिता कान्ता पुष्पहेतोर्महात्मना ।
अत्र प्रसूनावचयः प्रियार्थे प्रेयसा कृतः ।
प्रपदाक्रमणे एते पश्यता सकले पदे ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/30/33)

श्रीकृष्ण ने पूर्व में जिन गोपिकाओं को रास में सम्मिलित होने का प्यार भरा आश्वासन दिया था, वह समय आ पहुँचा। श्रीकृष्ण ने उपयुक्त वातावरण देखकर अपनी प्यारी मुरलिका फेंट से निकाली ।

वंशी निनाद सुन धावित ब्रज-बालाऐं यमुना पुलिन पर आ पहुँचीं । प्रियतम श्यामसुन्दर ने सभी की रसीली अभ्यर्चना की । समस्त लोकों में श्रेष्ठ

1. देखो-देखो, यहाँ परम प्रेमी ब्रजवल्लभ ने फूल चुनने के लिये प्रेयसी को नीचे उतार दिया है और यहाँ परम प्रियतम श्रीकृष्ण ने अपनी प्रेयसी के लिये फूल चुने हैं। उचक-उचक कर फूल तोड़ने के कारण यहाँ उनके चरणों के अग्रभाग से पृथ्वी दबी दीख रही है, ऐड़ी का पता नहीं है।

प्रेम स्वरूपा यह ब्रज-बालाऐं अपने सौभाग्य से पुलकित हो गईं। ब्रजाङ्गनाओं के प्रेम को और, और पुष्ट करने तथा इनकी भावनाओं को सत्कारने, दुलारने हेतु अपनी ही अनन्य प्रिया श्रीराधा को ले श्यामसुन्दर, इस स्थल पर आ गये।

यहाँ प्रियतम ने विविध पुष्पों का चयन किया। चारों ओर से सुगन्धित पुष्पों को चयन करते हुए कभी वे पुष्प डालियों को एक कर कमल से झुका, दूसरे से पुष्प तोड़ने लगे, प्रियाजी भी अपने दोनों कर-कमलों से उस झुकी डाली पर से पुष्प तोड़ने लगीं। तो प्रियतम ने उस डाली को सहसा ही छोड़ दिया-प्रियाजी के हाथ में वह सुगन्धित पुष्प रह गया, उसकी सुगन्धि से बौराई सी भ्रमरावलि....समस्त उपवन, युगल के रसीले वातावरण से स्निग्ध हो गया। यत्र-तत्र बैठे, विचरण कर रहे पशु-पक्षी रस माधुरी का पान कर मत्त हो गये।

पास ही की एक ऊँची शिला पर बैठ श्यामसुन्दर पुष्पों से प्रियाजी का श्रृङ्गार करने लगे। उन्होंने 'केश प्रसाधनम्', उनकी वेणी गूंथी, उसमें यत्र-तत्र पुष्प अटका, उस छवि का पान करने लगे। उनके कर्णों में छोटे-छोटे पल्लव मण्डित पुष्प अटका दिये। उनके वस्त्राभरणों में भी पुष्पों को सज्जित कर, प्रियतम रस मग्न हो गये।

एक पुष्प, प्रियतम ने अपने कर में ले प्रियाजी को अपने समीप कर, चिबुक उठा उनके नयनों में झाँका, उस सुरस छवि को निहार वे विवश से हो गये, उठा हाथ वहीं स्थिर सा रह गया। स्तम्भित से वे तनिक स्थिर से रह गये, किञ्चित् स्वस्थ हो उन्होंने उस पुष्प को पुनः धारण कराने की चेष्टा की, प्रियाजी ने उनके हाथ से वह पुष्प ले, अपने सम्पूर्ण प्यार से सींच, प्रियतम के केश संवार, उनकी वनमाल में अटका दिया- ओह ! ...... विवश परवश से दोनों .... । प्रियाजी का श्रृंगार निरख प्रकृति सकुचा-सी गई। प्रेम, प्रेम के आस्वादन में मग्न होने लगा, प्रेम, प्रेम के आश्रय में पलने लगा, प्रेम, प्रेम में भर बौरा गया।

उन्हीं रसकणों से पोषित, सिञ्चित-सी यह स्थली 'श्रृङ्गार वट' नाम से प्रसिद्ध हो गई।

श्रीमन्नित्यानन्दजी महाराज

श्रीश्रीनित्यानन्द प्रभु तथा श्रीमाधवेन्द्रपुरी महाराज का यहाँ मिलन हुआ। श्रीनित्यानन्दजी, पुरी महाराज के प्रति गुरु भाव रखते थे।

नित्यानन्दे बन्धु ज्ञान करे माधवेन्द्र ।
माधवेन्द्रे गुरु बुद्धि करे नित्यानन्द ॥

(भ० र०)

ब्रज में पधारे श्रीनित्यानन्दजी, यहाँ श्रीबलराम चरित्र का आस्वादन करते रहे।

झाड़ू मण्डल

श्रृङ्गार वट के साथ ही श्रीबलरामदास बाबाजी का स्थान झाड़ू मण्डल नाम से विख्यात है। बाबा उच्चकोटि के महात्मा थे। विद्वत्ता तथा भावमयता दोनों ही गुण समान रूप से आप में विद्यमान थे।

एक बार आप श्रीमद्भागवत कथा कह रहे थे। अनेक भावुक श्रोता कथा में विराजमान थे। सहसा बाबा ने पाठ बन्द कर दिया तथा श्रीयमुना की धारा में छलांग लगा अपना शरीर त्याग करने का दृढ़ विचार बना लिया, सबके पूछने पर अपने हृदय में काम जागृत होने की बात बाबा ने निस्संकोच सबसे कह दी। आपके चरित्र में न तो कोई दोष था और न ही आप में किसी काम विकार की सम्भावना हो सकती थी।

कदाचित् अन्नदोष के कारण ऐसा हुआ होगा, यह विचार कर श्रीगोविन्दजी के मन्दिर में प्रसाद के विषय में पूछा गया तो वास्तव में कलकत्ते की किसी वेश्या की ओर से उस दिन के प्रसाद की व्यवस्था हुई थी, ऐसा पता चला।

एक प्रश्न स्वाभाविक ही बुद्धि प्रधान लोगों के मन में उठ सकता है-'कि इस सबका प्रभाव अन्य लोगों के मन पर क्यों नहीं हुआ।' इसका निराकरण केवल यही है कि श्रीबाबा महाराज का अन्तःकरण अत्यन्त शुद्ध था-अतः सूक्ष्म से सूक्ष्म विचार की प्रतिक्रिया भी उनके मन पर होती थी। अन्य वैष्णवों का मन उतनी सूक्ष्मता को न पकड़ सका।

यहीं पास में एक मैया रहती थी। उनके पास श्रीगोपालजी की सेवा थी। बड़ी कर्मठ थी वह मैया। समय-असमय जब भी रात में नींद खुल जाती आटा पीसने लगतीं। इससे श्रीबलरामदास बाबा के भजन में विघ्न होता, उनके सेव्य श्रीगोपालजी की नींद भी उचट जाती। गोपालजी कभी कभी मैया को समय, असमय चक्की न चलाने का आग्रह करते रहते। बाबा के मन में भी विक्षेप होता था।

एक दिन मैया आधी रात में जग गई और चक्की पीसने की तैयारी करने लगीं, तो उनके सेव्य श्रीगोपालजी प्रकट हो गये और चक्की के ऊपर का पाट उठाकर दूर फेंक दिया तथा स्वयं चक्की के दूसरे पाट पर खड़े हो गये।

श्रीगोपालजी का दर्शन पा वह मैया कृत-कत्य हो गई।

चक्की के दूसरे पाट पर अङ्कित श्रीकृष्ण चरण चिन्ह आज भी इस स्थान पर दर्शनीय है, पास ही श्रीबलरामदास बाबाजी की समाधि है।

मतवाली मीरा

मेवाड़ की राजकन्या श्रीमीराजी की प्रेम मतवाली स्वर लहरी सदा-सदा से साधकों का पथ-प्रदर्शन करती रही है। उनके जीवन की सात्विक वृत्तियाँ ही

इनकी साधन प्रणाली रही हैं। वृन्दावन के प्रति उनका अटूट लगाव था। श्रीकृष्ण प्रेम की गायिका मीरा वृन्दावन की आसक्ति को लेकर ही घर से निकलीं। श्रीकृष्ण उनके प्रियतम थे, जीवन सर्वस्व थे। ब्रज तथा वृन्दावन में उनकी निष्ठा थी, एक जगह वे कहती हैं -

'माई म्हाने लागे वृन्दावन नीको' इतना ही नहीं जहाँ घर-घर में हो रहे तुलसी पूजन की सुगन्ध परिव्याप्त है, जिसके पराग से आकृष्ट हो श्रीकृष्ण भ्रमर वृन्दावन में ही नित्य निवास करते हैं-उसी श्रीवृन्दावन की रूप मधुरिमा में आसक्त, यहाँ की अलबेली दिव्य प्रकृति से स्पृष्ट होने तथा श्रीकृष्ण चरण रज से अभिषेक कर धन्या होने को श्रीकृष्ण दीवानी मीरा यहाँ चली आई।

मीराजी के पद उनके हृदय के उद्गार हैं, उनकी अनुभूतियाँ हैं। उन्होंने जो भी श्रीकृष्ण भाव में मत्त हो गाया वही पदों के रूप में हमारे सामने उपलब्ध है।

श्रीकृष्ण के अभाव में जहाँ एक ओर 'दरस बिन दुःखन लागे नैन','मैं तो श्याम बिना न जीऊँ री माई', कहकर मीराजी ने अपने हृदयोद्गार व्यक्त किये हैं वहीं दूसरी ओर, 'माई री मैंने गोविन्द लीन्हों मोल', 'मेरी उनकी प्रीत पुरानी', 'म्हारो जन्म-मरण रो साथी' कहकर अपने नित्य तथा शाश्वत सम्बन्ध का परिचय दिया है। प्रेम का सौदा है यह, प्रेम के वशीभूत हुए श्रीकृष्ण कहीं सावन में अपनी प्रिया श्रीमीराजी के साथ वर्षा विहार का आनन्द ले रहे हैं- तो कहीं होली के मादक दिवसों में तन-मन किसी विशेष रङ्ग में भिजो, रस में सराबोर कर रहे हैं, और वे गा उठती हैं - 'पीछे से छिप के आये हँस के कियो प्यार।'

श्रीकृष्ण के प्रति उनका दृढ़ अनुराग था, उनके अतिरिक्त कोई अन्य उन्हें पुरुष रूप में दिखाई न देता था। जब वे श्रीवृन्दावन आईं, यहाँ श्रीजीव गोस्वामी नाम के एक गौड़ीय वैष्णव अपने भजन साधन द्वारा वृन्दावन की शोभा बढ़ा रहे थे। उनका नाम सुन वे, श्रीजीवजी से मिलने गईं। श्रीजीवजी ने 'वे स्त्रियों के दर्शन नहीं करते' यह कह मिलने से इन्कार कर दिया। अपनी अनन्य निष्ठा का प्रतिपादन करतीं मीराजी ने कहा, "मैंने तो सुना था श्रीवृन्दावन में एकमात्र श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं, उनके अतिरिक्त उनके पट्टीदार कौन पुरुष श्रीवृन्दावन में विराज रहे हैं।' सन्देश वाहक ने सारी वार्ता श्रीजीव गोस्वामी पाद से कह सुनाई। यह सुन श्रीजीव गोस्वामी भागे चले आये और मीराजी के चरण पकड़ क्षमा-याचना करने लगे।

अन्त में श्रीमीराजी द्वारिका चली गईं और वहीं श्रीरणछोड़जी के श्रीविग्रह में समा गईं। वे अन्दर श्रीरणछोड़जी के मन्दिर में प्रविष्ट हुईं- जब पुजारी ने जाकर देखा तो उनकी साड़ी का एक छोर ही बाकी रह गया था। ऐसी थीं अपूर्व निष्ठा सम्पन्न, श्रीमीराजी।

निधिवन के पास ही मीराजी का मन्दिर आज भी अपनी उज्ज्वल कीर्ति का प्रकाश कर रहा है ।

चीर घाट

तासां वासांस्युपादाय नीपमारुह्य सत्वरः ।
हसद्भिप्रहसन्बालैः परिहासमुवाच ह ॥

(श्रीमद्भागवत 10/22/9)

श्रीकृष्ण प्रेम स्वरूप हैं । 'नित्य वर्धमानम्' ही प्रेम का लक्षण है । रसास्वादन हेतु विभिन्न उपक्रमों से अपनी प्रेयसी वृन्द को, अपने प्रेमियों को, रिझाते हैं यह प्रणयी रिझवार । इनकी मनहर छवि ने ऐसी कौन नारी हृदया है जिसे आकृष्ट नहीं कर लिया । यावत प्रकृति, जड़ चेतन इनकी माधुरी का पान कर बौरा गये हैं ।

भोली-भाली कुमारियों ने देखी यह मधुर मूरति, बंक विलोकन, मधुर-हास युत शोभा तथा छेड़-छाड़ भरी सरस वार्ताएँ । कैशोर्य में प्रविष्ट होतीं इन बालाओं के अनजाने में ही, सरस आर्कषण उन्हें खींचने लगे । उन्होंने मन ही मन श्रीकृष्ण को प्रियतम स्वीकार कर लिया । (वे तो चिर-प्रियतम ही हैं ।) प्रिय प्राप्ति हेतु जो भी जप या तप उन्हें आवश्यक लगे वे सभी का पालन करने लगीं ।

वे कात्यायनी व्रत करने लगीं । नित्य ही यमुना स्नान करने जातीं, वहाँ देवी कात्यायनी की आराधना करतीं और मन्त्रोच्चारण करतीं-

"कात्यायनि महामाये महायोगिन्यधीश्वरी।
नन्दगोपसुतं देवि पतिं मे कुरुते नमः ॥

अपने जनों की कामना को सहज ही उसी क्षण स्वीकार कर लेने में अति आतुर श्रीकृष्ण से यह सब छिपा न रहा ।

'ये यथा माम् प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।'

उन कुमारियों की सेवा स्वीकार कर उन्हें सुख प्रदान करने हेतु श्रीकृष्ण वहीं चले आये, जहाँ वे गोपिकाऐं श्रीयमुना स्नान कर रही थीं । उनके वस्त्र उठाकर श्रीकृष्ण पास ही के कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये । हँसी-हँसी में वे गोपिकाओं से कहने लगे ।

अत्रागत्यावलाःकामं स्वं-स्वं वासः प्रगृह्यताम्।
सत्यं व्रवाणि नो नर्म यद् यूयं व्रतकर्शिताः ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/22/10)

1. अरी बालिकाओं तुम यहाँ आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ । मैं तुम से सत्य कहता हूँ, हँसी नहीं करता, क्योंकि व्रतादि का पालन करने से तुम अत्यन्त कृश हो गई हो ।

भगवान श्रीकृष्ण को इस प्रकार हँसी करते देख वे बालाएँ अत्यन्त मोहित हो गईं । वे उनको अपना पति स्वीकार कर ही चुकी थीं, फिर भी लज्जावश आकण्ठ जल में खड़ी हो श्रीकृष्ण से विनय कर बोलीं, "हे प्यारे तुम नन्दजी के लाड़ले हो । हमारे अत्यन्त अपने हो, अतः हमारे वस्त्र दे दो ।"

ऐसा कौन-सा स्थान है, जहाँ श्रीकृष्ण न हों । वे घट-घट व्यापी हैं । हर स्थान पर उनकी गम्यता है, यह विचारकर सूर्य को प्रणाम करती हुई वे जल से बाहर आईं, तथा अपने अपने वस्त्र लेकर धारण कर लिए । श्रीकृष्ण से अपने व्रत की सफलता तथा रास में सम्मिलित होने का आवश्वासन पा वे ब्रज कुमारियाँ अपने-अपने घर लौट गईं ।

गोपिकाओं के चीर हरण की यह स्थली 'चीर हरण घाट' अथवा 'चीर घाट' के नाम से आज भी अपनी पूर्व गाथा को दोहरा रही है ।

श्रीश्रीराधादामोदरजी

श्रीरूप गोस्वामी पाद द्वारा सन् १५९९ में श्रीश्रीराधादामोदरजी की स्थापना हुई । यवनों के आक्रमणों के भयवश सुरक्षा के लिए अधिकारी, इन श्रीठाकुरजी को जयपुर ले गये । श्रीठाकुरजी अद्यावधि वहीं विराजमान हैं ।

यहाँ श्रीरूप गोस्वामीजी की भजन कुटी तथा समाधि है । मन्दिर के दक्षिण की ओर श्रीजीव गोस्वामी तथा श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी की समाधि है ।

श्रीसनातनजी को श्रीगोपालकृष्ण ने चकलेश्वर (गोवर्धन) में स्वयं ही अपनी चरण चिन्हित जो शिला दी थी आज भी यहाँ दर्शनीय है । श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी के दिन शिला दर्शन सर्वसाधारण के लिए सुलभ होता है ।

रासमण्डल

गोपिका शतकोटिभिः कृष्णरासोत्सवाय च ।
नमस्ते रासगोष्ठाय वैमल्य वरदायिने ॥[1]

(पद्म पुराण)

शरद चन्द्रिका स्नात रात्रियों की मनोरमता का अपना ही सौन्दर्य है । एकान्त, नीरवता, पुष्पान्वित सौरभ को ले प्रवहमान समीर, सघन निकुञ्जों में बिखरी चन्द्रिका, वंशी निनाद, उस मधुर स्वर लहरी को सुन एकत्रित गोपीवृन्द-सभी सरस है, सुन्दर है, सुरमणीय है ।

1. हे शतकोटि गोपिकाओं सहित विराजमान श्रीकृष्ण रासस्थल ! हे विमल वर दाता रास गोष्ठी स्थल । आपको नमस्कार है ।

प्रियतम श्रीकृष्ण अपनी प्राणाराध्या किशोरी श्रीराधा तथा कोटि-कोटि गोपी समूह सहित सुरमणीय यमुना तट पर, सघन निकुञ्जों में रास के लिए उपयुक्त स्थली देख, मण्डलाकार शोभायमान हो गये। दो-दो गोपियों के मध्य श्रीकृष्ण दीखने लगे। कहीं पद गान का दिव्य वातावरण छा गया तो किसी निकुञ्ज में नृत्य की स्वर लहरी गूंज उठी, कहीं हास भरी वार्ताओं की झड़ी ही लग गई तो कहीं प्रणय पगी रस चेष्टाओं में प्रियतम अपनी सखीवृन्द सहित रस रहसि केलि में मग्न, मत्त हो गये। वहीं बह चली रस की वह उद्दाम केलि।

पादन्यासैर्भुजविधुतिभिः सस्मितैर्भ्रूविलासै-
र्भज्यन्मध्यैश्चल कुचपटै कुण्डलैर्गण्डलोलैः।
स्विद्यन्मुख्यः कबर रशनाग्रन्थयः कृष्णवध्वो
गायन्त्यस्तं तडित इव ता मेघचक्रे विरेजुः॥

(श्रीमद्भागवत 10/33/8)

रास रस मग्न हो यह बालाएँ प्रणय बेसुधि में खो गईं, वे नृत्य के समय कभी पाँव आगे बढ़ातीं, कभी धीमी गति से पाँव रखती, साकूत मुस्कान से कभी प्रियतम को निहारतीं। प्रियतम भी प्रत्युत्तर में मुस्कराकर स्वागत करते। नृत्य में बजते कङ्कण, हिलते कुण्डल, चञ्चल भ्रूभङ्गी उन्मुक्त वस्त्राञ्चल, थिरकते चरण तथा मचलते उरों की धड़कनें, ओह ! उस सब सुरस वातावरण से सारी स्थली उन्मादित हो गई। उस शोभा को निरख काम और रति लजा गये। सुरस चेष्टाओं से प्रियतम ने सभी को दिव्य रस में सराबोर कर दिया।

उस सब केलि रहस्यों से परिचित है यह स्थली जो 'रासमण्डल' के नाम से विख्यात है। इसका प्राकट्य श्रीहरिवंशजी महाराज ने किया। श्रीध्रुवदासजी यहीं की लता-पता में सशरीर समा गये थे।

श्रीसेवकजी (दामोदरदासजी)

जबलपुर के पास ही एक गाँव है, गढ़ा ग्राम। वहीं श्रीदामोदरदासजी का जन्म हुआ। इन्हीं के एक मित्र थे चतुर्भुजदास। वहाँ दोनों ही भगवत लीला चर्चा का आनन्द लेते।

एक बार कुछ रसिक महानुभाव ग्राम में पधारे। चतुर्भुजदासजी तथा श्रीदामोदरदासजी (सेवकजी) वृन्दावन सम्बन्धी तथा प्रिया-प्रियतम की चर्चा सुन आनन्द विभोर हो गये।

किन्हीं कारणों से दोनों ही वृन्दावन जल्दी न आ सके। इसी मध्य श्रीश्रीहित-हरिवंशजी महाराज निकुञ्ज में प्रवेश पा गये। उन्हीं के ज्येष्ठ पुत्र

श्रीवनचन्द्रजी महाराज उनकी गद्दी पर विराजे। श्रीचतुर्भुज दासजी ने वृन्दावन आकर उनसे दीक्षा ले ली, परन्तु श्रीदामोदरदासजी अपने निश्चय पर अडिग रहे, उनका निश्चय था कि दीक्षा तो श्रीहित-हरिवंशजी से ही लेंगे।

श्रीसेवकजी महाराज वहीं ग्राम में एक पीपल के वृक्ष के नीचे बैठ 'हरिवंश' जी महाराज का स्मरण करने लगे। सहसा वहीं श्रीवृन्दावन धाम प्रकट हो गया। प्रिया-प्रियतम की लीला का दर्शन हुआ तथा श्रीश्रीहरिवंशजी महाराज ने श्रीसेवकजी को अपना लिया। इनके मस्तक पर हाथ रखा और मन्त्र प्रदान किया।

श्रीचतुर्भुजदासजी जब गाँव लौटे तो श्रीसेवकजी को देखकर स्तब्ध रह गये। श्रीवनचन्द्रजी ने सेवकजी को श्रीवृन्दावन बुलवाया। इनके आने पर उन्होंने प्रसन्नता में भर, समस्त भण्डार लुटा दिया। सेवकजी द्वारा प्रणीत पद संग्रह श्रीहित चतुरासी का पूरक माना जाता है।

श्रीवृन्दावन में रास मण्डल के निकट ही श्रीसेवकजी महाराज वट वृक्ष में समा गये।

श्रीध्रुवदासजी

श्रीश्रीमन्महाप्रभु हित-हरिवंशजी महाराज के शिष्य थे, श्रीविट्ठलदासजी जिन्होंने हरिवंशजी के निकुञ्ज प्रवेश के वियोग में अपने शरीर का परित्याग कर दिया था। उन्हीं के प्रपौत्र हुए श्रीध्रुवदासजी। बालपन में ही अपने दादा के संस्कार इनमें उभर आये और पाँच वर्ष की अवस्था में ही इनमें उत्कट वैराग्य छा गया। बालक ध्रुव ने पाँच वर्ष की अवस्था में ही भगवान के दर्शन प्राप्त कर लिए थे, इनमें वैराग्य दृढ़ हो गया देख लोग इन्हें ध्रुवदास नाम से पुकारने लगे।

श्रीहित-हरिवंशजी महाराज के तृतीय पुत्र श्रीगोपीनाथजी से आपने दीक्षा ग्रहण की।

रास मण्डल के निकट ही एक बार आप प्रिया-प्रियतम की लीला गान के लिए आदेश पाने के लिए दृढ़ संङ्कल्प हो गये तो प्रिया-प्रियतम ने प्रकट होकर इन्हें लीला गान करने का संकेत दिया। प्रिया-प्रियतम की इन पर विशेष कृपा थी। इन्होंने युगल के प्रत्यक्ष दर्शन कर अनेक पदों का सृजन किया जो 'बयालीस लीला' नाम से संग्रहीत हुआ-सभी के लिए सुलभ हो गया है।

श्रीध्रुवदासजी एकान्त प्रिय तथा विनम्र रसिक सन्त थे। रासमण्डल के पास ही श्रीहरिवंशजी महाराज की समाधि के निकट ही आप भी एक तमाल विटप में सदेह लीन हो गये।

भक्तिमती ऊषा बहन जी

रस रास की यह स्थली महारास के लिये प्रसिद्ध है। प्रिया-प्रियतम अपनी कायव्यूह इन कोटि-कोटि ब्रजाङ्गनाओं सहित माधुर्य और लावण्य के अगाध रस सागर की थाह पाने में रत उसकी गहराई और गहराई, प्रणयोन्मत्त हो गहराई की थाह पाते मग्न मत्त होते रहे हैं। उन्हीं रसकणों की उच्छलन आज भी स्थायित्व लिये अनेकानेक ऐसी विभूतियों को आप्लावित करती रही है, कर रही है जो आज हमारा आदर्श बन पथ प्रशस्त कर रहे हैं। श्री ध्रुवदास जी, श्रीसेवक जी, श्रीनरवाहन जी के नाम तो यहाँ से जुड़े हैं ही-आज के युगीन सन्दर्भ में एक ऐसी महान विभूति ने इस स्थली से सम्बन्ध जोड़ा और सतत रस विलास में मत्त हो यहीं की हो गईं। वे थी 'ब्रज विभव की अपूर्वश्री भक्तिमती ऊषा बहन जी।'

बात अधिक पुरानी नहीं है-अनेक सन्त महानुभाव आज भी इस महामानव के आदर्श चरित्र को समझने पर भी अछूते से ही कहना होगा क्योंकि सन्तों का अपना एक व्यक्तित्व होता है। वे प्रकाश में आना नहीं चाहते, अनेक ऐसे महानुभावों का नाम भी सन्तों की अग्र पंक्ति में लिखा जाता है जिनका उस अखण्ड माधुर्य से नित्य सम्बन्ध हो जाता है, साथ-साथ उनका बाह्य जीवन, अनेक सद्प्रवृत्तियों में लगा रहता है, जो आवश्यक भी माना जा सकता है, परन्तु कुछ ऐसे महान सन्त भी इस ब्रज भूमि में प्रादुर्भूत होते है जो अपने जीवन की अभीप्सा के लिये ब्रज भुवि के आश्रय में आ, यहाँ के कण कण में रम गये और बाह्य किसी भी अन्यथा प्रपञ्च की कल्पना न उन्हें हुई और न वे इस हेतु से कहीं प्रयोजन ही रखते रहे- ऐसे विरले सन्तों की गिनती मात्र ही हो सकती है। प्रातः स्मरणीय यह विभूतियाँ अपने आध्यात्मिक वातावरण से साधक वर्ग को परिष्कृत तथा परिशोधित करने की सामर्थ्य से सम्पन्न होती हैं- ऐसे विरले सन्तों में भक्तिमती ऊषा बहन जी का व्यक्तित्व एक ऐसे विशिष्ट आदर्श से सम्पन्न रहा है, एक ऐसी श्रीठाकुर जी की सेवा-भाव तथा निष्ठा से ओत-प्रोत रहा, एक ऐसी रस माधुरी में सिक्त-सिञ्चित रस से सराबोर रहा है, एक ऐसे निःस्पृह निःश्रेयस जीवन यापन का आदर्श स्थापित करता रहा है सर्वोपरि रस की उस माधुरी की इतनी गहराई, इतनी अधिक गहराई में पैठ वहाँ की रसानुभूति उनके वपु से छिटकती रही है कि आज अनेक महानुभाव उस रस से आप्लावित हैं-आप्यायित हैं और वह अवलम्ब उनके लिये संजीवनी मूरि के रूप में प्रकट है।

"ब्रज की उपासना में तत्सुखे सुखित्वं का भाव प्रेम की उसी बुलन्दी पर

पहुँचाने का आदर्श स्थापित करता है। जहाँ-जहाँ, जिस-जिस तरह भक्ति, विरह एवं रस का पदार्पण हुआ, वह सब ब्रज का स्पन्दन तथा ब्रज का अभिनिवेश बन जाता है। भक्तिमती ऊषा बहन जी के जीवन में वह सब मात्र घटना ही नहीं यह उनके जीवन का आन्तरिक उन्मेश था, जिसका क्रम सतत उनमें चला आ रहा था। मात्र उसका अनावरण घटनाक्रम में हुआ।"

'बाबा श्रीपादजी महाराज'

अपने अध्यापन काल में ही जिस अद्‌भुत स्नेह और वात्सल्य द्वारा छात्र छात्राओं का पोषण इन्होंने किया, उसके साथ-साथ श्यामा-श्याम की रस-निधि से परिचय करा रस समुद्र में छोड़ दिया, यह उन्हीं के सामर्थ्य की बात थी। जो भी, जिस किसी तरह उन से जुड़ गया, जुड़ना तो बहुत बड़ी बात थी उनके यत्किञ्चित् भी सम्पर्क में आ गया- उस रस सरोवर के तट पर प्रवहमान समीरण के संस्पर्श को प्राप्त कर गया- वह रस की अगाधता में डूब गया। ओस चाटने से कभी प्यास नहीं बुझती और यदि पिपासा का शमन होता है तो उसे मात्र भ्रम कहना होगा। प्रणय रस माधुरी, सखी भाव भावित हृदय की माँग है-जिसकी अभीप्सा है-उसका शमन रसाम्बुधि की लोल लहरियों के तल में निहित है।

पूजनीया बहनजी का जन्म ३० जुलाई १९२५ को अम्बाला में हुआ। वहाँ रह कर भी उनके जीवन का प्रत्येक क्षण वृन्दावन के रसीले वातावरण से जुड़ा था। पल-पल अपने कर्तव्यों को पूर्ण कुशलता से निबाहते रहने पर भी वे ब्रज वृन्दावन तथा प्रिया-प्रियतम से सतत जुड़ी रहीं, प्रत्युत उनका जीवन इस सब से ओत प्रोत रहा। शरीर रुग्ण होने पर एक जगह वे स्वयं लिखती हैं, "मुझे आज भी प्रत्यक्ष की भाँति स्मरण है वह दृश्य, उनका हास भरा चन्द्रानन। युगल विशाल नयनों से झरती हुई ममता, करुणा और अपनत्व की शत शत रश्मियाँ। हाँ! यह शरीर तो यहीं पड़ा था रोगी और कृश, पर जाने किस प्रबल प्रेरणा से दिव्य शरीर से यमुना तटवर्ती कदम्ब वृक्ष के नीचे पहुँच गई थीं, वहाँ प्रियाजी आईं और।" ऐसा अभूतपूर्व योग, ऐसी दिव्य अनुभूति-ऐसा सामर्थ्य सम्पन्न चरित्र साधारण नहीं कहा जा सकेगा। युगीन परम्पराओं में गत की जिन नित्य सिद्ध, घटनाओं और चरित्रों को देख बुद्धिजीवियों के लिये एक प्रश्न चिन्ह लग जाता है, और वे भ्रमित से हो जाते हैं, मैं उनके लिये एक ऐसे अप्राकृत तथा अलौकिक व्यक्तित्व का प्रकाश दर्शाना चाहता हूँ। अध्यात्म की बुलन्दियाँ, प्रिया प्रियतम का सहज सान्निध्य-रस गाम्भीर्य में उन्मेष तथा इस जगत में सजगता का आदर्श, भोर तथा साँझ का, पूर्व तथा पश्चिम का अद्‌भुत संगम ही कहना होगा।

वृन्दावन के सरसीले वातावरण में जहाँ जीवन का उत्तरार्ध, श्रीठाकुर सेवा, प्रिया प्रियतम की रहसि केलि, माधुर्य रस सिन्धु में रसावगाहन, यहाँ की स्थलियों में विचरण कर सतत आनन्द में बिताया था, आज इन सब से मन हट गया, सतत लीला चिन्तन और उसमें अभिनिवेष, बाह्य सभी कृत्यों में उदासीनतावत सम भाव, सहज स्वभाव बन गया और ब्रज विभव की यह 'श्री' वृन्दावन 'श्री' की 'श्री' में घुल मिल गईं- ऐसा अद्भुत सम्मिलन समारोह काश इसे सभी देख पाते। पार्थिव वपु से वे अदृश्य हो गईं, परन्तु जिस नित्य लीला सुख में जा मिलीं-उसकी स्थिति अमिट है, अनन्त है, जहाँ जहाँ प्रिया-प्रियतम प्रकट होकर अथवा नित्य लीला में रत हैं- वहाँ-वहाँ ये उनके साथ हैं अनुभव में हैं, प्रत्यक्ष हैं, अथवा अपनी अपनी श्रद्धा और विश्वास के आधार पर प्रकट हैं।

इह लीला संवरण का आभास उन्हें पहले ही हो गया था। उनके स्वभाव में आमूल परिवर्तन, जिन श्रीठाकुर जी की सेवा को उन्होंने आजीवन सामर्थ्य रहते निभाया, उपरति जहाँ प्रत्येक दिन विश्राम करती थीं, समय से पूर्व ही अन्य स्थान के लिये आग्रह यह सब पूर्वाभास के परिचायक हैं-और फिर अन्तिम समय तक सजग प्रसन्नचित्त, प्रसन्नमुख रहते दोनों नेत्र गोलकों का दो बार बाएँ से दायें घूम जाना इसी पूर्वाभास का संकेत उन्हीं दिनों लिखे उनके एक दोहे से अधिक स्पष्ट हो रहा है-

प्रिया-लाड़िले श्याम घन, लाल लड़ैती बाल।
हंसत हंसत आवत चले, मन्द मनोहर चाल॥

२० फरवरी १९९२ को वे सदा सदा के लिए प्रिया-प्रियतम की सन्निधि में चली गईं, जहाँ से उनका आगमन हुआ था।

निधिवन

युगल रसनिधि का प्रिय, निधिवन प्रणय की अनेक लीलाओं का साक्षी है। एकान्तिक स्थलियों में प्रिया-प्रियतम की रहसि पूर्ण केलि ही सुरत रस की गाथा अभिव्यक्त करती है। प्रिया-प्रियतम का रसमय विलास, वहाँ सखियाँ भी किसी तन्मयता में भर बेसुध सी हो जाती हैं, पुनः पुनः उसी रस में निमग्न हो जाती हैं। यह निधिवन प्रणय की उन्हीं रसीली गाथाओं से ओत-प्रोत है।

नित्य ही प्रिया-प्रियतम यहाँ पधारते हैं, रस केलि में मग्न हो जाते हैं। ऐसी रसमयी दशा को निहार एक सखी अपनी दूसरी सखी को सम्बोधन करती हुई कहने लगी, "अरी बीर ! प्रिया-प्रियतम का रसमय विलास, श्यामल गौर अङ्ग कान्ति का नीलोज्ज्वल प्रकाश, उस प्रकाश में शत-शत अनङ्ग-तरङ्गों को

उच्छलित होते देखा । अधमुँदे नयनों से झरती मधुरिमा को, रसीले उर की विवश-सी मचलती उमङ्ग तरङ्गों को, अस्फुट-सा शब्द करते यह अरुण अधर सखी ! रस समुद्र को स्थिर और स्तब्ध ही नहीं, प्रत्युत 'चापल्य सीम चपलानुभवैकसीम' इस चञ्चलता की सीमा को चपलाओं के प्रेम में बद्ध देखा ।"

प्रिया-प्रियतम इसी निकुञ्ज महल में अपना श्रम निवारण करते हैं । बीच-बीच में नेत्र खोल, रूप रस मधुरिमा का पान कर, अपने नेत्रों की पिपासा का शमन करते हैं । इतना ही नहीं सखी ! इन्हें श्रमित जान जब निद्रा देवी अपने अङ्क में विश्राम देने को सजग हो उठती है-तब यह दोनों ही सुकोमल शैय्याओं पर विश्राम करने लगते हैं । प्रियतम मनोज्ञ तल्पशायी हैं न ! प्रणय पगी भाव लहरियों से तरंगित अपनी प्राण-प्रियाओं की रसाकुलता को किस-किस प्रकार शमित करते हैं-कौन कह सकता है ?

सरसीली भोर में जब पक्षी चहचहाने लगते हैं, केकी समूह दिनकर के आगमन की सूचना देते हैं, निकुञ्ज वीथी कङ्कण तथा पायलों की मधुर ध्वनि से मुखरित हो उठती है, अलसायी सी विवशता में प्रियाजी पूछती हैं-

नींद विवश पूछति हैं प्यारी सांझ भई कै प्रात ।
कहन चहत हैं भोर सांवरो मुख सों निकसत रात ॥

बस यही है यहाँ की मधुर बात जिसमें निमग्न यह युगल, अपनी रसीली चेष्टाओं द्वारा इन निकुञ्जों को धन्य करते हैं ।

रसविहार की इस प्रणय केलि में सम्पूर्ण रस प्रवहमान होता है-और इस रस में तन्मय, सराबोर से यह युगल बावरे रस विभोर हो मग्न हो जाते हैं ।

संश्लिष्ट सर्वांगुलिबाहु युग्म मन्मथ्य देहं परिमोदयन्तीम् ।
उद्बुद्ध जृम्भास्फुटदन्तकान्तिमालोक्य कान्तामुमुहेमुकुन्द : ॥[1]

(गोविन्द लीलामृत 1/53)

'श्रीकृष्ण मिलनोपरान्त श्रमालस युक्त वर्णा' श्रीराधा के श्रमित होने पर श्याम वर्ण तमाल विटप के अङ्क में स्थिर देख लगता है मानो तड़िता ही नवजात घन में स्थिर हो गई है ।

हेमाब्जांग्या प्रबल सुरतायास जातालसायाः,
कान्तस्याङ्के निहित-वपुषःस्निग्धतापिञ्छ कान्तेः ।
शम्पाकम्पा नवजलधरे स्थास्नुतां चेदधास्यत्,
श्रीराधायाः स्फुटमिह तदासाम्यकक्षाम वाप्स्यत् ॥

(गो० लीलामृत 1/55)

1. जो उँगलियों को एक दूसरे में सटा दोनों भुजाओं को ऊँचा कर अंगड़ाई ले रही हैं तथा जमुहाई लेते समय जिनकी दन्त पंक्ति शोभित है - ऐसी श्रीराधा को देख कर प्रियतम सुखी हो रहे हैं ।

यही नहीं युगल केलि सुखसागर में निमग्न उनकी विलास माधुरी का आस्वादन करती हुई सखी तन्मयता में भर अपनी गेह सुधि भी भूल गई।

इत्थंमिथः प्रेम-सुखाब्धि मग्नयोः
प्रगेतनीं विभ्रममाधुरी तयोः ।
निपीय सख्यः प्रमदोन्मदास्तदा
तदात्वयोग्याचरणं विसस्मरुः ॥

(गो० लीलामृत 1/71)

यह है निधिवन की रसमय केलि वार्ता, जहाँ मग्नता ही मग्नता है, प्रेम की पराकाष्ठा है।

श्रीश्री बाँकेबिहारी जी की प्राकट्य-स्थली भी यही है। स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज नित्य ही यहाँ पधारते थे, यहीं उनकी समाधि भी है, श्रीजगन्नाथजी की समाधि यहीं है। रङ्ग-महल तथा ललिता कुण्ड है।

स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज

यह प्रसङ्ग हम पूर्व में श्रीबिहारीजी के प्रसङ्ग में दे चुके हैं। कृपया पृष्ठ ३३३ देखें।

श्रीश्री विट्ठलविपुल देवजी तथा श्रीविहारिनदेवजी महाराज भी यहीं विराजते रहे।

श्रीविट्ठलविपुलदेवजी

आपका जन्म परिक्रमा के रास्ते के साथ ही से लगे राजपुर ग्राम में हुआ। बचपन से ही आप वीतराग थे।

स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज के प्रति आपकी प्रगाढ़ निष्ठा थी। श्रीनिधिवन में स्वामीजी महाराज ने ही इन्हें प्रिया-प्रियतम के दर्शन करा इन पर कृपा की थी।

स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज के प्रति इनका सच्चा प्रेम था। उनके निकुञ्ज लीला प्रवेश के बाद ही इन्हें इतना कष्ट हुआ कि इन्होंने अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली। अनेक रसिकाचार्यों ने मिलकर रास का आयोजन करवाया। पूर्व इंगित अनुसार ही रास में प्रियाजी ने इनके पास आ इनका हाथ पकड़कर पट्टी खोलने के लिए आग्रह किया। जैसे ही इन्होंने पट्टी खोली तो ये वहीं शरीर छोड़ प्रियाजी में लय हो गये। इसी प्रसङ्ग को प्रियादासजी महाराज ने निम्न शब्दों में कहा है -

रास के समाज में विराजे सब भक्तराज
बोल के पठाये आए आज्ञा बड़ौ भार है ।
मिलि गए वाही ठौर पायौ भाव तन और,
कहै 'रस-सागर' ताकौ यों विचार है ॥

यहीं निधीवन में आपकी समाधि है ।

श्रीविहारिनदेवजी

स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज के शुभाशीर्वाद से ही आपका जन्म हुआ था।

नित्यविहार के आप प्रबल समर्थक थे। श्रीविट्ठलविपुलजी के निकुञ्ज प्रवेश के पश्चात् आप उनके स्थान पर विराजमान हुए। श्रीबिहारीजी की सेवा आप बड़े ही चाव से करते।

एकबार आप श्रीयमुना स्नान हेतु जा रहे थे, दातुन मुख में थी। आप निम्न पंक्ति गाते-गाते तीन दिन तक रास्ते में खड़े रह गये-

'विहरत लाल –विहारिन दोऊ, श्रीयमुना के तीरे–तीरे ।'

श्रीसनातनजी ने अपने एक शिष्य से यह सम्वाद सुनकर श्रीबिहारी जी का प्रसाद कह इनके पास मदनमोहनजी का प्रसाद भिजवाया तो इन्हें बाह्य ज्ञान हुआ।

श्री विहारिनदेव जी, स्वामी श्री हरिदास जी की निकुञ्जोपासना के स्तम्भ माने जाते हैं। वास्तव में नित्यविहार के ठीक से ज्ञाता आप ही थे-

गुह्यरीति हरिदास की, विरला कोई बूझ ।
पूछ विहारीदास को जिन समुझायो मूझ ॥

(स्वामी श्रीललितकिशोरीदेवजी)

प्रिया-प्रियतम की निकुञ्ज लीला में मत्त आप ९८ वर्ष की आयु में सदा-सदा के लिए उनकी सेवा में चले गये।

दान-मान तथा कुञ्जगली

सघन कुञ्जों की स्थली है श्रीवृन्दावन धाम। निधिवन तथा सेवाकुञ्ज में यह सघन निकुञ्जें आज भी दृष्टिगोचर हैं। एकान्तिक वीथियों से यह सखीवृन्द कभी दूध-दही बेचने को जाती हैं, कभी जल भरने को।

यह सब तो सम्भवतः बहाने मात्र हैं। 'प्रियतम से मिलने को इन्हीं एकान्तिक वीथियों से, कुञ्ज गलियों से जाते समय नन्दनन्दन, कब इन ब्रजाङ्गनाओं को आ घेरते हैं-यह पता ही नहीं चलता।' वे आ इनसे विविध वार्ताएँ करते हैं, चपलताएँ करते हैं, 'चापल्यसीम' हैं न ! कभी दूध-दही को

चखने की बात कहते हैं और कभी बरबस ही गोरस के मिस जाने क्या-क्या चाहते हैं। इनकी व्यंग्य भरी छेड़-छाड़ से यह ब्रज कुमारियाँ कभी मान करती हैं तो यह रसिक रिझवार मनुहार करते हैं। उनका मान श्यामसुन्दर के सुख के लिए ही होता है। 'जिनकी बिना मोल की चेरी है' -उन्हीं से मान की बात; इनका मान कठिन मान नहीं है। अतः मान में किसी रस दान की नई ही भूमिका बना यह चञ्चल प्रणयी प्रियतम, भाँति-भाँति से इन बालाओं के सुख का हेतु बनते हैं।

एक सखी ने दूसरी को समझाते हुए कहा-

'मै तोसों केतिक बार कह्यो।
इति मारग इक सुन्दर ढोटा बरबस लेत दह्यो।
इत-उत सघन कुञ्ज गह्वर तकि, मारग रोकि रह्यो।
अति कमनीय अंग छवि निरखत, नेक न परत रह्यो।
लोचन सफल होत पल निरखत, विरह न जात सह्यो।
परमानन्द प्रभु सहज माधुरी मन्मथ मान ढह्यो॥

हे बीर ! मैंने तुझे बहुत बार समझाया है। इस मार्ग से होकर न जाया कर; इस मार्ग में एक सुन्दर ढीठ बालक बरबस ही दूध-दही लूट लेता है। सघन कुञ्जों में, इधर-उधर देखकर कहीं निविड़ स्थली पर आ, हमारा मार्ग रोक लेता है। उसकी अङ्ग कान्ति अत्यन्त कमनीय है, उसे देखे बिना एक क्षण का व्यवधान भी इन नेत्रों को सहन नहीं होता। उसकी माधुरी को निरख कर मन्मथ का मान भी नहीं रहता-फिर हम अबलाओं की तो बात ही क्या है ?

इन्हीं सघन निकुञ्जों की दान तथा मान लीलाओं के इतिहास को अपने कोष में छिपाये यह स्थली दानगली तथा मानगली नाम से प्रसिद्ध है। सेवाकुञ्ज के पास ही है।

श्रीनागरीदासजी की समाधि

किशनगढ़ (राजस्थान) के राजा श्रीराजसिंह के पुत्र श्रीसामंतसिंह (नागरीदास) का नाम कौन ऐसा वैष्णव है जो न जानता हो। श्रीवृन्दावन के प्रति इनकी अगाध निष्ठा थी, प्रिया-प्रियतम की मधुर लीलाओं की अनुभूति कर इन्होंने अद्वितीय वर्णन किया है। आज भी नागरी कुञ्ज में तमाल विटपाच्छादित नीरव स्थली पर अपनी मधुर उपासना की पताका फहराती, नागरीदासजी की समाधि असंख्य रसिकों को आकर्षित कर रही है।

श्रीनागरीदासजी की भक्ति-भावना की बात कोई क्या कहेगा ? इन्होंने किशनगढ़ राज्य का परित्याग कर स्थायी रूप से वृन्दावन वास कर लिया था। वे स्वयं तो उच्च-कोटि के भक्त थे ही इनकी माँ, बहिन तथा दासी तक इनसे प्रेरणा पाकर श्रीवृन्दावन वास करने चली आईं और उनकी गणना भी उच्च-कोटि के भक्तों में हुई।

नागरीदासजी ने प्रिया-प्रियतम की दिव्य लीला का बड़ी ही गहराई से अनुभव किया। वास्तव में प्रिया-प्रियतम की उन पर असीम कृपा थी, जो वे उनके अंतरङ्ग जनों में हो गये। इनकी अनुभूतियों के दृश्य इतने सजीव हैं कि देखते ही बनते हैं। रूप रसमयी एक गोपिका का वर्णन करते हुए वे कह रहे हैं -

लहरि-लहरि जौबन करै, थहर-थहर करै देह।
अरग थरग सिर गागरी, नए रसिक सों नेह॥
हरि मूरति चित में चुभी, नैननि पुलकत नीर।
सीस गगरिया गिरत सी, जकि रही जमुना तीर॥
घैरु होत जान्यो न, उर उड़त न जान्यौ चीर।
गिरत न जानी गगरिया, रहत न छांनी पीर॥
हरी-हरी कहि लेहु री बिसरी दधि कौ नांव।
कृष्न मई ग्वारिन भई, कौतग लाग्यो गांव॥
महा रूप मदिरा छकी, चलत डगमगत पाय।
जो देखत ग्वारनि छकि, तिन्है छकनि चढ़ि जाय॥
गिरै न ग्वारनि धुकि उठै, घायल मन रिझवार।
नागरिया रन सुभट ज्यौं, रहत सम्हारि सम्हार॥

सिर पर मटकी धरे आती, ग्वालिनी की शोभा अवर्णनीय है। रसिक रिझवार सों नया नेह, हृदय में उमंग भरे, वह चली आ रही है। उसका आंचल पवन की किसी झकोर से कब सरक गया, उसकी तन्मयता में उसे भान ही न हुआ। ओह ! हृदय की वह अनुराग भरी विवशता। श्यामसुन्दर की छवि उसके नयनों में समा गई और वह 'हरि-हरि कहु लेहु री बिसरी दधि को नाम' और वह 'मधुर भाव में भर मद में इतनी छक गई कि उसकी वह माधुरी जो भी निहारता है वही उस रूप मद में छक जाता है।' रागानुराग की वह साक्षात मूरति-ओह ! सम्पूर्ण प्रकृति मद में भर गई, जिसने देखा- वह भी रस में सराबोर हो गई। यह सब नागरीदासजी की अनुभूति पूर्ण अभिव्यक्ति ही थी।

प्रातः समय के दृश्य का वर्णन करते हुए एक स्थान पर कह रहे हैं -

आनन सौं आनन छियैं, पानन रचे कपोल।
लखि रीझे छवि आरसी, विहसैं लोचन लोल॥
पिय पौंछत पटपीत सौं, प्रिया कपोलन पीक।
नागरि पौंछत लाल के अधरन अञ्जन लीक॥

रूप निरख कर चटपटी लग गई। मन अपने वश में न रहा अतः वह ग्वालिनी बोली-

अरी छैल इह गैल ह्वै अबहि निकस्यो आय।
नैननि नैन मिलाय कै लै गयो मन बहराय॥

एक जगह लगन की बात कहते हुए नागरीदासजी कह रहे हैं -

नागर सैंननि सैंन मिलि बनी न नैंननि नैंन।
बनत बनत ऐसी बनी कहत बनै नहिं बैन॥

अतः परम भक्त नागरीदास जी श्रीवृन्दावन के भक्त रत्नों में आज भी साधकों का पथ प्रदर्शन करते जगमगा रहे हैं।

श्रीजी की कुञ्ज

जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्यजी महाराज के नाम से सबसे बड़ा मन्दिर होने के कारण यह श्रीजी की कुञ्ज अथवा श्रीजी का मन्दिर कहलाता है। सन् १९२६ में जयपुर नरेश की माता भटियानी महारानी तथा आनन्द कुंवरीजी ने इसका जीर्णोद्धार तथा निर्माण करवाया था।

यहाँ श्रीआनन्द मनोहर वृन्दावनचन्द्रजी के दर्शन हैं। उनके प्रसादी जल को लोग दूर-दूर तक ले जाते हैं और अपने बच्चों की बीमारी में प्रसाद रूप में पान कराते हैं।

शाहजी का मन्दिर (ललित कुञ्ज)

लखनऊ के शाह बिहारीलाल के वंश में उत्पन्न श्रीललितकिशोरी तथा ललित माधुरीजी के नाम से सभी वैष्णव परिचित हैं। ये बड़े भावुक थे। श्रीवृन्दावन के प्रति इनकी अनन्य निष्ठा थी।

श्रीवृन्दावन में आने पर आपने कभी जूतों का सेवन नहीं किया। श्रीवृन्दावन की रज को ही परम धन मानते थे।

संगमरमर के इस भव्य मन्दिर में श्रीराधारमण ठाकुर विराजमान हैं।

आपके पितामह शाह बिहारीलालजी ने अपने आराध्य श्री राधारमण लालजी के मन्दिर का निर्माण करवाया था।

श्रीललितकिशोरीजी

शाह कुन्दनलालजी, जो बाद में ललितकिशोरी नाम से वैष्णव जगत में विख्यात हुए, लखनऊ के रहने वाले थे। उर्दू, फारसी का प्रचुर ज्ञान बचपन में प्राप्त कर चुके थे। आपके पितामह द्वारा निर्मित मन्दिर को देखने आप पहली बार श्रीवृन्दावन पधारे तथा यहीं स्थायी रह जाने की उत्कट इच्छा हो गई। बहुत शीघ्र ही पिता, माता पधार गये। सम्पत्ति का शीघ्र बँटवारा कर श्रीवृन्दावन आने का आपका सहज ही सुयोग बन गया।

यहाँ आकर आप बहुत ही विरक्ति से रहे। जूता, चट्टी आदि तक का भी आपने परित्याग कर दिया। ब्रजरज के प्रति आपकी दृढ़ आस्था थी।

सं. १९१५ में विप्लव के समय ठा. हीरासिंह के नेतृत्व में लुटेरों का एक दल वृन्दावन आया। वे लोग इनके सामने कुछ भी उपद्रव न कर सके। इन्होंने अपने पास रख उनके लिए प्रसाद आदि की व्यवस्था करवा दी। यह बात जब अंग्रेजी शासकों को पता चली तो इन पर विद्रोहियों की सहायता करने का अभियोग चला। परन्तु श्रीकृष्ण की प्रेरणा के वशीभूत मैजिस्ट्रेट इनकी निर्भीकता से प्रभावित हो गया।

आपके पदों में प्रिया-प्रियतम की लीला माधुरी का अत्यन्त सजीव वर्णन हुआ है।

कार्तिक शुक्ला द्वितीया के दिन सं. १९३० को स्वयं श्रीयमुना रज लाकर चबूतरा बनाया तथा उस पर विराजमान हो गये। इधर सङ्कीर्तन होता रहा और उसी में स्वर मिला 'राधेश्याम' राधे-श्याम कहते हुए आप नित्यलीला में सदा-सदा के लिए प्रवेश पा गये।

श्रीललितमाधुरीजी

शाह फुन्दनलालजी अपने बड़े भाई के सर्वदा अनुगत रहे।

बड़े भाई की आज्ञा शिरोधार्य करते। एकबार ज्वराक्रांत होने पर इन्होंने ठण्डा जल पी लिया, ललितकिशोरीजी ने कहा, "ज्वर में जल पीना ठीक नहीं।" इन्होंने जल छोड़ ही दिया, बाद में जब भैया ने आज्ञा दी तो लगभग १४ घण्टे बाद ही जल की बूंद ग्रहण की।

इनका चरित्र भी बड़ा ही विलक्षण था। श्रीकृष्ण की कृपा का इन्हें सर्वदा भरोसा रहता। एकबार रासमण्डली श्रीयमुना में जल-क्रीड़ा हेतु जा रही थी, रास्ते में दो सांड़ लड़ रहे थे। आप निर्भीकता से उनके पास गये और पुचकारते हुए उनके सिर पर हाथ रख दिया। दोनों सांड़ उसी समय शान्त हो गये।

अपने बड़े भाई की भाँति श्रीललितमाधुरीजी भी श्रीयमुना रज के चबूतरे पर विराजमान हो सङ्कीर्तन करते-करते प्रिया-प्रियतम की नित्य लीला में प्रवेश कर गये।

श्रीराधारमण जी

संवत १५९१ में आपका प्राकट्य हुआ, माना जाता है। स्वयं प्रकट श्रीठाकुर स्वरूपों को अधिकांश यवनों के आक्रमणों के भय तथा सुरक्षा व्यवस्था हेतु, गोस्वामी गण राजस्थान ले गये थे, परन्तु आजकल वृन्दावन में विराजमान स्वयं प्रकट ठाकुर स्वरूपों में श्रीराधारमणजी यहीं विराजमान रहे। अपने भक्तों की सेवा स्वीकार कर भगवान सदा से उनके ऋणी बने रहे हैं। आपके प्राकट्य सम्बन्धी एक बड़ा ही रोचक प्रसङ्ग विख्यात है, जिसे हम संक्षेप में नीचे उद्धृत कर रहे हैं।

श्रीश्रीगोपालभट्टजी महाराज बड़ी कर्मठता से श्रीशालग्रामजी की सेवा किया करते थे। एकबार एक सेठ श्रीवृन्दावन में आये तथा अनेक श्रीठाकुर स्वरूपों को स्वर्णिम अलङ्कार धारण करवाये। श्रीगोपाल भट्टजी महाराज बड़े उत्सुक हुए तथा इनके मन में प्रबल लालसा जगी, 'यदि मेरे सेव्य शालग्रामजी के भी चरण, हस्त आदि श्रीअङ्ग दीखते तो मैं भी इन्हें श्रृङ्गार धारण कराता।' श्रीठाकुरजी का विरद है। 'ये यथामाम् प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।' यही हुआ; श्रीशालग्राम जी को अपनी लीला दिखानी थी। दूसरे दिन श्रीगोपालभट्टजी जब शालग्रामजी की नित्य सेवा हेतु गये तो श्रीशालग्रामजी के चरण, हस्त आदि मुखारविन्द सहित दर्शन हुए। उनके पृष्ठभाग में श्रीशालग्राम जी ज्यों के त्यों विराजमान रहे। श्रीगोपालभट्टजी के हर्ष का पारावार न रहा। उन्होंने अपने श्रीठाकुरजी को वस्त्राभरण पहनाये, वे ही श्रीशालग्रामजी आज श्रीराधारमण स्वरूप में अपनी अलौकिक छटा का प्रसार करते हुए विराजमान हैं।

इस मन्दिर का निर्माण वि.सं. १६४३ में हुआ। पास ही श्रीगोपाल भट्टजी की समाधि स्थली है।

श्रीश्रीगोपालभट्ट गोस्वामी

दक्षिणात्य ब्राह्मण श्रीवैंकटभट्टजी को आपके पिता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। दक्षिण यात्रा में, जब श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभुजी पधारे तो, गोपालभट्ट अभी आठ-नौ वर्ष के बालक ही थे, परन्तु इन पर महाप्रभु जी का अमिट प्रभाव पड़ा। इनके पिता से महाप्रभुजी ने बालक को विद्याध्ययन कराने का आग्रह किया।

कुछ ही दिनों बाद पिता की मृत्यु हो गई तथा गोपालभट्टजी श्रीवृन्दावन चले आये । श्रीरूपजी, सनातनजी श्रीधाम वृन्दावन में विराजमान थे । श्रीसनातनजी से आपने भक्ति शास्त्र का अध्ययन किया ।

महाप्रभुजी ने श्रीगोपालभट्टजी के लिए एक हस्तलिखित पत्र, डोर, कोपीन तथा बैठने का एक आसन भेजा था ।

संवत १६३८ में आप नित्यलीला में प्रवेश कर गये । इन्हीं के शिष्य श्रीगोपीनाथजी तथा श्रीदामोदरदासजी ने श्रीराधारमणजी की सेवा सम्हाल ली, वर्तमान सेवायत गोस्वामी-गण श्रीदामोदरदासजी के ही वंशज हैं ।

श्रीश्रीगोपीनाथजी

श्री राधारमण जी के मन्दिर के पास ही श्रीगोपीनाथजी विराजमान हैं । श्रीपरमानन्द भट्टाचार्यजी के लिए आप प्रकट हुए । बाद में श्रीभट्टाचार्य महाराज ने श्रीमधु पण्डितजी को सेवा का भार सौंप दिया ।

श्रीमन्नित्यानन्द प्रभु की पत्नी श्रीजान्हवी माँ जब श्रीवृन्दावन पधारीं, तो इनके दर्शन हेतु गईं । दर्शन करते-करते उनके मन में विचार आया कि यदि श्रीराधाजी तनिक और ऊँची होतीं तो और अधिक सुन्दर लगतीं । रात्रि में स्वप्न में श्री गोपीनाथ जी ने उनसे कहा, "मैं जितना ऊँचा हूँ, उसके अनुसार मेरी प्रियाजी की ऊँचाई कम है, अतः तुम प्रियाजी के ऐसे स्वरूप की व्यवस्था कर यहाँ पधराओ जो मेरे सम हो । श्री श्रीराधाजी ने भी ऐसा ही आदेश दिया ।" कहते हैं कि श्रीजान्हवी माँ ने अपनी अप्रकट लीला के समय स्वयं एक प्रतिमा का प्रकाश किया तथा उसमें स्वयं समा गईं । उन्होंने अपने निज भक्तों को आदेश दिया कि इन श्रीविग्रह स्वरूप को मन्दिर में श्रीठाकुरजी के साथ विराजमान करा दो । पुजारी आदि तथा अन्य सेवक गण यह सुनकर पहले तो सहमत न हुए, परन्तु जब श्रीगोपीनाथजी ने स्वयं उन्हें संकेत दिया कि "यह जो नये स्वरूप आये हैं, इन्हें मेरे वाम पार्श्व में तथा पहले वाले श्रीविग्रह स्वरूप प्रियाजी को मेरे दक्षिण पार्श्व में विराजमान करो," तो वैसी ही व्यवस्था की गई ।

तभी से बीच में श्री श्रीगोपीनाथजी वाम पार्श्व में श्रीश्रीजान्हवी माँ, उनके पास देवी विश्वेश्वरी तथा दक्षिण पार्श्व में छोटे स्वरूप में श्री श्रीराधाजी तथा श्रीललिताजी अद्यावधि वैष्णवों तथा भक्तों के लिए अपनी रूप माधुरी का प्रसार कर रही हैं ।

प्राचीन स्वरूप जयपुर चले गये, उनके स्थान पर नये स्वरूप यहाँ विराजमान हैं ।

श्रीश्रीराधाविनोदजी तथा श्रीगोकुलानन्द ठाकुर

श्रीश्रीराधाविनोद ठाकुर, श्रीलोकनाथ गोस्वामी को 'उमराव ग्राम" में किशोरी कुण्ड से प्राप्त हुए थे, ऐसी मान्यता है। श्रीलोकनाथजी ने यथा शक्ति वहीं सेवा प्रारम्भ कर दी थी। जब श्रीरूपजी, श्रीसनातनजी तथा श्रीरघुनाथ भट्टजी को इस बात का पता चला तो उन्होंने आग्रह किया कि इन्हें श्रीवृन्दावन ले आओ।

तभी से श्रीराधाविनोद ठाकुर स्वरूप श्रीवृन्दावन में श्रीराधारमण मन्दिर के पास एक नवीन स्थान पर विराजते हैं।

यवनों के आक्रमण के भय से इन श्रीठाकुरजी को भी जयपुर ले गये, जो अद्यावधि वहीं शोभायमान हैं।

श्रीराधा कुण्ड में श्रीयुत विश्वनाथ चक्रवर्ती पाद जिन श्रीठाकुर स्वरूप की सेवा करते थे, वे भी इसी मन्दिर में विराजमान हैं।

श्रीश्रीचैतन्य महाप्रभु ने श्रीरघुनाथदास गोस्वामी को जो गोवर्द्धन शिला दी थी वह भी यहाँ दर्शनीय है।

पास ही श्रीलोकनाथ गोस्वामी, श्रीनरोत्तम ठाकुर तथा श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती पाद की समाधियाँ हैं।

लालाबाबू मन्दिर

श्रीलालाबाबू परम वैष्णव थे। इनके सेव्य श्रीठाकुर 'श्रीकृष्णचन्द्रजी' मन्दिर में अद्यावधि विराजमान हैं। श्रीश्रीठाकुरजी की प्राण-प्रतिष्ठा के समय एक बहुत ही रोचक तथा मधुर घटना घटी, जिसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

जब इन श्रीठाकुरजी की प्राण-प्रतिष्ठा की जा रही थी, बड़े-बड़े पण्डित तथा विद्वन्समाज वहाँ उपस्थित थे। मन्त्रोच्चारण द्वारा बड़े मनोयोगपूर्वक श्रीठाकुरजी की प्राण-प्रतिष्ठा का आयोजन किया गया था, आयोजन जब समाप्त हो गया, तब श्रीलालाबाबू ने ब्राह्मणों से पूछा, "क्या प्राण-प्रतिष्ठा हो चुकी।" पूजन करा रहे पण्डितों ने कहा, 'आप स्वयं देखें।' लालाबाबू पर भगवान की अहैतुकी कृपा थी। उन्होंने श्रीठाकुरजी के हृदय पर हाथ रखकर जब देखा तो उन्हें धड़कनों की अनुभूति नहीं हुई।

लालाबाबू ने सभी ब्राह्मणों से पुनः प्राण-प्रतिष्ठा करने का निवेदन किया। पुनः पूरा आयोजन किया गया। जब लालाबाबू ने श्रीठाकुरजी के हृदय पर हाथ रखकर देखा तो उन्हें रक्तचाप की स्पष्ट अनुभूति हुई।

एकबार पुनः श्रीठाकुरजी की नासिका के पास रुई ले जा, हिलती देख, यह स्पष्ट हो गया कि श्रीठाकुरजी प्रकट हो गये हैं।

श्रीठाकुरजी के जगमोहन के सामने दो विशाल वृक्ष अद्यावधि दर्शनीय हैं। एकबार इन्हें काटने का विचार बना। लालाबाबू के पुत्र को स्वप्न हुआ तथा दो साधू उनसे बोले, "हम लोग साधना के लिए वृक्ष रूप में रहकर यहाँ विराजमान हैं, आप हमें न कटवायें, कालान्तर में हम स्वतः सूख जावेंगे" अगले ही दिन कलकत्ते से तार आया, उसमें इन दोनों वृक्षों को न काटने का आदेश था। कर्मचारियों ने ऐसा ही किया। वे दोनों मौलश्री के वृक्ष अद्यावधि मन्दिर के प्राङ्गण में विराजमान हैं।

इस मन्दिर का निर्णाण सं. १८६७ में हुआ।

श्रीलालाबाबू

श्रीलालाबाबू (कृष्णदास) परम वैष्णव थे, कलकत्ते के एक सम्भ्रान्त परिवार में आपका जन्म हुआ था। ये नित्य गंगा तट पर सैर करने जाते। एकबार ये सैर कर रहे थे तो एक मांझी की उक्ति इनके कानों में सुनाई पड़ी, "अरे भाई! दिन गेलो पारे चल" अर्थात् दिन निकल गया उस पार चलो। यह विचार मग्न हो गये। यही सोचते-सोचते घर आये। पुनः एक दिन गंगा तट पर घूम रहे थे,' 'एक धोबी ने अपनी पत्नी को सम्बोधित करके कहा, दिन गेलो वासनाय आगुन दाऊ' (धोबी लोग कपड़े धोने के लिए केले के वृक्ष आदि जलाकर एक प्रकार का क्षार-सा बनाया करते थे जिसे बंगला भाषा में वासना कहा जाता था) अर्थात् दिन निकला जा रहा है तू वासना में शीघ्र आग लगा दे। धोबी के इन वाक्यों ने लालाबाबू का जीवन ही पलट दिया। आपने सोचा इन सब गृह वासनाओं का परित्याग किये बिना काम न बनेगा। बस घर लौटे और समस्त सङ्कल्प विकल्पों का परित्याग कर वृन्दावन चले आये।

एक दिन स्वप्न में श्रीकृष्ण से आज्ञा पा आप गोवर्द्धन में निवास करने लगे। वहाँ श्रीगिरिराज की परिक्रमा को जा रहे थे तो पुजारी ने आग्रह किया, "महाराज आज श्रीठाकुरजी का प्रसाद ग्रहण करें।" इन्होंने स्वीकार कर लिया। उस दिन वर्षा आँधी के कारण पुजारी प्रसाद लेकर न आ सके। वर्षा, रुकने पर जब पुजारी मन्दिर में गये तो थाल न देख स्तब्ध रह गये। बचा हुआ प्रसाद, फल आदि एकत्रित कर पुजारी लालाबाबू के पास पहुँचे तो वहाँ पहले से ही थाल रखा देख विस्मित हो गये। बाद में निश्चित हुआ कि अवश्य ही ठाकुर जी महाराज अपने भक्त के लिए प्रसाद देने चले आये।

यमुना तट पर श्रीयुगल की लीला दर्शन करते-करते सदा-सदा के लिए नित्य लीला में प्रवेश कर गये।

श्रीश्रीबिल्वमङ्गलजी महाराज

दक्षिण में कृष्णवीणा नदी तट पर एक ग्राम में रामदास नाम के परम वैष्णव भक्त निवास करते थे। श्रीबिल्वमङ्गलजी के पिता होने का सौभाग्य इन्हीं को प्राप्त है। श्रीबिल्वमङ्गलजी का मन संसार में, किसी रूप सौन्दर्य की खोज में रहने लगा।

चिन्तामणि नामकी वेश्या के प्रति उनका मन आकृष्ट हो गया। उनका मन वेश्या में इतना आसक्त हो गया कि पिता के श्राद्ध के दिन भी वे उसके घर पहुँचे। नाव के अभाव में एक शव के सहारे बाढ़ परिपूर्ण नदी को पार कर तथा रस्सी के स्थान पर एक काले साँप के सहारे वेश्या के घर जा पहुँचे।

वेश्या के मुख से अपनी आसक्ति की भर्त्सना सुनकर श्रीबिल्वमङ्गल जी को वैराग्य हो गया और वे घर से निकल पड़े।

अपनी सौन्दर्यासक्ति को जब पुनः संसार के प्रति आकर्षित होते देखा, तो इन्होंने अपने दोनों ही नेत्रों में काँटे चुभा कर बाह्य आकर्षणों से मन को विमुख कर लिया। अतः वे अकेले रह गये।

श्रीकृष्ण बाल वेश धारण कर इनके पास आये ओर बोले, "बाबा वृन्दावन चलेंगे" बिल्वमङ्गल जी का हृदय प्रसन्नता से भर गया, परन्तु असमर्थता उनके सामने थी। उन्होंने उस बालक से सारी बात स्पष्ट कह दी। लकुटि पकड़े बालक आगे-आगे चलने लगा। थोड़ी देर में बोला, "लो बाबा ! आ गया श्रीवृन्दावन।" अब बिल्वमङ्गलजी, सूरदास नहीं रहे थे। श्रीकृष्ण संस्पर्श से उनके दिव्य चक्षु खुल गये। उन्होंने बालक का हाथ पकड़ लिया। श्रीकृष्ण ने झटककर हाथ छुड़ा लिया। बिल्वमङ्गलजी पहचान गये कि यह बालक अन्य कोई नहीं, स्वयं वही आनन्द-घन श्यामसुन्दर ही हैं जिन्होंने उन्हें अपनी भुवनमोहिनी छवि से बौरा दिया है। बिल्वमङ्गलजी ने कहा-

हस्तमुत्क्षिप्य यातोऽसि बलात्कृष्ण किमद्भुतम्।
हृदयाद् यदि निर्यासि पौरुषं गणयामि ते॥

श्रीकृष्ण, प्रेम रज्जु में बँध गये। सदा-सदा के लिए उन्होंने बिल्वमङ्गलजीको अपना लिया।

श्रीबिल्वमङ्गलजी महाराज के हृदय में श्रीकृष्ण की रूप माधुरी ने घर कर लिया। उनकी सघन अलकावलि से आवृत्त मुखश्री को निहार वे बौरा गये, उनके चञ्चल नेत्रों ने उन्हें घायल-सा कर दिया, उनकी मुस्कान ने उन्हें अपना दीवाना ही बना लिया, ओह ! श्यामलोज्ज्वल वह 'सान्द्रस्मितश्री' लावण्य तथा माधुर्याम्बुधि की तरङ्गों में श्रीबिल्वमङ्गलजी हिलोरें लेने लगे। वह रूप मधुरिमा

पुञ्जीभूत हो उनके सामने ही प्रकट हो गई-वह दूरी 'हस्त पथ दूरमहोकिमेतद्' केवल हाथ भर की दूरी कब, निकट हो उन्हें रस में बोरने लगी यह पूछते ही न बना-और वे गा उठे-

हे देव ! हे दयित ! हे भुवनैकबन्धो !
हे कृष्ण ! हे चपल ! हे करुणैकसिन्धो !
हे नाथ ! हे रमण ! हे नयनाभिराम !
हा, हा, कदानुभवितासि पदं दृशोर्मे ॥

हे देव, हे करुणा वरुणालय श्यामसुन्दर ! आप चपल हैं यह तो ठीक है, साथ-साथ नेत्रों को सुख प्रदान करने वाले हैं । हे नाथ ! अपनी माधुरी छवि का दर्शन करा, कब मुझे अनुग्रहीत करोगे ?

यह मधुर छवि, अहा ! मणिनूपुरों द्वारा मधुर ध्वनि करते हुए ब्रज-वीथियों में विचरण कर रहे विभु के उन्हीं श्रीचरणों की वन्दना करते हुए बिल्वमङ्गलजी कहने लगे -

मणिनूपुर वाचालं, वन्दे तच्चरणं विभोः ।
ललितानि यदीयानि लक्ष्माणि ब्रज वीथिषु ॥

वह श्यामलोज्ज्वल रूप छटा, ब्रज भुवि की प्रणय पिपासा का शमन करती हुई, अपने चरण चिन्हों को उपहार स्वरूप भेंट करती हुई, ब्रज वीथियों में सर्वत्र विचर रही है ।

यह नित्यकिशोर श्यामसुन्दर, मन्द हास से, मधुर बतरान से, और भी न जाने कैसे-कैसे मेरे हृदय में प्रविष्ट हो रहे हैं । यह छवि कैसी है ? स्वयं कामदेव ही हैं क्या, अथवा मधुर द्युति परिपूर्ण चन्द्रमा ही है अथवा माधुर्य ही घनीभूत होकर मूर्तिमान हो गया है, मेरे मन तथा नयनों के लिए अमृत ही है यह, अथवा (ब्रज) सुन्दरियों के केश प्रसाधन करने वाले कोई मेरे प्राण-प्रेष्ठ ही तो नहीं हैं ।

मारः स्वयं नु मधुरद्युति मण्डलं नु,
माधुर्य मेव नु मनोनयनामृतं नु,
वेणीमृजो नु, मम जीवित वल्लभो नु,
बालोऽयमभ्युदयते मम लोचनाय ॥

यह छवि मेरे नेत्रों के सामने प्रकट हो रही है । कैसी है यह छवि ? मधुरं, मधुरं मधुरं ।

ब्रजांगनाओं के सौभाग्य की सीमा, माधुर्य की सीमा, सौरभ्य सीमा, श्यामसुन्दर के दर्शनों की लालसा में पगे, बिल्वमङ्गलजी महाराज कहने लगे-

यतो यतः प्रसरति मे विलोचनं,
ततस्ततः स्फुरतु तवैव वैभवम् ।

प्रत्येक स्थली में मुझे उन्हीं का दर्शन सुलभ हो यही याचना है ।

श्रीबिल्वमङ्गलजी की अनुभूति साधारण नहीं थी । उन्होंने श्रीकृष्ण की अनेक सरस झाँकियों का आस्वादन किया और उनकी यह अनुभूति ही श्लोकबद्ध हुई हम सभी के लिए 'श्री कृष्णकर्णामृत' के रूप में उपलब्ध है ।

गोपीनाथ बाजार में खिरनी वृक्ष के नीचे श्रीबिल्वमङ्गल जी की समाधि श्रीकृष्ण लीलाओं के अनेक चित्रों का उद्‌घोष कर रही है ।

ब्रह्मकुण्ड

श्रीरङ्गमन्नार मन्दिर के साथ ही एक गहरा कुण्ड 'ब्रह्मकुण्ड' नाम से विख्यात है । श्रीकृष्ण, इनके सखा तथा ब्रह्माजी यहाँ विराजमान हैं ।

श्रीकृष्ण के चरित्र अपार हैं । ब्रह्मा तथा महेश भी जिसका पार नहीं पा सकते, वही श्रीकृष्ण इन ग्वाल बालकों को लिए गोचारण हेतु ब्रज की वन्य-स्थलियों में सर्वत्र विचरते हैं । अपनी सखा मण्डली के साथ विविध खेल खेलते हैं, भूख लगने पर सहभोज भी करते हैं । छाक लीला में हास विनोदों की मानों धूम मच जाती है ।

अपने अत्यन्त घनिष्ट सखाओं मधुमङ्गल, श्रीदामा, तोष आदि सहित श्रीकृष्ण यहाँ पधारे । ब्रह्माजी अपने मोह के वशीभूत हुए, अत्यन्त लज्जित हो गये थे । कहते हैं ब्रह्माजी ने प्रकट होकर भगवान श्रीकृष्ण की यहाँ स्तुति की तथा ब्रजवासियों को प्राप्त रसानन्द का आस्वादन वे कर सकें ऐसी प्रार्थना की । वे बोले-

"प्रभो ! इस ब्रज भूमि के किसी वन में और विशेष करके गोकुल में किसी भी योनि में मेरा जन्म हो जाय यही सौभाग्य की बात होगी । क्योंकि यहाँ जन्म हो जाने पर आपके किसी न किसी प्रेमी के चरणों की धूलि मेरे ऊपर पड़ ही जायेगी । प्रभो ! आपके प्रेमी ब्रजवासियों का जीवन, सम्पूर्ण आप ही का जीवन है । आप ही उनके सर्वस्व हैं । उनके चरणों की धूलि मिलना साक्षात आपके श्रीचरणों की धूलि मिलने के समान है ऐसा मेरा विश्वास है । श्रुतियाँ भी आज तक आपके श्रीचरणों की रज की कामना करती हैं ।[1]

ब्रह्माजी के नाम से संयुत यह स्थली ब्रह्मकुण्ड नाम से विख्यात है ।

---

1. तद्‌भूरि भाग्यमिहजन्म किमप्यटव्यां
यद गोकुलेऽपि कत माङ्घ्रिरजोभिषेकम् ।
यज्जीवितं तु निखिलं भगवान मुकुन्द-
स्त्वद्यापि तत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव ॥

(श्रीमद्‌भागवत रा० सु० नि० 10/14/34)

कर्मैती बाई की छतरी

जयपुर के अन्तर्गत खण्डेला राज्य के कुल पुरोहित परशुरामजी की सुपुत्री ही कर्मैती बाई के नाम से विख्यात हैं। पूर्व संस्कार वश उनका मन श्रीकृष्ण के अनुराग में पगा था। विवाह के प्रति उनकी अरुचि थी। घर वालों ने विवाह योग्य समझ, देख इनका विवाह कर दिया। इनको ससुराल ले जाने के लिए जब लोग आये, घर के सभी सम्बन्धी तैयारी में व्यस्त हो गये, परन्तु कर्मैती बाई का मन, वृन्दावन के लिए छटपटाने लगा। अकस्मात् उनके मन में स्फुरणा हुई और वे अर्धरात्रि की नीरवता में अपने गन्तव्य के लिए निकल पड़ीं। आज से पूर्व वह कभी घर से भी न निकली थीं। वे अकेली चली जा रही थीं, परन्तु अपने भक्तों के चिर सखा, शरणागत वत्सल नन्दनन्दन उनके साथ थे। रात भर में वे कितनी दूर निकल गईं कुछ पता नहीं।

भोर हुई, भक्तिमती कर्मैती का मन आशंकित हो गया, उधर घर वालों को पुत्री को घर में न देख अत्यन्त कष्ट हुआ। वे अपनी पुत्री के भगवदानुराग से परिचित तो थे ही। उन्होंने राजा से जाकर सारा वृत्तान्त कह सुनाया। राजा ने चारों ओर घुड़सवार दौड़ा दिये।

कर्मैती भागी जा रही थीं, घोड़ों की टाप सुनकर वे चौंकी। आशंका वश वे भयभीत-सी हो गईं, इधर-उधर छिपने की जगह ढूँढ़ने लगीं। पास ही मरा हुआ एक ऊँट पड़ा था। गिद्ध तथा सियारों ने उसका मांस खा लिया था। प्रेम मतवाली कर्मैतीबाई को उसमें से दुर्गन्ध नहीं आई। वह श्याम रङ्ग में तन्मय हो गईं और उसी ऊँट के खोल में छिप गईं। वह दुर्गन्ध भगवद्-कृपा से उसे चन्दन की सुगन्ध लगी। घुड़सवारों ने इधर देखा तक नहीं। खोज देखकर वे लोग लौट गये। इधर कर्मैती चौथे दिन उसमें से निकल पुनः चल दीं।

वे हरिद्वार होती हुई श्रीवृन्दावन आईं। उस समय सच्चे विरक्त वैष्णव ही श्रीवृन्दावन में निवास करते थे।

वृन्दावन में पहुँच वे ब्रह्मकुण्ड पर रहने लगीं, पिता परशुरामजी ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वृन्दावन आये। कर्मैती का कहीं पता न चला। एक दिन एक वृक्ष पर चढ़कर पिता ने देखा कर्मैती साधु वेश में ध्यान मग्न बैठी हैं। वे वहाँ गये। बहुत देर से ध्यान मग्न कर्मैती, बहुत पुकारने के बाद किञ्चित् होश में आईं। पिता ने घर चलने का आग्रह किया, वे न मानीं, पिता से भी श्रीकृष्ण भजन करने का आग्रह करने लगीं।

यह सब वृत्तान्त जब राजा को पता चला तो वह भी कर्मैती के दर्शनों के लिए वृन्दावन आया। राजा ने कर्मैती की बड़ी ही प्रेममयी अवस्था देखी

तथा कुटिया बनवाने की प्रार्थना की। श्रीकृष्ण के प्रेम में सच्ची कर्मैती को लौकिक दृष्टि से कुछ भी आवश्यकता न थी। कहते हैं राजा ने जहाँ वे बैठती थीं उस स्थल पर एक छतरी बनवा दी थी जिससे धूप तथा वर्षा का सीधे ही प्रकोप न हो सके।

ब्रह्मकुण्ड के एक कोने में आज भी उस छतरी के भग्नावशेष कर्मैती की तितिक्षा, श्रीकृष्णानुराग का जाज्वल्य प्रमाण है।

श्रीश्रीरङ्गजी

दक्षिण भारत में अरहन नगर में श्रीनिवासाचार्यजी रहते थे। कहते हैं कि श्रीरामानुजाचार्य ने ही रङ्गदेशिक रूप में श्रीनिवासाचार्यजी की पत्नी श्रीमती रङ्गलक्ष्मीदेवी के घर में शरीर धारण किया।

ब्रज भूमि में श्रीगोवर्द्धन के निकट श्रीसम्प्रदाय की एक गद्दी सोलहवीं शताब्दी से विद्यमान थी जिसके प्रथमाचार्य श्रीशठकोप मुनि थे। जब श्रीरङ्गदेशिक जी ब्रज में आये तो उस समय गद्दी पर विराजमान श्री श्रीनिवासाचार्य जी ने इन्हें अपने पास रखा तथा इनके अध्ययन की व्यवस्था करवा दी।

मथुरा के एक जैन परिवार के सेठ श्रीराधाकृष्ण की श्रीसम्प्रदाय का समाश्रय ग्रहण करने की इच्छा हुई। उनकी विधिवत दीक्षा हो गई। यह समाचार जब प्रकाश में आया तो घर वालों ने पहले तो विरोध किया फिर स्वामीजी से क्षमा याचना कर ली। इनके छोटे भाई श्रीगोविन्ददासजी भी इन्हीं से दीक्षित हो गये।

श्रीगोदाम्बा ने आलवार ग्रन्थों में अपनी तीन इच्छाओं का विशेष वर्णन किया है। पहली ब्रजेन्द्र-नन्दन उनका पाणिग्रहण करें, इसे स्वयं श्रीरङ्गनाथजी ने पूर्ण कर दिया था। दूसरी श्रीरङ्गनाथजी को सहस्रघट पायसान्न भोग लगाने की जो श्रीरामानुजाचार्यजी महाराज ने पूर्ण की तथा उनकी प्रधान इच्छा श्रीरङ्गमन्नार के साथ श्रीवृन्दावन में विराजमान होने की थी जिसे श्रीरङ्गदेशिक स्वामीजी ने पूर्ण किया।

श्रीरङ्गदेशिक स्वामीजी तथा सेठ राधाकृष्णजी ने तीर्थ दर्शन की इच्छा से दक्षिण की यात्रा की। स्वामीजी ने श्रीरङ्गम् जाकर श्रीरङ्गनाथ स्वामीजी से श्रीगोदाम्बाजी की तीसरी इच्छा पूर्ण करने की प्रार्थना की। कहते हैं उन्हें अनुमति प्राप्त होने का आभास मिल गया। तभी मूर्ति आदि की व्यवस्था का विचार पक्का बन गया, श्रीरङ्गजी का ब्रज में आने का विचार पहले ही बन चुका था। अपने श्वसुर के साथ आप भूतपुरी पहुँचे तथा वहीं प्रतिष्ठा का कार्य पूरा

हो गया था। इसके पश्चात् सभी व्यवस्था करके विधिपूर्वक अर्चना करते हुए आप श्रीरङ्गजी स्वरूप को वृन्दावन ले आये। पहले श्रीठाकुरजी भतरोड़ वाले बगीचे में विराजे, पश्चात् लक्ष्मीनारायण मन्दिर में प्रतिष्ठा होने पर आप वहाँ रहे। इसके पश्चात् सेठ लक्ष्मीचन्द्र जैन द्वारा वर्तमान मन्दिर निर्माण हो जाने पर आप अद्यावधि उसी मन्दिर में विराजमान हैं।

दक्षिण के प्रसिद्ध आलवार सन्तों में श्रीगोदाम्बा की मधुर उपासना सराहनीय है।

(दक्षिण) श्रीरङ्गम् में श्रीरङ्गनाथजी इनकी धारण की हुई माला को ही धारण करते थे। इनके पिता श्रीरङ्गनाथजी की सेवा में पुष्प सेवा का कार्यभार सम्हालते थे। उनकी पुत्री श्रीगोदाम्बा भी उनके साथ सहयोग देतीं पुष्प चयन कर, मालादि बनातीं। माला बनाकर स्वयं धारण कर देखतीं कि क्या श्रीरङ्गनाथजी को यह अच्छी फबेगी। एकबार पुष्प, मालादि समर्पित की गई, पुजारीजी ने एक लम्बा बाल, माला में लगा देखा। वे बहुत नाराज हो गये। श्रीगोदाम्बा के पिता को बुलाकर पूछा गया, वे भी इस सबसे अनभिज्ञ थे, अतः उन्होंने गोदाम्बा से इस विषय में पूछा। श्रीगोदाम्बाजी को बुरा भला कहा तथा आगे से अमनियां मालादि का कार्य स्वयं ही सम्हाल लिया। इस सबसे श्रीगोदाम्बाजी को अत्यन्त कष्ट हुआ। वे दुखी हो गईं। जब दूसरे दिन श्रीरङ्गनाथजी को माला समर्पित की गई तो उन्होंने धारण नहीं की और कहा हमें तो वे मालाएँ, जो मेरी प्रिया गोदाम्बा स्वयं पहले धारण करके मुझे समर्पित करती हैं, अच्छी लगती हैं। आचार्य तथा अन्य सभी सेवक स्तब्ध रह गये। बाद में स्वयं श्रीरङ्गनाथजी ने इनका पाणिग्रहण किया। वही श्रीगोदाम्बाजी श्रीरङ्गजी के साथ इस मन्दिर में विराजमान हैं।

एक रात्रि में श्रीरङ्गदेशिक स्वामीजी जब वृन्दावन में शयन कर रहे थे, तो बालक तथा बालिका के वेष में श्रीरङ्गमन्नार ने दर्शन देकर कहा, "अप्पा (पिताजी)! आपने हमारे लिए आज लड्डुओं का तो प्रबन्ध किया ही नहीं।" प्रातः आपने जब अर्चक से पूछताछ की तो सचमुच ही उसके पास लड्डु न थे।

श्रीगोदा रङ्गमन्नार (श्रीरङ्गजी) आज भी अपने वैकुण्ठ समान वैभव का प्रसार करते श्रीवृन्दावन में विराजमान हैं।

श्रीगोविन्ददेवजी

श्रीश्रीमन्महाप्रभु चैतन्य के अनुगत श्रीरूप गोस्वामी महाराज का नाम सर्वत्र विख्यात है। श्रीगोविन्ददेवजी ने प्रकट होकर श्रीरूपजी की सेवा, भक्ति को स्वीकार किया था।

एक दिन स्वप्न में श्रीगोविन्ददेवजी ने श्रीरूप गोस्वामी से कहा कि "मैं" 'गोमा टीला' खिरक (गौशाला) में रहता हूँ। एक गैया नित्य ही अपनी दुग्ध धारा से पूर्वान्ह में मेरा अभिषेक कर पोषण करती है। उस दुग्ध धारा के स्थल को देखकर तुम वहाँ से मुझे निकालकर मेरी सेवा की व्यवस्था करो।" श्रीरूपजी भोर में ही जग गये और जाकर देखा तो गैया अपना दूध एक स्थली पर स्वतः ही अर्पित कर रही थी। गैया के चले जाने के बाद श्रीरूप गोस्वामी ने श्रीगोविन्ददेवजी के श्रीविग्रह को भूमि से निकाला। अत्यन्त माधुर्य तथा लावण्य से परिपूर्ण स्वरूप, दर्शन कर श्रीरूपजी बहुत प्रसन्न हुए। जयपुर के राजा मानसिंह ने श्री गोविन्दजी के लिए मन्दिर का निर्माण कराया तथा सेवा की व्यवस्था करवा दी। वह मन्दिर आज भी गोविन्द मन्दिर के नाम से असंख्य लोगों का आकर्षण बना है।

श्रीगोविन्ददेवजी की सुन्दरता तथा माधुरी देखकर, एकबार श्रीरूप जी विस्मय विमुग्ध हो गये तथा कहने लगे-

हे सखे! यदि तुम्हारी घर के प्रति किञ्चित भी आसक्ति हो तो केशीघाट के निकटवर्ती ईषद् हास्य युक्त, ललित त्रिभंग, मधुर बङ्क अवलोकन तथा जिनके अधर द्वय पर वंशी सुशोभित है, जो मयूर पंख द्वारा अनन्त सौन्दर्य का प्रसार कर रहे हैं, ऐसे श्रीगोविन्दजी के दर्शन न करना अर्थात् यदि दर्शन कर लोगे तो तुम्हारा घर के प्रति आकर्षण छूट जावेगा।[1]

यवनों के आक्रमण के भयवश श्रीगोविन्ददेव जी को गोस्वामी-गण जयपुर ले गये। आज भी जयपुर में अपनी भुवनमोहिनी छवि से असंख्य भक्तों के हृदयों को आकर्षित कर रहे हैं।

श्रीश्रीरूपगोस्वामीजी महाराज

आप श्रीसनातनजी के छोटे भाई थे। विद्वत्ता तथा भगवद्भक्ति आपकी शोभा ही थी। श्रीगोविन्ददेवजी के प्राकट्य का श्रेय आप ही को प्राप्त है।

आपने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। एक जगह आपने प्रियाजी की वेणी की उपमा नागिन से दी। इस उपमा को पढ़कर श्रीसनातनजी को अत्यन्त खेद हुआ। यह बात अपने मन में ले वे लौट गये। एक बार चिन्तन में सनातनजी श्रीराधाकुण्ड दर्शन कर नित्य विलास कुञ्ज में गमन कर रहे थे, तो एक आम्र

1. स्मेरां भङ्गीत्रयपरिचितां साचिविस्तीर्णदृष्टिं
वशीन्यस्ताधरकिशलयामुज्वलां चन्द्रकेण।
गोविन्दाख्यां हरितनुमितः केशितीर्थोपकण्ठे
मा प्रेक्षिष्ठास्तव यदि सखे! बन्धुसङ्गेस्ति रङ्गः॥

(श्रीभक्ति रसामृतसिन्धु 1/2/239)

की डाली पर झूलते हुए प्रियाजी को देखा। उनकी फहराती हुई वेणी सचमुच ही नागिन की तरह दीख रही थी। यह देख श्रीसनातनजी को बहुत ही प्रसन्नता तथा आत्म सन्तोष हुआ। वे श्रीरूपजी पर प्रियाजी की विशेष अनुकम्पा की सराहना करने लगे।

'उज्ज्वल नीलमणि' तथा 'भक्ति रसामृत सिन्धु' जैसे रस ग्रन्थों का प्रणयन कर वैष्णव मात्र के प्रति आपने भारी उपकार किया है।

केशी घाट

समेधमानेन स कृष्णबाहुना
निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ।
प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः
पपातलेण्डं विसृजन क्षितौव्यसुः ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/37/8)

अब तक के सभी उपाय विफल होते देख श्रीकृष्ण का भय कंस को रात-दिन बेचैन करने लगा। एकान्त उसे सालता था। उसे यही धुन सवार रहती, येन-केन प्रकारेण अपने वध करने वाले का वध वह पहले ही करवा दे। परन्तु उन अखिल ब्रह्माण्ड नायक, पूर्ण पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण का बाल बांका कर सकना कंस के सामर्थ्य की बात न थी।

कंस ने अपने अनन्य मित्र केशी को बुलवाया तथा सारी बात समझा दी। केशी दैत्य तो पहले से ही अपने मित्र कंस के काम आ सके, इस अवसर की खोज में था। कौन जानता है उसकी मृत्यु ही उसे बरबस प्रेरित कर रही थी। उसने सामान्य सा घोड़े का वेष बनाया और किसी भाँति से गोकुल में प्रविष्ट हो गया। अपनी टापों से धरती को खोदता हुआ वह बढ़ा चला जा रहा था। उसके चलने से हवा में आँधी का-सा वेग लगता था। उसका शरीर इतना विशाल था मानो काली-काली घटाऐं ही उमड़ आई हों।

भगवान श्रीकृष्ण ने देखा कि दैत्य की हिनहिनाहट से ब्रजवासी डर रहे हैं और लड़ने के लिए वह दैत्य श्रीकृष्ण को ही खोज रहा हैं। भगवान उसके सम्मुख खड़े हो गये। यह देख केशी दैत्य क्रोधित हो गया तथा प्रहार करना चाहा, परन्तु भगवान ने अपने को बचा लिया। उन इन्द्रियातीत भगवान श्रीकृष्ण ने देखते-देखते क्षणभर में उसके दोनों पिछले पाँव पकड़ कर घुमाकर दूर फेंक दिया। पुनः वह श्रीकृष्ण पर झपटा, परन्तु भगवान ने अपना हाथ

1. अचिन्त्य शक्ति भगवान श्रीकृष्ण का हाथ केशी के मुख में इतना बढ़ गया कि उसकी सांस ही रुक गई। दम घुटने के कारण वह पैर पीटने लगा। उसका शरीर पसीने से लथपथ हो गया। आँखों की पुतलियाँ पलट गईं। थोड़ी ही देर में उसका शरीर निश्चेष्ट होकर गिर पड़ा तथा उसके प्राण पखेरू उड़ गये।

उसके मुँह में घुसा दिया। श्वास अवरुद्ध होने से उसके प्राण पखेरू उड़ गये।
केशी वध का यह स्थान 'केशी घाट' नाम से विख्यात हो गया। केशी दैत्य को भगवान ने अपने स्पर्श से मुक्त कर दिया।

आदि वाराह पुराण में केशी तीर्थ के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए पृथ्वी को सम्बोधित करते हुए भगवान कह रहे हैं-

गङ्गाशतगुणं पुण्यं यत्र केशी निपातितः
तत्रापि च विशेषोस्ति केशीतीर्थे वसुन्धरे ।
तस्मिन् पिण्डप्रदानेन गयापिण्डफलं लभेत् ॥

(आ० वा० पु०)

जिस स्थान पर श्रीकृष्ण ने केशी दैत्य का वध किया था, वह गंगाजी की अपेक्षा भी शतगुणा अधिक पुण्य प्रद है। हे वसुन्धरे ! उसी केशी तीर्थ की विशिष्टता है कि वहाँ पिण्ड दान करने से गया में पिण्ड दान का फल मिलता है।

धीर-समीर घाट

'गीत गोविन्द' के प्रणेता श्रीजयदेवजी के नाम से प्रायः सभी लोग परिचित हैं। बालपन में ही पिता भोजदेव तथा माता वामादेवी का निधन हो गया। इन्होंने विद्याभ्यास बालपन में कर लिया। ये भगवान के विशेष कृपा पात्र थे। पद्मावती नाम की एक सुशीला कन्या से आपका विवाह हो गया। इनके पिता ने निरञ्जन नाम के एक व्यक्ति को कुछ पैसा देना था। उसने निस्पृह जयदेवजी का घर हथियाने के लिए इनसे दस्तावेज पर हस्ताक्षर करवा लिए। जैसे ही धोखे से उसने हस्ताक्षर करवाये तो उसकी लड़की ने समाचार दिया कि उसके घर में आग लग गई है। श्रीजयदेवजी भागे गये, जैसे ही उसके घर में प्रविष्ट हुए तो आग स्वतः ही बुझ गई।

एक दिन जयदेवजी एक कविता लिख रहे थे। आधा पद लिखने के बाद वैसे ही छोड़ आप स्नान हेतु चले गये। वह पद था-

'स्मर गरल खण्डनं मम शिरसि मण्डनम्'-

श्रीकृष्ण जयदेवजी का वेष धारण कर आये तथा आगे-

'देहि मे पद पल्लवमुदारम्'

पंक्ति लिखकर प्रसाद पा लेट गये। जयदेवजी जब स्नान कर गंगाजी से लौटे तो पत्नी पद्मावती को प्रसाद पाते देख स्तब्ध रह गये। बाद में श्रीजयदेवजी यह सोचकर प्रसन्न हो गये कि श्रीकृष्ण ने स्वयं इस काव्य में भाग लिया तथा साथ-साथ इस बात से अत्यन्त दुखी भी हुए कि उन्हें कष्ट उठाना पड़ा।

श्रीकृष्ण लीलाओं के मधुर तथा सरस चित्रों से ओत-प्रोत है, 'गीत-गोविन्द'। कहते हैं श्रीजयदेवजी जब श्रीवृन्दावन पधारे तो श्रीकृष्ण लीलानुभूति

कर मग्न हो गये। अपनी अनुभूतियों का वर्णन जो उन्होंने किया-वही आज गीत-गोविन्द के रूप में उपलब्ध है। धीर-समीर घाट पर लीला वर्णन करते हुए वे एक स्थान पर कह रहे हैं -

धीरसमीरे यमुनातीरे वसति वने वनमाली।
गोपीपीनपयोधरमर्दन चञ्चलकरयुगशाली॥

(श्रीगीत गोविन्द)

श्रीयमुना का सुरमणीय पुलिन, उसी के निकट स्थित सघन कुञ्जें, रसीले युगल की मधुर केलि की परिचायक हैं। वे नित्य ही इन वन निकुञ्जों में आ, मद-मत्त हो जाते हैं। इन निभृत निकुञ्जों का वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। युगल की इच्छानुसार, ऋतुऐं इन निकुञ्जों में छा जाती हैं, केलि के अनुरूप सुहावना मौसम प्रकट हो जाता है; उसी के अनुरूप लता-वृक्ष तथा पुष्प प्रकट हो वन्य शोभा को और, और सरसा देते हैं। यह सब वृन्दा-देवी के संकेत से ही होता है। वहाँ रस में मग्न हुए प्रिया-प्रियतम अपनी प्रणयिनी बालाओं के साथ रस-विहार, रङ्ग-विहार तथा अनङ्ग विहार में मत्त हो जाते हैं।

इसी रसमय घाट पर स्थित सघन निकुञ्ज में सुकोमल किसलय दलों के सज्जित शैय्या पर प्रिया की बाट जोह रहे प्रियतम द्वारा प्रेषित सखी ने किशोरी श्रीराधा से जाकर कहा, "हे सखी! प्रियतम श्रीकृष्ण ने जिस निकुञ्ज में तुम्हारे साथ पहले रसमय केलि विहार किया था, जो मदन केलि की महातीर्थ स्वरूप हो गयी, उसी निकुञ्ज में वे तुम्हारे ध्यान में बैठे, प्रतीक्षा रत हैं। हे सखी! वे मदन महीपति के मद-मर्दन हेतु उचित वेष धारण कर वहाँ विराजमान हैं। हे नितम्बिनी! तुम अधिक विलम्ब न करो तथा शीघ्र चलो। इसी तट पर वे तुम्हारे आगमन की बाट जोह रहे हैं। तुम्हारा नाम लेकर तुम्हें ही बुलाने हेतु उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। तुम्हें यदि गुरुजनों से संकोच होता हो तो अपने नूपुरों को उतार दो। (वे घट-घट व्यापी भगवान श्रीकृष्ण हमारे प्रियतम हैं, जीवन सर्वस्व हैं) और धीरे-धीरे मेरे साथ चलो।

हे सखी यह चरण नूपुर रसकेलि कलह में निश्चय ही शत्रु तुल्य कार्य करते हैं। अतः तुम इनका परित्याग कर यमुना तटवर्ती सघन निकुञ्ज में अपने प्राण-प्रेष्ठ की कामना पूर्ति हेतु चलो।"

सखी की हितकर वाणी सुन किशोरी श्रीराधा अधिक धैर्य धारण न कर सकीं और अपने उन नव-घन-कान्ति-विनिन्दक, सौन्दर्य तथा लावण्य मूर्ति रसघन किशोर के पास जा पहुँची। रस की उद्दाम केलि प्रवहमान हुई। प्रतीक्षातुरी का बाँध टूट चुका था। रस की अथाह राशि किशोरी कभी नव

जलधर घनश्याम में विलसित सौदामिनी सी दीखीं और कभी सौदामिनीं में नव जलधर घनश्याम को विश्राम करते देखा।

निविड़ निकुञ्ज की सुरस केलि में प्रियतम की चञ्चलता तथा चपलता सीमा में न रही। त्रिविध समीर ने वातावरण में और, और सरसता भर दी और फिर प्रणय समुद्र में हिलोरें उठीं किसी गम्भीर रस राशि का अतापता पूछतीं।

ऐसी ही निभृत निकुञ्ज केलि के गाम्भीर्य में समीरण भी कुछ श्रमित सी हो गई। रस में पगी प्रियतम की रसकेलि-कणों के भार को वहन करने से शिथिल हो गई, धीर हो गई। अतः यह स्थली 'धीर-समीर घाट' के नाम से विख्यात हो गई।

वंशीवट

दशाब्दकृष्णपादांकलांछिताय नमो नमः ।
वंशीरवसमाकीर्ण वंशीवट नमोऽस्तुतेः ॥[1]

(पद्म पुराण)

चिर प्रतीक्षित रास रात्रियों का प्रारम्भ हुआ। इनकी प्रतीक्षा में आतुर यह बालाएँ क्षण-क्षण गिनने लगीं। हृदय की ऊहा-पोह, मन की बेचैनी तथा उर की धड़कनों ने आशा प्रतीक्षा को आश्वासन दिया। यह लो शरद की अभीप्सित रात्रि का प्रारम्भ हुआ।

आकाश में चन्द्र अपनी सम्पूर्ण कलाओं सहित उदित हो गया। चारों ओर सुशीतल चाँदनी छिटक गई। सम्पूर्ण प्रकृति को अपनी ज्योत्सना से आप्लावित कर चन्द्रकिरणों ने यमुना पुलिन का अभिषेक किया। वन्य प्रकृति का आतिथ्य स्वीकार कर चन्द्र किरणें ठिठक-सी गईं। लगा मानो सर्वत्र धवल वस्त्र ही बिछा दिया हो। ऐसे में प्रियतम वंशीवट के नीचे आ विराजे। उन्होंने अपनी चिरसंगिनी मुरलिका को अपनी फेंट से निकाल प्रेम मंत्र फूंका। उस प्रणय मंत्र ने यावत प्रकृति में गूंज मचा दी। सम्पूर्ण प्रकृति मानों चौंक-सी गई। यह मंत्र क्या था मानो जादू ही था। इन ब्रज बावरियों के आकुल-व्याकुल हृदय का बिम्ब-प्रतिबिम्ब ही था। वंशी में मधुर स्वर प्रवहमान था-

चलहि राधिके सुजान तेरे हित गुण निधान,
रास रच्यो कुंवर कान्ह तट कलिन्द नन्दिनी।
निर्तत युवति समूह राग रंग अतिकुतूह,
बाजत रस मूल मुरलिका आनन्दिनी ।

1. हे दस वर्ष अवस्था प्राप्त श्रीकृष्ण के चरण-चिन्हों से अङ्कित (स्थल) आपको नमस्कार है। हे वंशी रव से व्याप्त वंशीवट ! आपको नमस्कार है।

वंशीवट निकट जहाँ परम रम्य भूमि तहाँ,
सकल सुखद मलय बहे वायु मन्दिनी ॥

गोपिकाओं को बरबस अपनी ओर आकर्षित किया इस प्रणय गीत ने। किशोरी श्रीराधा तथा सखीवृन्द ने सुनी वह मनहर ध्वनि। सुनकर वे विवश-पर वश हो गईं-

निशम्य गीतं तदनङ्गवर्धनम्
ब्रजस्त्रियः कृष्णगृहीतमानसाः ।
आजग्मुरन्योन्यमलक्षितोद्यमा
स यत्र कान्तो जवलोल कुण्डलाः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/29/4)

घर के काम काज उन्हें विस्मृत हो गये। वे धावित हुईं। श्रृंगार करने की सुधि ही किसे थी। किसी से कुछ भी कह न सकीं। यह अनंग वर्धक गीत, हृदय को झंकृत कर देने वाला स्वर, प्रिय मिलन लालसा-वश प्रणयातुरी लगा देने वाला वंशी स्वर, हृदय को कुरेदता सा, आकुल-व्याकुल करता-सा, हिलोरता झकझोरता-सा विवश-परवश करने लगा।

वे कहाँ जा रही थीं, इस सबकी सुधि भी इन्हें न थी। नीले, पीले, हरे, लाल, केशरिया तथा गुलाबी रङ्गों के लहँगे पहने वे भागी जा रही थीं। उनके वसनांचल फहरा रहे थे, कर्ण कुण्डल हिल रहे थे। चरणों के नूपुर, उनकी प्रणयातुरी का परिचय दे रहे थे। अपनी जीवन निधि को, अपने प्राण सर्वस्व को सामने पा वे धन्या हो गईं।

इन बालाओं ने ब्रज की शोभा निहारी। वहाँ भाँति-भाँति के पुष्प खिले हुए थे। जुही, चमेली, केतकी कुन्द तथा मन्दारादि के पुष्पों की भीनी सुगन्ध से सौरभान्वित, त्रिविध समीरण प्रवहमान थी। सारा ही वातावरण मादक था, सरस था। यह यमुना पुलिन, इन ब्रज बालाओं के नूपुर रव से गुञ्जायमान हो गया। श्रीयमुना की लोल लहरियों ने उमग कर प्रियतम के संस्पर्श की कामना का किञ्चित् संकेत दिया। ओह ! चन्द्रिका स्नात वह रात्रि, अपनी प्रणयोन्मादिनी बालाओं सहित प्रियतम श्यामसुन्दर, सभी कुछ सुन्दर था, सरस था। इस शोभा को निहार अनंग भी बौराया-सा खड़ा रह गया। प्रियतम बोले-

दृष्टं वनं कुसुमितं राकेश कर रञ्जितम् ।
यमुनानिल लीलैःजत्तरुपल्लव शोभितम् ॥

(श्रीमद्भागवत 10/29/21)

तुमने वन की शोभा निहार ली है, भाँति-भाँति के रङ्गों वाले सुगंधित पुष्पों की सुगन्ध से सम्पन्न, पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से स्नात तथा यमुना जल का

स्पर्श पाकर प्रवहमान पवन द्वारा हिलोरित, वृक्षों से विभूषित श्रीवृन्दावन की शोभा भी निहार ली है-अतः अपने-अपने घरों को लौट जाओ। परन्तु श्रीकृष्ण की रूप मधुरिमा का, उनके चारु मुख कमल का, उस पर घिरकर आई स्निग्ध कच लटों का, मधुरोज्ज्वल कपोलों के सौन्दर्य का पानकर तथा मधुर मुस्कान में आसक्त श्रीकृष्ण के धर्मोपदेश के भी पालन करने में असमर्थ ये बालाऐं अपने पग लौटा न सकीं।

अपनी प्रेम स्वरूपा इन बालाओं के साथ घिरे हुए श्रीकृष्ण चन्द्रमा के समान शोभायमान हो रहे थे। वे ब्रज बालाओं को विभिन्न रस चेष्टाओं द्वारा सुख प्रदान करते रहे। गोप-रमणियों सहित उनक यह विहार-विलास दिव्य तथा अलौकिक था-अहा कैसी थी वह शोभा -

उपगीयमान उद्‌गायन् वनिताशतयूथपः ।
मालां विभ्रद् वैजयन्तीं व्यचरन्मण्डयन् वनम् ॥
(श्रीमद्‌भागवत 10/29/44)

उस समय ब्रज रमणियाँ अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के गुण तथा लीला आदि का मधुर स्वर से गान करने लगीं; उधर श्रीकृष्ण भी उच्च स्वर से इन बालाओं के प्रेम और सौन्दर्य के गीत गाने लगे। ब्रज सुन्दरियों के सैंकड़ों यूथों के नायक श्रीकृष्ण वैजयन्ती माला धारण किये हुए श्रीवृन्दावन की शोभा बढ़ाते हुए विचरण करने लगे।

यह ब्रज सुन्दरियाँ श्रीकृष्ण लीला में मत्त हो गईं। प्रियतम श्रीकृष्ण की स्मित, जिसने उन्हें अपने पाश में आबद्ध कर रखा था, उर पर विराजित वनमाल, जिसने प्रणय स्पर्धा की स्मृति से आलोड़ित कर रखा था, चञ्चल चितवन, जिसकी सरसता ने, मन्द मुस्कान जिस विषामृत का पान कर वे जीवन धारण किये हुए थीं, एक ही समय में विष तथा अमृत-यह प्रेम के इस पावन सम्बन्ध में ही सम्भव है, वे सब इन्हीं रस तरङ्गों में उच्छलित होने लगीं, तरंगित होने लगीं।

अनेक वाग्विनोदों, मधुर रस चातुरी, प्रणय पगी छेड़-छाड़, रस गाम्भीर्य की उत्तुंग हिलोरों में डूबते-उतरते युगल तथा उनकी अपनी, बहुत अपनी यह ब्रज बालाऐं, उनसे सुरस वार्ता, रास-विलास ! इन सभी उपक्रमों से सम्पूर्ण प्रकृति प्रफुल्लित हो गई।

श्रीयमुना के रमणीय तट पर रास रस की धूम मच गई। जिन जिन महामनाओं ने देखा, वर्णन करते करते हार गए। उसी में योग दिया भक्तिमती ऊषा बहन जी ने-

रास रस उल्लास थिरक्यो,
तरणि तनया के पुलिन पै ।
हास की छवि वदन पै ज्यौं,
चन्द्रिका छिटकी नलिन पै ॥
युग युगों का प्यार मानों
मूर्त हो थिरका विपिन में ।
राग रंग अभंग अनुपम
नृत्य बन ठुमका विजन में ॥
कामिनी हरि संग शोभित
दामिनी ज्यों नील घन में,
देखिकै फूले लता द्रुम
चन्द्रमा विहँसा गगन में ।
राग बन अनुराग छलका,
नूपुरों की छम छनन में ।
हाव भाव विलास वैभव
बह चला उन्मद हँसन में ॥

(ब्रज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती ऊषा बहन जी ग्रन्थ से साभार)

श्रीयमुना का रमणीय पुलिन देख वे किशोरियाँ -

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिम बालुकम् ।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोद वायुना ॥

(श्रीमद्भागवत 10/29/45)

अनन्तर गोप रमणियों के साथ श्रीकृष्ण ने यमुना पुलिन पर पदार्पण किया । वह पुलिन यमुनाजी की तरङ्गों के स्पर्श से शीतल हो रहा था । कुमुदिनी की भीनी गन्ध ले मन्द वायु द्वारा परिसेवित था । धवल तथा सुशीतल चाँदनी से संयुत था । ऐसे सुरमणीय पुलिन पर भगवान अपनी स्वरूपभूता गोपियों के साथ क्रीड़ा करने लगे ।

रास रस की सम्पूर्ण चेष्टाओं, केलि कलाओं, दिव्य तथा अलौकिक आनन्द को प्राप्त इन युवति वृन्द की अभीप्सित रात्रियों में उच्छलित रस कणों को समेटे आज भी यह स्थली धन्या हो रही है ।

यहाँ वंशीवट विहारी ठाकुर विराजमान हैं । चतुः सम्प्रदाय के आचार्य श्री के चित्र अङ्कित हैं । इस वट के नीचे वंशीवादन हुआ, इसी से यह स्थली 'वंशीवट' कही जाने लगी है ।

श्रीगोपेश्वर महादेव

तथाऽस्तु चोक्त्वा भगवान वृन्दारण्ये मनोहरे ।
कालिन्दी निकटे राजन्रासमण्डल मण्डिते ॥
निकुञ्ज पार्श्व पुलिने वंशीवट समीपतः ।
शिवोऽपि चासुरि मुनिर्नित्यं वासं चकार ह ॥
(श्रीगर्ग संहिता 2/26/31-32)

भगवान शिव कैलाश पर श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न थे । रास की वह महारात्रि आ पहुँची । अपने आराध्य श्रीकृष्ण, स्वामिनी श्री राधा तथा उन्हीं की कायव्यूह स्वरूपा इन ब्रज-बालाओं के साथ रासलीला के दर्शन की इच्छा से शङ्करजी वृन्दावन में पधारे । गोलोकवासिनी अत्यन्त सुन्दरि किशोरियों ने जो द्वार-पालिकाऐं बन रास-मण्डल के प्रहरी का कार्य कर रहीं थीं, "इस एकान्त रास-मण्डल में एकमात्र श्रीकृष्ण ही पुरुष हैं" यह कह वैष्णवाग्रगण्य श्रीशङ्कर जी को भी रास-मण्डल में जाने से रोक दिया तथा निवेदन किया, यदि आपकी श्रीकृष्ण दर्शन करने की तीव्र लालसा है तो मानसरोवर में स्नान करें; वहाँ शीघ्र ही गोपी स्वरूप की आपको प्राप्ति होगी, तब आप रास-मण्डल के भीतर जाने के सर्वथा अधिकारी हो सकोगे ।

ऐसा ही हुआ । मानसरोवर में स्नान करके पशुपतिनाथ आदि गुरु श्रीशङ्कर जी रासमण्डल में पहुँचे । कोटि-कोटि चन्द्रमाओं की सुशीतल चाँदनी से नहाया-सा, प्रफुल्लित लता-विटपों के दिव्य सुगन्धित त्रिविध समीरण से दिव्योन्मादी रासमण्डल वहाँ विराजित प्रियतम श्यामसुन्दर उनकी प्राणाराध्या श्रीराधा तथा निज स्वरूपभूता इन बालाओं का दिव्य दर्शन पा वे धन्य हो गये ।

उन्होंने मधुर स्तुति की और वृन्दावन में श्रीकृष्ण चरण सन्निधि में सदा ही वास हो ऐसी प्रार्थना की । भगवान श्रीकृष्ण ने उनकी इस कामना का अनुमोदन कर दिया ।

तभी से भगवान शङ्कर वंशीवट के समीप यमुना तटवर्ती निकुञ्ज में निवास करते हैं। ब्रज के रसिक चार महादेवों में प्रमुख एक इस स्वरूप में विराजमान हैं।

श्रीश्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की बैठक

यहाँ श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी की बैठक है । यहाँ आपने ब्रज के दिव्य दर्शन कराये हैं । किसी वैष्णव के स्नान के बिना प्रसाद ग्रहण न करने पर प्रसाद का महत्त्व समझाते हुए आपने उसे शुचि-अशुचि का बिना विचार किये ही प्रसाद ग्रहण कर लेना चाहिए-इस सिद्धान्त को समझाया तथा वृन्दावन का माहात्म्य समझाया ।

ज्ञानगुदड़ी

गोपियों की ज्ञान चर्चा की यह स्थली ज्ञानगुदड़ी नाम से विख्यात है।

श्रीजगन्नाथ प्रसादजी भक्तमाली

संवत १९५५ की माघ कृष्णा दशमी को मध्य प्रदेश के गुना जिले के अन्तर्गत चाचोड़ा ग्राम में आपका जन्म हुआ। वही आपने अध्ययन किया तथा अध्यापन कार्य करते रहे। एक समय आप श्रीवृन्दावन पधारे तथा बाबा रामकृष्णदासजी के दर्शन कर कृत-कृत्य हो गये। उन्हीं की प्रेरणा से आपने टटिया स्थान के महन्त श्रीभगवानदासजी से दीक्षा लेकर वैष्णव जगत को कृतार्थ कर दिया।

इनके 'भक्तमाली' पुकारे जाने के पीछे एक बहुत ही सरस इतिहास सम्बद्ध है, उनके श्रीमुख से सुना इतिहास हम यथावत नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

एकबार इनसे एक उच्च-कोटि की साधु बहिन ने, बहुत ही स्नेह तथा आदर सहित आग्रह कर निवेदन किया-"बाबा ! आप अपना कोई अन्तरङ्ग अनुभव सुनाइये। सुना है आपको लक्ष्मणजी, रामजी तथा सीताजी ने दर्शन दिये-वह प्रसङ्ग क्या है, कृपया कहिये।"

अपनी वही भोली-भाली भाषा में बहुत अनुनय-विनय करने पर 'भक्तमालीजी' ने छोटे-छोटे अधूरे से वाक्य बोलते हुए कहा था, "एक दिन स्वप्न में श्री राम जी, सीताजी तथा लक्ष्मणजी एक स्थान पर बैठे थे। श्रीरामजी, लक्ष्मणजी की गोद में सिर रखे लेटे थे। दूर से किसी की पग ध्वनि सुनकर रामजी ने अपना शीश उठाकर लक्ष्मणजी से पूछा कौन है ? लक्ष्मणजी ने कहा, "वही, बड़ो भोरो सो, अपनो भक्तमाली है।" यह बात तंद्रा की थी। श्रीहरि बाबा के यहाँ कभी-कभी श्रीजगन्नाथ प्रसादजी कथा कहने जाया करते थे। इन्होंने मन में विचार किया कि यदि कोई संत आज इसी नाम से मुझे पुकारेंगे तो यह बात ठीक समझूँगा। भोर होते ही श्रीहरि बाबा का भक्तमाल सुनने का निमन्त्रण मिला। जब पण्डितजी कथा कहने वहाँ पहुँचे तो श्रीहरि बाबा ने सर्वप्रथम 'भक्तमाली' कहकर सम्बोधन किया। तभी से आप वैष्णव जगत में 'भक्तमाली' नाम से जाने, जाने लगे।

श्रीभक्तमालीजी का भोलापन तो देखते ही बनता था। ये इतने भोले थे-कि इनका चरित्र बड़ा ही स्वच्छ तथा लोकप्रिय रहा। एकबार इनके यहाँ कुछ साधु पधारे, इन्होंने प्रसाद के लिए उनसे आग्रह किया। ये स्वयं कथा

कहने जा रहे थे। उन साधुओं से घर चलने का आग्रह कर श्री भक्तमालीजी कथा कहने तथा अन्य सामग्री की व्यवस्था हेतु चले गये। साधु इनके घर की ओर चल दिये। आप बाजार से सीधा, सामग्री लेकर घर की ओर जा रहे थे तो वे साधु रास्ते में मिले। इन्होंने पूछा, "कहाँ जा रहे हैं महाराज ! प्रसाद पाकर ही जाना होगा।" श्रीभक्तमालीजी की पत्नी बड़े तेज स्वभाव की थीं। जब वे साधु घर गये तो उन्होंने प्रसाद की बात कही, मैया तेज होकर बोलीं, "पण्डित तो गया चूल्हे में, तुम जाओ भाड़ में।" इन्होंने यही बात पण्डितजी से कही और चलने लगे। पण्डितजी बोले, "महाराज वाने तो साँची कही है, जब ते आपकूं प्रसाद पायबे को निमन्त्रण करचो, याही सोचतो रह्यो अमुक चीज लै जाऊँगो, प्रसाद बनैगो।" "महाराज वह तो अन्तर्यामिनी है।" आप बुरा न मानें कृपया मेरे साथ चलें।

इन्हें कभी गुस्सा नाम को भी नहीं आता था। जैसे-तैसे मान-मनुहार कर साधुओं को ले पण्डितजी घर आ गये। प्रसाद बना, भोग लगा, पंगत बैठी। पण्डितजी जल लेने कुंए पर गये, तो इनकी पत्नी पुनः वहीं गई और उन साधुओं से बोली, "जो यहाँ बैठकर खाय, 'गाय' खाय।" अब तो साधुओं का धैर्य छूट गया। वे उठकर चलने को खड़े हो गये। इधर पण्डित जी आ पहुँचे। यह दृश्य देखकर वे स्तब्ध रह गये तथा पूछा। उन साधुओं ने सारी बात ज्यों की त्यों कह दी। सुनकर पण्डितजी बोले, "भैयाओ ! वह तो बड़ी समझदार है। परम वैष्णवता की बात वाने कही है। पंगत ते पहले कीर्तन, नाम होनो चाहिये। सो वाको अभिप्राय यही हो कि जो इस आँगन में बैठ के खाय, तो गा, गा, के खाय' अतः आओ कछु हरि नाम करके ही प्रसाद ग्रहण करें।" उनकी पत्नी यह सब सुनकर बहुत ही द्रवित हो गईं तथा उसका मन ही परिवर्तित हो गया।

श्रीभक्तमालीजी, बड़े ही लोकप्रिय थे। सभी वैष्णव सम्प्रदाय उनके प्रति आदर भाव रखते थे। प्रिया-प्रियतम उनके लिए प्रत्यक्ष थे। वे उच्च कोटि के सन्त थे। उनके अन्तिम समय का दृश्य, उनका विलक्षण चरित्र, एक नक्षत्र बना वैष्णव समाज में चमक रहा हैं।

आज तक पुराणों और शास्त्रों में भी कोई घटना ऐसी नहीं देखने को मिली जहाँ किसी मृतक देह का, स्नान का जल लोगों ने पान किया हो। श्रीभक्तमालीजी के स्नान आदि का जल, उन्हें धारण कराये वस्त्र तक प्रसादी रूप में अनेक श्रद्धालुओं ने ग्रहण किये तथा सम्मान सहित अपने यहाँ ले गये। इससे अधिक लोकप्रियता का और क्या उदाहरण हो सकता है ?

भगवत्प्राप्ति कर आप भाद्र शुक्ला पञ्चमी संवत २०४१ में सदा-सदा के लिए प्रिया-प्रियतम की सेवा में प्रवेश पा गये ।

जगन्नाथ घाट

लगभग सवा दो सौ वर्ष पुरानी घटना है, श्रीवृन्दावन में श्रीयमुना पुलिन पर श्रीहरिदासजी नाम के एक रामानन्दी महात्मा रहते थे ।

भगवद्दर्शन की लालसावश वे दीन होकर अहर्निश नाम लेते तथा अपने इष्टदेव को पुकारते रहते । सहसा, एक दिन मधुर मुस्कान, घुंघराले केश, मणिमण्डित दिव्य मुकुट, कर्णों में कुण्डल झिलमिला रहे थे जिनके, ऐसे एक श्याम सुकुमार बालक को देख वे प्रसन्नता में भर गये । उस साँवले सुकुमार ने श्रीहरिदासजी से जगन्नाथपुरी जाकर, श्रीजगन्नाथ भगवान के श्रीविग्रह ले आने के लिए आग्रह किया ।

श्रीहरिदासजी पुरी चले गये। पुजारियों से सारी घटना कह सुनाई। राजा से भी यह सारी घटना उन्होंने कही । वहाँ पहले से चली आ रही परम्परा को तोड़ना राजा को रुचिकर नहीं लगा, परन्तु यह तो भगवद्विधान था । श्रीजगन्नाथजी ने स्वप्न में राजा से वृन्दावन पधारने की बात स्पष्ट कह दी । राजा इन महात्मा से क्षमा-याचना करने लगे ।

अभिषेक के अनन्तर श्रीजगन्नाथजी, श्रीबलदाऊजी तथा श्रीसुभद्रा जी को विराजमान करा, सम्पूर्ण व्यवस्था सहित महात्माजी को वृन्दावन के लिए विदा किया । वे जगन्नाथपुरी में विराजमान स्वरूप ही यहाँ श्री वृन्दावन पधारे तथा जगन्नाथ मन्दिर में अद्यावधि विराजमान हैं ।

इनके बड़े ही विलक्षण तथा अद्भुत चरित्र प्रसिद्ध हैं ।

लगभग पच्चीस वर्ष पहले की बात है कि एक मैया, श्रीजगन्नाथजी को तुलसी समर्पित कर रही थी । श्रीजगन्नाथजी प्रकट हो गये । उनका मुख मण्डल तेजोमय हो गया । इनकी श्वासोच्छ्वास अनुभव कर वह मैया मूर्छित होकर गिर पड़ी । बहुत देर में होश हुआ ।

एकबार मन्दिर में एक छड़ी पाई गई । वह बहुत चमकीली थी । दिव्य ही लगती थी । उसकी पूजा की जाने लगी । जिस दिन से वह छड़ी मन्दिर में मिली-श्रीजगन्नाथजी का वैभव बढ़ने लगा । एक दिन माताजी ने श्रीयमुना के तट पर उस छड़ी का षोडशोपचार पूजन किया । पूजनोपरान्त वह छड़ी चलने लगी तथा जाकर श्रीयमुनाजी में विलीन हो गई ।

श्रीजगन्नाथजी की ऐसी और भी कई दिव्य चमत्कार पूर्ण घटनाऐं प्रसिद्ध हैं।

टटिया स्थान

अनन्य गुरुनिष्ठ श्रीरसिकदेवजी के चरित्र से कौन वैष्णव अनभिज्ञ होगा । इन्हीं के शिष्य हुए श्रीललितकिशोरीदेवजी जिन्होंने टटिया स्थान की सेवा प्रारम्भ की ।

भदावर प्रदेश में चामिल नदी तट पर माथुर कुलोत्पन्न श्रीगङ्गाराम, जगन्नाथपुरी में स्वामी श्रीहरिदासजी की चर्चा सुन विभोर हो गये । श्री वृन्दावन आने पर इसी खोज में रहे कि कोई उसी रस की बात कहे । यह जिज्ञासा बनी रही । अन्ततः श्रीरसिकदेवजी के शिष्य हो गये, तथा श्रीललितकिशोरी नाम से विख्यात हुए । गुरुदेव ने ब्रज रस का उपदेश दिया, परन्तु इनकी आन्तरिक माँग कुछ और ही थी । प्रार्थना की, गुरुदेव ! आपकी कृपा से 'ब्रजरस' की अनुकम्पा अनायास ही हो गई-कृपया वह सब दीजिये जिसको स्वामीजी महाराज ने मुक्त कण्ठ से गाया है । कहते हैं कि श्री ललितकिशोरी देव जी निधिवन में लता-पताओं से लिपट-लिपटकर रोने लगे । जब श्री रसिकदेव जी को इस बात का पता चला तो उन्होंने अपने शिष्य को बुलवाया, तथा अपनी उपासना का सारा रहस्य समझाकर कहा -

षट आचारज तिनकी वाणी, राखी हुती छिपाय ।
दई निकासि रासि निजधन की मनकी बात बताय ॥

स्वामीजी महाराज से उपासना, मन्त्र तथा करुवा और गुदड़ी प्राप्त कर आप पहले तो श्रीवृन्दावन में विचरण करते रहे, पीछे यमुना पुलिन पर आकर विराजे । सेवक शिष्यों ने उसी स्थली को बाँस की टटिया लगाकर सुरक्षित कर दिया ।

एक बार महाराज जयसिंह से किसी ने जाकर शिकायत की कि श्रीरसिकदेवजी न तो एकादशी व्रतादि रखते हैं और न आचार- विचार ही है । राजा ने पता लगाने के लिए अपना एक दूत भेजा । उत्सव का दिन था । एक ब्राह्मण एक हाँडी भर मिठाई लेकर आया तथा स्वामीजी की सेवा में रख दी । थोड़ी देर बाद एक ब्रजवासी ने सूखी रोटी लाकर दी स्वामीजी ने मिठाई बाँटकर सूखी रोटी प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कर ली ।

श्रीललितकिशोरीदेवजी के जीवन वृत्त पर प्रकाश डालते हुए, श्रीगोस्वामी श्रीचन्दलालजी ने एक बहुत ही सुन्दर कवित्त लिखकर उनकी निकुञ्ज रसोपासना का सरस चित्रण किया है । उस कवित्त को हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं :-

गङ्गाराम की बात मोपै कैसे कहिजात,
रसिक अनन्य प्यारे अति ही अमाने हैं ।
स्वामी हरिदास जू की आस बनवास,

श्रीविहारिन विहारीजू के रूप में समाने हैं ।
काहू सौं न कहैं सुनें रहनि अनूठी रहें,
नित सुख लहें प्रेम बानि रस साने हैं ।
कृष्ण सो न सूधे भये तिन्हें इन खेंचि लये,
रस में छकाय दये जानै सोई जानै हैं ॥

(वृन्दावन प्रकाशमाला)

अपनी अनूठी रहनी में रत रहे, प्रिया-प्रियतम की रूप-माधुरी में अहर्निश पगे रहे, श्रीललितकिशोरीदेवजी महाराज ।

अपनी मोहिनी छटा से सहस्रों भावुक भक्तों का आकर्षण बने श्रीमोहिनीबिहारी ठाकुर स्वरूप स्वयं प्रकट ठाकुर हैं । कहते हैं डीग में खुदाई में प्राप्त यह श्रीठाकुर विग्रह स्वेच्छा से यहाँ विराजे हैं । इसी स्थान के अन्तर्गत श्रीरसिकविहारीजी, दाऊजी, प्राणवल्लभजी, दम्पति किशोरजी श्रीठाकुर स्वरूप विराजमान हैं ।

अलबेली प्रकृति, एकान्त तथा नीरव स्थली, पक्षियों के कलरव तथा मयूर काकली से गुञ्जायमान, अपनी सरसता का प्रसार करती सभी का आकर्षण बनी है ।

रमणरेती

भगवान श्रीकृष्ण के साथ विहार तथा विलास में मत्ता इन ब्रज-बालाओं को अपने सौभाग्य मद पर किञ्चित् गर्व हो गया । 'तत्सुखे सुखित्वं' की स्वरूपभूता इन बालाओं का गर्व केवल प्रियतम के सुख की कामना वश ही था । अतः

तासां तत्सौभगमदं वीक्ष्य मानं च केशवः ।
प्रशमाय प्रसादाय तत्रैवान्तरधीयत ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/29/48)

वह गोप रमणियाँ तो सदा-सदा श्रीकृष्ण की क्रीत-दासी हैं- उनसे मान भी उन्हें सुख प्रदान करने के लिए ही करती हैं । प्रियतम श्रीकृष्ण के अभाव को सहन करना इन ब्रज युवति वृन्द के लिए कठिन हो गया । वे श्रीकृष्ण का अता-पता वृक्षों तथा वल्लरियों से पूछतीं, उनकी लीला माधुरी का आस्वादन करतीं उनकी खोज करने लगीं । अपनी ही आराधिका श्रीश्रीराधा के प्रणय गर्व को भी प्रियतम ने सहन नहीं किया । उन्हें छोड़ वे वहाँ से भी अन्तर्धान हो गये ।

1. इन ब्रज रमणियों के गर्व तथा अकस्मात उदित प्रणय अभिमान को शान्त तथा उन्हें और, और सुख प्रदान करने के लिए ही श्रीकृष्ण उन रमणियों के बीच में ही अन्तर्धान हो गये ।

सभी गोप बालाऐं पूर्व स्मृतियों में तन्मय तथा श्यामसुन्दर की स्मृति से अधीर हो गईं। इन बालाओं की अधीरता अधिक देर तक प्रियतम से सहन न हुई तथा वे -

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमान मुखाम्बुजः ।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/32/2)

उसी समय उन ब्रज सुन्दरियों के मध्य में से ही श्यामसुन्दर प्रकट हो गये। वे वनमाला तथा पीताम्बर धारण किये हुए मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। उनका वह रूप सौन्दर्य कामदेव के मन का भी मन्थन करने वाला था। उन्हें देख यह ब्रज-बालाऐं प्रफुल्लित हो गईं, तुरन्त उनके पास चली आईं। प्रेम का स्वभाव ही विचित्र है। किसी ने उनकी बाहू का स्पर्श पा अपनी चिर-पिपासा का शमन किया, कोई उनका पीताम्बर हाथ में ले किसी सरस स्मृति में खो गई, उनके कर कमल को हाथ में ले किसी ने अपनी प्रणयातुरी को किञ्चित् अभिव्यक्त किया, कोई एक टकटकी बाँध उनकी रूप मधुरिमा का पान करने लगी और आनन्द मग्न हो गई। प्रेम बावरी इन बालाओं ने अपनी-अपनी ओढ़नी बिछा दी और श्यामसुन्दर उस पर विराजमान हुए सभी को आनन्द प्रदान करने लगे।

सभाजयित्वा तमनङ्गदीपनं,
सहासलीलेक्षण विभ्रमभ्रुव ।
संस्पर्शनेनाङ्क कृताङ्घ्रिहस्तायोः
संस्तुत्य ईष्यत्कुपिता बभाषिरे ॥

(श्रीमद्भागवत 10/32/15)

श्रीकृष्ण की रूप मधुरिमा का पान कर वे बालाएँ पूर्ण काम हो गईं, उनके मन में भगवत्प्रेम की आकांक्षा उद्दीप्त हो गईं, अपनी हास-विलास पूर्ण चेष्टाओं से प्रणय कोप का-सा अभिनय करती हुई श्रीकृष्ण सामीप्य पा आनन्द-विभोर हो गईं। इनकी सराहना करते हुए श्रीश्यामसुन्दर प्रेम भरे आवश्वासन देते हुए, कहने लगे -

एवं मदर्थोज्झितलोकवेद
स्वानां हि वो मय्यनुवृत्तयेऽबलाः ।
मया परोक्षं भजता तिरोहितं
मासूयितुं मार्हथ तत् प्रियं प्रियाः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/32/21)

तुम लोगों ने मेरे लिए लोक मर्यादा को तिलाञ्जलि दे दी, स्वजनों का परित्याग कर दिया-अतः तुम्हारी मनोवृत्ति मुझ ही में प्रगाढ़ हो जाये, इसीलिए तुम्हारे प्रेम रस का उद्दीपन करता हुआ मैं यहाँ छिप गया था । उसके बाद वे सब बालाएँ प्रियतम सहित यमुना पुलिन पर आ गईं तथा रास-विलास में मग्न हो गईं । श्रीकृष्ण की प्रेयसी वे बालाएँ परस्पर मंडलाकार खड़ी हो गईं । ऐसी ही शोभा को निहार भक्तप्रवर सूरदासजी ने गाया-

देखो माई घन-घन अन्तर दामिनी ।
घन दामिनी-दामिनी घन अन्तर शोभित हरि ब्रज भामिनी ।
जमुना पुलिन मल्लिका मनोहर शरद् सुहाई जामिनी ॥
रच्यो रास मिलि रसिक राई सों, मुदित भई गुन ग्रामिनी ।
को गति गनै सूर मोहन सङ्ग काम विमोह्यो कामिनी ॥

दो-दो गोपिकाओं के मध्य श्यामसुन्दर शोभायमान हो गये । श्रीकृष्ण, इच्छा मात्र से ही अनेक स्वरूप धारण कर सभी गोपिकाओं को सुख प्रदान करने लगे । इन्हीं यूथ समूहों के मध्य श्यामसुन्दर तथा उनकी प्राणाराध्या किशोरी राधा दोनों विराजमान हो गये । यमुना के सुरमणीय पुलिन पर शरद की उजियारी रात में अपनी प्राण-प्रिया श्रीराधा तथा उनकी कायव्यूह स्वरूपा इन बालाओं सहित रास रस गतिमान हो गया । इस दिव्य रसविहार को, अनंग विलास को देख मदन भी मोहित हो गया । रास रस माधुर्याम्बुधि के उफान को थामना कठिन हो गया । अङ्ग लाघवता, नृत्य की हिलोरों, से होड़ लेती रही-अनेकानेक गोपीवृन्द में । श्यामसुन्दर भी रस बरसाने लगे और यह ब्रज तरुणी वृन्द ताल, लय और और गति लेकर नृत्य निरत हो गईं- रस की अगाधता में तन्मय हो गईं । उसी रस रास की यत्किञ्चित् अभिव्यक्ति कर रसिक महानुभाव मग्न हो गए । उसी छवि का वर्णन कर रही हैं भक्तिमती ऊषा बहन जी-

नृत्य करत रस रस रसिक प्रिय,
श्रीयमुना के रजत पुलिन पर ।
सखि मण्डल मँह प्रिया राधिका
गान करति मन मुग्ध मधुर स्वर ॥
कबहुँ नृत्यत सखियन संग मिलि
सीस, सीस सों जोरि पकरि कर ।
प्रिय संग लै तान नवीनी,
रंग बढ़वत मुरलि अधर धर ।
मण्डल मधि आ लपटि प्रियासों

भाव प्रकासत अधिक सरस तर ।
भृकुटि विलास हास रस रञ्जन,
मधु मद भञ्जन प्रेम पुलक भर ॥
तान तरंगनि अंग अनंगनि,
रति रस रंगनि लगी सुरस झर ।
ठुमकत छूटत छूटीं कचलट,
झुकी चन्द्रिका, खुली मुकुट लर ॥

कहीं सुरीली तान ले प्रियाजी ने नृत्य निरत हो रास में धूम मचादी-

रास में रस बरसावे नागरी ।
जो गति लेत लाल मुरली सौं, नूपुर कुँवरि बजावे ।
अहा-अहा प्रीतम मुख वानी फैरि लेहु यह गावे ।
विद्या अखिल स्वामिनी राधा गति नौतन उपजावे ॥
बहुरि अलाप सप्त सुर लै के प्रिया ललकि सौं गावे ।
वृन्दावन हित रूप रीझि के नागर ग्रीव ढुरावे ॥

प्रियाजी ने रास में मनोहर नृत्य द्वारा अनेक रस कलाओं का प्रदर्शन किया, संगीत में मधुर अलाप ले आनन्द से वातावरण को और-और सरसा दिया, प्रियतम ने जो-जो स्वर मुरली में बजाये प्रियाजी ने नृत्य में उन्हीं स्वरों को नूपुर की झंकार में बद्ध कर दिया - प्रियाजी द्वारा सप्त सुरके अलाप को सुनकर प्रियतम प्रेम-विभोर हो गये । आनन्द में झूम प्रशंसा करने लगे ।

किसी नृत्य निरत गोपिका के पास जा प्रियतम नृत्य करने लगे, किसी अन्य बाला के साथ स्वर में स्वर मिला अलाप लेने लगे, किसी अन्या के पास जा बंक चितवन द्वारा उसे सुख प्रदान करते, किसी अन्या को अपने स्पर्श द्वारा, किसी का आँचल संवारने के मिस गुदगुदा, किसी के श्रम जल कण पोंछ किसी के कान में कुछ सुरस वार्ता कह, सभी बालाओं को भिन्न-भिन्न प्रकार से आनन्दित करने लगे। यह स्थली विभिन्न केलि-कलाओं से सरसता में भर गई।

अपनी प्रियाओं को श्रमित जान, उन्हें ले, वे यमुना पुलिन पर आ गये। यह स्थल-केलि अब जल-केलि में परिणत हो गई। निकुञ्ज केलि की वे सभी चेष्टाएँ अब जल-केलि में अपनी चरम सीमा में गतिमान हो गईं । वे सब सखियाँ प्रियतम श्यामसुन्दर पर जल की बौछार करने लगीं, इधर यह प्रणयी भी अपनी कुशलता तथा चातुरी से सभी बालाओं को सरसाने लगे। कौन कह सकता है कि यमुनाजी को अपने अङ्ग स्पर्श द्वारा दिव्य रस प्रदान करने को ही प्रियतम श्रीयमुना में जल-क्रीड़ा करने लगे। इन केलि-कलाओं को देख अनंग भी परास्त हो गया।

जिनके चरण-कमलों की रज का सेवन करने से भक्तजन पूर्ण काम हो जाते हैं, जिनके साथ मन का योग हो जाने मात्र से योगियों के कर्म-बन्धन कट जाते हैं, वे श्रीकृष्ण ही-

अनुग्रहाय भूतानां मानुषं देहमास्थितः ।
भजते तादृशीः क्रीडा या श्रुत्वा तत्परो भवेत् ॥

(श्रीमद्भागवत 10/33/37)

जीवों पर कृपा करने के लिए ही भगवान मनुष्य देह में प्रकट होकर वैसी ही लीलाएँ करते हैं जिन्हें सुनकर मनुष्य उन भगवान के परायण हो जाता है, इसमें किसी प्रकार की शङ्का नहीं करनी चाहिए । योगमाया से मोहित हो कर इस रहस्य को सिवा इन गोपिकाओं के कोई समझ न सका, भोर होते ही यह बालाएँ भगवान की इच्छा जान स्वयं ही अपने-अपने घरों को चली गईं-

विक्रीडितं ब्रजवधूभिरिदं च विष्णोः
श्रद्धान्वितोऽनुश्रृणुयादथ वर्णयेद्यः ।
भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं
हृद्रोगमाश्वपहिनोत्यचिरेण धीरः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/33/40)

श्रीकृष्ण सहित प्रियाजी तथा उनकी निज स्वरूपभूता इन बालाओं की यह रहसि केलि, प्रेम की उच्चतम रसमयी चेष्टाओं का, श्रद्धापूर्वक श्रवण मात्र से समस्त पापों का शमन हो जाता है तथा हृदय के समस्त रोग सहज नष्ट हो जाते हैं । यह विशुद्ध काम संसार से उपरति कराने वाला है ।

रास-रमण की यह स्थली 'रमणरेती' नाम से विख्यात हो गई ।

दावानल कुण्ड

श्रीकृष्ण गोचारण हेतु श्रीयमुना तट पर पधारे । गउएँ चरती हुई गहन वन में प्रवेश कर गईं । ग्वारिया ढूँढ़ते हुए मुञ्जाटवी में दूर तक निकल गये । चारों ओर लगी अग्नि से भीत सखा, अपनी तथा अपनी गउओं की सुरक्षा हेतु श्रीकृष्ण से प्रार्थना करने लगे ।

श्रीकृष्ण ने सभी को नेत्र बन्द करने के लिए कहा तथा दावानल पान कर लिया । दावानल पान की यह स्थली 'दावानल कुण्ड' नाम से विख्यात हो गई । कदाचित् मुञ्जाटवी का विस्तार दावानल कुण्ड तक रहा होगा । आज भी यह कुण्ड श्रीकृष्ण द्वारा अपने जनों की रक्षा तथा अग्नि पान कर उनके कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथा कर्तुम् चरित्र के गीत गा रहा है ।

ऐसी भी मान्यता है कि अपने सखाओं के साथ कन्हैया गोधन सहित ब्रज के लिए लौटने लगे। रास्ते में एक सरोवर दिखाई दिया। कन्हैया अपने सखाओं से बोले, "भैयाओ श्रीयमुना तटवर्ती यह सरोवर, सघन वृक्षावली से आवृत्त है इसका जल कितना स्वच्छ एवं निर्मल है। आओ हम यहाँ स्नान कर ब्रज के लिए प्रस्थान करेंगे। दावाग्नि पान कर श्रीकृष्ण के शरीर में ताप भी बढ़ गया था- अतः उन्होंने अपने सखाओं सहित इस सरोवर में स्नान किया। दावानल पान* करने के उपरान्त स्नान का यह स्थल 'दावानल कुण्ड' नाम से विख्यात हो गया।

टोपी वाली कुञ्ज

श्रीहरिव्यास देवाचार्यजी के बारह प्रधान शिष्यों में से अन्तिम शिष्य श्रीमुकुन्दजी हुए। बाल्यकाल से ही वे श्रीहरिव्यासदेवजी के प्रति दृढ़ निष्ठावान रहे।

इस गद्दी के सातवें महन्त हुए श्रीरामदासजी। वे टोपी लगाया रहते थे, इसी से यह स्थली 'टोपी कुञ्ज' के नाम से जानी गई।

श्रीमाधवादासजी यहाँ एक उच्च-कोटि के महात्मा हो गये हैं। वे श्रीभक्तमाल कहा करते थे। श्रीजगन्नाथ प्रसाद भक्तमाली प्रभृति अनेक महात्माओं ने भक्तमाल का अध्ययन इन्हीं से किया।

यहाँ एक प्राचीन रासमण्डल है, जहाँ सभी रास-मण्डलियों द्वारा बारी-बारी से नितप्रति रास का क्रम चलता रहता है।

माधव विलास

जयपुर नरेश श्रीमाधव सिंह जी द्वारा अपने गुरुदेव के आदेशानुसार इस मन्दिर का निर्माण करवा कर सं. १९८१ में स्थापना करवाई। यह निम्बार्क सम्प्रादाय का स्थान है। इसमें ठाकुरश्री नृत्यगोपाल, श्री राधा गोपाल तथा आचार्य पंचक ये तीन दर्शन है जो अपने जैसा अनूठा स्थान ही है।

भव्य इमारत पर कारीगरी का उत्कृष्ट नमूना है।

श्रीश्रीपाद बाबाजी महाराज

वृन्दावन की सांस्कृतिक भौगोलिक रिक्थ के वर्तमान युग में संरक्षक, पोषक यदि श्रद्धेय बाबा को कहा जाए तो अतिशयोक्ति न होगी। यह ऐसे दो ज्वलन्त

*नोट - दावानल पान का प्रसङ्ग मुञ्जाटवी के वर्णन में पृष्ठ २९४ पर आ चुका है।

विषय है जिसका भार वहन करने का सामर्थ्य पू. बाबा महाराज के अतिरिक्त किसी में न था। अध्यात्म की जिन चरम सीमाओं का अतापता पाने के लिये आजका साधक यत्र तत्र भटक रहा था उसे दिशा देने में पू. बाबा महाराज सक्षम थे। आप यदि किसी साधक की आध्यात्मिक पिपासा का शमन नहीं कर सकते तो उसे क्या कहें ? निकुञ्ज उपासना तथा नित्य विहार को अध्यात्म पटल पर लाने वाले महानुभावों का तो योगदान रहा ही इधर रसिकत्रयी की मान्यताओं को पूर्णतः समादर दे भारतवासियों के साथ साथ बाहर के लोगों को भी उन्होंने इस विषय से अवगत करा, प्रभावित किया। एक ही समय में कर्म और भक्ति की पूर्णता का अपूर्व सङ्गम और उसे ज्ञान की तलवार से तराश कर जो कार्य पू. बाबा ने किया उसे युग युगों तक अपने हृदयों पर अंकित रखना होगा।

उनका पूर्व का जीवन क्या था, वे कहाँ से सम्बन्धित रहे, कहाँ उनके माता-पिता रहे, उनका गुरु स्थान-सभी कुछ अटकलों पर आधारित है। फिर भी एक मान्यता अवश्य समान रूप से स्वीकार्य है कि उनका सम्बन्ध पन्ना राजपरिवार से अवश्य रहा है। मझे नहीं स्मरण मेरे लम्बे परिचय में कभी भी पू. बाबा ने अपने पूर्वाश्रम के विषय में कुछ कहा हो। संन्यास धर्म का सच्चाई से पालन करने वाला कोई महानुभाव, जिसने मुख फेरते ही, मुड़कर देखा ही नहीं, विरला सन्त शास्त्रीय मर्यादाओं में बद्ध तथा तपा हुआ स्वर्ण पू. बाबा के व्यक्तित्व से छलकता था।

उन्होंने ब्रजेश्वरी श्रीराधा रानी को ही गुरु रूप में स्वीकार किया। उनकी मधुर उपासना और लीला में अभिनिवेष के विषय में क्या कहूँ सभी सम्प्रदायों को समादर देते हुए भी-

नहिं बकुला नहीं बीज हैं, अद्भुत रस यह आई।
पावेगो सोई भैया, देहि हरिदासी जाहि ॥

श्रीहरिदासजी महाराज श्रीललिता जी के अवतार माने जाते हैं, नित्य विहार के आचार्य स्वामी श्रीहरिदासजी महाराज, रसिक भूषण महाप्रभु हरिवंश जी महाराज तथा हरिराम व्यास जी महाराज की भाव प्रवणता से समन्वय उन्होंने माना फिर भी अपनी भाव धारा को इयत्ता में बंधने नहीं दिया। भक्तिमती ऊषा बहन जी के विशाल तथा उदार दृष्टिकोण को देख उन्होंने कहा था,- “मेरा मत बहिन जी की अनेक बातों से मेल खाता है।” उनके त्याग और वैराग्य के विषय में कहा करते थे- “चाहे कितना भी ऐश्वर्य हो जावे, परन्तु त्यागी के प्रति जगत का सहज झुकाव होता है, और यही ब्रज की

रहनी की अभीप्सा भी है।" एक स्थान पर वे कहते हैं 'जीवन में जिस आर्ष परम्परा को श्रेष्ठ गौरव प्राप्त हुआ है, इसका प्रारम्भ त्याग से ही हुआ है, और पर्यवसान सम्पूर्णता में बदल गया'।

ज्ञान मार्ग का अनुसरण कर उन्होंने ध्यान योग तथा लीला चिन्तन में सतत अवगाहन किया, कर्म का क्षेत्र उनमें उसी पूर्णता को लेकर प्रति स्थापित हुआ। ब्रज की संस्कृति, पर्यावरण प्राचीन स्थलियों का अवैध उत्खनन भगवद् सेवा भाव से ही इन सबके संरक्षण में लगे रहे। लीला चिन्तन में निमग्न भक्ति की अजस्र रस धारा का प्रवाह उनके नेत्रों से बहते देख कर क्या कहूँ- ऐसे ही प्रसङ्गों को एक या दो बार नहीं बार बार सुन कर तन्मय, अनेक बार बिल्कुल समाधि अवस्था में अपने इन चर्म चक्षुओं से देख कर क्या लिखूँ। वे जहाँ थे उसी में पूर्ण दीखे! वे एक ऐसा व्यक्तित्व थे जिसके विषय में बहुत कुछ कह कर भी उतना ही कहने के लिये शेष रह जाता है।

भारतीय तथा ब्रज संस्कृति के प्रति वे समर्पित रहे, उनकी अभीप्सा थी कि विश्व में इस संस्कृति का प्रचार तथा प्रसार हो। इसी के उन्नयन हेतु शाश्वत भारती विश्व विद्यालय प्रकल्प के रूप में उन्हें प्रेरणा हुई, नन्दनन्दन की प्रिय गो संरक्षण की अनिवार्यता की ओर उनका ध्यान गया तथा यहाँ के सांस्कृतिक रिक्त के संरक्षण की सोच जगी।

अब नित्य लीला में प्रवेश पाने के लिए उनका रोम-रोम तत्पर रहता था, अनेक बार शरीर त्याग देने की बात उन्होंने कही परन्तु अपनों से बिछुड़ने की कल्पना को जी नहीं करता। अतः विश्वास नहीं होता था जब उन्होंने दवा के प्रति पूरी उदासीनता दिखलाई तो किसी बहन से उन्होंने कहा था- 'अब जाना ही है। इस का पोषण करने से क्या होगा।'

अपने संकल्पों को मूर्तरूप देने में सतत गतिशील पू. बाबा ने इहलौकिक लीला संवरण करते समय इन सब से भी मोह भंग कर लिया तथा ३१ दिसम्बर १९९६ को भगवान भुवन भास्कर को प्रणाम कर सदा सदा के लिये भौतिक चक्षुओं से ओझल हो गए।

छलिया ठाकुर (श्रीश्री आनन्दमयी माँ)

जहाँ आज श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम, चिकित्सालय है, इसी जमीन को आनन्दमयी माँ के आश्रम हेतु उनके अनुयायियों का, क्रय करने का विचार बना। उक्त जगह दिखलाने के लिए माँ को वहाँ ले गये। माँ ने कहा, "भैया! हमने तो स्वप्न में जो स्थान देखा है वह यह नहीं है। उसमें एक विशेष वृक्ष के सामने मन्दिर भी बना था।"

सामने वाला स्थान जहाँ आजकल माँ का आश्रम है, यह जमीन श्रीरामकृष्ण सेवाश्रम वालों ने क्रय कर ली थी। सेवाश्रम वालों को चिकित्सालय के लिए वह स्थान ठीक नहीं लगा। उनके लोगों ने माँ से निवेदन किया, "यदि आपको आपत्ति न हो तो वह जमीन उन्हें दे दें।" माँ को वर्तमान आश्रम वाला स्थान ही स्वप्न में दिखलाई दिया था। वह पेड़ भी वहीं यथावत था। माँ के आश्रम के लिए वर्तमान स्थान का ही निश्चय हो गया। वही स्थान माँ को दिखलाई दिया था।

भव्य मन्दिर का निर्माण किया गया। मूर्ति स्थापना का प्रश्न उठा। माँ से पूछा गया। उन्होंने जिन श्रीठाकुर स्वरूप का दर्शन स्वप्न में किया था-उसी मुद्रा में श्रीकृष्ण स्वरूप पधराने की बात कही। माँ के मन में एक पंक्ति स्वतः ही स्फुरित होने लगीं-

'छलिया, छलियो ना'

एक दिन राजमाता विजयराजे सिंधिया, माँ के पास आईं। बात-बात में प्रसङ्ग वश माँ से बोलीं, "मैंने ग्वालियर में एक भव्य मन्दिर बनवाया था। वहाँ स्थापना हेतु श्रीकृष्ण के अति सुन्दर श्रीविग्रह मँगवाये थे। वे त्रिभङ्ग मुद्रा में न होकर एक चरण आगे बढ़ा चलने को तैयार हो ऐसी मुद्रा में हैं, आप कहिये अब क्या किया जाये ?"

माँ ने तुरन्त कहा, "हमारे पास भेज दो।" श्रीठाकुर को देखकर माँ ने तुरन्त कहा, इसी मुद्रा में तो ठाकुर ने उन्हें पहले ही दर्शन दिये थे।

राजमाता से छल कर यह श्रीठाकुर स्वरूप यहाँ विराजने लगे-इसी से इन्हें छलिया ठाकुर नाम से सम्बोधित किया गया।

पहले से ही माँ गा रही थीं, "छलिया छलियो ना।"

श्रीश्रीराधाविनोद ठाकुर-(तरास वाला मन्दिर)

श्रीश्रीराधाविनोद ठाकुर की प्राकट्य सम्बन्धी वार्ता बड़ी ही मधुर तथा सरस है, उसे हम नीचे उद्धृत कर रहे हैं-

श्रीबाञ्छारामजी तरास स्टेट के अधिकारी थे। वे बड़े भक्त थे। वे नित्य ही नदी स्नान करते। एक बार कारतोया नदी में स्नान कर रहे थे तो उन्हें स्पष्ट सुनाई पड़ा कि, 'मुझे जल से निकाल लो तथा घर ले चलो।' परन्तु दिखाई कुछ न दिया। अगले दिन भी ऐसा ही हुआ और तीसरे दिन उन्हें लगा जैसे जल में उन्हें किसी वस्तु का स्पर्श हो रहा है। उन्होंने जब हाथ से उठाया तो जो श्रीविग्रह स्वरूप उन्हें प्राप्त हुए वे ही विनोद ठाकुर के नाम से विख्यात हुए।

श्रीठाकुरजी वहाँ से स्वेच्छा से श्रीवनमालीरायजी के घर पधारे तथा उनकी एकमात्र पुत्री को उन्होंने अपनी मधुर मुस्कान से मोहित कर लिया। विनोद ठाकुरजी उस राधा नाम की बालिका के साथ बहुत ही प्रत्यक्ष रूप में लीला करते रहे। एक दिन उस बालिका का आंचल पकड़ कर बोले, "मुझ से ब्याह कर ले।" इधर राधा बीमार हो गई और ठाकुर विनोदजी ने स्वप्न में माँ से कहा, राधा बचेगी नहीं। तुम्हारे बगीचे में जो देवदार का सूखा वृक्ष है उसकी लकड़ी से एक प्रतिमा बनाकर मेरे साथ ब्याह कर दो। ऐसा ही किया गया। जैसे ही वह प्रतिमा बनकर तैयार हुई कि राधा का शरीर छूट गया। इधर एक ओर राधा का दाह संस्कार हुआ और दूसरी ओर ठाकुरजी के साथ उस प्रतिमा की स्थापना हुई। श्रीविनोदविहारी ठाकुर अब श्रीराधाविनोद विहारी ठाकुर हो गये।

सन् १८९२ की बात है कि इन्हीं श्रीठाकुरजी ने पुजारी से तन्द्रा-सी में हुक्का लाने का आग्रह किया। श्रीवनमालीरायजी जैसे ही दर्शन हेतु पधारे तो पुजारी ने सारी बात उनसे कह दी। उन्होंने हुक्के की व्यवस्था तो कर दी पर उन्हें एक शङ्का बनी रही।

एक दिन श्रीजगद्बन्धुजी जब वहाँ पधारे तो उन्होंने श्रीवनमाली रायजी को विनोद ठाकुर के हुक्के की गड़-गड़ का शब्द सुनवाया, उसे सुन श्रीवनमालीरायजी की आस्था श्रीराधाविनोद ठाकुरजी में सुदृढ़ हो गई।

कुछ दिन बाद उन्हीं श्रीठाकुर स्वरूप को ले श्रीवनमाली बाबू ब्रज में चले आये। वे कुछ समय श्रीराधा-कुण्ड विराजते तथा कुछ समय श्रीवृन्दावन में।

बाल भक्त ओमप्रकाश

सन् १९२६ की बात है जयपुर के पास ही टोंक ग्राम में आपका जन्म हुआ। बाल्यकाल से भगवान के प्रति दृढ़ निष्ठा थी। उन्होंने हाईस्कूल परीक्षा पास की। श्रीवृन्दावन के प्रति भाव और, और सुदृढ़ होने लगा। अन्ततः आप श्रीवृन्दावन चले आये।

श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग संसार के प्रति विरक्ति तथा नाम जप उनका अहर्निश चलने लगा।

एक दिन श्रीकृष्ण दर्शन के लिए दृढ़ निश्चय कर अनशन कर दिया। बानक कुछ ऐसा बनता रहा कि इनका अनशन चलता ही रहा। श्रीहरिबाबा, प्रभृति अनेक महज्जनों के कहने पर भी इनका व्रत दृढ़ रहा।

श्रीनारायण स्वामी के प्रति ओमप्रकाशजी गुरुबुद्धि रखते थे-वे दूध पिलाने के लिए आने वाले थे। ओमप्रकाश जी ने स्वीकार भी कर लिया कि यदि वे आज्ञा देंगे तो अवश्य ग्रहण करूँगा।

ओमप्रकाशजी के अनशन का आज ६९ वां दिन था। श्रीनारायण स्वामीजी दूध पिलाऐंगे, इस समाचार को सुन वृन्दावन के भावुक दर्शनार्थी यमुना तट पर विराजमान भक्त ओमप्रकाश के दर्शनार्थ जा पहुँचे।

जब तक सभी लोग वहाँ एकत्रित होते, श्रीओमप्रकाशजी की एहिक लीला समाप्त हो चुकी थी। अवश्य ही श्रीकृष्ण की झाँकी कर वे विभोर हो चुके थे। उनके इस हठ प्रधान चरित्र को प्रेमी भक्त अवश्य नहीं सराह सके। ब्रजभाव में तो प्रेम का ही सौदा है, जहाँ देना ही देना है।

काठिया बाबा आश्रम

मुंगेर वाले मन्दिर के सामने गुरुकुल मार्ग पर श्रीकाठिया बाबा का स्थान है। यहाँ अनेक उच्च-कोटि के महात्मा हो गये हैं।

कात्यायिनी पीठ

श्रीरङ्गजी के बगीचे के पास ही यह स्थली है। यहाँ कात्यायिनी देवी के दर्शन हैं।

यहाँ हाल ही में अपने चमत्कारों से अनेक भक्तों को आकर्षित कर स्वेच्छा से विराजे सिद्ध गणेशजी भव्य स्वरूप में विराजमान हैं।

वृन्दावन में निम्न अन्य स्थलियाँ भी दर्शनीय हैं-

श्रीरूप मनोहरजी, वर्द्धमान कुञ्ज, बरसानियाँ कुञ्ज, फौजदार कुञ्ज, जीवाराम कुञ्ज, महोत्तरावाली कुञ्ज, कानपुर वाली कुञ्ज, खाक चौक, टिकारी घाट, मदनमोहन कुञ्ज, श्रीहरिदेवजी का मन्दिर, ब्रह्मचारी मन्दिर, राधा बाग, श्रीसाधु माँ का मन्दिर, राधा निवास, मुंगेर मन्दिर, अटल वन, केवार वन, उड़िया बाबा आश्रम, श्रीहरिबाबा आश्रम, श्रीजुगलविहारी मन्दिर(जुगल घाट), श्रीयशोदानन्दनजी का मन्दिर, भ्रमर घाट, जुगल घाट, विहार घाट, गोविन्द घाट आदि।

अलौकिक नाम मन्दिर

कात्यायिनी पीठ के पास ही चार सम्प्रदाय के पीछे अलौकिक नाम मन्दिर है। यहाँ की विशेषता यह है कि श्रीठाकुर स्वरूपों के वपु पर नाम अंकित है। अखण्ड नाम संकीर्तन यहाँ की शोभा है। मन्दिर में स्वरूप सेवा अपनी सी अनोखी है। कहते हैं कि इस मन्दिर के संस्थापक महंत श्री रामेश्वरानंद जी को मन्दिर स्थापना की प्रेरणा हुई थी।

इस मन्दिर की प्रतिष्ठा बाबा श्रीपाद जी महाराज द्वारा हुई। यहाँ के प्रथम पुजारी द्वारा सेवा तथा श्रीठाकुर को लड़ाए लाड़ से स्वरूपों में विलक्षणता अवश्य आई है । पुजारी श्रीतुलसी दास एक उड़िया महात्मा थे । सभी के प्रति स्नेह और सौहार्द का स्वरूप, जो उनमें ईश्वर प्रदत्त था, ने उन्हें सभी में लोकप्रिय बना दिया था। ऐसे होनहार बालकों की आवश्यकता भगवान के यहाँ भी रहती है, गतवर्ष ही अपनी बहुत छोटी वय में अपनी स्मृति सभी के मन में छोड़ इस नश्वर संसार का परित्याग कर गए ।

मदनमोहनजी

श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामीपाद के शिष्य थे श्रीगदाधरभट्टजी, उन्हीं के द्वारा यहाँ श्रीमदनमोहनजी की सेवा प्रारम्भ हुई। इन्हीं की परम्परा में श्रीगोवर्द्धनभट्टजी विशिष्ट विद्वान हो गये हैं ।

श्रीठाकुरजी की सेवा तथा वसन्त एवं होली का समाज विशेषत: दर्शनीय रहा है ।

दर्शनीय नवीन स्थलियाँ

गम्भीरा (भ्रमर घाट), वैजयन्ती (ज्ञानगुदड़ी) गोदाविहार, सुदामा कुटी, गोरे दाऊजी, श्रीकृष्ण-बलराम मन्दिर, नृत्यगोपाल मन्दिर, पागलबाबा मन्दिर, चार सम्प्रदाय आश्रम, चैतन्य कुटी, छत्तीसगढ़ कुञ्ज ।

पीछे आप श्रीवृन्दावन की लीला-स्थलियों के विषय में पढ़ आये हैं, आईये अब आस-पास की लीलास्थलियों में विचरण कर वहाँ का आनन्द लें ।

माट गांव

मृत्तिका निर्मित वृहत् पात्र 'माट' नाम ।
माटोत्पत्ति प्रशस्त-ए हेतु माट ग्राम ॥

(भ० र०)

मृत्तिका पात्र जिसका उपयोग जल भरने तथा दधि मन्थन आदि के लिए किया जाता है, माट नाम से विख्यात है । आज भी ब्रज में माट का प्रयोग प्रचुर मात्रा में होता है, प्राचीन समय में दूध- दधि हेतु बड़े-बड़े माटों का प्रयोग होता था । वे यहीं बनते थे ऐसी मान्यता है । तभी से यह ग्राम माटों के लिए प्रसिद्ध है ।

भाण्डीर वन से २ मील दक्षिण में तथा वृन्दावन से लगभग पाँच मील की दूरी पर स्थित है ।

मांट ग्राम में अनेक उच्च-कोटि के महात्मा हो चुके हैं। श्रीबैरु बाबा का चरित्र बड़ा ही चमत्कार पूर्ण है। ग्रामवासियों की सुरक्षा हेतु वे समय-असमय में प्रकट हो जाते थे।

श्रीस्नेहीरामजी अपने रसियाओं के लिए प्रसिद्ध हैं। वे नित्य ही श्रीबिहारीजी के दर्शन करके ही प्रसाद ग्रहण किया करते थे। उनकी मानसी सेवा सिद्ध थी। कहते हैं कि एक बार उनकी भाभी खाना ला रही थीं। बड़े भाई बिना भोग धरे ही पा लेंगे, इस भय से श्रीस्नेहीरामजी ने मानसिक भोग धराया। इनके बड़े भाई ने गुस्से में आ इन्हें बुरा-भला कहा तथा डण्डा उठा मारने को भागे। श्रीस्नेहीरामजी जो भोग श्रीठाकुरजी को मानसिक अर्पित कर रहे थे वह सब खेत में फैल गया। यहाँ तक कि इनकी भाभी के सिर पर धरा बर्तन भी खाली निकला। श्रीस्नेहीरामजी बड़े ही उच्च कोटि के भक्त थे।

बिल्ववन

तपः सिद्धि प्रदायैव नमो बिल्ववनाय च ।
जनार्दन नमस्तुभ्यं बिल्वेशाय नमोस्तु ते ॥

(भविष्योत्तर पुराण)

तपस्या सिद्धि प्रदान करने वाले हे बिल्ववन ! आपको नमस्कार है।

गोकुल में नित्य उत्पातों से पीड़ित होकर नन्दबाबा, उपनन्दजी आदि गोप श्रीवृन्दावन में आकर रहने लगे। श्रीकृष्ण-बलरामजी यहीं से, सखाओं सहित गैया चराने जाते। इन्हीं वृक्षों की सघन छाया में कन्हैया अपने ग्वाल-बाल सखाओं तथा गोधन सहित विश्राम करते, फलों का सेवन करते। सखाओं की मण्डली हास-विनोद में मग्न रहती। घने बिल्व-वनों की यह स्थली 'बिल्ववन' नाम से विख्यात हो गई।

श्रीलक्ष्मीजी की तपःस्थली

यहाँ श्रीलक्ष्मीजी का मन्दिर है। ऐसी मान्यता है कि श्रीलक्ष्मी जी की, भगवान श्रीकृष्ण की रासलीला दर्शन करने की प्रबल इच्छा हुई तो उन्होंने ब्रज के लिए प्रस्थान किया। रासलीला दर्शन अनन्य प्रेम की स्वरूपभूता, इन रमणी वृन्द की कृपा से ही सुलभ है। अतः श्रीलक्ष्मीजी को रास में प्रवेश सुलभ न हो सका। बहुत अनुनय-विनय करने पर ब्रजवास सुलभ हो सका। तपस्या करके अपने को धन्या करने हेतु श्रीलक्ष्मीजी आज भी ब्रज में वास कर रही हैं।

कस्यानुभावोऽस्य न देव विद्महे
तवाङ्घ्रि रेणु स्पर्शाधिकारः ।

यद्वाञ्छया श्रीर्ललनाऽऽचरत्तपो
विहाय कामान् सुचिरं धृतव्रता ॥[1]

(श्रीमद्भागवत)

श्रीवृन्दावन के उत्तर-पश्चिम कोण में श्रीयमुना के पार यह वन स्थित है। श्रीगोसांई विट्ठलनाथजी की बैठक है।

कृष्ण कुण्ड

बिल्ववने कृष्णकुण्डे जे करे स्नान ।
सर्व पापे मुक्त से परम भाग्यवान ॥

(भ० र०)

पास ही कृष्ण कुण्ड है। अपने नाम, गुण के अनुरूप ही, यहाँ स्नान करने वाले भक्तों को अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की चरण भक्ति प्रदान कराने वाला है। बिल्ववन से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित है।

मान सरोवर

छाँड़ि दै मानिनी मान मन धरिबौ ।
प्रणत सुन्दर सुघर, प्राणवल्लभ नवल,
वचन अधीन सों इतौं कत करिवो ।
जपत हरि विवस तव नाम प्रति पद विमल,
मनसि तव ध्यान ते निमिष नहिं टरिबो ॥

(हि० चौ 83)

नित्य रसकेलि-प्रिय श्रीकृष्ण और उन्हीं की आराध्या श्रीराधा निज स्वरूपभूता ब्रज-बालाओं सहित नित्य ही नये-नये रसायोजनों में रत रहते हैं। रस वर्धन के सभी उपक्रम समयानुसार प्रकट होते रहते हैं। संयोगावस्था का जहाँ एक ओर अपना ही सुख है-वहीं दूसरी ओर मान भी रस वर्धन हेतु प्रेम का अभिन्न अङ्ग है। कठिन मान तो इन ब्रज-सुन्दरियों को सुहाता ही नहीं। उनका मान तो प्रियतम के सुख हेतु ही है।

हाँ! तो सुन्दर सघन वृक्षावलियों से आवृत्त, स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवर है यह। इसमें कमल तथा कुमुदिनियाँ अपना पराग न्यौछावर कर रही हैं। प्रणयी रिझवार और-और रसमग्न होते जा रहे हैं। पास ही बैठी प्रियाजी कभी कमल

---

1. नाग पत्नियों ने भगवान श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहा -
भगवन् हम नहीं समझ पाती कि यह इसकी (कालिय नाग) किस साधना का फल है, जो यह आपके चरणों की धूलि पाने का अधिकारी हुआ है। आपके चरणों की रज इतनी दुर्लभ है कि उसके लिये आपकी अर्द्धाङ्गिनी श्रीलक्ष्मीजी को भी बहुत दिनों तक समस्त भोगों का त्याग करके नियमों का पालन करते हुए तपस्या करनी पड़ी थी।

पुष्प उठा, उसे इकटक निरख रही हैं-और कभी जल में अपनी करांगुलियों से कुछ बनाने का प्रयास-सा कर रही हैं। ऐसे में जाने किस स्मृति में वे खो-सी गईं। वातावरण स्तब्ध-सा हो गया। मुख पर आई तरङ्ग मालाओं में किञ्चित् गाम्भीर्य का सम्मिश्रण देख सभी शान्त हो गया। इधर रस में कुछ बाधा आई देख प्रियतम चौंक गये। प्रियाजी किञ्चित् गम्भीर मुद्रा में ही बोलीं, "वही आपकी प्रेम पात्री होती है तो होने दो। उसी के साथ रमण करने पर ही तुम्हें सुख होगा, यह भी मैं समझ गई हूँ। मुख से कपट पूर्ण बातें बनाने से क्या प्रयोजन ? हे प्रियतम ! मैं तो आपके सुख में ही सुखी हूँ। ऐसा जानकर आप वहीं पधारें। आपका तो किञ्चिन्मात्र भी दोष नहीं है-विधाता ही प्रतिकूल दीख रहा है।" ऐसा कह किशोरी श्रीराधा थोड़ा सरक गईं।

प्रणयी चतुर नन्दनन्दन किञ्चित् गम्भीर होकर बोले, "प्रिये ! मैं तो सर्वथा तुम्हारे अधीन रहता हूँ। तुम्हारी मुस्कान जाल के, केश पाश के, मधुर नूपुर झङ्कार के, रूप सौन्दर्य में उठती अनगिन रस लहरियों के और क्या कहूँ, तुम्हारी समस्त शोभा श्री ने मुझे तुम्हारा अनुचर ही बना रखा है और एक तुम हो... जो छोटी-छोटी बातों पर तुनक जाती हो।" इतने पर भी प्रियाजी गम्भीर ही रहीं। प्रियतम ने पुनः कहा, "अच्छा तुम यों करोगी तो मैं", बस यह सुनते ही प्रियाजी अधिक चुप न रह सकीं। वे तो पहले ही द्रवित हो चुकी थीं। उन्होंने किञ्चित् मुस्कराकर प्रियतम की ओर देखा। अब क्या था- मान जाता रहा। रस समुद्र में ज्वार-भाटा उमड़ पड़ा। यह तरङ्गें रूप राशि के अथाह सिन्धु में ही विश्राम पाकर सुस्थिर हुईं। सखीवृन्द रसकेलि में निमग्न हुई प्रणय बेसुधि में खो- सी गईं। और यह ब्रज सुन्दर अपनी विजय दुन्दुभी बजा, मदनकेलि में रत हो गये।

इन्हीं रसमयी स्मृतियों से स्पृष्ट यह स्थली आज भी अपनी रसीली चेष्टाओं की गाथा दोहरा रही है।

सरोवर के पास ही, श्रीमन्महाप्रभु वल्लभाचार्यजी तथा गुसांई विट्ठलनाथजी की बैठक है।

श्रीहित-हरिवंशजी महाराज की भी इस स्थली के प्रति विशेष आसक्ति थी। वास्तव में उन्हीं के अनुग्रह से इस स्थली का प्रचार-प्रसार हुआ।

श्रीयमुनाजी के पार लगभग दो मील की दूरी पर है। श्रीहरिवंशजी महाराज की साधना स्थली रही है। इस समय यहाँ श्रीजी की नाम सेवा तथा रासमण्डल दर्शनीय हैं। श्रीहित प्रभु के वृन्दावन आगमन की स्मृति में फाल्गुन कृष्णा एकादशी को यहाँ उत्सव मनाया जाता है।

पानी गाँव

मान सरोवर से दो मील दक्षिण की ओर स्थित है । यहाँ दुर्वासा ऋषि का आश्रम है । श्रीकृष्ण की लीला प्रकट के समय गोपिकाओं ने श्रीदुर्वासा ऋषि को भोजन करा, श्रीकृष्ण चरणों में अपनी प्रीति की प्रगाढ़ता हो, ऐसी याचना की थी । गोपिकाओं ने अपनी मनःकामना पूर्ति हेतु भोजन कराने की तैयारी की तो श्रीयमुना उस समय जल से परिपूर्ण थीं । उस पार जाना अत्यन्त कठिन हो गया । गोपिकाओं ने श्रीकृष्ण से उस पार जाने का उपाय पूछा तो उन्होंने कहा- 'अपने इष्ट का ध्यान कर तुम लोग श्रीयमुना से कहना यदि श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्मचारी हैं तो हमें मार्ग दे दो ।' जब गोपिकाऐं श्रीयमुना तट पर आईं तो उन्होंने यही वाक्य दोहरा दिया-श्रीयमुनाजी ने अपने बीच से रास्ता छोड़ दिया और गोपिकाऐं पार चली गईं ।

दूसरे तट पर जाकर उन्होंने अनेक पकवान बनाये और श्रीदुर्वासा ऋषि की सेवा में ले जाकर समर्पित कर दिये । ऋषि ने उन सुस्वादु पदार्थों को बहुत ही आनन्द पूर्वक ग्रहण किया । 'श्रीकृष्ण चरणों में प्रगाढ़ प्रीति हो', ऐसा आशीर्वाद प्राप्त कर तथा श्रीदुर्वासा ऋषि को प्रसन्न कर जब गोपिकाऐं लौटने के लिए श्रीयमुना तट पर आईं तो भी श्रीयमुनाजी में उत्तुङ्ग हिलोरें उठ रही थीं । गोपिकाओं ने श्रीदुर्वासाजी से लौटने का उपाय जानने की प्रार्थना की । दुर्वासाजी ने कहा कि तुम लोग जाओ और श्रीयमुना से कहना- 'हे यमुने ! यदि दुर्वासा ऋषि ने अभी तक कुछ भी न ग्रहण किया हो तो हमें उस पार जाने के लिए मार्ग दे दें ।' वे बड़े विस्मय में पड़ गईं । लौटना तो था ही उन्होंने श्रीयमुनाजी से निवेदन किया-

'हे श्रीयमुने ! यदि श्रीदुर्वासा जी ने अभी तक कुछ भी ग्रहण न किया हो तो कृपामयि ! हमें मार्ग दे दें ।' इतना कहते ही श्रीयमुना ने मार्ग दे दिया और गोपिकाऐं पैदल चलकर स्वगृहों को लौट आईं ।

इन्हें इन दोनों घटनाओं को देख अत्यन्त आश्चर्य हुआ और उन्होंने श्रीकृष्ण से इस रहस्य को जानने की जिज्ञासा प्रकट की । श्रीकृष्ण ने कहा, 'मेरी प्यारी गोपियों ! तुम अत्यन्त भोली हो । तुम्हारी मुझ में अत्यन्त प्रीति है । मैं दिन-रात तुम सबके साथ रहने पर भी अखण्ड ब्रह्मचारी हूँ-क्योंकि किसी भी वस्तु का ग्रहण मन के द्वारा होता है मैं जितेन्द्रिय हूँ, अतः मेरी बिना इच्छा के मेरा मन किसी भी वस्तु का स्पर्श नहीं करता इसी से मैं अखण्ड ब्रह्मचारी कहलाता हूँ । ऐसी ही बात श्रीदुर्वासा ऋषि के बारे में विख्यात है । वे वस्तु

को बिना स्वाद के ग्रहण करते हैं। जिससे उनका मन उसमें आसक्त नहीं होता-अतः इसी से वे ग्रहण करने पर भी उसके स्पर्श दोष से मुक्त रहते हैं।

अपनी इन स्मृतियों को दोहराती यह स्थली आज भी हमारा पथ प्रदर्शन कर रही है।

अक्रूर घाट

अक्रूरस्तावुपामन्त्रय निवेश्य च रथोपरि ।
कालिन्द्या ह्रदमागत्य स्नानं विधिवदाचरत् ॥
निमज्ज्य तस्मिन् सलिले जपन् ब्रह्मसनातनम् ।
तावेव ददृशेऽक्रूरो रामकृष्णौ समन्वितौ ॥[1]

(श्रीमद्भागवत 10/39/40-41)

अरिष्टासुर का वध हो जाने पर भी कंस का मृत्यु भय कम न हुआ। उसे रात-दिन अपना काल सामने दिखलाई देने लगा। उसने अक्रूरजी को बुलवाकर श्रीकृष्ण-बलराम, दोनों भैया तथा श्रीनन्द आदि गोपों को बुलाने का नया उपक्रम किया। श्रीअक्रूरजी ब्रज में श्रीनन्दजी के यहाँ पहुँचे। मैया यशोदा तथा श्रीनन्दबाबा की आशङ्का बढ़ गई; उन्हें अत्यन्त कष्ट हुआ। यह सब वृत्तान्त जानने के बाद ब्रजवासी-गण तो मृतक के समान ही हो गये। फिर भी उन्हें ढाढ़स रहा। कन्हैया अत्यन्त बलवान है। अपना कार्य शीघ्र ही पूर्ण कर लेगा।

इधर ब्रज की भोली-भाली ग्वालिनियों के कष्ट का वर्णन कौन करता। यह हृदय विदारक समाचार सहन करने में असमर्थ वे बालाऐं मूर्छित हो गईं। कोई सत्प्रेमी ही इस सबका अनुभव कर सकता है। चातक से पूछो जो स्वाति नक्षत्र की एक बूंद की बाट जोहता, गङ्गाजल पान करने को भी तैयार नहीं, चकोर से पूछो जो चन्द्रमा के खण्ड समझ अङ्गारों का पान कर जाता है, अथवा सारस से पूछो जो क्षण भर भी वियोग सहन नहीं कर सकता अथवा पूछो उस चकवे से जो नित्य वियोगाग्नि में तप्त होने पर भी किसी सुनहरी भोर की प्रतीक्षा में प्राण धारण किये रहता है।

गोपिकाओं के कष्ट की सीमा न थी। उनमें कुछ मूर्च्छित हो गईं, कुछ मर्यादा को तिलाञ्जलि दे रथ के आगे ही लेट गईं।

सभी के प्राणों के प्राण, नन्दनंदन को ले रथ चल पड़ा। टकटकी बाँधे

---

1. अक्रूरजी ने दोनों भाईयों को रथ पर बैठाकर आज्ञा ली और यमुनाजी के कुण्ड ब्रह्महृद पर आकर विधिपूर्वक स्नान करने लगे। उस कुण्ड में स्नान करने बाद जब वे गायत्री जप करने लगे, उन्होंने जल के भीतर श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों भाईयों को देखा।

उस रथ की ओर सभी देखते रहे । धीरे-धीरे रथ नेत्रों से ओझल हो गया । धूलि दीखनी भी बन्द हो गई ।

वायु वेग वाले उस रथ पर बैठ श्रीकृष्ण-बलराम पापनाशिनी श्रीयमुनाजी के तट पर जा पहुँचे । अक्रूरजी ने स्नान आदि किया । जब उन्होंने जल में डुबकी लगाई तो श्रीकृष्ण और बलराम दोनों ही भाईयों को जल में बैठे देखा । भ्रम समझ जब बाहर मुख निकाला तो दोनों भाई उन्हें रथ पर आसीन दिखलाई दिये । यह सब देख वे आश्चर्य चकित रह गये । जल में उनकी कदाचित् कल्पना ही हो, ऐसा विचार कर जब उन्होंने पुनः डुबकी लगाई तो वे स्तब्ध रह गये । उन्होंने देखा अनन्त देव शेषजी विराजमान हैं । उनके सहस्र मुख हैं । वहीं शेष शैय्या पर श्याम मेघ के समान घनश्याम विराजमान हैं । सुन्दर भौंहें, सुघड़ नासिका, लाल कपोल सभी अद्वितीय शोभा का प्रसार कर रहे हैं ।[1]

अक्रूरजी ने भगवान की स्तुति की-

नमस्ते वासुदेवाय नमः सङ्कर्षणाय च ।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय सात्वतां पतये नमः ॥

(श्रीमद्भागवत 10/40/21)

वैष्णवजनों तथा यदुवंशियों का पालन-पोषण करने के लिए ही आपने अपने को वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इस चतुर्व्यूह के रूप में प्रकट किया है । मैं आपको बार-बार नमस्कार करता हूँ ।

यह स्थली अक्रूर घाट के नाम से प्रसिद्ध हो गई । श्रीश्रीमन्महाप्रभु चैतन्यदेव जिस समय ब्रज दर्शन हेतु पधारे तो उन्होंने यहीं निवास किया । पास ही ग्राम से भिक्षा कर लाते थे । पास ही यज्ञस्थल है ।

यज्ञ स्थल

प्रयात देवयजनं ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः ।
सत्रमाङ्गिरसं नामह्यासते स्वर्गकाम्यया ॥

(श्रीमद्भागवत 10/23/3)

गोचारण में आये ग्वाल-बाल अपने लाड़ले कन्हैया तथा बलराम जी के शौर्य की प्रशंसा करने लगे, उन्हें भूख लगी है, कहने लगे । ब्राह्मण पत्नियों पर कृपा करने के लिए श्रीकृष्ण ने बालकों से कहा, "तुम लोग जाओ और पास ही आंगिरस यज्ञ कर रहे ब्राह्मणों से हमारा नाम लेकर कुछ खाद्य सामग्री ले

1. रसिकों ने माधुर्य स्वरूप से नन्दनन्दन का ब्रज से बाहर जाना स्वीकार नहीं किया ।

आओ। ग्वाल बालकों ने ऐसा ही किया। स्वर्ग प्राप्ति की कामना में लगे उन ब्राह्मणों ने श्रीकृष्ण को केवल साधारण मनुष्य ही जान इस पर ध्यान न दिया। उन ग्वाल बालकों ने यह सारा वृत्तान्त श्रीकृष्ण से कह सुनाया।

अपने प्रिय मित्रों को समझाते हुए श्रीकृष्ण ने पुनः उन ब्राह्मणों की पत्नियों के पास जाने के लिए कहा। सखाओं ने ब्राह्मण-पत्नियों से पूर्ववत् सारी बात कही तथा भोजन माँगा। ब्राह्मण-पत्नियाँ तो पहले ही श्रीकृष्ण की मधुर लीलाओं को सुन-सुनकर उनकी अङ्ग-माधुरी का बखान कर अपना चित्त उन्हें समर्पित कर चुकी थीं, अतः उन स्त्रियों ने अपने पति-बन्धु-बान्धवों के विरोध करने पर भी सुन्दर-सुन्दर खाद्य-पदार्थ सजाये और लेकर स्वयं ही अपने प्रियतम श्रीकृष्ण की सेवा में चल दीं।

ब्राह्मण-पत्नियों ने यमुना पुलिनवर्ती अशोक वन में श्रीकृष्ण, बलराम तथा ग्वाल-बालकों को देखा। श्रीकृष्ण का श्यामल सुभग शरीर, पीत पट की आभा से और और सुन्दर प्रतीत हो रहा था, मस्तक पर सुशोभित मुकुट में मयूर पिच्छ अपनी विजय पताका फहरा रहा था। अङ्ग-प्रत्यंग पर सुन्दर चित्रकारी हुई थी। एक हाथ अपने सखा के स्कन्ध पर रखे-वे अत्यन्त मनोहर लग रहे थे। उनकी वह छवि सहज ही मन का अपहरण किये ले रही थी। मुख कमल पर मन्द-मन्द मुस्कान रश्मियाँ प्रणय-पाश का काम कर ही थीं।

श्रीकृष्ण ने उन ब्राह्मण पत्नियों की प्रेमा भक्ति देख, सत्कारपूर्वक उनसे कहा, "तुम्हारा मुझ में अपूर्व अनुराग है। इसी से अपने बन्धु-बान्धवों की परवाह किये बिना यहाँ मेरे पास आयी हो। तुम्हारा शुद्ध तथा सत्वमय प्रेम मुझ में है। तुम्हारी बहुत दिनों से मेरे दर्शनों की अभिलाषा थी- अब वह पूर्ण हुई, तुम अब लौट जाओ और अपने पतियों के यज्ञ की पूर्णता में सहायता करो।"

ब्राह्मण-पत्नियाँ सर्वथा ही श्रीकृष्ण की शरण में आ चुकी थीं। अपनी बात कह वे श्रीकृष्ण चरणों की सन्निधि में रहने का आग्रह करने लगीं- क्योंकि उनके पति एवं बन्धु-बान्धव अब उन्हें स्वीकार नहीं करेंगे। अतः अब उनके पास अन्य कोई रास्ता ही नहीं था। हे नाथ ! अब आप ही हमारी गति हैं- हमें अपनी शरण में रखें।"

श्रीकृष्ण ने कहा, "तुम्हारे पति, पिता तथा अन्य बन्धु-बान्धव कोई भी तुम्हारा तिरस्कार नहीं करेंगे, क्योंकि तुम मेरी हो गयी हो। देवियों ! इस संसार में मेरा अङ्ग-संग ही प्रीति का कारण नहीं है, मेरे परायण हुई तुम अपने घर लौट जाओ।" सभी ब्राह्मण-पत्नियाँ यज्ञशाला को लौट गईं। ब्राह्मणों ने कोई किसी भी प्रकार की आशंका नहीं की।

बाद में ब्राह्मणों को अपने कृत्य पर बुहत पश्चात्ताप हुआ ।

श्रीकृष्ण ने ग्वाल-मण्डली सहित भोजन किया । वही स्थली, यज्ञ-स्थली, भोज स्थली भतरोड़ नाम से आज भी उसी गाथा को दोहरा रही है ।

छटीकरा (गरुड़ गोविन्द)

शकटारोहनं नाम तस्मिन् क्षेत्रं परं मम ।
मथुरा पश्चिमे भागे अदूरादर्धयोजने ।

(आ० व०)

मथुरा के पश्चिम में यह स्थान स्थित है ।

गोकुल से श्रीनन्दरायजी जब वृन्दावन के लिए आये तो इस स्थल पर भी ठहरे, अपनी गाड़ियों को यहाँ खड़ा किया । गोविन्द कुण्ड के एक ओर बना मन्दिर 'श्रीगरुड़ गोविन्द' नाम से आज भी ब्रजवासियों के लिए अत्यन्त श्रद्धा का केन्द्र है । इस मन्दिर के लिए एक उक्ति प्रसिद्ध है -

'आठ हाथ को मन्दिर और बारह हाथ को ठाकुर ।'

गोविन्द भगवान की बारह भुजी मूर्ति दर्शनीय है। प्राचीन तथा सिद्ध श्रीविग्रह हैं।

यह गाँव श्रीवृन्दावन से लगभग पाँच मील की दूरी पर स्थित है ।

सहायक ग्रन्थ सूची

संस्कृत

1. अग्नि पुराण
2. आदित्य पुराण
3. आदि वाराह पुराण
4. कूर्म पुराण
5. कृष्ण कर्णामृत
6. कृष्ण स्तवराज
7. गर्ग संहिता
8. गिरिराज माहात्म्य
9. गीत गोविन्द
10. गोपाल तापिनी
11. गोपाल चम्पू
12. गोपाल देवाष्टक
13. गोविन्द लीलामृत
14. गोवर्द्धन शतक
15. गौरी तन्त्र
16. तैत्तरीय संहिता
17. देवी पुराण
18. नव विज्ञप्ति
19. नारद पांचरात्र
20. निम्बार्क स्तोत्र संग्रह
21. निरोध लक्षणम्
22. नैमिषखण्ड में वर्णित सहस्र नामावली
23. पंचस्तवी
24. पद्म पुराण
25. पद्यावली
26. पुराण संहिता
26. प्रबोध सुधाकर
28. ब्रजभक्ति विलास
29. ब्रह्माण्ड पुराण
30. ब्रह्मवैवर्त पुराण
31. ब्रह्मयामल
32. भक्ति रसामृत सिंधु
33. भविष्य पुराण
34. मत्स्य पुराण
35. मथुरा माहात्म्य
36. मुक्ता चरित्र
37. मुरारिदास कृत चै०च०
38. राधासुधा निधि
39. राधा-रस मंजरी
40. रुद्रयामल
41. वल्लभ दिग्विजय
42. वल्लभाचार्य जी के ग्रंथ
43. वायु पुराण
44. विष्णुयामल
45. विष्णु धर्मोत्तरे
46. वृन्दावन महिमामृत
47. वृहन्नारदीय पुराण
48. वृहत्पाराशर
49. वृहत्गौतमीय तन्त्र
50. सहस्र गीतिसार
51. सम्मोहन तन्त्र
52. स्तवावली
53. स्कन्द पुराण
54. सौर पुराण
55. यमुनास्तुति (श्रीशंकराचार्यजी)
56. यमुनाष्टक (हरिवंश जी)
57. यमुनाष्टक (वल्लभाचार्यजी)
58. भक्ति सूत्र

हिन्दी

1. अष्ठछाप परिचय
2. अष्ट सखा भक्तमाल
3. कृष्णदास जी का चरित्र
4. कुम्भनदास जी का चरित्र
5. गोकुलदास जी की निज वार्ता
6. गोविन्द स्वामी पदावलि
7. चतुर्भुजदास चरित्र
8. छीत स्वामी चरित्र
9. नन्ददास ग्रन्थावलि
10. निम्बार्क माधुरी सार
11. परमानन्द सागर
12. पुष्टिमार्गीय सुधा (पत्रिका)
13. ब्रज मण्डल दर्शन
14. ब्रज के भक्त
15. ब्रज के धर्म-सम्प्रदाय
16. ब्रज परिचय
17. ब्रज परिक्रमा
18. श्रीनाथ जी प्राकट्य
19. ब्रज विभव की अपूर्व श्रीभक्तिमती ऊषा बहनजी
20. ब्रजस्थ वल्लभ सम्प्रदायका इतिहास

ब्रज भाषा

1. एक महात्मा की वाणी
2. केलिमाल
3. चौरासी वैष्णव वार्ता
4. दो सौ बावन वैष्णव वार्ता
5. नागरीदासजी की वाणी
6. नारायण स्वामी पद संग्रह
7. ब्रज वर्णन
8. बयालीस लीला
9. ब्रज विलास
10. बावरी सखी के पद
11. भ्रमर गीत
12. महावाणी
13. रसखान के पद
14. रसिकदेवजी का चरित्र
15. ललित माधुरी पद संग्रह
16. लोक गीत
17. वृन्दावनदास (चाचा) के पद
18. सूरदास मदन मोहन जी की वाणी
19. हित चौरासी
20. ललिताकिशोरी देव जी की जीवनी

बंगला

1. भक्ति रत्नाकर
2. चैतन्य चरितामृत

दिल्ली
यमुना
कोकिलावन
नन्दग्राम
काम्यवन
बरसाना
माट गाँव
भांडीरवन
बेल वन
वृन्दावन
लोह वन
गोवर्द्धन
मथुरा
रावल
मधु वन
गोकुल
कुमुद वन
दाऊजी
ताल वन
उ
आगरा
भीतरी परिक्रमा पथ
बाहरी परिक्रमा पथ

श्री ब्रज मण्डल

१. बन्दी
२. पानी गाँव
३. अक्रूर घाट
४. छटीकरा
५. आटस
६. जैंत
७. चौमुहा
८. पसौली
९. सेई
१०. स्यामती
११. छाता
१२. अगियार
१३. नन्द घाट
१४. चीर घाट
१५. तपोवन
१६. अक्षय वट
१७. राम घाट
१८. खेलन वन
१९. ऊजानी
२०. रामपुर
२१. शेषशायी
२२. कोसी
२३. बनचारी
२४. होडल
२५. चरण पहाड़ी
२६. कोटवन
२७. लालपुर
२८. बिछोर
२९. कामर
३०. केदारनाथ
३१. पसपा
३२. बठैन
३३. संचौली
३४. महराना
३५. जावट
३६. धनसिंगा
३७. खायरो
३८. बिजवारि
३९. संकेत
४०. करहला
४१. उमराव
४२. रनबाड़ी
४३. नरी
४४. साहार
४५. कामेई
४६. ऊँचाग्राम
४७. रीठौरा
४८. सुनहरा
४९. इन्द्रौली
५०. सेउ
५१. आदिबद्री
५२. परमदरा
५३. डीग
५४. मुनिशीर्ष
५५. देवशीर्ष
५६. गांठौली
५७. पूंछरी
५८. बच्छगाँव
५९. पैंठा
६०. पारासौली
६१. आन्यौर
६२. जतीपुरा
६३. नीमगाँव
६४. राधा कुण्ड
६५. मुखराई
६६. कुन्जेरा
६७. सूर्य कुण्ड
६८. बसोंति
६९. राल
७०. बहुलावन
७१. तोषग्राम
७२. दतिया
७३. गणेशरा
७४. शान्तनु कुण्ड
७५. माधुरी कुण्ड
७६. अड़ींग

ब्रजनिधि प्रकाशन के अन्य ग्रन्थ

१. ब्रज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती ऊषा बहनजी-बृहच्चरित
२. भगवान निम्बार्क प्रणीत प्रातःस्तव
३. लीला रस माधुरी
४. ब्रज विभव की अपूर्व श्री भक्तिमती ऊषा बहनजी-संक्षिप्त परिचय
५. मधु रस निर्झर (प्रथम भाग)
६. मधु रस निर्झर (द्वितीय भाग)
७. मधु रस निर्झर (तृतीय भाग)
८. श्री राधा सुधा निधि
९. स्प्लेंडर अफ वृन्दावन
१०. वेदवाणी
११. जीवन तथ्य
१२. लीला रस तरंगिनी (प्रथम भाग)
१३. लीला रस तरंगिनी (द्वितीय भाग)
१४. लीला रस तरंगिनी (तृतीय भाग)
१५. लीला रस तरंगिनी (चतुर्थ भाग)
१६. लीला रस तरंगिनी (पंचम भाग)
१७. प्रेम पियूष धारा
१८. प्रेम सुधा धारा
१९. श्री कृष्ण आलोक
२०. श्री कृष्ण कर्णामृतम-टीका सहित
२१. साधना और सिद्धि
२२. ब्रज भूमि मोहिनी (अंग्रेजी)

श्री श्रीमन्महाप्रभू वल्लभाचार्य वंशजा

श्री गो० इन्दिरा बेटी जी

॥ श्री बालकृष्णो विजयतेत्ताम् ॥

॥ श्रीहरिदासवर्य गिरिराज गोवर्धनाय नमः ॥

श्री कृष्णः शरणं मम

वृन्दावनं परित्यज्य पादमेकं न गच्छति ।

ब्रज तज अनत न जैहों मोहे नन्दबाबा की आन ।

रासेश्वर भगवान श्रीश्यामसुन्दर की नित्य विहार-स्थली ब्रज-भूमि है । यहाँ का एक-एक कण लीला रस-सभर है । श्री विजय जी (बाबा) यहाँ आकर स्वयं ब्रजवासी बन गये ।

श्रीप्रिया-प्रियतम के पुनीत संकेत से ब्रज-भूमि की मोहिनी प्रकट करने के लिये आपने इस रसमय ग्रन्थ का प्रयणयन किया है ।

इस ग्रन्थ में लीला स्थलियों का दिग्दर्शन कराने के लिये सात खण्ड विभक्त किये गये हैं-मथुरा, महावन-गोकुल, श्रीगिरिराज, कामवन, बरसाना, नन्दगांव एवं वृन्दावन । इन खण्डों में सप्रमाण निरूपण किया गया है कि ब्रजेन्द्र नन्दन ने कौन सी लीला कहाँ की थी । लेखक की लेखनी में सरस्वती और भक्ति का सुभग संगम हुआ है ।

श्रीप्रिया-प्रियतम की लीला में आसक्त एवं ब्रज मण्डल से लगाव रखने वाले भक्तों के लिये ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता, मैं कई सालों से महसूस कर रही थी । जब मैंने इस ग्रन्थ के कुछ अंशों को पढ़ा तब चित्त अत्यधिक प्रसन्न हुआ ।

ब्रज-भूमि से सम्बन्ध रखने वाले सब सम्प्रदायों की विशेष बातों को भी इसमें आवृत कर लिया गया है ।

ब्रज-भूमि का ऐसा अनूठा दर्शन कराकर श्री विजय जी ने कृष्ण-प्रेमी भक्तों की बहुत बड़ी सेवा की है ।

यह ग्रन्थ सदैव भावुक भक्तों के हृत्कमल को विकसित करता रहे, यही प्रभु के श्रीचरणों में प्रार्थना है ।

श्रीगिरिराज भवन **गो. इन्दिरा**
देसाई शोरी, घडियालीपोल
वड़ोदरा-३९०००१